हिंदुस्तानी एकेडेमी
उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद

मुद्रक—
आजाद प्रेस, प्रयाग

प्रकाशकीय

हिंदुस्तानी एकेडेमी की एक योजना रही है कि हिंदी के प्रमुख कवियों की समस्त रचनाओं के ऐसे संस्करण प्रकाशित किए जाएँ जिनके पाठ यथासंभव प्रामाणिक तथा सुसंपादित हों। इस योजना के अंतर्गत एकेडेमी से 'जायसी-ग्रंथावली' तथा 'तुलसी-ग्रंथावली' (खंड १) का प्रकाशन हो चुका है। अब 'केशव-ग्रंथावली' इस क्रम की नई कड़ी के रूप मे पाठको के समक्ष है।

'केशव-ग्रंथावली' का संपादन अधिकारी विद्वान् श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने अनेक नई और पुरानी छपी तथा हस्तलिखित पोथियो के आधार पर किया है, जिसमें 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया', 'रामचंद्रचंद्रिका', 'छंदमाला', 'शिखनख', 'रतनबावनी', 'वीरचरित्र', 'जहाँगीर-जस-चंद्रिका' तथा 'विज्ञानगीता', ये नौ रचनाएँ सम्मिलित हैं। पूरी ग्रंथावली के तीन खंडों में प्रकाशन का आयोजन रहा है। प्रथम खंड में केशव की दो रचनाएँ 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' तथा द्वितीय खंड मे तीन रचनाएँ 'रामचंद्रचंद्रिका', 'छंदमाला' और 'शिखनख' प्रस्तुत की जा चुकी हैं। 'छंदमाला' और 'शिखनख' दो ऐसी रचनाएँ है जिनका अभी तक हिंदी-साहित्य-जगत् को कोई ज्ञान नहीं था। इस तृतीय खंड में उनकी चार रचनाएँ 'रतनबावनी', 'वीरचरित्र', 'जहाँगीर-जस-चंद्रिका' और 'विज्ञानगीता' प्रस्तुत हैं। इनमे 'जहाँगीर-जस-चंद्रिका' ऐसी रचना है जो सबसे प्रथम मुद्रित हो रही है।

आचार्य और कवि केशवदास हिंदी की विभूति हैं। दुःख है कि अभी तक इनके ग्रंथों का सुसंपादित संस्करण प्रकाश मे नहीं आ सका था। आशा है प्रस्तुत ग्रंथावली से हिंदी के इस एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति हो जाएगी।

हिंदुस्तानी एकेडेमी,
उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद
अप्रैल, १९५९

धीरेंद्र वर्मा
मंत्री तथा कोषाध्यक्ष

संपादकीय

प्रयाग की हिंदुस्तानी अकदमी की दृष्टि केशवदास की अप्रकाशित रचना के प्रकाशन की ओर सबसे प्रथम गई थी। उसकी प्रतिष्ठा होते ही स्वर्गीय लाला भगवानदीन जी केशव की अमुद्रित कृति 'जहाँगीर-जस-चंद्रिका' के संपादन के लिए आमंत्रित किए गए। पर कुछ विशेष हेतुओं से उन्होंने संपादन करना स्वीकार करके भी कार्य हाथ में नहीं लिया। बात आई गई पार हो गई। सं० २००० में काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने अपनी स्थापना का अर्धशती उत्सव मनाया। उसमें योग देने के लिए अकदमी के मंत्री धौरधुरीण श्री धीरेंद्रजी वर्मा काशी पधारे। वार्तालाप के क्रम में उन्होंने मुझे केशव-ग्रंथावली के संपादन का आदेश दिया। मैं उनसे प्रतिश्रुत हो गया। अंततोगत्वा सं० २००२ में अकदमी ने मुझसे उक्त ग्रंथावली के संपादन का अनुरोध सविधि किया और मैंने स्वीकृति दे दी। दो वर्ष तो कार्य करने की योजना, सामग्री-संकलन के प्रयास आदि के चिंतन में व्यतीत हो गए। सं० २००४ से कार्य नियमित रूप से चलने लगा। अब सं० २०१६ में पूरे एक युग की समाप्ति पर वह किसी प्रकार परिसमाप्त हुआ।

पुराकाल में हिंदी के साहित्यिक कर्ताओं और रसचर्वयिताओं द्वारा केशव के साहित्यपरक ग्रंथों का जितना उपयोग हुआ उतना बिहारी की सतसैया के अतिरिक्त हिंदी के और किसी ग्रंथ का नहीं। सम्प्रति साहित्य-क्षेत्र में केशवदास की रचनाओं के प्रति जैसी उदासीनता दिखाई देती है वैसी पहले कभी नहीं थी, आधुनिक काल के मध्य तक भी नहीं। इसका हेतु है साहित्य-जगत् में होनेवाला विशेष प्रकार का परिवर्तन। प्राचीन साहित्य की ओर से प्रवृत्ति को मोड़नेवाली प्रमुख रूप में आलोचना है। हिंदी में साहित्यिक उन्मेष का सबसे अधिक प्रकर्ष प्रदर्शित करने की ओर प्रायः सबकी दृष्टि उस समय गई जिसे आधुनिक काव्य का 'छायावाद-युग' कहते हैं। छायावाद की कृतियाँ प्राचीन काव्य विशेषतया शृंगारी अथवा रीतिबद्ध काव्य की भूरि भर्त्सनापूर्वक मार्ग प्रशस्त करती सामने आईं। अधिकतर निर्माता स्वकीय निर्मिति की उच्चता की शंसा और मध्यकालिक शृंगारी रचना की अभिशंसा करते आगे बढ़े। परप्रत्ययनेयता के कारण गतानुगतिक आलोचना होने लगी। नई कविता और नई भाषा के लिए अवकाश करते हुए प्राचीन कविता और प्राचीन भाषा पर जी भर कहा-सुना गया। फलतः केशव और बिहारी पर वाणी की मार सबसे अधिक पड़ी, प्राचीन काव्य के ये प्रमुख प्रतिनिधि थे, सेनानी थे, महारथी थे।

जो प्राचीन साहित्य के महत्त्व को अस्वीकार नहीं करते, थे, जो उसके सपोषण में दत्तचित्त थे उनको अन्य प्रकार के व्यामोह ने केशव से पराङ्मुख किया। भारतीय शास्त्र की साज-सज्जा से विरहित, पर प्रेम की सार्वजनीन रसधारा से कुछ विशेष संपृक्त प्रेममार्गी

मुसलमान कवियों, प्रमुखतया मलिक मुहम्मद जायसी की 'पदमावत' की प्रेम की पीर उनके लिए इतनी सवेद्य हो गई कि केशव का प्राप्य भी उन्हें नहीं मिला। तुलसीदास और सूरदास ने केशवदास को उपेक्षित करने में कोई कोर-कसर शेष नहीं रहने दी। हिंदी-साहित्य के इतिहासों में ये भक्तिकाल के फुटकल खाते में स्थान पाते हैं। रीतिकाल या श्रृंगारकाल का प्रारंभ चिंतामणि से माना जाता है। इनकी चिंता उस युग में भी नहीं हुई जिसके प्रवर्तन का हिंदी में इन्होंने सबसे प्रथम व्यवस्थित प्रयास किया था। हिंदी के साप्रतिक युग में इनके ग्रथ भली भाँति पढ़े ही नहीं गए। हिंदी का स्तर शिक्षा के क्षेत्र में ऊँचा करने के फेर में पडकर शुद्ध साहित्य की ओर उस क्षेत्र के प्रमुख कर्ता-विधाता केशवदास की जितनी उपेक्षा हुई, वह संसार के साहित्यों के इतिहास में अश्रुतपूर्व है। हिंदी के साहित्यिकों को, सारस्वतों को, हसों को इस पर गंभीरतापूर्वक विचार करना होगा कि साहित्य के परिसर में असाहित्य या साहित्येतर के धीरे धीरे बढते जाने का परिणाम यह तो नहीं हो रहा है कि साहित्य पर से दृष्टि हटती जा रही है। उन्हें यह भी देखना होगा कि उनके सधर्मा कम तो नहीं हो रहे हैं।

अस्तु, इस उपेक्षा का परिणाम यह हुआ कि इनके ग्रंथों के सपादन की ओर पहले पूर्ण दृष्टि ही नहीं गई। दृष्टि जाने पर दिखाई पड़ा कि इनके साहित्यिक ग्रथों के अनेक हस्तलेख देश-विदेश में छाए हुए हैं। जितनों का पता चला है उनसे परिमाण में कई गुणित अभी न जाने कहाँ वेष्टनों में मत्स्यकीट के खाद्य होते होंगे और न जाने कितने वाल्मीकि के नामदाताओं के उदर में पहुँच गए होंगे। सबका संग्रह-संकलन और पाठातर-लेखन जीवनव्यापी कार्य है। अभी हिंदी में इस प्रकार का अनुष्ठान करने की सुविधा और समय कुछ दूर है। सबसे अधिक कठिनाई हस्तलेखों के प्राप्त करने की है। रजवाडों ने हस्तलेखों की सुरक्षा का सबसे अधिक श्लाघ्य कार्य जाने-अनजाने कर डाला, पर वहाँ से हस्तलेख पाना तो दूर उसका देख पाना तक महती तपश्चर्या का फल होता है। पहले तो महाराजाओं की अनुमति प्राप्त करने में एक युग लग जाता है, दूसरे किसी आत्माभिमानी सच्चे साहित्यिक के लिए उनके पीछे पीछे मृगया के वासस्थान तक जाना और बिना अनुमति पाए लौट आना यमयातना से कम नहीं। इतने पर भी यदि किसी प्रकार उसके दिखाने की अनुज्ञा हुई तो पुस्तकालय के प्रबंधक महोदय की सुख सुविधा का वशंवद-किंकर की भाँति ध्यान रखते दूसरा जन्म ही हो जाता है। यदि हस्तलेख किसी गृहस्थ के यहाँ कहीं गाँव में है तो उत्तरार्थ सामग्री प्रेषित करने पर भी पहले तो पत्रोत्तर नहीं मिलता, दूसरे उस गाँव में पहुँचकर यदि अकालपीडित देश की सी स्थिति का सामना अगस्त्य का वंशज कर भी ले गया तो गृहस्थ की आशकाओं से उसे किसी प्रकार मुक्ति नहीं मिलती। आशकाओं के साथ आती हैं नाना प्रकार की जिज्ञासाएँ, फिर बहुविध पृच्छाएँ। जिनके बीच साहित्यिक का मन श्रृंगी ऋषि की भाँति मुग्धत्व को प्राप्त हो जाता है।

सबको संपिंडित करके कहना यह है कि केशव की रचनाओं के हस्तलेखों की प्राप्ति के लिये पूर्ण प्रयत्न करने पर भी वैसी सफलता नहीं मिली जैसी अन्य समृद्ध साहित्यवाले देशों के अनुरूप इस प्रकार के प्रयत्न में मिलनी चाहिए थी। नागरीप्रचारिणी सभा के

तत्त्वावधान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की जो खोज हुई उसके अनुसार केशव के ग्रंथों के हस्तलेख जिन ग्रंथस्वामियों के पास थे उन्हें पत्र दिए गए। आधे पत्र तो लौट आए। जो लौटे नहीं उन्होंने उत्तर की आशा बँधाकर भी उससे वंचित ही रखा। ग्रंथस्वामियों के निकट जड़ पत्र के काम निकलता न देख चेतन प्राणी की सहायता ली गई। सहायकों को कई स्थानों पर भेजा। कुछ व्यक्तियों का तो उन्हें पता ही नहीं चला। खोज-विवरण में कुछ स्थान ऐसे भी लिख दिए गए हैं जिनका वहाँ अस्तित्व ही नहीं है। स्थान ठीक है तो उस नाम का व्यक्ति वहाँ कभी था इसका पता नहीं लगता। साहित्यान्वेषकों ने उस उत्तरदायित्व के साथ यह कार्य ही नहीं किया जिसकी संधान के क्षेत्र में महती आवश्यकता थी। उनकी दृष्टि भत्ता बनाने और आकार-पत्रों की पूर्ति पर अधिक थी। इसलिए इन विवरणों का पूरा भरोसा किया ही नहीं जा सकता। जिन व्यक्तियों या उनके पुत्र-पौत्रों से भेंट हुई भी उनके पास ग्रंथ कभी थे, इसमें संदेह है। जहाँ ग्रंथ होने की संभावना हुई वहाँ वे मिले नहीं, किसी ने दिखाना ही स्वीकार नहीं किया। ऐसी कठिनाई में किसी अनुसंधायक का कड़ा प्रस्ताव हो सकता है कि प्राचीन हस्तलेख राष्ट्रीय संपत्ति घोषित कर दिए जायँ और यत्किंचित् मूल्य देकर या न देकर वे शासन के अधिकार में कर लिए जायँ। इतने पर भी कठिनाई का निवारण होने की पूरी संभावना नहीं। जिन संस्थाओं और संग्रहालयों में ये हस्तलेख सुरक्षित हैं और जिनका सञ्चालन सरकारी सूत्र से होता है उनसे हस्तलेख प्राप्त करने में विशेष कठिनाई है। यदि आप उचित मार्ग से नियमानुसार ग्रंथ देखना चाहते हैं तो कभी कभी उतनी तपश्चर्या करनी पड़ेगी जितनी से भगवान् मिल सकता है।

इस कड़ाई में दोष केवल ग्रंथस्वामियों या शासन का ही नहीं है। हस्तलेखों पर काम करनेवालों और उसका व्यापार करनेवालों ने सत्यशीलता का जो प्रमाण उपस्थित किया है उससे कठोरता अधिक और विश्वास कम हो गया है। एक स्थान पर निदाघ की भीषण ऊष्मा और लू में पहुँचने पर पता चला कि कोई मेरे जैसे ही बने-ठने सज्जन अभी आए थे और एक विधवा-वृद्धा के सारे हस्तलेख ले देकर नौ दो ग्यारह हो गए। गरमी से माथा ठनक रहा था, बात सुनकर ठनक गया। अपना सा मुहँ लेकर लौट आना पड़ा। किसी संस्था में कोई अनुसंधाता हस्तलेख देखने गए उसके कितने ही पन्ने उड़ा ले आए। अनेक कठिनाइयाँ हैं। अनुसंधान का महत्त्व न समझनेवाले विलक्षण विलक्षण कार्य करते हैं। किसी प्राचीनतम हस्तलेख में एक सज्जन महीन अक्षरों में अपना ही नहीं अपनी पत्नी का भी हस्ताक्षर अंकित करा आए हैं। बड़ी मनोरंजक और पर्याप्त अद्भुत घटनाएँ हस्तलेखों के संबंध में हैं। उनके सविस्तर उल्लेख का यह समुचित स्थान नहीं। इन सारी कठिनाइयों के होते हुए भी किसी प्रकार यह कार्य संपादित किया गया।

इस ग्रंथावली के संपादन में जिन हस्तलेखों का उपयोग किया गया है वे ही नहीं हैं जो विभिन्न खोज के विवरणों में विवृत हैं, प्रत्युत अनेक ऐसे हैं जिनका शोध विवरणों में कहीं कोई उल्लेख नहीं। आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार इन सबका पूरा लेखा-जोखा अपेक्षित है, अर्थात् यह कि हस्तलेख की लंबाई-चौड़ाई क्या है,

उसकी पुष्पिका क्या है, उसकी लेख-पद्धति कैसी है। केशव-ग्रंथावली के संबंध में जितना अनुमान लगाया गया था उससे कहीं अधिक आकार बहुत कसावट करने पर भी हो गया। अतः इनके इस विस्तृत विवरण द्वारा अधिक कागज काला करना निरर्थक प्रतीत होता है। अपेक्षित विवरण प्रत्येक खंड के साथ 'संकेत' के अंतर्गत दे दिया गया है। पुष्पिका का महत्त्व कुछ अवश्य है। उसका उल्लेख-उपयोग यथाप्रसंग किया जाएगा।

रसिकप्रिया के संपादन में चार प्रतियों का उपयोग किया गया है। 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' का सबसे प्राचीन हस्तलेख हिंदी के विख्यात विद्वान् स्वर्गीय राधाकृष्णदास जी के सुपुत्र बाबू बालकृष्णदास उपनाम 'बल्ली बाबू' (वाराणसी) के पास है। दोनों पुस्तकों के हस्तलेख एक ही जिल्द में हैं। वे एक ही व्यक्ति के लिखे हुए हैं। 'लिखक' (लिपिकर्ता) अबोध व्यक्ति है। उसने किस शब्द को क्या लिखा होगा कल्पित नहीं किया जा सकता। फिर भी उपलब्ध प्राचीनतम हस्तलेख होने के कारण यह सबसे महत्त्वपूर्ण है। इसकी पुष्पिका है—'संवत् १७। २२ वर्षे फाल्गु वदि ४॥ लिखितं कुंजादास॥'

यद्यपि प्रति में सामान्यतया परवर्ती प्रतियों से छंद कम ही हैं तथापि कहीं कहीं एकाध छंद अधिक भी है, जैसे ११।७ और ११।१२ के अनंतर। यह विचारणीय विषय है कि इन छंदों को स्वयम् कवि ने ही आगे चलकर पृथक् कर दिया या अन्य किसी ने। ११।७ के संबंध में कहना है कि केशवदास ने कहीं कहीं दो दो उदाहरण भी रखे हैं। इसलिए हो सकता है कि पहले दो उदाहरण रहे हों और आगे चलकर व्यवस्थित करते समय एक निकाल दिया गया हो। सभी प्रतियों के आधार पर निश्चय करने पर छंदों को पादटिप्पणी में ही स्थान दिया गया है। आरंभ में एक प्रसंग के दो दो उदाहरण रखने में हेतु यह होगा कि एक तो पहले से प्रस्तुत रहा होगा और दूसरा ग्रंथ लिखते समय बनाया गया होगा। अथवा ग्रंथ लिखते समय ही दो दो उदाहरण बनाए गए होंगे। सोचा गया होगा कि जो उपयुक्त होगा उसी एक को रखा जाएगा दूसरे को पृथक् कर दिया जाएगा। बहुत संभावना है कि यह पृथक्करण स्वयम् कवि ने ही किया हो। ११।१२ के संबंध में निवेदन है कि केशव ने इसे 'विरहभय-विभ्रम' के पहले रखा है। 'रसिकप्रिया' में यह कहीं नहीं बतलाया गया है कि 'विरहभय-विभ्रम' क्या है। उसके रूप का स्पष्टीकरण इस दोहे में है। परंपरा के अनुसार जो वस्तुएँ संयोग में सुखद होती हैं वे वियोग में दुःखद हो जाती हैं। दोहे में केवल 'तियसुख-भंग' की ही चर्चा है। श्रीकृष्ण के 'विरहभय-विभ्रम' के पूर्व यह दोहा ठीक नहीं था। कदाचित् इसी से पृथक् कर दिया गया। कवि ने आरंभ में केवल नायिका के 'दुःखदों' का वर्णन करना सोचा होगा, पर आगे चलकर उसने कृष्ण और राधा दोनों के दुःखदों का वर्णन किया। इसी से दोहा पृथक् कर देना पड़ा। इस प्रकार उक्त दोहे के कवि द्वारा हटाए जाने की संभावना है।

दूसरी प्रति अंत से खंडित है। इसलिए उसमें पुष्पिका नहीं है। पर वह भी प्राचीन है। प्राचीन होते हुए भी प्रथम प्रति से भिन्न शाखा की है। यह उस समय की है जब 'रसिकप्रिया' को अंतिम रूप प्राप्त हो गया। ऐसी स्थिति में जहाँ कुछ छंद घट गए, वहाँ कुछ बढ़ भी गए। इस प्रति में कहीं कहीं छंदों की गणना भी दी है जैसा

प्रथम प्रभाव के अंत में है। पर उसमें केवल सवैयों और दोहों की गणना की गई है। आरंभ के दो छप्पय और बीच का एक कवित्त या घनाक्षरी परिगणित नहीं है। जो गणना की गई है वह ठीक है। १।२४ सवैया कुंजादासवाली प्रति में नहीं है। इस गणना से पता चलता है कि वह भी मूल में है। कदाचित् कुंजादास द्वारा लिखने में छूट गया है। ३।२१ के अनंतर इसमें एक सवैया और एक कवित्त अधिक है। ये दोनों सूरति मिश्र की 'रसगाहकचंद्रिका' टीका और लीथो में छपी एक प्राचीन पोथी में भी हैं। यह जिज्ञासा होती है कि इन छंदों के कर्ता केशवदास ही हैं या और कोई तथा ये छंद किसने जोड़े स्वयम् कर्ता ने या और किसी ने। दोनों छंदों की शैली केशव की रीति से मिलती है। इसलिए छंद तो उन्हीं के हैं। फिर इन छन्दों की नियोजना किसने की। हो सकता है कि आगे चलकर उन्हीं ने उदाहरण बढ़ाए हों। किसी चेले-चाटी ने जोड़-तोड़ किया हो, इसकी भी संभावना है।

अब 'रसगाहकचंद्रिका' को लीजिए। सूरति मिश्र बहुत समर्थ साहित्य-मर्मज्ञ थे। उन्होंने साहित्य की गतिविधि के नियंत्रण के लिए आगरे में एक संमेलन भी कराया था। इन्हीं के तत्त्वावधान में वहाँ कुछ निर्णय भी हुए थे। इसलिए इनकी टीका का विशेष महत्त्व है। यह टीका अभी तक प्रकाशित नहीं है। इसमें प्रश्नोत्तरी पद्धति से पद्यात्मक व्याख्या है। मुझे इसकी जो प्रति मिली है वह मेरे प्रिय शिष्य श्रीलक्ष्मीशंकर व्यास के द्वारा। यह काशी के सुप्रसिद्ध प्राचीन वैद्य पं० चुन्नीलालजी के संग्रहालय की है। व्यासजी उनके जामातृ होते हैं। श्रीचुन्नीलालजी की भी प्रौढ़ साहित्यिक गुरु-परंपरा है। काशी में श्रीदीनदयाल गिरि प्रख्यात कवि हो गए हैं, जो भारतेंदु बाबू के समसामयिक थे। उनके शिष्य थे श्रीदंपतिकिशोरजी। इन्हीं के शिष्य थे चुन्नीलालजी। प्रति के ऊपर ही लिखा है—'मि० पू० व० १० वा० सो० सं० १६६४ गुरुपत्नी (गोसाइन) जी से प्राप्त'। इस हस्तलेख में लिपिकाल नहीं दिया है। पर वह लिपिशैली और कागज से प्राचीन प्रमाणित होता है। सूरति मिश्र ने टीका १७६० के आसपास की होगी। हस्तलेख उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण का निश्चित है। इसकी लिखावट बहुत स्पष्ट है और पाठ अत्यंत शुद्ध हैं। इसमें वर्तनी भी बहुत व्यवस्थित है।

इस टीका में पर्याप्त ज्ञानवर्धक और चमत्कारपूर्ण विस्तार है। मंगलाचरण के 'मदनकदन' शब्द पर अनेक प्रश्नोत्तर हैं। भला शृंगार में 'मदनकदन'! शिव शिव! फिर क्या था 'मदन' का अर्थ 'धतूरा' किया गया, वह खंडित होकर 'मद न' हुआ। 'कदन' में 'विनाश' अर्थ दोषपूर्ण लगा तो उसका अर्थ हुआ 'जग के समापक रुद्र'। फिर प्रश्न हुआ कि गणेश की वंदना क्यों की गई तो अर्थ कृष्ण-पक्ष में घटा दिया गया। जहाँ शब्दों का अर्थ करने में बाल की खाल काढ़ी गई हो वहाँ पाठ ऊटपटाँग चल नहीं सकता। इस टीका से पाठनिर्णय और अर्थ करने में पर्याप्त सहायता मिली है। फिर भी इसमें जोड़-तोड़ पर्याप्त है। कई छंद नहीं हैं। प्रायः वे छंद नहीं हैं जो 'अन्यच्च, अपर च' के रूप में रखे गए हैं। इसके कई हेतु हो सकते हैं। जो प्रति इनके संमुख रही हो उसमें वे छंद न रहे हों। न रहने का कारण कुछ और भी हो सकता है। 'रसिकप्रिया' की एक परंपरा कम छंदों की हो और दूसरी यह परवर्ती अधिक छंदों

की। हो सकता है कि इनकी प्राप्त प्रति पहले प्रकार की रही हो। कहीं कहीं इसमें लक्षण वाले छंद नहीं हैं। यह स्पष्ट छूट प्रतीत होती है। चाहे यह आधारभूत मूल प्रति की हो या इसी प्रति की। कुछ दोहे इसमें अधिक हैं जिनका संबंध विषय के स्पष्टीकरण से है। ये दोहे केशव के न होकर इन्हीं के जान पड़ते हैं जो भूल से मूल समझ लिए गए हैं। इन सबका संकेत पादटिप्पणी में दिया गया है।

चौथी प्रति सरदार कवि की टीका है, जिसका नाम 'सुखविलासिका' या 'काशिराज-प्रकाशिका' है। यह टीका सं० १९०३ में बनी। सरदार कवि काशी राज्य के राजकवि थे। अपने शिष्य नारायण को भी इन्होंने इसमें सहायक रखा है। यह नवलकिशोर प्रेस से मुद्रित भी हो चुकी है। इसी मुद्रित प्रति का उपयोग किया गया है। जिस प्रति को आधार रखा गया है वह तीसरी बार सन् १९११ में छपी थी। इसमें कुछ छंद ऐसे हैं जो केवल 'बाल० खं०' में और इसी में हैं। जैसे ५।१४ के अनंतर का छंद। ऐसे छंद कब बढे। क्या तीसरी बार। संभावना यह है कि 'रसिकप्रिया' में कम से कम तीन बार प्रवर्धन हुआ। यह भी माना जा सकता है कि प्रवर्धन स्वयम् कवि ने किया। 'रसिकप्रिया' का निर्माण संवत् १६४८ में हुआ और सं० १६६९ तक केशव का काव्यकर्तृत्व निश्चित रूप में चलता रहा। 'जहाँगीर-जस-चंद्रिका' इनकी उपलब्ध अंतिम कृति है, जो १६६९ में बनी। बीस-इक्कीस वर्षों के बीच पोथी में एक बार या दो बार जोड़-तोड़ करना असंभव नहीं है। सरदार कवि ने 'रसिकप्रिया' के किसी किसी छंद के संबंध में यह लिखकर टीका छोड दी है कि 'या कबित्त बहुत प्राचीन पुस्तकन में नाहीं मिलत'। इससे सरदार की धारणा यही प्रतीत होती है कि नवीन पुस्तकों में इसे किसी और ने बढ़ाया है। यह विचारणीय विषय है कि यह वृद्धि किसी सोपान (स्टेज) पर किसी और के द्वारा हुई है या नहीं। प्राचीन हस्तलेख जब किसी दरबार में प्रतिलिपि के लिए पहुँचते थे तो उनका संपादन वहाँ के राजकवि करते थे। वे पाठ में ही संशोधन नहीं करते थे कभी कभी त्रुटि की पूर्ति भी किया करते थे। त्रुटि की पूर्ति उसी कवि के छंद से भी की जाती थी और कभी कभी कवि के नाम पर स्वयम् रचना करके भी रख दी जाती थी। इसलिए केशवदास के ग्रंथों के हस्तलेखों में दूसरों की रचना के मिश्रण की भी संभावना है, विशेष रूप से परवर्ती काल के हस्तलेखों में। इस संबंध में मेरी धारणा यह है कि घोल-मेल की यह प्रवृत्ति रीतिकाल या शृंगारकाल के पूरे यौवन के समय अधिक हुई। उस समय काव्य-निर्माण का हौसला बहुत अधिक हो गया था। अट्ठारहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में इस प्रकार के मिश्रण की प्रवृत्ति विशेष जगने की संभावना की जा सकती है। इसलिए उन्नीसवीं शताब्दी के हस्तलेखों में जो अंश अधिक हैं वे कविकृत ही हैं, इसमें संदेह को पूरा स्थान है। 'रसिकप्रिया' के जितने हस्तलेखों का मुझे पता है उनकी संख्या पचास के ऊपर है, टीकाओं के हस्तलेखों सहित। इनमें से एक तिहाई हस्तलेख अट्ठारहवीं शताब्दी के हैं। सत्रहवीं शताब्दी का कोई नहीं है। उनमें से सं० १७२२ के पूर्व की एक ही प्रति सं० १७०४ की है और 'सज्जनवाणी विलास' (उदयपुर) में सुरक्षित है। कुछ विशेष कारणों से उसका उपयोग नहीं किया जा सका। जिन प्रतियों का आधार लिया गया है उनसे 'रसिकप्रिया' के सभी प्रमुख पाठांतर संकलित हो गए हैं।

कविप्रिया में कुछ अश ऐसे है जो पृथक् भी मिलते है। कुछ लोगों ने उन्हें 'कविप्रिया' का अग नहीं माना है। इसके तीन अश 'बारहमासा', 'नखशिख' और 'शिखनख' स्वतंत्र रूप में भी प्रचलित हुए। लाला भगवानदीनजी ने अपनी 'प्रियाप्रकाश' टीका के वक्तव्य में लिखा है—'कई एक प्रतियों में १४वें प्रभाव के अत में नायिका का नखशिख-वर्णन भी संमिलित पाया जाता है, परंतु हम उतने खंड को इस ग्रंथ का अंश नहीं मानते, अतः हमने उसे छोड़ दिया है'। पर उन्होंने 'बारहमासा' को (जो 'दसवें प्रभाव' में वर्णित है) अस्वीकृत नहीं किया है। 'शिखनख' तो ऐसा जान पड़ता है कि अट्ठारहवीं शताब्दी के प्रथम चरण के अनतर ही हटा दिया गया। इसी से आगे की प्रतियों में वह कहीं भी नहीं मिलता। मुझे तो आरभ में यह भी सदेह हुआ था कि यह केशव का है या नहीं। इसी से 'शिखनख' को अपनी प्राचीन हस्तलिखित प्रति में होते हुए भी मैने 'कविप्रिया' के साथ उसे नहीं दिया। उसे परिशिष्ट में देने का विचार था। किंतु ग्रथावली का दूसरा खंड ज्यों ही छपना आरभ हुआ उसकी एक प्रति स्वतत्र रूप में बीकानेर में मिल गई। अतः उसे दूसरे खंड के अंत में दे दिया गया। उसका विचार आगे करेंगे।

'नखशिख' कतिपय हस्तलेखों में चौदहवें प्रभाव के अत में है पर इस सस्करण की आधारभूत प्राचीनतम प्रति में वह पद्रहवें प्रभाव के आरभ में है। इसी से वह वहीं रखा गया। इस प्रति में 'नखशिख' के अतिम पद्य की संख्या ८७ है और यमकालकार के पहले पद की संख्या ८८ है। 'सहजरामचद्रिका' में भी वह पंद्रहवें प्रभाव के ही आरंभ में है। इससे भी वह पंद्रहवें प्रभाव का ही अगभूत जान पड़ता है। 'नखशिख' और 'शिखनख' में 'उपमा' को 'समानता' का आधार मानकर उपमालकार के अनंतर इनका वर्णन किया गया है—

> कही जु पूरब पंडितनि जाकी जितनी जानि।
> तितनी अब ता अंग की उपमा कहौं बखानि॥

'उपमालकार' के साथ ही इसका विचार समीचीन है। पद्रहवें प्रभाव में 'यमकालंकार' का वर्णन है। इसलिए इसका समुचित स्थान चौदहवें प्रभाव का अत ही है। पर प्राचीन प्रति में इसका अतर्भाव पंद्रहवें में पाकर वैज्ञानिक सरणि की रक्षा की दृष्टि से ऐसा किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि केशवदास को यह प्रसग 'कविप्रिया' के अतर्गत ही रखने की सूझ बाद में सूझी। तब उसे कहाँ रखा जाए इस दृष्टि से उपमालंकार के अतर्गत इसे उन्होंने किया। यह प्रसग रखा गया चौदहवें प्रभाव की समाप्ति पर। उसमें संख्या 'नखशिख' की पृथक् से दी गई। इसी से किसी ने इसे चौदहवें प्रभाव का अग नहीं माना, पद्रहवें में रख दिया। उक्त प्रति में 'नखशिख' के अनंतर 'शिखनख' है। 'शिखनख' की छदसख्या स्वतंत्र रखी गई है। 'नखशिख' की अतिम सख्या ८७ है और यमकालंकार की पहली संख्या ८८ है। बीच में २७ संख्या तक यह 'शिखनख' पड़ा हुआ है। ऐसा जान पड़ता है कि 'कविप्रिया' के तीन प्रकार के प्रवाह हैं। एक जिसमें 'नखशिख' और 'शिखनख' दोनों नहीं हैं। दूसरा जिसमें 'नखशिख' है, पर 'शिखनख' नहीं और तीसरा जिसमें दोनों हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पहले

'नखशिख' इसमें जोड़ा गया फिर 'शिखनख'। हमारी सबसे प्राचीन उक्त प्रति में 'नखशिख' के अंत में और पुनः 'शिखनख' के भी अंत में यह दोहा है—

इहि बिधि बरनहु सकल कवि अबिरल छबि अँग अग।
कही जथामति जीव जड़ केसव पाइ प्रसंग॥

दूसरी बार दिए गए दोहे में 'बरनहु' के बदले 'बरनो' और 'जीव' के बदले 'जीय' पाठ है। जान पड़ता है कि जब 'शिखनख' भी जोडा गया तब उक्त दोहे को उसके अंत में रखना था। भूल से 'नखशिख' के अत मे वह छेका नहीं जा सका इसलिए उक्त प्रति मे वह रह गया। इस प्रकार यह कल्पना की जा सकती है कि १७२४ वाली उक्त प्रति जिस हस्तलेख के आधार पर उतारी गई है उस हस्तलेख तक 'कविप्रिया' मे दो बार परिवर्धन और संशोधन हो चुकने की सभावना है। 'कविप्रिया' का निर्माण सं० १६५८ में हुआ और केशवदास की अंतिम रचना सं० १६६६ की प्राप्त है। उस समय क्या उससे दो वर्ष पहले ही वे 'विज्ञानगीता' की रचना के समय वेतवातट से गंगातट पर 'बसबास' कर रहे थे। ओड्छे आते जाते रहे होंगे। कोई १०-११ वर्षों के भीतर दो बार संशोधन-परिवर्धन हुआ, ऐसी कल्पना निराधार नहीं मानी जा सकती। लगभग पाँच वर्षों के अनंतर एक बार संशोधन। 'नखशिख' का जो संस्करण 'रत्नाकरजी' द्वारा संपादित होकर भारत-जीवन प्रेस से प्रकाशित हुआ है उसका आधारभूत हस्तलेख भी सं० १७२४ का है। 'कविप्रिया' का उक्त प्राचीनतम हस्तलेख भी संवत् १७२४ का है। इससे यह अनुमान कर सकते हैं कि 'नखशिख' के स्वतंत्र रूप में प्रचलित होने का प्राचीनतम समय स० १७२४ अवश्य है। इसी समय 'शिखनख' भी स्वतत्र पोथी के रूप मे प्रचारित हुआ होगा। अर्थात् अनुमान यह किया जा रहा है कि केशव ने दो बार मे प्रसंगप्राप्त इन वर्णनों को जोडा फिर ये 'कविप्रिया' से हटाए गए। अब यह निर्णय करना कठिन है कि जिन प्रतियों में ये प्रसंग नहीं हैं वे प्राचीन हस्तलेख की परंपरा की हैं या बाद के हस्तलेखों की परपरा की। 'कविप्रिया' में जोड़-तोड निश्चित है। उसकी जितनी आधार-प्रतियाँ रखी गई हैं उनमें से 'याज्ञिक अपूर्ण' और 'दीन' के अतिरिक्त 'नखशिख' सभी में पाया जाता है।

'कविप्रिया' का प्राचीनतम प्राप्त हस्तलेख सं० १७२४ का है। यह 'रसिकप्रिया' के सं० १७२२ वाले हस्तलेख के साथ एक ही जिल्द में है। इसके 'लिखक' भी कुंजादास हैं। इसकी पुष्पिका इतनी ही है—'॥ सुभमस्तु॥ संबत १७२४ बर्षे बैशाख बदि १४॥' पुष्पिका में 'लिखक' का नाम नहीं है पर अक्षर उसी के हैं। पन्नों की सख्या भी क्रमागत है। हस्तलेख पुस्तकाकार लिखा गया है, पत्राकार नहीं। इस प्रति के अतिरिक्त 'कविप्रिया' के जितने हस्तलेखों का पता है उनकी भी संख्या पचास के लगभग है। उनमें से केवल तीन ही प्रतियाँ प्राचीनतम हैं। एक सीतापुर में सं० १७२७ की, दूसरी उदयपुर में सं० १७४० की और तीसरी सं० १७५८ की याज्ञिक-संग्रह (काशी नागरीप्रचारिणी सभा) में। दो अन्य प्रतियाँ कथित कठिनाइयों के कारण प्राप्त नहीं हुईं। इसी से 'याज्ञिक-संग्रह' की प्रति उपयोग में लाई गई। इस संग्रह में 'कविप्रिया' के खंडित हस्त-लेख कई हैं। उनमें से जो सबसे प्राचीन है उसका प्रयोग 'याज्ञिक अपूर्ण' नाम से किया

गया है। चौथा हस्तलेख लाला भगवानदीनजी के सग्रह का है। इसमें और 'याज्ञिक अपूर्ण' में 'नखशिख' नहीं है। कदाचित् इसी हस्तलेख के आधार पर दीनजी ने अपने 'प्रियाप्रकाश' में पाठशोध किया है। इसमें संवत् का उल्लेख नहीं है। लिखक का भी नाम नहीं है। पर देखने से यह बहुत प्राचीन नहीं है। अट्ठारहवीं शताब्दी का तो है ही नहीं। पर अनुमान से १८५० के लगभग का हो सकता है।

इनके अतिरिक्त चार टीकाओं का भी उपयोग किया गया है जिनमें से राम कवि की 'सहजरामचंद्रिका' सबसे प्राचीन है और अप्रकाशित भी। इसका हस्तलेख काशिराज के पुस्तकालय से प्राप्त हुआ है। इसमें लिपिकाल नहीं दिया है। टीका सं० १८३४ में लिखी गई थी। इसके टीकाकार 'सहजराम' थे। पुष्पिका में इन्हे 'नाजिर' भी लिखा है। टीका गद्य पद्य दोनों में है। इनका उपनाम 'राम' जान पड़ता है।

सहजरामकृत चंद्रिका ससिचंद्रिका-समान।
ताकत ही संसय-तिमिर प्रतिदिन करत पयान॥

टीकाओं में अर्थ की परपरा सुरक्षित है। इनसे पाठ और अर्थ दोनों में अच्छी सहायता मिलती है। 'कविप्रिया' के कुछ छंद सग्रहों में भी मिलते हैं, उनके पाठांतर 'अन्यत्र' नाम से दिए गए हैं। पूर्वगामी संकेत बारबार न लिखकर 'वही' का प्रयोग एक छंद के भीतर पुनरुक्ति बचाने के लिए किया गया है।

हिंदी के प्राचीन हस्तलेखों में 'ष' 'ख' के लिए चलता था। जिन शब्दों में मूर्धन्य 'ष' मूल में ही है उनका परिस्थिति-भेद से दो प्रकार का उच्चारण होता है—'ख' और 'स'। प्रायः जहाँ 'स' उच्चारण होता है वहाँ अच्छे हस्तलेखों में 'स' ही लिखा मिलता है। पर अन्यत्र 'ष' ही रहता है। ऐसी स्थिति में मूल का रूप ज्यों का ज्यों देकर जहाँ 'ख' उच्चारण नियत है वहाँ 'ष्' रूप दिया गया है। जहाँ ऐसा नहीं है वहाँ उच्चारण 'स' होगा। पर हिंदी अक्षरों में टूटने का दोष इतना अधिक है कि कहीं कहीं यह संकेत देना भी बेकार हो गया है।

रामचंद्रचंद्रिका के प्राचीन हस्तलेख संख्या में कम मिलते हैं। सत्रहवीं शताब्दी का केवल एक ही हस्तलेख ज्ञात था जो स० १६८६ का लिखा था, पर बहुत खंडित था। यह काशी नागरीप्रचारिणी सभा के आर्यभाषा पुस्तकालय में था। संवत् १६५४ में 'केशव-ग्रथावली' का प्रथम खड प्रकाशित हो गया। दूसरा खड छपने के लिए देने को था। उस समय सभा से इस हस्तलेख की माँग की गई तो पता चला कि वह मिल नहीं रहा है। संप्रति फिर ढूँढ-खोज कराई गई पर बेकार। स० १६५२ के लगभग इसका आलोड़न करने पर पता चला था कि इसमें पचवटीवाला वह प्रसंग नहीं है जो कालदूषण से युक्त है, राम जहाँ स्वयम् पचवटी का वर्णन करते हुए कहते हैं—

पांडव की प्रतिमा सम लेखो।
अर्जुन भीम महामति देखो॥

अब इस संबंध में साधार कुछ नहीं कहा जा सकता। अट्ठारहवीं शताब्दी का भी सबसे प्राचीन हस्तलेख सभा में ही है। पर यह 'केशव-ग्रथावली' (खंड २) के मुद्रित हो

जाने के अनंतर वहाँ आया। यह सभा के खोजविभाग के साहित्यान्वेषक और मेरे शिष्य श्रीरघुनाथ शास्त्री को विंध्यप्रदेश में संधान करते हुए प्राप्त हुआ है। इसका लिपिकाल सं० १७३३ है। इसके अतिरिक्त एक हस्तलेख विद्याविभाग कॉंकरौली में है जिसका लिपिकाल स० १७७४ है। एक माइक्रोफिल्म भी है जो प्रयागस्थ हिंदी-साहित्य-संमेलन में है और जिसके प्रति चित्रित हस्तलेख का लिपिकाल सं० १७६१ है। इसके लिपिकाल का ठीक ठीक पता द्वितीय खंड छपने के अनंतर बहुत इधर चला। पर प्रयाग विश्वविद्यालय से 'रामचद्रचद्रिका' के पाठ का अनुसधान करनेवाले एक अनुसधायक ने, जो मेरे पास केशव की 'रामचद्रचद्रिका' के हस्तलेखों के अवलोकनार्थ आए थे, मुझे बताया था कि इस माइक्रोफिल्म में पंचवटीवाला उक्त प्रसग नहीं है। जिन प्राचीनतम हस्तलेखों की चर्चा की गई है उनके न मिलने के कारण मुझे उन्नीसवीं शताब्दी के हस्तलेखों के ही सहारे संपादन करने को विवश होना पडा। उन्नीसवीं शताब्दी के सबसे प्राचीन हस्तलेख दो ही हैं। एक तो उदयपुर में है जिसका लिपिकाल सं० १८२२ है और दूसरा स्वर्गीय लाला भगवानदीनजी के संग्रह* में जिसका लिपिकाल सं० १८३४ है। दीनजी के संग्रह के दूसरे हस्तलेख में (जो प्राचीन लगता है) लिपिकाल उल्लिखित नहीं है। इसका उपयोग इसे पहले हस्तलेख का उत्तरवर्ती मानकर किया गया है। तीसरा हस्तलेख मेरे निजी सग्रह में है। 'कविप्रिया' और 'रामचंद्रचद्रिका' का एक ही जिल्द में एक ही लिखक का लिखा हस्तलेख प्रतापगढ़ से खोजकर मेरे एक शिष्य ने ला दिया था। 'कविप्रिया' वाले हस्तलेख का उपयोग तो मैंने इसलिए नहीं किया कि उससे प्राचीनतर कई हस्तलेख उपयोग के लिए उपलब्ध थे। पर 'रामचंद्रचद्रिका' के बहुत प्राचीन हस्तलेख न मिलने से इसका उपयोग किया गया है। दोनों ग्रंथों के हस्तलेख सं० १८६६ के लिखे हैं। 'रामचंद्रचंद्रिका' का हस्तलेख पहले लिखा गया है 'चैत्र सुदि ६ बुध' को और 'कविप्रिया' का हस्तलेख 'बैसाष सुक्ल चतुर्थीयां भौमवासरे'। लिखक ने अपना नाम और लिखानेवाले का नाम यों दिया है—'लिषितमिदं पुस्तकं चैत्रमासे शुक्लपक्षे षष्ठीयां बुधवासरे श्री सं० १८६६ ॥ लिषितं शिवदयाल कायस्थ शुभस्थं द्वारिका हजूर श्रीमहाराजकुमार श्रीमहाराजाधिराज श्रीसर्वदवन सिंह जीव ॥' इनके अतिरिक्त दो हस्तलेख काशिराज के राजकीय पुस्तकालय में हैं—एक सं० १८८२ का लिखा, दूसरा सं० १८८८ का। दोनों के ग्रहण करने का हेतु यह है कि दोनों की शाखाएँ भिन्न हैं। पहला हस्तलेख बहुत ही सावधानी से लिखा गया है। लिखक ने लिखा ही है—

> अंक कला बिंदु अर्धचंद्रन बिसर्गन को चाही जसे जत्र तस तत्र ठहरायो है।
> २ ८ ८ १
> नयन बसु बसु बसाइ रजनीपति को माघ कृस्न सप्तमी तिथ्युत्तमी गनायो है।
> अनगन ग्रंथन के पंथन विलोकि ताके 'केसो' पद बंध छाँडि अंत न चढ़ायो है।
> बिप्र हनुमान तें गनेस भूप आयसु कै रामचंद्रचंद्रिका सो सुद्ध कै लिखायो है॥

---

* मेरे सुझाव और अनुरोध से लालाजी की धर्मपत्नी ने कृपापूर्वक केशव के विभिन्न ग्रंथों के जो भी हस्तलेख उनके पास थे सब नागरीप्रचारिणी सभा को दे दिए। अब उक्त हस्तलेख वहीं आर्यभाषा पुस्तकालय में हैं।

दूसरी प्रति की पुष्पिका है—'श्री संवत् १८८८ श्रावण कृष्ण प्रतिपदायां चंद्रवासरे समाप्त शुभमस्तु' । लिखक का नाम नहीं है ।

दो टीकाओं के पाठों का भी उपयोग किया गया है—पहली श्रीजानकीप्रसाद की 'प्रकाशिका' टीका है जो सं० १८७२ में लिखी गई और मुद्रित हो चुकी है । दूसरी स्वर्गीय लाला भगवानदीनजी की 'केशवकौमुदी' टीका है जो सर्वप्रथम स० १९८० में मुद्रित हुई थी । 'अन्यत्र' सग्रह-ग्रंथों में मिले पाठ के लिए है । इन संग्रह-ग्रंथों का विस्तृत विवरण विस्तारभय से छोड़े देते हैं ।

जैसा पहले कहा जा चुका है । अट्ठारहवीं शती के अंतिम चरण के आसपास से हस्तलेखों में मेल बहुत होने लगा । कविंदों ने यदि किसी प्रति की अनुलिपि होते समय उस पर अपनी काव्यदृष्टि डाली तो पाठभेद भी किया और यथास्थान परिवर्धन भी । 'रामचंद्रचंद्रिका' के जिन हस्तलेखों का उपयोग किया गया है वे इस सीमा के अनतर के ही हैं । इसलिए इनमें के कुछ प्रवर्धित अश पाठशोध के अनंतर स्वीकृत रूप में रह गए हों तो असंभव नहीं है । जैसे पचवटीवाले कालदूषणयुक्त प्रसग की चर्चा की गई है । यह प्रस्तुत संस्करण के आधारभूत सभी हस्तलेखों और टीकाओं में है । पर जैसा पहले कहा गया है, सदेह के लिए अवकाश हो गया है ।

'रामचंद्रचद्रिका' के प्रकाशों के आरभ में कथाप्रसगसूचक दोहे दिए गए हैं । ये किसी प्रति में हैं किसी में नहीं हैं और किसी में कुछ प्रकाशों में हैं, सबमें नहीं हैं । इसलिए इनका सग्रह 'रामचंद्रचंद्रिका' के 'परिशिष्ट' में किया गया है । कथाप्रसंग के आरंभ में सूचना देना केशव की पद्धति है, क्योंकि उन्होंने 'विज्ञानगीता' में भी यही पद्धति ग्रहण की है । 'वीरचरित्र' में ऐसा नहीं है ।

'रामचंद्रचद्रिका' में विविध छंदों का व्यवहार है । उन छंदों के लक्षण भी साथ साथ दिए गए हैं । कुछ लक्षण तो भिखारीदास के 'काव्यनिर्णय' के भी हैं । कुछ का ठीक पता नहीं । कुछ केशव की 'छंदमाला' के हैं । 'रामचद्रचद्रिका' के सबध में कहा जाता है कि पिंगल के उदाहरण एकत्र करने को दृष्टिपथ में रखकर उसका निर्माण हुआ । इनकी 'छंदमाला' मे उदाहरण 'रामचद्रचंद्रिका' के पर्याप्त दिए गए हैं । इसलिए संभव है कि नए नए छंदों के साथ लक्षण भी दिए गए हों । स्वयम् केशव ने ही यह योजना रखी हो । कुछ लक्षणों में केशव की छाप भी है । वे उन्हीं के हैं । पर हो सकता है कि अनुलिपि के समय बहुत से अश छूट गए हों जिनकी पूर्ति बाद में अन्यों के द्वारा की गई हो । इससे लक्षण औरों के दे दिए हों । सर्वत्र नियमित क्रम आधारभूत हस्तलेखों में न पाकर छंदलक्षण का सकलन 'परिशिष्ट' के अतर्गत ही किया गया है । इसकी छानबीन से कई तथ्यों का पता चलता है । केशवदास के पिंगल-ग्रथ का पता परंपरा को था । उसके हस्तलेख अवश्य प्रचलित रहे होंगे । क्योंकि छदों के क्रम में ऐसा भी लिखा मिलता है—'यह केसोदास के मते दूसरो रूपमाला है' ।

'रामचद्रचद्रिका' के किसी किसी हस्तलेख में फलश्रुति मूल ग्रथ से भिन्न भी दी गई है । किसी किसी में 'केशव' छाप भी है । पर ऐसे छदों के केशवकृत होने में संदेह है । दो उदाहरण दिए जाते हैं—

पूजा को बनाइ फल कंचन रूपो चढ़ाइ धूप दीप अच्छित औ चंदन चर्चाइ के।
सुनत पुनीत होत पोत भवसागर को सुख को निवास सब दुख बिसराइ के।
भक्ति मुक्ति देत सुत पित धन दारा देत अर्थ धर्म कामना की पूरनता पाइ के।
कहै 'केसौदास' रामचंद्रजू की चंद्रिका की कथा सप्त द्यौस माझ सुनै चित लाइ के।

लीला श्रीरघुनाथ की कौन जानिवे जोग।
बेद भेद पावै नहीं संकर करै बियोग ॥

केशव के अनुरूप शब्दावली ही नहीं है।

छंदमाला का पता 'रामचंद्रचद्रिका' का मुद्रण होते समय लगा। यह श्रीवर्द्धमान जैन ग्रंथालय (बीकानेर) का हस्तलेख है और मुझे इसकी अनुलिपि श्रीअगरचंदजी नाहटा से मिली है। इसी की एक अनुलिपि हिंदी-साहित्य-संमेलन (प्रयाग) में भी है। 'छंदमाला' के दूसरे हस्तलेख का पता श्रीकिरणचंदजी शर्मा को केशव पर अनुसंधान करते समय लगा है। वह हस्तलेख पटियाला में है और गुरुमुखी लिपि में है। अपने अनुसधान-प्रबंध में उन्होंने इसे नागराक्षर में टंकित करा दिया है। 'छंदमाला' की एक ही प्रति होने से उपयुक्त पाठशोध कठिन था। इस दूसरे हस्तलेख से मिलाने पर पाठ कुछ उपयुक्त हो सकता है। जैसे पहले हस्तलेख में कुछ पंक्तियाँ छूट गई हैं इसमें वे पूरी हैं। इस ग्रंथावली में पृष्ठ ४०६ का दसवाँ छंद आधा ही है। पूरा छंद यों है—

गनागनन के दोषजुत गुन षटपद मति बुध्ध।
गीतकादि के छंद नित सब है जात असुध्ध।

आधारभूत हस्तलेख की पुष्पिका मे लिपिसवत् दिया गया है—'इति श्रीसमस्तपंडित-मंडलीमंडित केसोदास विरचिता छदमाला समाप्तं संवत् १८३६ वैशाष शुदी ६ शुक्रवार लिखतं जति ऋषि स्वसिष्य जगता ऋपि पठनार्थ सुभमस्तु वागप्रस्थपुरे लिपी कृतां।' गुरुमुखी के हस्तलेख में 'इति श्रीकेसवराय कृत छंदमाला समापतं' इतना ही लिखा है।

पिंगलशास्त्र होने के कारण छदमाला के संपादन में बहुत अधिक श्रम करना पड़ा। प्रयास रहा है कि प्रत्येक छद का लक्षण उसके उदाहरण से ठीक मिल जाए। अन्य ग्रंथों के लक्षणों से भी मिलान करने में पर्याप्त माथा लडाना पड़ा, फिर भी आधार एक ही होने से और अशुद्ध होने से बडी कठिनाई हुई। छंद के ग्रथों के हस्तलेख प्रायः बहुत अशुद्ध रहते हैं। उनका सपादन अधिक श्रम चाहता है। भिखारीदास के 'छदार्णव' में पाठ न जाने क्या हो गया था। उसके संपादन में पर्याप्त समय लगाना पड़ा। छदग्रंथों का तो अब भी पर्याप्त महत्त्व है। पर चित्रालकार सप्रति गोरखधधा ही माना जाता है। उसका सपादन भी कुछ अधिक श्रमसाध्य है, यदि उसके अर्थ और अवस्थान आदि का पूर्ण विचार रखकर संपादन किया जाए।

शिखनख ग्रंथ का पता उस समय लगा जब अभय जैन भाडागार से इसका हस्त-लेख वहाँ होने की सूचना मिली। उसकी अनुलिपि आ जाने पर और 'कविप्रिया' के स० १७२४ वाले हस्तलेख में दिए हुए पाठ के साथ संपादन करने में स्थान स्थान पर कठिनाई हुई। इस अवसर पर स्वर्गीय अर्जुनदासजी केडिया के स्वर्गीय पुत्र श्रीशिवकुमारजी

केडिया ने विशेष सहायता की। फिर भी अभी पाठ वाछित रूप नहीं प्राप्त कर सका है। इसकी एक टीका का भी पता चला है। 'राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रथों की खोज' के द्वितीय भाग से दो महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ मिलती हैं—एक 'रसिकप्रिया' की सस्कृत टीका की और दूसरी 'शिखनख' की गुजराती टीका की। 'शिखनख'-टीका की पुष्पिका यों है—'इति श्रीकेशवदासविरचित शिखनख संपूर्ण। श्रीरस्तु। संवत १७६२ वर्षे मिगसर सुदि ८ भौमे लिखितं श्री भुज मध्ये पं० मागचन्द मुनिना। श्री।' यह टीका भी 'अभय जैन ग्रथालय' में ही है। टीका उक्त हस्तलेख के लिपिकाल से ११ वर्ष परवर्ती है। 'सुधासर' संग्रह में भी कुछ छद इस 'शिखनख' के सगृहीत हैं। उसका आधार मिल जाने से उन छदों का पाठ बहुत कुछ ठीक हो गया है।

केशवदास ने 'नखशिख' के अनतर 'शिखनख' क्यों लिखा इसका हेतु 'शिखनख' के प्रसंग में ही उल्लिखित है—

नख तें सिख लौं बरनिये देबी दीपति देखि।
सिख तें नख लौं मानवी 'केसवदास' बिसेषि॥

वस्तुतः तीन प्रकार के आलंबन होते हैं—दिव्य, दिव्यादिव्य और अदिव्य। देववर्ग के आलंबन दिव्य होते हैं, अवतार दिव्यादिव्य और मानव अदिव्य। दिव्य और दिव्यादिव्य का वर्णन नख से शिख तक और मानव का शिख से नख तक होता है। फारसी में भी सरापा होता है। उनके यहाँ दिव्यादिव्य की स्थिति नहीं है। दिव्य निर्गुण है, निराकार है। डरते डरते उसके चरण और हाथ की उँगलियों तक की चर्चा किसी प्रकार की गई। अन्य अंगों का प्रश्न ही नहीं। इसी से वहाँ अदिव्य-वर्णन ही चला। सरापा या शिखनख तो साहित्य में आया, पर नखशिख नहीं। नखशिख और शिखनख का विभाग भारतीय साहित्यसरणि है। जो स्थापना केशव ने की है वह उनसे पूर्व सूरदास और तुलसीदास में भी दिखाई देती है। उन्होने दिव्य और दिव्यादिव्य के वर्णन में वही क्रम रखा है अर्थात् नख से शिख का क्रम ग्रहण किया है। इससे स्पष्ट है कि यह व्यवस्था पारंपरिक है।

'नखशिख' के कुछ छंद 'शिखनख'/के स्वतंत्र हस्तलेखों में पुनरुक्त हैं। ऐसा जान पड़ता है कि जब 'शिखनख' स्वतंत्र रूप में प्रचलित किया गया तब उसमें ये छंद परिपूर्ति की दृष्टि से जोड़ दिए गए। सं० १७२४ वाली 'कविप्रिया' की प्रति में वे छद नहीं हैं। केवल समाप्तिसूचक दोहा वहाँ अवश्य है। इसकी चर्चा पहले की जा चुकी है। 'नखशिख' में प्रत्येक उदाहरण के पूर्व दोहे में यह भी निर्देश है कि इस अंग के कौन कौन उपमान प्रथित हैं। यह योजना 'शिखनख' में नहीं है। जितने उपमान प्रत्येक अंग के कथित हैं वे सब उदाहरण में अनुस्यूत नहीं हो सके हैं। उनमें से कुछ उपमान 'शिखनख' में गृहीत हुए हैं। 'शिखनख' में पाँचवें छद के अतिरिक्त अन्यत्र कवि की छाप नहीं है। 'नखशिख' में इसके ठीक विपरीत तीसवें छद के अतिरिक्त सर्वत्र छाप है। 'शिखनख' 'कविप्रिया' के परवर्ती हस्तलेखों से कदाचित् इसीलिए हटा दिया गया होगा। मुझे भी एक बार इसी आधार पर ठिठकना पड़ा। पर एक ही छंद की छाप ने कुछ आश्वस्त कर दिया। छाप न होने का कारण यही जान पड़ता है कि अंगों के

वर्णन में 'शिखनख' में अधिक कसावट है। इसी कारण 'नखशिख' की अपेक्षा 'शिखनख' में काव्योत्कर्ष कुछ विशेष दिखता है।

रतनबावनी का कोई हस्तलेख नहीं मिला। टीकमगढ़ पत्र लिखकर मुद्रित प्रति वहाँ से मँगाई गई। केशव के दो ग्रंथ राज्य द्वारा मुद्रित देखने में आए हैं। 'रतनबावनी' तो वहीं राजकीय प्रताप प्रभाकर प्रेस में मुद्रित हुई है। पर दूसरी पुस्तक 'वीरचरित्र' राज्य द्वारा वाराणसी के भारतजीवन प्रेस में मुद्रित कराई गई थी। 'रतनबावनी' के एक ही हस्तलेख का पता है जो टीकमगढ़ में है और जिसका विवरण नागरीप्रचारिणी सभा की 'खोज में ०६-५८ बी पर दिया गया है। इसमें लिपिकाल उल्लिखित नहीं है। 'रतनबावनी' का जो दूसरा हस्तलेख 'सभा' में है उसकी अनुलिपि सं० २००४ में टीकमगढ़ राज्य की मुद्रित प्रति से हुई है। जिस समय लाला भगवानदीनजी 'केशव-पंचरत्न' का संपादन कर रहे थे उस समय उन्हें 'रतनबावनी' की जो प्रति प्राप्त थी वह कीटदष्ट थी। इसी से उन्होंने पूरी 'रतनबावनी' उस संग्रह में संकलित नहीं की। उनका विचार पूरी 'रतनबावनी' संपादित करके संकलित करने का था। रतनबावनी की उपर्युक्त सभी प्रतियों में नाम मात्र का, प्रायः वर्तनी का, ही अंतर है। फिर भी टीकमगढ़ के हस्तलेख और वहीं से मुद्रित प्रति में कुछ अंतर है। 'खोज' में जो उद्धरण दिए गए हैं उनसे मिलान करने पर यह स्थिति स्पष्ट होती है। सबसे मुख्य अंतर तो यह है कि हस्तलेख में मंगलाचरण के तीन दोहे नहीं हैं। हस्तलेख के अंतिम छंद की संख्या ४९ है। पूरे छंद ५३ हैं। एक संख्या द्विरुक्त है। इसी से अंतिम संख्या ५२ हो गई है। मुद्रित प्रति में ग्रंथारंभ के पूर्व 'युद्ध कौ कारण' शीर्षक देकर निम्नलिखित चार छंद और दिए गए हैं—

(छप्पय)

जिहि कंपहि रिस रूस रूम कंपहि रन ऊनह।
जिहि कंपहि खुरसान सान तुरकान बिहूनह।
जिहि कंपहि ईरान तूर्न तूरान बलख्खह।
जिहि कंपहि बुखखार तरि तातार रुलख्खह।
राजाधिराज मधुसाह नृप यह बिचार उद्दित भयव।
हिंदवान धर्मरच्छक समुझि पास अकव्वर के गयव॥

दिल्लीपति दरबार जाय मधुसाह सुहायव।
जिमि तारन के माह इंदु सोभित छवि छायव।
देखि अकव्वर साह उच्च जामा तिन केरौ।
बोले बचन विचारि कहौ कारन यहि केरौ।
तव कहत भयव बुंदेलमनि मम सुदेस कंटिक अवन।
कोप ओप बोले बचन मैं देखौं तेरौ भवन॥

सुनत वचन मधुसाह साह के तीर समानह।
लिखव पत्र ततकाल हाल तिहि वचन प्रमानह।

जुरहु जुद्ध करि कुद्ध जोर सेना इक ठोरिय।
तोर तोर तन रोर सोर करिये चहु ओरिय।
तुव भुजन भार है कुवर यह रतनसेन सोभा लहिय।
कछु दिवस गएँ गढ़ ओड़छो दिल्लीपति दखिन चहिय ॥

(दोहा)

सुनत पत्र मधुसाह को रतनसेन ततकाल।
करिय तयारी जुद्ध की रोस चढ़ो जिन भाल ॥

'केशव-पचरत्न' में यह अश 'रतनबावनी' के मंगलाचरण के अनतर ही मुद्रित किया गया है। कुछ पाठभेद भी है। दूसरे छंद में 'कोप' के पूर्व 'करि' शब्द छद पूरा करने के लिए बढ़ाया गया है और तीसरे छद में 'दखिन' के स्थान पर 'देखन' रखा गया है। मूल में जो 'दखिन' शब्द है वह 'दक्खिन' पढा जा सकता है। हो सकता है कि 'देखिन' में की एकार की मात्रा टूट गई हो।

सब पर विचार करने से यही निर्णय करना पडता है कि या तो जिस हस्तलेख से मुद्रित प्रति छापी गई है वह उक्त हस्तलेख से भिन्न है या उसमें सशोधन किया गया है। मुद्रित प्रति पर यह भी मुद्रित है—'पं० श्रीभट्ट कवि गंगाधरात्मज पं० श्रीकवि पीतांबर उपनाम रमाधर द्वारा संशोधित कराके'। इससे यह भी सभावना है कि कहीं कहीं रमाधरजी ने भी संशोधन किया होगा। तिरपनवें छद में मुद्रित का पाठ 'नाखहु' है पर हस्तलेख में 'धारहु'। इसके विरुद्ध मुद्रित में 'गयव' है पर खोज में 'गहिव' सुपाठ है।

वीरचरित्र के सपादन में तीन प्रतियों का उपयोग किया गया है। एक तो टीकमगढ़ दरबार द्वारा भारतजीवन प्रेस में मुद्रित प्रति है। यह किस हस्तलिखित प्रति के आधार पर मुद्रित हुई इसका कोई उल्लेख उसमें नहीं है। 'वीरचरित्र' के तीन हस्तलेखों का पता चला है। एक तो हिंदी सग्रहालय (हिंदी साहित्यसंमेलन, प्रयाग) में है। यह खंडित है। इसमें लिपिकाल नहीं है। दूसरा सभा-संग्रह (नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी) में है। यह आधा ही है और जो है भी वह उलटा-पलटा लगा है। इसका आरभ सत्रहवें प्रकाश के बाईसवें छद से होता है। इसमें भी लिपिकाल अनुल्लिखित है। प्रति आधुनिक है, किसी प्राचीन हस्तलेख की अनुलिपि है। इसका उपयोग 'सभा' नाम से किया गया है। तीसरा हस्तलेख दतिया के राजपुस्तकालय में है। इसका विवरण 'खोज' (०६-५८ ए) में दिया गया है। इसमें भी लिपिकाल नहीं दिया है। पर प्रति पूर्ण है। यह 'सभा' से बहुत मिलती है। इसके सपादन में जिस तीसरी प्रति का उपयोग किया गया है वह पं० रामचद्र शुक्ल द्वारा संपादित और नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित मुद्रित प्रति है। इसमें केवल १४ ही अध्याय हैं। ऐसा जान पड़ता है कि सभा द्वारा संपादित यह प्रति 'सभा' वाले हस्तलेख से ही संबद्ध है। उसके आरभिक १६ प्रकाश संपादन के लिए शुक्लजी के यहाँ गए होंगे। फिर वहाँ से अनुलिपि लौटी न होगी या लौटी होगी तो इधर-उधर हो गई होगी। 'वीरचरित्र' में कुल ३३ प्रकाश हैं। आधा

अंश १६ प्रकाश तक संपादित करके प्रकाशित करने की व्यवस्था रही होगी। किसी कारण १४ प्रकाश तक ही संपादित- प्रकाशित हो सका। दो प्रकाशों का पता नहीं। इसलिए पंद्रहवें और सोलहवें प्रकाश का संपादन केवल एक ही प्रति के आधार पर किया गया है। मुद्रित 'वीरचरित्र' का पाठ स्थान स्थान पर संदिग्ध है। जहाँ तक वैज्ञानिक संपादन और साहित्यिक संपादन में विरोध नहीं पड़ा है वहीं तक छूट ली गई है। अन्यथा पाठ ज्यों का त्यों रखा गया है। इसके बहुत थोड़े स्थल कुछ संदिग्ध अवश्य रह गए हैं। दूसरे प्रकाश का आरंभ कहाँ से है इसका पता न शुक्लजी के संस्करण से चलता है न भारत-जीवन प्रेस द्वारा मुद्रित संस्करण से। संपादन में अनुमान से विभाजन कर दिया गया है। इसी से प्रथम प्रकाश के अंत में पुष्पिका नहीं दी गई है।

जहाँगीर-जस-चंद्रिका के तीन हस्तलेख प्राप्त हुए हैं। उपलब्ध हस्तलेखों में सबसे प्राचीन है 'याज्ञिक संग्रह' (नागरीप्रचारिणी सभा) में सुरक्षित प्रति। पर इसकी लिखावट अत्यंत दोषपूर्ण है। इसकी पुष्पिका यों है—'कविनीशुर अवनरखीशुर अवनीश पुत्रि ब्रह्मरिष कबिराज श्रीकेशवदास नर्म्मता जहाँगीर चंद्रका समाप्त संवत श्री नृपत विक्रमादित्य राज्ये १७८६ भादौवा मासे शुकल पक्षे सुदि पंचम्यां रवीवारे। इति श्रीजहांगीरचंद्रिका संपूर्ण'। प्रति पूर्ण है। दूसरी प्रति उदयपुर के सरस्वती-भंडार में सुरक्षित है। इसकी पुष्पिका है—'इति श्रीसकलभूमंडलाखंडलेश्वरसकलसाहिसिरोमनि श्रीजहांगीर साहियशश्चंद्रिका मिश्र केसवदास विरचिताया संपूर्ण ॥ सं० १७६६ वर्षे सावण विद १४ सोमवासरे ॥ शुभं भवतु ॥' 'यह प्रति बहुत साफ है और इसमें प्रायः सुपाठ है। मूल प्रति तो नहीं मिली, पर सं० २००४ में की गई उसकी अनुलिपि प्राप्त हुई। संपादन के लिए इसी का प्रयोग किया गया है। कहीं कहीं इसमें बीच में दो-चार शब्दों की छूट भर है। तीसरी प्रति काशिराज के 'सरस्वती-भंडार' की है। यह कीटदष्ट है। इसी से स्थान स्थान पर इसमें कुछ अंश लुप्त हो गए हैं। पुष्पिका है—'इति श्रीम सकल भूमंडला खंडलेश्वर सकल साहि सिरोमनि श्री जहांगीर साहि यसश्चंद्रिका केसव मिश्र विरचिता समाप्त ॥ सं० १८४८ ॥ मिती आषाढ़ शुद्ध १२ मंगलवार लिख्यते रूपचंद ब्राह्मण गौड वाराणसी मध्ये सुभवतु श्रीरस्तु ॥' इसके पाठ मध्यम श्रेणी के हैं—न सुपाठ न अपपाठ। अर्थात् कहीं तो लिखावट दोषसहित है और कहीं दूषणरहित। तीन प्रतियों के कारण इसका पाठ पर्याप्त शुद्ध हो गया है।

विज्ञानगीता के संपादन में भी मुख्य रूप से तीन प्रतियाँ प्रयुक्त हुई हैं। एक तो वेंकटेश्वर प्रेस की सं० १९५१ में मुद्रित प्रति है। पर इसकी आधारभूत प्रति सबसे प्राचीन है। उसका लिपिकाल यों मुद्रित है—

(६ ० ८ १)

अंक ब्योम बसु भू बरषै पौषै पक्ष उजियार।
तिथि त्रयोदसी पूर्न भा सुभ गीता बुधवार ॥ १ ॥
बिदित देस कारूष में छत्रधारि अवनीस।
लेखत भयो वसंत ऋतु आयसु लय निज सीस ॥ २ ॥

'करूष' देश वाल्मीकीय रामायण के अनुसार ताड़का का वासस्थल था। पुराणों के अनुसार यह विंध्य पर्वत पर था। कदाचित् बिहार का शाहाबाद (आरा) ही प्राचीन करूष देश है।

उक्त प्रति में पादटिप्पणी में इसे 'मलद' लिखा है। पर 'मलद' 'करूष' से भिन्न देश है। रघुराजसिंह लिखते हैं—

पूरब मलद करूष देस द्वै देव्र किये निरमाना।
पूरन रहे धान्य धन जब तें सरित तड़ागहु नाना॥

यह भी ताड़का का ही देश था। इस मल्ल देश में सुबाहु के मल्ल रहते रहे होंगे।

अस्तु। यह पूर्वी प्रदेश में लिखी गई प्रति है। मुद्रित प्रति में कुछ अशुद्धियाँ तो मूल प्रति की हैं और कुछ मुद्रण की भी।

कालक्रम से दूसरी प्रति काशिराज के 'सरस्वती-भंडार' की है। पुष्पिका यों है—'शंवत् १८५६ शाल। फाल्गुणमासे कृष्णपक्षे तृतीयां बुधवासरे श्रीश्रीश्री बाबु वंधुसिंह जी पठनार्थे॥ लेपक वहोरणदास कायस्थ धराउत नगर निवसतम् शुभं भुयात्।' धराउत भी पूर्व में ही है, गया के पास। हस्तलेख किसी ऐसे प्रदेश के 'लिखक' का लिखा है जो कैथी में अभ्यस्त है। उसी का प्रभाव यथास्थान इसमें दिखता है। जैसे पुष्पिका के आरंभ में ही 'शंवत्' और 'शाल' में दंत्य के स्थान पर तालव्य का प्रयोग। पुष्पिका में तीन बार 'श्री' का प्रयोग साभिप्राय जान पड़ता है—

श्री लिखिये षट गुरुन कों स्वामि पाँच रिपु चारि।
तीन मित्र दुइ भृत्य कों एक सिष्य, सुत, नारि॥

इस प्रकार 'श्रीश्रीश्री बधुसिंह' लिखक के मित्र ठहरते हैं।

इसकी तीसरी प्रति वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के 'सरस्वती-भवन' की है। पुष्पिका यह है—'मिती आश्विन बदि ५ भृगुवार सं० १८६६ लिपितमिदं पुस्तकं भवाडी जयशंकरेण वाणारसी मध्ये श्री ठाकुर शिवकुमार पठनार्थं शुभं।' यह प्रति बहुत स्पष्ट लिखी है। इसके पाठ भी अच्छे हैं। साथ ही इसमें अतिरिक्त अंश सबसे अधिक हैं। प्रमाण के श्लोक भी इसमें सबसे अधिक हैं।

इन प्रतियों के अतिरिक्त 'खोज' की दो प्रतियों के मुद्रित विवरणों के पाठ आरभ में केवल मिलान के लिए दिए गए हैं। उपर्युक्त तीन प्रतियों के अतिरिक्त खोज-विवरण में तथा संग्रहालयों में 'विज्ञानगीता' के ११ हस्तलेखों का और पता है। इनमें से दो में लिपिकाल नहीं है। दो खडित हैं और एक में प्राप्तिस्थान उल्लिखित नहीं है। शेष ६ में से सबसे प्राचीन तीन प्रतियाँ हैं। सं० १७६६ की उदयपुर के 'सरस्वती-भंडार' में, सं० १८२१ की हिंदी-संग्रहालय (हिंदी-साहित्य-समेलन, प्रयाग) में और सं० १८४७ की स्वर्गीय कृष्ण-बलदेव वर्मा (केसरबाग, लखनऊ) के स्थान पर। प्रथम दो प्रतियों का पता देर से चला। तीसरी प्रति वर्माजी के स्वर्गवासी हो जाने के कारण नहीं मिल सकी। शेष तीन प्रतियों के जो विवरण 'खोज' में दिए हैं उनका केवल आरंभ में उल्लेख कर दिया गया है। 'विज्ञानगीता' का पाठ कुछ संतोषजनक रूप में संशुद्ध हो गया है ऐसी आशा की जा सकती है।

इस विवरण से स्पष्ट हो गया होगा कि जितने हस्तलेखों का संपादन करते समय पता चला उनके प्राप्त करने का प्रयास किया गया। 'रतनबावनी' के अतिरिक्त प्रत्येक ग्रंथ

के संपादन में हस्तलेखों का उपयोग किया गया है। प्रामाणिक टीकाओं का भी प्रयोग करके पाठनिर्णय में पर्याप्त श्रम किया गया है। फिर भी सपादन हो जाने के अनतर कुछ ऐसी सामग्री का पता चला है जिसका विनियोग करने से कदाचित् और निखार हो जाए, इसके लिए भविष्य ही कुछ सहायक हो सके तो हो सके।

अब पाठ-विमर्श पर आइए। प्राचीन काल में ग्रंथ का निर्माण कर देने के अनंतर कर्ता अपनी कृति की प्रतिलिपि बहुधा इसका व्यवसाय करनेवालों से करा लेता था। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत परवर्ती कुछ कृतियों के अतिरिक्त किसी कवि के स्वहस्त-लेख में लिखित कोई कृति नहीं मिलती। जिन दरबारों में कवि रहा है उनमें भी उसके हस्तलेख लिखकों की हस्तलिपि में ही लिखे मिलते हैं, अन्य दरबारों की तो कथा ही क्या। कवि के वंशजों के यहाँ भी यही स्थिति है। कवि के द्वारा लिखित प्रति का मिलना इसी से कठिन है। इन हस्तलेखों का संपादन या संशोधन प्रतिलिपि होते समय, टीका होते समय और मुद्रित होते समय होता रहा है। इसलिए किसी प्राचीन कवि द्वारा स्वीकृत पाठ की उपलब्धि करने में विशेष कठिनाई है। उस मूल पाठ तक पहुँचने की एक पद्धति वैज्ञानिक कहलाती है। विभिन्न हस्तलेखों और जहाँ तक हो प्राचीनतम हस्तलेखों के संग्रह द्वारा पाठ संकलित करके और पाठों को छानकर निकालना परिश्रम-साध्य काम है। इसमें सदेह नहीं कि इस पद्धति के द्वारा बहुत से प्राचीनतम पाठ प्राप्त हो जाते हैं। यदि हस्तलेखों के लिखने में भरपूर सावधानी हुई हो और संशोधन कम हुआ हो तो इस पद्धति से मूल या आदि पाठ तक पहुँचा जा सकता है। पर इसके लिए एक से अधिक हस्तलेख अपेक्षित होते हैं। जितने अधिक हस्तलेख होंगे और जितने प्रकार के होंगे यह वैज्ञानिक विधि उतना ही अधिक अपना चमत्कार दिखलाएगी। पर मेरी दृष्टि में यह विधि स्वतः अचेतन है, क्योंकि इसमें काम करनेवाले की चेतना का सुष्ठु उपयोग नहीं होता। या जितना होता है वह उसकी चेतना का पूरा प्रमाण नहीं उपस्थित करता। फल यह है कि यदि कोई पाठ-सकलन की विधि जान गया है तो बिना विशेष विद्या-बुद्धि के भी अच्छा काम कर सकता है। इसके विपरीत अधिक विद्या-बुद्धि वाला यदि उस विधि से परिचित नहीं है तो अच्छा काम नहीं कर सकता। पाठ-संकलन के कार्य में देखा गया है कि जो विशेष पढ़े-लिखे होते हैं वे जाने-अनजाने कुछ का कुछ कर बैठते हैं, पर जो कम पढ़ा-लिखा होता है वह अशुद्धियाँ कम करता है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि हस्तलेख लिखनेवाले 'लिखक' स्वयम् उतने पढ़े-लिखे नहीं होते थे जितने की आवश्यकता है। अतः उनके द्वारा किए गए कार्य के संकलन में भी अधिक योग्यता की अपेक्षा नहीं है। वैज्ञानिक संपादन मक्षिकास्थाने मक्षिका रखकर उस पर 'विमर्श' करता है। यह 'विमर्श' चेतन प्रक्रिया है। मेरे विचार से 'विमर्श' के लिए साहित्य-परंपरा का ज्ञान विशेष अपेक्षित होता है। इसलिए वैज्ञानिक पद्धति बिना साहित्यिक संस्पर्श के परिपूर्ण नहीं है।

साहित्यिक सरणि में सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें यदि कोई सूझ अपने ढंग की हो गई, कवि या कर्ता की पद्धति पर न हो सकी तो वह कुछ की कुछ हो जाएगी। 'गणेश' के स्थान पर 'वानर' हो जाएगा। चेतना में विशेषता होनी चाहिए 'परकायप्रवेश' की, कवि के और लिखक के अतःकरण से जो तादात्म्य नहीं कर सकता वह ठीक पाठ

का निर्णय नहीं कर सकता। वैज्ञानिक पद्धति की निरहंकारता जिस प्रकार दोषपूर्ण है उसी प्रकार साहित्यिक पद्धति की साहंकारता। उसमें अपने अहंकार का, अपने व्यक्तित्व का दूसरे के अहंकार या व्यक्तितत्व में लोप होना चाहिए। निष्कर्ष यह कि जब तक कोई सहृदय नहीं है तब तक इस क्षेत्र में ठीक कार्य नहीं हो सकता। इसलिए दोनों प्रणालियों का समन्वय ही श्रेयस्कर है, किसी एक पर चलने से समुचित कार्य-संपादन नहीं हो सकता। प्रस्तुत ग्रंथावली के संपादन में इसी समंजसता से काम लिया गया है। 'शब्द' के लिए प्राचीन प्रतियों का अधिक विश्वास किया गया है, पर 'अर्थ' की संगति का भी ध्यान रखा गया है। कवि की शैली का भी विचार किया गया है।

सबसे प्रथम पाठों की वर्तनी का विचार अपेक्षित है। हिंदी के हस्तलेखों में कवर्गी 'ख' के लिए सर्वत्र 'ष' का ही व्यवहार है। इसका उच्चारण वही (ख) है। इसका दूसरा उच्चारण दंत्य 'स' भी होता है। मूल शब्द में यदि मूर्धन्य 'ष' है तो हिंदी में उसके दो उच्चारण हो जाते हैं—कवर्गी 'ख' और दंत्य 'स'। कुछ हस्तलेखों में जहाँ दंत्य 'स' उच्चारण है वहाँ मूर्धन्य 'ष' नहीं है, दंत्य 'स' ही लिखा है। अतः उस स्थिति को किसी प्रकार व्यक्त करना आवश्यक है। जहाँ 'ख' के लिए 'ष' है वहाँ उसका 'ख' उच्चारण प्रकट करने के लिए नीचे बिंदी लगा दी गई है। अन्यत्र उसका उच्चारण दंत्य 'स' ही है। ब्रजी और अवधी में न मूर्धन्य 'ष' है और न तालव्य 'श'। 'ङ' और 'ञ' भी नहीं हैं। 'झ' की लिखावट और 'ड' में बहुत मेल है। इसलिए 'झ' के बदले 'ड' और 'ड' के बदले 'झ' पढ़ लेना सरल है। 'ड' और 'ढ' के दो उच्चारण हैं। एक तो ज्यों का त्यों दूसरे 'ड़' और 'ढ़'। पुराने हस्तलेखों में नीचे कहीं बिंदी नहीं है। प्रस्तुत संस्करण में अपेक्षित स्थलों में बिंदी देकर पृथक् उच्चारण व्यक्त कर दिया गया है। इसका नियम यह है कि यदि दो स्वरों के बीच ड, ढ आते हैं तो उनका उच्चारण बदल जाता है। पर यदि आगे या पीछे के स्वर रंजित हो गए अर्थात् उनमें अनुस्वार या चंद्रबिंदु लग जाए तो उच्चारण ज्यों का त्यों रहता है। पछाहीं बोलियों में तो यह नियम ठीक है पर पूरबी बोली में चंद्रबिंदु से कोई प्रभाव नहीं पड़ता। 'खंडहर' और 'खँडहर' पश्चिम में एक से रहते हैं। पूरब में 'खँड़हर' हो जाता है। प्रस्तुत संस्करण में यथासंभव इस नियम का पालन किया गया है।

हिंदी की पुरानी भाषा में 'ण' नहीं है। केवल राजस्थानी में यह यथास्थान आता है। जहाँ मूल 'न' है वहाँ भी उसकी प्रकृति के अनुसार राजस्थानी में 'ण' हो जाता है। पर ब्रजी-अवधी में 'न' ही है। केशवदास संस्कृत के पंडित थे उन्होंने संस्कृत शब्दों का प्रयोग भी पर्याप्त किया है। फिर भी एक हस्तलेख को छोड़कर संस्कृत वर्तनी अन्य हस्तलेखों में नहीं है। इसलिए वैज्ञानिक विधि के अनुसार हस्तलेखों का ही अनुगमन किया गया है। 'ण' और 'श' के स्थान पर 'न' और 'स' का ही व्यवहार है। यही स्थिति 'व' और 'ब' में भी है। नारदशिक्षा के अनुसार संस्कृत में ही पवर्गी 'ब' और अंतस्थ 'व' का स्थान नियत है। पर संस्कृत में उसका पालन पूरा पूरा नहीं होता। हिंदी में उसका पालन बहुत कुछ होता है। 'नारदशिक्षा' यह है—

उदूठौ यस्य दृश्येते यौ घः प्रत्ययसंधिज़ः।
अन्तस्थां तं विजानीयात्तदन्यो वर्ग्य इष्यते॥

जिसका उ या ऊ हो जाए और जो विग्रहसंधि से 'व' में परिणत हो उसके अतिरिक्त सर्वत्र पवर्गी 'व' है। हिंदी में इस नियम का पालन होने पर भी कुछ शब्दों की वर्तनी नियत है, जिसका ज्ञान हस्तलेखों के आलोड़न से ही हो सकता है। प्राचीन हस्तलेखों में 'ब' और 'व' का भेद नीचे बिंदी लगाकर करते हैं। जहाँ बिंदी नहीं लगी है वहाँ 'ब' और जहाँ वह है वहाँ 'व' समझना चाहिए। पर 'लिखक' बिंदी लगाना भूल भी जाया करते हैं। जैसा कह आए हैं ये प्राय सुबोध नहीं होते। कभी कभी तो ये पंक्ति के ऊपर या नीचे जितनी बिंदियाँ देनी होती हैं उन्हें गिन लेते हैं। फिर बैठाते समय अविचारित बैठा देते हैं। इसलिए सर्वत्र हस्तलेख की वर्तनी पर विश्वास नहीं किया जा सकता। सर्वनाम 'वे, वह' में 'व' है ही, कुछ शब्दों में भी 'व' ही है। जिसे न जानने से कुछ मुद्रित पुस्तकों में अन्यथा छपा है। जैसे 'चवाव' शब्द में दोनों 'व' हैं। पर इसे न जानकर पहला 'व' 'ब' भी मुद्रित कर दिया जाता है। वहाँ 'ब' हो जाने से उसका अर्थ बदल जाएगा। 'चबाव' का अर्थ होगा किसी वस्तु को 'चर्वित करो'। पछाहँ में बहुधा 'ौ' का उच्चारण 'अव्' होता है और पूरब में 'अउ' जैसा। इसे व्यक्त करने के लिए मात्रा लगाने के बदले 'व' लिखने की भी पद्धति थी। 'गौरी' शब्द का पश्चिमी उच्चारण 'गवरी' है और पूर्वी 'गउरी'। इसे व्यक्त करने के लिए 'रसगाहकचंद्रिका' के हस्तलेख में अपेक्षित वर्तनी गृहीत है। 'मानस' के हस्तलेखों में 'कौन' शब्द 'कवन' लिखा मिलता है। ऐसा वस्तुतः उच्चारण को प्रकट करने के लिए ही है।

यही स्थिति 'य' की भी है। पहले 'ज' के लिए 'य' का भी व्यवहार होता था। अतः चवर्गी 'ज' से अंतस्थ 'य' को पृथक् करने के लिए उसके नीचे बिंदी लगाकर 'य़' लिखते थे। कैथी लिपि में 'ज' के लिए 'य' का प्रायः व्यवहार मिलता है। यह 'य' 'ऐ' की मात्रा के उच्चारण के लिए भी वर्तनी में चलता था। 'ऐ' का पश्चिमी उच्चारण 'अय्' और पूर्वी उच्चारण 'अइ' होता है। पश्चिम में नियम का उल्लघन तब होता है जब इस मात्रा के अनंतर 'य' या स्वर हो। 'कन्हैया', 'जैयो' का पूर्वी का सा उच्चारण 'अइ' ही पश्चिम में भी होता है। दोहे के तुकात में 'नैन' 'बैन' रूप होने चाहिए, पर पश्चिमी उच्चारण प्रकट करने के लिए दोनों 'नयन, बयन' भी लिखे मिलते हैं। वस्तुतः यह 'शिक्षा' का ही विषय है। इसी से इसमें उच्चारण के अनुरूप वर्तनी नहीं रखी गई है। पर आरंभ में स्थिति व्यक्त करने के लिए पाठांतर रूप में एकाध उल्लेख कर दिया गया है।

प्राचीन हिंदी लेखपद्धति के अनुसार महाप्राण वर्णों के द्वित्व में परिवर्तन नहीं होता। वह ज्यों का त्यों लिखा जाता है। जैसे 'दुःख' शब्द 'दुख्ख' लिखा जाता है, 'दुक्ख' नहीं। कभी कभी लिखा 'दुख' ही रहता है, पर पढ़ना 'दुख्ख' पड़ता है। ऐसा जान पड़ता है कि पहले या तो पूर्वगामी अक्षर पर बल पड़ने से कोई चिह्न लगाते थे या यों ही छोड़ देते थे। पढनेवाला अनुमान से पढ लेता था। जो चिह्न लगता था वह खड़ी पाई के ढग का होता था। जो कभी कभी अनुस्वार भी समझ या पढ़ लिया जाता था। 'खड्ग' 'से' 'खग्ग' = 'खग' फिर 'खग' कदाचित् इसी क्रम से बना है। सस्कृत का 'श्र' दो रूपों में चलता था ज्यों का त्यों 'श्र' या 'स्र'। 'क्ष' कभी कभी 'क्ष' ही लिखा रहता है और कभी कभी 'च्छ'

या केवल 'छ', पर पढ़ा जाता है दुहरा 'छ' । 'श्र' लिखा होने पर भी 'स्त' ही पढ़ा जाएगा, तालव्य व्रजी में न होने से। मूर्धन्य उच्चारण न होने से 'त्त' लिखने पर भी पढ़ा 'क्ख', 'ख्ख' या 'च्छ' या 'छ्छ' ही जाएगा। कभी कभी तो 'छ' के लिए भी 'त्त' का ही व्यवहार होता था। यही स्थिति 'ज्ञ' की है। यह इसी रूप में भी लिखा मिलता है और 'ग्य' या 'ग्यं' या 'ग्यँ' भी। जहाँ ज्यों का त्यों 'ज्ञ' भी लिखा होता है वहाँ उच्चारण 'ग्यँ' ही रहता है। प्रस्तुत ग्रथावली में हस्तलेखों में जहाँ जैसा है वहाँ वैसा ही रखने का प्रयास किया गया है। एकरूपता लाने का प्रयत्न नहीं हुआ है।

हस्तलेखों में सानुनासिक स्थिति कहीं ऊपर बिंदी लगाकर और कहीं चंद्रबिंदु से प्रकट की गई है। 'चंद्रबिंदु' ही ठीक समझकर उसका उपयोग किया गया है। हिंदी मे अभी मुद्रण-व्यवस्था ऐसी समृद्ध नहीं हुई है कि हिंदी के प्राचीन ग्रंथों के छापने में वाछित सुविधाएँ प्राप्त हो सकें। श्री ग्रियर्सन ने 'लालचद्रिका' का संपादन करके चद्रबिंदु ही नहीं एकार, ऐकार, ओकार और औकार के हलके उचारण के लिए मात्राओं के नए रूप ढलवाए थे। मूल लाल और टीका काले अक्षरों में छापी थी। जितने ठाट के साथ 'बिहारी-सतसैया' का वह सस्करण निकला, दूसरा नहीं। कहाँ आज यह स्थिति है कि चद्रबिंदु के प्रयोग का भी 'ओरनिबाह' नहीं हो सका। पहले और दूसरे खंडों में तो किसी प्रकार व्यवस्था की भी गई, पर तीसरे खंड में उसे अक्षरों में पृथक् से लगाना पड़ा है। एकार आदि के ह्रस्व उचारण को व्यक्त करने का प्रपच इसी से छोड़ देना पड़ा है।

प्राचीन लेखपद्धति में एक स्थिति और विचारणीय है। 'मान' आदि शब्द प्रायः 'माँन' या 'मान' लिखे मिलते हैं। इसका कारण यह है कि अनुनासिक वर्णों के सानिध्य के कारण स्वर रजित या सानुनासिक हो जाता है। ऐसा अनेक शब्दों में होता है। इसका कारण यह है कि हिंदी में 'म' और 'न' इन दो अनुनासिक वर्णों का उच्चारण करने की विधि ही ऐसी है जिससे इनके साथ का स्वर सानुनासिक हो जाता है। हिंदी में माता के लिए 'मा' शब्द को 'माँ' लिखते हैं। उसका कारण इतना ही है कि 'माँ' न लिखें तो जो हिंदी का उचारण नहीं करेंगे वे उसे 'मा' ही पढ़ेंगे, 'माँ' नहीं। अन्यथा हिंदी के उच्चारण का यदि अनुगमन हो तो उसे 'माँ' लिखने की आवश्यकता नहीं है। 'में' के 'ए' में मूलतः अनुनासिकता है क्योंकि 'सर्वस्मिन्' के 'स्मिन्' का प्राकृत में 'म्मि' होकर 'में' हुआ है। हिंदी उच्चारण ही नियत रहे तो केवल 'मे' लिखने से भी काम चल सकता है। पर जो यह कहते हैं कि 'में' में चंद्रबिंदु इसलिए ठीक नहीं कि 'म्' स्वयम् अनुनासिक है वे 'अबुध' हैं। सानुनासिक 'ए' हो जाता है। सानुनासिकता प्राप्त होने पर भी व्यवहार में अतर करना पड़ता है। 'मोहिबो' क्रिया के पूर्वकालिक रूप 'मोहि' और उत्तमपुरुष एकवचन कर्मकारक के 'मोहिं' में अतर किया गया है। 'हि' की 'इ' उभयत्र सानुनासिक हो सकती है, पर दूसरी स्थिति में ही उसका व्यवहार अधिक प्राप्त होता है। कभी कभी इसे कोई 'मोँहि' भी समझ बैठते हैं। ऐसा लिखावट से उत्पन्न भ्रम से होता है। ह्रस्व इकार की मात्रा में बिंदु या चद्रबिंदु पहले लगने से उसे 'मों' समझ लिया जाता है। प्रस्तुत ग्रंथावली में इस आरोपित सानुनासिकता से प्रायः बचने का प्रयास रहा है। कभी कभी अधिक प्रचलन के कारण कुछ रूप स्वीकृत किए गए हैं, जैसे 'दीन्हीं' 'दीन्हों' आदि रूपों में।

हिंदी में वर्तनी चंद्रबिंदु से रखी जाए या बिंदु से यह विचारणीय है। हिंदी के साहित्यिक ग्रंथों के प्राचीन हस्तलेखों में दो प्रकार की पद्धतियाँ प्रचलित हैं। अच्छे हस्तलेखों में बहुधा चंद्रबिंदु का ही व्यवहार रहता है। भक्ति आदि विषयों के ग्रंथों में चंद्रबिंदु का प्रयोग क्वाचित्क है। केशवदास के ग्रंथों के हस्तलेखों में चंद्रबिंदु का प्रयोग अधिक मिलता है, कबीरदास की कृति के हस्तलेखों में 'बिंदु' का ही व्यवहार प्रायः है। इसलिए मेरे विचार से पुराने साहित्यिक ग्रंथों की वर्तनी चंद्रबिंदु से रखने में अधिक औचित्य है। नागरीप्रचारिणी सभा ने बृहद् 'हिंदी शब्दसागर' का संपादन करते समय कुछ नियम बनाए और प्रचारित किए। इसके पूर्व हिंदी के अधिकतर सुबोध लेखक और विद्वान् प्रायः चंद्रबिंदु का व्यवहार करते थे—गद्य में भी। इसलिए कम से कम प्राचीन ग्रंथों से उसका हटाया जाना उचित नहीं प्रतीत होता। कहीं कहीं उसका व्यवहार न करने से छंद अशुद्ध हो जाता है। 'सिँगार' और सिंगार' यथास्थान दोनों रूपों का प्रयोग हुआ है। सर्वत्र केवल 'सिंगार' रखने से छंद ही दोषपूर्ण हो जाएगा। अनेक दृष्टियों से कठिनाई होते हुए भी प्रस्तुत ग्रंथावली में उसका व्यवहार अत्यंत अपेक्षित समझकर रखा गया है।

ब्रजी की कुछ मात्राओं का उच्चारण विलक्षण होता है। 'एकार' और 'ओकार' का उच्चारण 'ऐकार' और 'औकार' के निकट होता है। ब्रज प्रदेश के हस्तलेखों में 'मे' का रूप 'मैं' 'तें' का 'तैं' तथा 'सों' का 'सौं' मिलता है। इसलिए ब्रजवासी कवियों के ग्रंथों में उसका अनुगमन किया जा सकता है। अन्यत्र विकल्प हो सकता है। क्रियाओं में 'औकार' कुछ अधिक व्यापक दिखता है। इसलिए आवश्यकता पड़ने पर क्रियापदों में उसका वैकल्पिक ग्रहण माना जा सकता है। केशवदास जिस प्रदेश के थे वहाँ ओकारांत प्रवृत्ति अधिक है। इसी से 'एकार' और 'ओकार' रूप ही इनके साहित्यिक ग्रंथों में स्वीकृत किए गए हैं। प्रशस्ति-काव्यों तथा धर्म-ग्रंथ में हस्तलेखों का अनुगमन करके अधिकतर क्रियापदों में 'औकार' और यथास्थान 'ऐकार' का भी ग्रहण हुआ है।

अकारांत पुंलिंग शब्दों की प्रथमा और द्वितीया विभक्तियों के एकवचन में अपभ्रंश में 'उकारांत' रूप मिलते हैं। अपभ्रंश में उकार का प्रकाम प्रयोग होने से वह 'उकारबहुला' भाषा के नाम से प्रसिद्ध है। उत्तरवर्ती देश्य भाषाएँ भी इससे प्रभावित रही हैं। प्राचीन हस्तलेखों में इसका प्रयोग पर्याप्त परिमाण में मिलता है। तुलसीदास के सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'रामचरितमानस' के प्राचीनतम हस्तलेखों में उकार का बहुत कुछ नियमित प्रयोग दिखता है। जातिवाचक शब्दों, विशेषणों, कृदंतों तक ही नहीं यह प्रवृत्ति व्यक्तिवाचक नामों तक में है। 'मानस' के कुछ व्यास और ज्ञानलवदुर्विदग्ध आत्मप्रचारक इसे 'लिखकों' का प्रमाद या प्रवृत्ति मानकर भारी खंडन-मंडन करते हैं। जब देखिए संग्राम करने के लिए बद्धपरिकर। वे कहते तथा भोली जनता को बहकाते हैं कि 'राम' शब्द उलटा (मरा) जपने से वाल्मीकि का उद्धार हो गया। 'रामु' होने से तो 'मुरा' होगा। कैसी मीठी लगनेवाली वचनावली है। वाल्मीकि के समय संस्कृत का व्यवहार था जहाँ संबोधन के एकवचन को छोड़ सर्वत्र 'राम' शब्द विकारी रूप ही ग्रहण करता है। प्रथमा का 'रामः' सविसर्ग है। यदि इसे उलटा करें तो 'मःरा' होगा 'मरा' नहीं। वास्तविकता है प्राति-पदिक 'राम' शब्द को उलटने की, जो संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, देशी भाषा क्या भूमंडल की

किसी भी भाषा में एकरूप है। इस 'रामु' का विकास संस्कृत 'रामः' से ही है, विसर्ग का ओकार होकर। 'रामो' में 'ओकार' का हलका उच्चारण होने से पश्चिमी प्रवृत्ति के अनुसार 'उकार' हो गया। पश्चिमी भाषाओं में ओकार का हलका उच्चारण उकार में और एकार का हलका उच्चारण इकार में परिणत हो जाता है। उकार की यह प्रवृत्ति प्रथमा एकवचन तक ही नहीं रही, द्वितीया एकवचन तक आई। अपभ्रंश में मिथ्यासादृश्य से कभी कभी अकारांत स्त्रीलिंग शब्दों में भी उकार लगता है। सुगंध अर्थ में 'वास' स्त्रीलिंग है पर उसका भी 'वासु' हो जाता है। यह प्रवृति साहित्यिक ग्रंथों में ही नहीं मिलती, जनता में भी है। रामू, श्यामू आदि नाम क्या कहते हैं। केशवदासजी के ग्रंथों में जहाँ यह प्रवृत्ति सभी हस्तलेखों में थी वहाँ ज्यों की त्यों रहने दी गई है। अन्यत्र उकार का व्यवहार नहीं रखा गया है।

वर्तनी-संबंधी विचार बहुत विस्तृत है, दिङ्मात्र का ऊपर निर्देश कर दिया गया है। प्राचीन हस्तलेखों की वर्तनी स्वतंत्र विषय है। इस पर लेख क्या ग्रंथ लिखा जा सकता है। अभी इस प्रकार का कार्य हिंदी में नहीं हुआ है।

पाठांतर का संकलन करने में मूल में चिह्नों या संख्याओं की योजना नहीं की गई है। पादटिप्पणी में उनका संकलन छंद में प्रयुक्त शब्द को आधार बनाकर किया गया है। इस पद्धति में कुछ विस्तार होने पर भी स्पष्टता है। पाठ-संकलन की वह शैली सबसे अधिक उत्तम समझ में आती है जिसमें मूल के पाठ के साथ कोई विकृति नहीं लगाई जाती। उसका प्रमुख आधार भी नहीं लिया जाता। वस्तुतः मूल का संपादन पृथक् कार्य है और पाठ का संकलन पृथक् कार्य। संकलन मूल के संपादन में सहायक भर हो सकता है। यहाँ पाठों के संकलन में शब्दांतर और अर्थांतर का ध्यान रखा गया है। वर्तनी के कारण होनेवाले रूपांतर मात्र का परित्याग कर दिया गया है।

पाठ-संग्रह में प्रतियों के नामों का उल्लेख करने की कई विधियाँ हैं। उनमें सूक्ष्मता की प्रवृत्ति इसलिए रखनी पड़ती है जिससे विस्तार न हो। अंकों और अक्षरों के द्वारा इनका संकेत देना या नाम रख लेना एक पद्धति है। अंकों का प्रयोग थोड़ी सी असावधानी से कष्टदायक हो जाता है। पर १, २, ३ और क, ख, ग में इस दृष्टि से कोई अंतर नहीं है। इसे चाहें तो निर्गुण और सगुण ब्रह्म कह सकते हैं। निर्गुण निर्नाम होता है। सगुण का नाम-रूप होता है। नाम रखकर सगुणोपासना को ही श्रेयस्कर माना गया है। नाम क्यों-कैसे रखे गए इस विषय का विस्तार यहाँ अनपेक्षित है।

पाठ-विमर्श का वैज्ञानिक प्रवाह खंडित न हो इसलिए एक ही छंद जब दो या अधिक ग्रंथों में आया है तो प्रत्येक ग्रंथ के प्राप्त हस्तलेखों के आधार पर उसका मूल पाठ स्वीकृत किया गया है। कुछ छंद स्पष्ट घोषित करते हैं कि कवि को पाठ-परिवर्तन करने की आवश्यकता थी। इसलिए पाठांतर अनिवार्य था। 'रामचंद्रचंद्रिका' और 'छंदमाला' में ओतप्रोत छंदों का पाठांतर 'चंद्रिका' से मिलाकर उसका उल्लेख पादटिप्पणी में किया गया है, 'छंदमाला' के स्वीकृत पाठों में परिवर्तन नहीं किया गया है।

संस्कृत आधारग्रंथों का भी यथास्थान उपयोग किया गया है। इनका उपयोग न करने से पाठनिर्णय में त्रुटि होने की संभावना है। ऐसे ही ऐतिहासिक ग्रंथों के लिए

ऐतिहासिक तथ्यों का भी समन्वय अपेक्षित है। पर इन तथ्यों से मिलान करने पर अंतर के अनुसार परिवर्तन स्वतः नहीं किया जा सकता। इसलिए केवल संदिग्ध स्थलों के लिए ही उनका उपयोग किया गया है। 'रामचंद्रचंद्रिका' और 'विज्ञानगीता' में संस्कृत के प्रमाण भी उद्धृत किए गए हैं, जिनका पाठ सबसे अधिक विकृत मिला। हिंदी में संस्कृत का पाठ प्रायः अशुद्ध हो जाया करता है। जहाँ तक मूल ग्रंथों का पता चल सका और जहाँ तक संशोधन संभाव्य था कर दिया गया है।

छंदों की गति और पाठ-रूप में अंतर होने पर छंदों की गति के अनुसार रूप स्वीकृत किया गया है। हस्तलेखों में छंद कोई है पर नाम उसका दूसरा ही अंकित है, ऐसी स्थिति में छंद का विचार विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है। जो पाठ छंद का अनुयायी है वही ठीक है। छंदों की संख्या में क्रम के अनुसार शोधन कर दिया गया है। हस्त-लेखों में लिखित संख्या का विश्वास नहीं किया गया है। 'चौपही' या 'चौपाई' छंद की पूर्ति वस्तुतः चार चरणों से होती है। पर परंपरा में यह देखा गया है कि इस नियम का पालन किसी ने समुचित नहीं किया है—न तुलसीदास ने और न केशवदास ने। यह समझना ठीक नहीं कि हिंदी के सूफी कवियों को छंद का ज्ञान नहीं था इसलिए उन्होंने पूरी चौपाई अर्थात् चार चरणों की युति नहीं मानी है। वे प्रचलन से विवश थे। प्रचलन के अनुसार अर्धाली में ही छंद की युति पूर्ण होती थी। केशवदास के ग्रंथ से भी यही प्रमाणित होता है। इसलिए चार चरणों पर संख्या लगाते हुए जहाँ कोई अर्धाली अधिक हुई है वहाँ उसकी संख्या अधिक कर दी गई है। कहीं कहीं तीन अर्धालियों पर भी संख्या लगाई गई है। कुछ छंदों को हस्तलेखों ने आठ चरणों का मान लिया है। बहुत सावधानी रखने पर भी कहीं कहीं विपर्यास हो ही गया है।

प्राचीन साहित्यिक हस्तलेखों में चंद्रबिंदु का प्रयोग प्रायः है। इसलिए उसका उपयोग ठीक समझा गया। पर हिंदी में पाठ-शोध का कार्य यथावांछित मुद्रित नहीं कराया जा सकता। ऐसे मुद्रणों का और उनके संचालकों में ऐसे कार्य के मुद्रण का चाव नहीं है। इसलिए विवशता होने पर नियम को शिथिल करना पड़ा है। तीसरे खंड में चंद्रबिंदु पृथक् से लगाने से दो अक्षरों के बीच अधिक अंतर होने के कारण वैसे स्थानों पर बिंदु से ही काम लिया गया है। पाठों को ठीक ठीक पढ़ने के लिए उन्हें कैसे मुद्रित किया जाय इसका बहुत बड़ा हौसला होते हुए भी हिंदी के मुद्रण-संबंधी क्लैव्य के कारण उसे पूरा नहीं किया जा सका। आज जब हिंदी पाठ-शोधन के वैज्ञानिक कार्य में संलग्न है तब भी वह कुछ नहीं कर पा रही है, कभी ग्रियर्सन साहब ने विहारी के दोहों को लाल अक्षरों में ह्रस्व उच्चारण के चिह्न बनवाकर छपवाया था। हिंदी साहित्य के शोध की गति का एक ओर विकास तथा दूसरी ओर मुद्रण का उसी अनुपात में ह्रास विचारणीय और शोचनीय भी है। इसमें केवल चंद्रबिंदु का भी निर्वाह नहीं हो सका। मुद्रण-दोष से वे बहुत से स्थानों पर टूट भी गए हैं।

केशव के ग्रंथों का संपादन करने में ओड़छे की यात्रा अनिवार्य समझ वहाँ भी गया। तुंगारण्य, वेत्रवती, चतुर्भुज मंदिर के दर्शन के अनंतर उनके वासस्थान के खंडहर आदि का अवलोकन किया। इस कार्य में साथ दिया मेरे पुराने मित्र श्रीसूर्यबली सिंह

ने जो उस समय दतिया के सरकारी कालिज में प्रिंसिपल थे। साथ में उनकी मित्र-मंडली भी थी। बड़ा ही मनोरम प्राकृतिक दृश्य है। सचमुच बड़े आश्चर्य का विषय है कि ऐसे रमणीक दृश्यप्रसार के बीच अवस्थित रहकर केशव में प्राकृतिक दृश्यों के प्रति वह रागात्मक वृत्ति क्यों नहीं जगी, जिसके न जगने से प० रामचंद्रजी शुक्ल ने उनकी कड़ी आलोचना की है। परंपरा का व्यामोह कितना प्रबल होता है इसका सटीक उदाहरण है केशव का काव्य।

टीकमगढ़ से केशव के चित्र की प्रतिकृति श्रीगौरीशंकर द्विवेदी ने हिंदी-साहित्य को सर्वप्रथम दी। उन्हीं के द्वारा लाला भगवानदीनजी को जो चित्र मिला था और जिसे उन्होने 'केशव-पचरत्न' में मुद्रित कराया है वही नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रतिसंस्कृत होकर हिंदी-जगत् में फैला। प्रतिकृति और प्रतिच्छवि (फोटो) में बहुत अंतर पड़ता है। श्रीगौरीशंकर द्विवेदी के प्रयास और श्रीहकीम चित्रकार की कला के कारण दूसरी प्रतिकृति की उपलब्धि संभव हो सकी। यह हिंदी में प्रचलित प्रतिसंस्कृत चित्रों से भिन्न है। श्रीद्विवेदी ने इसे अपने 'बुंदेल-वैभव' मे भी मुद्रित कराया है। यही चित्र प्रस्तुत ग्रंथावली में दिया जा रहा है।

'कविप्रिया' के चित्रालंकार के प्रकरण में कुछ रेखा-चित्रों की अपेक्षा थी। इनके प्रस्तुत करने में बहुत अधिक श्रम करना पड़ा है। प्रत्येक चित्र की आकृति और नाम में साम्य स्थापित करने का प्रयास किया गया है। पढ़ने के क्रम के लिए बाणों का व्यवहार है। सबसे प्रामाणिक और सुंदर चित्र काशिराज के पुस्तकालय के हस्तलेखों में हैं। उनका अपेक्षित आधार रखा गया है, पर अपना स्वतंत्र विमर्श सर्वत्र है। काशिराज के हस्तलेखों के वैशिष्ट्य का कारण है। केवल चित्रालंकार के चित्रों पर सबसे बड़ा ग्रंथ हिंदी में 'चित्रचंद्रिका' उपलब्ध है। यह अतीत के एक काशिराज का ही प्रयत्न है।

इसमें ग्रंथों का क्रम ऐतिहासिक अर्थात् कालक्रम से रखने का प्रयास करने पर भी समस्त रचनाओं को तीन वर्गों में बाँट दिया गया है। साहित्यिक, ऐतिहासिक और धार्मिक। साहित्यिक कृतियों का मुद्रण बहुत कुछ कालक्रम से है। 'रसिकप्रिया' सं० १६४८ में प्रस्तुत हुई। 'रामचंद्रचंद्रिका' और 'कविप्रिया' दोनों का निर्माण सं० १६५८ में हुआ। ऐतिहासिक क्रम में 'चंद्रिका' पहले पड़ती है। वह कार्त्तिक सुदी बुधवार को प्रस्तुत हुई और 'कविप्रिया' फाल्गुन सुदी पंचमी बुधवार को। लगभग चार महीने का अंतर है। 'रसिकप्रिया' और-'कविप्रिया' में नाम का साम्य ही नहीं है, स्वरूप का साम्य भी है। दोनों शास्त्र-ग्रंथ हैं। इसी से पहले खंड में इन दोनों को स्थान दिया गया है। दूसरे खंड में 'शिखनख' अवश्य अस्थानस्थ है। उसको कविप्रिया के साथ क्या, उसी में अंतर्भुक्त होना चाहिए। पर उसकी वास्तविकता का पता विलंब से लगा, इसलिए उसे दूसरे खंड के अंत में रखा गया है। अगले संस्करण में ही उसको अपना ठीक स्थान प्राप्त हो सकेगा। 'छंदमाला' का 'चंद्रिका' के साथ होना आवश्यक है। 'छंदमाला' का निर्माण 'चंद्रिका' के साथ ही हुआ है। अनुमान यही होता है कि 'रामचंद्रचंद्रिका' में विभिन्न छंदों के प्रयोग के लिए पिंगल ग्रंथों का केशव ने पारायण किया। उनके अध्ययन के अनंतर 'छंदमाला' प्रस्तुत कर दी। 'रामचंद्रचंद्रिका' के साथ ही 'छंदमाला' पिरोई गई यह निश्चित है। उसका स्थान 'रामचंद्रचंद्रिका' से न पहले है

और न पीछे। अभी तो उसे केशव के साहित्यिक प्रबंधकाव्य का परिशिष्ट समझकर उसके अनंतर ही स्थान दिया गया है। इसका एक कारण यह भी है कि यह पुस्तक भी स्वतंत्र शिखनख के साथ ही मुझे उपलब्ध हुई। अन्यथा इसका स्थान 'कविप्रिया' के साथ लक्षणग्रंथ के रूप में समुचित है।

तीसरे खंड में तीन प्रशस्ति-काव्य 'रतनबावनी', 'वीरचरित्र' और 'जहाँगीर-जस-चंद्रिका' तथा एक धार्मिक काव्य 'विज्ञानगीता' मुद्रित है। 'रतनबावनी' इनमें सबसे पहले प्रस्तुत हुई होगी। 'वीरचरित्र' का रचनाकाल सं० १६६४ है। 'वीरचरित्र' के साथ ही या पहले उसका भी निर्माण हुआ होगा। इसलिए क्रम में उसे प्रथम स्थान दिया गया है। 'जहाँगीर-जस-चंद्रिका' का निर्माण सं० १६६९ में हुआ। यद्यपि 'विज्ञानगीता' का प्रणयन सं० १६६७ में हुआ तथापि उसे धार्मिक ग्रंथ मानकर सबसे अंत में रखा गया है। 'विज्ञानगीता' का प्रधान आधार संस्कृत का 'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक है। पर उसका नाम 'गीता' ही उसे साहित्यिक क्षेत्र से पृथक् करने के लिए पर्याप्त है। फिर भी यदि 'नाटक' की अनुगामिनी होने से उसे साहित्यिक माना जाए तो केशव के अन्य ग्रंथ श्रव्यकाव्य से संबद्ध हैं, यह दृश्य-काव्य से। श्रव्य के अनंतर दृश्य का न्यास भी एक क्रम ही है।

केशव के ग्रंथों के नाम का भी विचार कर लेना चाहिए। 'रसिकप्रिया, कविप्रिया, छंदमाला, शिखनख, रतनबावनी' के नामों के संबंध में कोई विवाद नहीं है। पर अन्य ग्रंथों के नाम विचारणीय हैं। यहाँ केशवदास के स्वीकृत नामों, फिर हस्तलेखों के स्वीकृत नामों को वरीयता दी गई है। 'रामचंद्रचंद्रिका' का प्रचलित नाम 'रामचंद्रिका' है, पर केशवदास ने उसका नाम 'रामचंद्रचंद्रिका' ही माना है—

१—*रामचंद्र की चंद्रिका* भाषा करी प्रकास।
२—*रामचंद्र की चंद्रिका* बरनत हौं बहु छंद।
३—पढ़ै कहै सुनै गुनै जु *रामचंद्रचंद्रिकाहि*।

प्राचीन हस्तलेखों की पुष्पिका में भी 'रामचंद्रचंद्रिकायाम्' ही मिलता है। इससे नाम यही स्वीकृत किया गया है।

'वीरचरित्र' के कई नाम चलते हैं—वीरसिंहचरित, वीरसिंहदेवचरित, वीरसिंहदेवजू चरित। पर केशवदास ने 'वीरचरित्र' नाम ही स्वीकृत किया है—

१—बुधिबल प्रबंध तिनि बरनियो *बीरचरित्र* बिचित्र सुनि।
२—कीनो *बीरचरित्र* प्रकास।
३—*बीरचरित्र* बिचित्र किय केसवदास प्रमान।
४—*बीरचरित्र* संतत सुनत दुख को बंस नसाय।

प्रत्येक प्रकाश की पुष्पिका में 'वीरसिंहदेवचरित्र' मिलता है। ग्रंथ के मूल में केशव-लिखित नाम ही ठीक समझा गया है।

'जहाँगीर-जस-चंद्रिका' का नाम केशवदास ने यह दिया है—

जहाँगीर सकसाहि की करी चंद्रिका चारु।

पुष्पिका में कहीं 'जहाँगीरसाहियशश्चंद्रिका' है तो कहीं जहाँगीरचंद्रिका। 'जहाँगीरयशश्चंद्रचंद्रिका' ही इसका ठीक नाम है। पर हिंदी में यह 'जहाँगीर-जस-चंद्रिका' नाम से प्रचलित है अतः प्रचलित नाम ही स्वीकृत कर लिया गया है।

'विज्ञानगीता' का नाम केशव के अनुसार 'ज्ञानगीता' ही है—

१—करी *ज्ञानगीता* प्रगट श्रीपरमानंदकंद।
२—सोई तो सुनावै सुनै गुनै *ज्ञानगीति*काहि।
३—पढ़ौ *ज्ञानगीता*हि तौ जौ चाहौ हरिभक्ति।
४—सुनौ *ज्ञानगीता* बिमल छोड़ि देहु सब जुक्ति। आदि।

केशव ने एक अपवाद के अतिरिक्त सर्वत्र 'ज्ञानगीता' ही नाम लिया है। पुस्तक के अंत में अपवाद रूप 'विज्ञानगीता' नाम भी है—

सुनावै सुनै नित्य *बिज्ञानगीता*।

पुष्पिका में 'विज्ञानगीतायां' ही मिलता है। इस प्रकार केशव को दोनों नाम मान्य हैं। इसी से प्रचलित 'विज्ञानगीता' नाम ही रखा गया है।

केशव ने अपनी छाप 'केसव', 'केसवदास' और 'केसवराइ' रखी है। 'केसव' शब्द कभी 'केसो' या 'केसौ' रूप में भी प्रयुक्त है। 'केसवराइ', 'केसवराय' रूप में भी आया है। मुख्य रूप में 'केशवदास' और 'केसवराइ' ये दो नाम विचारणीय हैं। 'केशवदास' नाम का कारण तो है निंबार्कसंप्रदाय में इनका दीक्षित होना। भक्ति का प्रबल आंदोलन गृहस्थों में धार्मिक जागर्ति के लिए हुआ। अतः यहाँ के गृहस्थ किसी न किसी सप्रदाय में दीक्षित अवश्य होते थे। जो धाम में जा बसता था उसके अतिरिक्त अन्य गृहस्थों में कट्टरपन नहीं होता था। अन्य देवी देवताओं के कीर्तिगान में कोई भक्ति-संबधी अवरोध-आग्रह नहीं था। इसी से 'केशवदास' में कोई साम्प्रदायिक दुराग्रह नहीं। 'राय' शब्द 'कवि' के लिए प्रयुक्त होता था। काव्य करनेवाली एक जाति ही हो गई जो अपने को 'राय' कहने लगी। भाटों के लिए 'राय' शब्द नियत हो जाने से किसी को यह भी आशंका हुई कि कहीं केशव भाट तो नहीं थे। इसके लिए स्वयम् इन्होंने अवकाश नहीं छोड़ा है। इन्होंने अपने को सनाढ्य ब्राह्मण लिखा है। 'मिश्र' इनकी उपाधि थी। ये संस्कृत के सुप्रख्यात छदोग्रथ शीघ्रबोध के रचयिता काशीनाथ मिश्र के पुत्र थे। पर ये 'केशव केशवराय' छाप का प्रयोग कभी नहीं करते थे। ऐसा भ्रम कुछ महानुभावों को हो गया है। 'केशव केशवराय' छाप दूसरे कवि की है। केशव ने जहाँ 'केशव केशवराय' का प्रयोग किया है वहाँ एक 'केशव' शब्द विष्णु के लिए प्रयुक्त है। 'केशव केशवराय' छाप के जितने छद संग्रहों में प्राप्त हुए है उनमें से एक भी केशव के किसी ग्रंथ में नहीं है, उसकी आधी टाँग भी नहीं। परंपरा में बिहारी जो केशव के पुत्र प्रसिद्ध हो गए उसमें थोड़ी भ्रांति है। केशवदास के एक पुत्र 'बिहारीदास' नाम के थे। उनका कविता से कोई संबध नहीं था। इसलिए भ्रम से समझ लिया गया कि सतसैयाकार बिहारी इनके पुत्र हैं। रत्नाकरजी ने प्रबल प्रमाण के अभाव में बिहारी को इनका शिष्य बताया है। बिहारी केशवदास के प्रत्यक्ष शिष्य थे इसके प्रमाण भी पुष्ट नहीं हैं। उनके पिता 'केशव केशवराय' नामक कवि हो सकते हैं। 'केशवराय' नाम केशवदास के लिए प्रसिद्ध देख कदाचित् उन्हीं के समकालीन या परवर्ती किसी कवि ने यह विलक्षण नाम छाप के लिए रखा है।

केशव के ग्रथों-कृतियों का विचार भी यहाँ अपेक्षित है। केशव, केशवदास और केशवराय नाम के अन्य कवि भी हैं। खोज के विवरणों में जितने उक्त नामधारी व्यक्ति हैं वे सब ये ही केशव हैं यह भ्रम है। शिवसिंह सेंगर तक ने केशवदास सनाढ्य के अति-

रिक्त एक अन्य केशवदास नाम का कवि माना है। साथ ही केशवराय बवेलखंडी की भी रचना पृथक् दी है। केशव की जितनी कृतियाँ प्रामाणिक मानी जाती हैं उनकी विशेषता यह है कि उनके छंद मूल रूप में या परिवर्तित रूप में एक दूसरी में ओतप्रोत हैं या उनके एक ही वस्तु के वर्णन यदि छंदशः नहीं तो शब्दशः बहुत कुछ मिलते हैं। इसलिए उनके नाम पर अन्य ग्रंथ आ ही नहीं सकते। जिन अन्य ग्रंथों की चर्चा खोज-विवरणों या शोध-प्रबंधों में की गई है वे केशव के नहीं हैं। शिवसिंहसरोज में एक ग्रंथ 'रामालंकृतमंजरी पिंगल' भी उल्लिखित है। नाम से यह अलंकार-ग्रथ ही लगता है। इससे दो दोहे भी वहाँ उद्धृत हैं—

जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिना न राजई, कबिता बनिता मित्त॥
प्रकट सब्द में अर्थ जहँ, अधिक चमत्कृत होइ।
रस अरु व्यंग्य दुहून ते, अलंकार कहि सोइ॥

इसमें का पहला दोहा तो 'कविप्रिया' में है (देखिए ५।१)। दूसरा दोहा 'कुवलयानंद' की टीका 'अलकारचंद्रिका' में दिए गए अलंकार के लक्षण के आधार पर निर्मित जान पड़ता है। अलकारचंद्रिका का लक्षण यह है—

अलंकारत्वं च रसादिभिन्नव्यंग्यभिन्नत्वे सति शब्दार्थान्यतरनिष्ठा या विषयिता सम्बन्धावच्छिन्ना चमत्कृतिजनकतावच्छेदकता तदवच्छेदकत्वम्।

तो क्या केशव ने 'चंद्रालोक कुवलयानंद-अलकारचंद्रिका' के प्रवाह पर भी कोई अलंकार की पोथी लिखी है। अभी तक कहीं इसका पता नहीं चला। इसका नाम 'पिंगल' क्यों है। जान पड़ता है कि इसके अंत में पिंगल भी दिया गया है। देव ने अपने 'शब्द-रसायन' के अंत में थोडा सा पिंगल भी दिया है। केशवदास 'चंद्रालोक' का अनुगमन कर सकते हैं, पर 'चद्रालोक' के पंचम मयूख की टीका 'कुवलयानद' और उसकी भी टीका 'अलंकारचद्रिका' का नहीं। क्योंकि 'कुवलयानद' के प्रणेता अप्पय दीक्षित के प्रमुख समसामयिक प्रतिद्वद्वी पंडितराज जगन्नाथ थे, शाहजहाँ के समय में होनेवाले। केशवदास की अंतिम रचना अभी तक प्राप्त 'जहाँगीर-जस-चद्रिका' है। इसलिए जहाँगीर के समय तक ही उनका समय माना जा सकता है। उक्त दोहा किसी ने आगे चलकर बढ़ा दिया होगा अथवा उसका आधार कोई अन्य प्राचीन ग्रथ होगा। इसके नाम में 'राम' क्यों है। क्या यह रामसिंह के नाम पर लिखी गई? अथवा भगवान् रामचद्र पर तो उदाहरण नहीं रखे गए हैं? 'छदमाला' में अधिक उदाहरण 'रामचद्र-चद्रिका' के हैं तो क्या इसमें अलकार के उदाहरण उसी से लेकर दिए गए हैं? अनेक जिज्ञासाएँ हैं जिनका कोई समुचित समाधान नहीं होता।

केशव की प्रकीर्ण रचना का सकलन करने के लिए कई संग्रह देखे। उनमें इनके अधिकतर छद 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया', 'नखशिख' और 'शिखनख' के ही सगृहीत हुए हैं। जो छद मिले भी वे 'शिखनख' में समा गए। 'शिवसिंहसरोज' में 'फुटकर' के नाम पर इनकी जो रचना दी गई है उसमें से केवल दो छद ऐसे हैं जो इनकी रचनाओं में नहीं मिले। शेष तीन छद कविप्रिया के हैं (११। २, ११। ४ और ४। १०)। नए छदों में एक तो बीरबल की प्रशस्ति का है दूसरे में श्रीकृष्ण को सखी का उपालंभ है—

पावक पच्छी पसू नग नाग नदी नद लोक रच्यो दस चारी।
केसव देव अदेव रच्यो नरदेव रच्यो रचना न निवारी।
रचि कै नरनाह वली बरबीर भयो कृतकृत्य महा व्रतधारी।
दै करतापन आपन ताहि दियो करतार दोऊ कर तारी॥

सीखे रस रीति सीखे प्रीति के प्रकार सबै सीखे *केसौराइ* मन मन को मिलाइबो।
सीखे सौहैं खान नटतान मुसकान सीखे सीखे सैन बैननि मे हँसिबो हँसाइबो।
सीखे चाह चाह सों जु चाह उपजाइबे की जैसी कोऊ चाहै चाह तैसी वाहि चाहिबो।
जहाँ तहाँ सीखे ऐसी बातैं घातैं तातैं सब तहाँ क्यों न सीखे नेक नेह को निबाहिबो।

पहला सवैया तो बहुत प्रसिद्ध है। जनश्रुति है कि इंद्रजीत की दरबारी पातुर प्रवीणराय की प्रशस्ति सुनकर अकबर ने उसे अपने दरबार में हाजिर होने का हुक्म दिया। ऐसा न होने पर उसने उन पर एक करोड़ का जुरबाना कर दिया। केशव ने वीरबल की उक्त प्रशस्ति लिखकर उनके माध्यम से जुरबाना माफ करवाया। फिर भी प्रवीणराय को वहाँ जाना पड़ा। उस प्रगल्भा ने जो कुछ कहा उससे अकबर का मिजाज पस्त हो गया—

बिनती राय प्रबीन की सुनिये साह सुजान।
जूठी पतरी भखत हैं बारी बायस स्वान॥

केशव के बहुत से छंद चित्रों के साथ दिए गए हैं। पर वे सभी 'रसिकप्रिया' या 'कविप्रिया' के हैं। उनके नाम पर यह दोहा भी चलता है—

'केसव' केसनि अस करी जस अरिहू न कराहिं।
चंद्रबदनि मृगलोचनी बाबा कहि कहि जाहिं॥

यह दोहा उनकी रचना नहीं है। 'रसिकप्रिया' में उन्होंने वेश्या का वर्णन तक नहीं किया, राधाकृष्ण की ही लीला गाई। यह किसी दूसरे केशव की रचना हो सकती है, या किसी ने उन्हें बदनाम करने के लिए इसे गढ़ा होगा।

रागकल्पद्रुम में ये दो गीत भी 'केशवदास' के नाम पर दिए गए हैं—

कान ने बजाई बाँसुरी मुझे बिलमाई रे।
सखी जब जमुना का नीर भरन कूँ जाई रे॥
एक दिन जल भरने कुँ चली सीस धर मटकी।
मोहे मिले नंद के लाल बाँह मेरी झटकी॥
मेरो तोरा हार सिंगार चोली सब तरकी।
मैं तो गिरी रपट के पाव फूट गई मटकी॥
मैं गिरिधरन पै जाय सखी सब सटकी।
मैं तो हो गई हाल बिहाल देख छवि नट की॥
मैं गई सुधबुध बिसराय सरम नहीं रई रे।
मोहे मिला नगर का लोग भरम सब गई रे॥
मेरी सास सुने और ननद सोर सुन करई।
सुन पावे गुरुजन लोक तासों मैं डरई॥
जब देख बहू का हाल सास तब बोली।
बहू कहाँ फटा तेरा चीर अंग की चोली॥

बहू कौन मिला बलवान भरी मेरी झोली।
बहू बड़ी भई है खैर कंथ घर पोली॥
मेरा पुत्र बड़ा जलजाल साँची कहु मेरे।
एरी कुल कूँ लगाई दाग लाज नहीं तेरे॥
जब कहत बहू सुन सास अरज एक मेरी।
या गोकुल ब्रज की नार बड़ी छलहेरी॥
कहने लागी सब सब तो देन लागी गारी।
मोसों झरझेटा हुआ चीर तहाँ फारी॥
नवल जबर का संग मुझे दे मारी रे।
बहू कहे चतुराई सों बात समारी रे॥
....
यह छलबल सों कर बात सास समझाई रे॥
सास किया बड़ प्यार अंग भर लाई रे।
बहू औगुन लिए छिपाय चतुरताई रे॥
कहे केसवदास बनाय सगुण ब्रह्मताई रे।
कृष्ण पूरन अवतार पार नहीं पाई रे॥

—प्रथम खड, पृष्ठ ६६२

भोर भए आए हो ललन नीकी भँतियाँ।
जावक के उर चिन्ह नील पट प्यारी दीने नयन आलस भीने जागे रतियाँ।
छुटी ग्रीव बनदाम न खैंचत अभिराम कैसे कै दुरत स्याम डगमगी गतियाँ।
केसवदास प्रभु नंदसुवन काहे लजात भले जू साँवरे गात जानी सब घतियाँ॥

—द्वितीय खड, ७४

इनमें से पहले में शब्दों के रूप खड़ी बोली के हैं। अतः रचना परवर्ती है। दूसरे की भाषा पुरानापन लिए हुए है। पातुरों की शिक्षा देनेवाले, संगीत के मर्मज्ञ केशवदास ने गीत लिखे हों यह असंभव नहीं है। पर उद्धृत गीत उनकी कृति हैं इसमें संदेह ही है। यह किसी शुद्ध भक्त या गायक केशवदास की रचना होगी।

प्रस्तुत ग्रंथावली में विषयों के शीर्षक, छंदों के नाम और पुष्पिका की पदावली में यथासंभव परिष्कृत वर्तनी का व्यवहार किया गया है। हस्तलेखों के अनुगमन पर उन शीर्षकों का रूप कहीं कहीं बहुत बेढंगा हो जाता। साथ ही मूल में आधुनिक विराम-चिह्नों का भी कहीं कहीं प्रयोग किया गया है। पढ़नेवालों को अर्थ-बोध में सुभीता हो इसी विचार ने ऐसा किया है। केशवदास की रचना में शब्द का व्यय कम और अर्थ की आय अधिक है। इसी से इन चिह्नों के बिना कभी कभी अर्थ तक पहुँचने में बाधा होती है अथवा विलब लगता है। प्राचीन ग्रथों के संपादित सस्करणों के लिए अर्थ-बोध पर दृष्टि रखना बहुत आवश्यक है। इस पर ध्यान न रखने से अनर्थ की सभावना रहा करती है। इसी विचार से ग्रंथावली के अत में 'शब्दकोश' की योजना भी की गई है। जिन ग्रंथों की आधुनिक या प्राचीन टीकाएँ हैं उनका सदुपयोग किया गया है, पर सर्वत्र आँख मूँदकर नहीं। विच्छेद स्थान स्थान पर दिखाई देगा। चित्रालकार के छंदों का भी अर्थ लगाया गया और शब्दार्थ किया गया है। इसमें प्राचीन टीकाओं से भरपूर

सहायता ली गई है, पर यथास्थान उनसे स्वतंत्र अर्थ भी किया गया है। प्रचीन कवियों के प्रयुक्त शब्दों का अर्थ करने में विशेष सावधानी की आवश्यकता है। एक ही शब्द विभिन्न प्रदेशों में विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है। यदि 'सुघर' शब्द पछाहीं कवि ने प्रयुक्त किया है तो उसका अर्थ 'चतुर' होगा। पूरबी कवि इसका प्रयोग 'सुंदर' अर्थ में करता है। 'सुठि' शब्द पश्चिम में 'सुष्ठु' अर्थ में ही चलता है, पर पूरब में उसका अर्थ 'अति' या 'अधिक' हो जाता है। यही स्थिति 'पछ्यावरि' शब्द की है। इस पर कुछ विस्तार से विचार करने की आवश्यकता है। यह 'रामचंद्रचद्रिका' में दो स्थलों पर प्रयुक्त है। परशुराम कहते हैं—

भूतल के सब भूपन को मद भोजन तौ बहु भाँति कियोई।
मोद सों तारकनंद को मेद *पछ्यावरि* पान सिरायो हियोई।७।३६

'केशव-कौमुदी' में लाला भगवानदीनजी इसका अर्थ यह देते हैं—'छाँछ से बना हुआ एक पेय पदार्थ जो भोजनांत में परोसा जाता है। इसके प्रभाव से भोजन शीघ्र पचता है।' काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हिंदी शब्दसागर में 'एक प्रकार का सिखरन या शरबत' अर्थ देकर यही उदाहरण दिया गया है। जेवनार के प्रसग में पुनः यह शब्द आया है—

पुनि झारि सो द्वै बिधि स्वाद घने। बिधि दोइ पछ्यावरि सात पने।३०।३०

दीनजी इसका अर्थ देते हैं—'शिखरन'। पर 'शब्दसागर' 'पछावरि' शब्द का अर्थ देता है—'एक प्रकार का पकवान।' उदाहरण यही उद्धृत है। इस प्रसंग में 'झारि' और 'पने' शब्द भी ध्यान देने योग्य हैं। 'झारि' का अर्थ दीनजी देते हैं—'खट्टी पेय वस्तु' और 'पने' का अर्थ देते हैं—'पन्ने' (यह लेह्य वस्तु है)। 'शब्दसागर' पना का अर्थ देता है—'(सं० प्रपानक या पानीय) आम इमली आदि के रस में बनाया जाने-वाला एक प्रकार का शरबत। प्रपानक। पन्ना'। वस्तुतः यह भी पेय ही है। दो पेयों के बीच 'पछ्यावरि' भी पेय ही है। अतः शब्दसागर में केशव के इस 'शब्द' का 'पकवान' अर्थ ठीक नहीं। बुंदेलखड में 'पछ्यावरि' का अर्थ 'सिखरन' के ढग का पेय ही है।

इस शब्द का व्यवहार अवध में भी होता है। इसलिए अवध के और अवधी भाषा के कवियों ने भी इसका व्यवहार किया है। मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पदमावत' में इसका दो स्थानों पर प्रयोग किया है। सीतापुर के नरोत्तमदास ने 'सुदामाचरित' में एक बार इस शब्द का प्रयोग किया है। जायसी 'रतनसेन पदमावती विवाह खड' में जेवनार के प्रसग में लिखते हैं—

पुनि जाउरि पछियाउरि आई। दूध दही का कहौं मिठाई।

लाला भगवानदीन के 'पद्मावत पूर्वार्ध' में इसका पाठ ही दूसरा हो गया है—

पुनि जाउरि बीजाउरि आई। विरित खाँड़ का कहौं मिठाई।

'जाउरि' 'चावल की खीर' को कहते हैं अतः लालाजी ने 'बीजाउरि' का अर्थ उसी साहचर्य में किया—'खरबूजा इत्यादि के बीजों की खीर'। फारसी लिपि में 'पछियाउरि' और 'बीजाउरि' शब्द बहुत कुछ एक ही आकार-प्रकार के लिखे होंगे। इसलिए 'पछियाउरि' को 'बीजाउरि' लिखा पढ़ा गया है। पं० रामचंद्र शुक्ल ने जायसी-ग्रथावली में पछियाउरि का अर्थ किया है—'एक प्रकार का सिखरन या शरबत'। वही

'शब्दसागर' वाला अर्थ। शुक्लजी के यहाँ दूसरे चरण का पाठ 'घिरित खाँड कै बनी मिठाई' है। इस चरण का पाठ लालाजी और शुक्लजी का ही ठीक जँचता है। 'दूध दही का कहौं मिठाइ' में 'दूध दही' पुनरुक्त है। क्योंकि इसके पूर्व ही 'दूध दही के मुरँडा बाँधे' आ चुका है। अस्तु। 'पदमावत' की टीका में महाप्रयास करनेवाले महारथी श्री वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'पछियाउरि' का अर्थ किया है—'खुर्मा शकरपारे आदि की मीठी तश्तरी'। आगे विस्तृत टिप्पणी में वे लिखते हैं—'जेंवनार के अंत में परोसी जाने वाली मीठी तश्तरी अवधी की उपभाषा बैसवाड़ी में पछियाउरि कहलाती है। इस सूचना के लिए मैं श्रीदेवीशंकर अवस्थी, कानपुर का आभारी हूँ।'

यही शब्द 'बादशाह भोजखड' में पुनः आया है—

'भइ जाउरि पछियाउरि सीझी सब जेवनार'।

शुक्लजी ने यहाँ अर्थ किया है—'मट्ठे में भिगोई बुँदिया'। श्री अग्रवाल ने टिप्पणी दी है—'बुंदेलखंड में पछियाउरि मिष्ट पेय के रूप में प्रचलित है। जेवनार के अंत में चावल तथा आम का शर्बत, या श्रीखंड, या गोरस में गुड़ मिलाकर परोसने की प्रथा है, वही पछियाउरि कहलाता है (श्रीसुमित्रानंदन, चिरगाँव)'।

कानपुर के श्रीदेवीशकर अवस्थी जिसे 'मीठी तश्तरी' (स्वीट प्लेट) कहते हैं उसे चिरगाँव (झाँसी, बुदेलखड) के श्रीसुमित्रानदन 'मिष्ट पेय'। एक जिसे 'भोज्य' कहता है दूसरा उसे पेय। वास्तविकता क्या है ? यही कि 'पछियाउरि' शब्द अवध में 'पकवान' के लिए चलता है और बुदेलखड में 'मीठे पेय' के लिए। स्वयम् शब्द का अर्थ है 'पीछे परोसी जानेवाली वस्तु'। यह संभवतः संस्कृत पश्चा में 'वृत्' (वितरण) धातु से बने 'वृत्ति' शब्द के सयोग से प्रस्तुत रूप का विकास है। 'पश्चावृत्ति' से 'पछावरि', 'पछयावरि', 'पछियाउरि' आदि विविध रूप निष्पन्न हुए हैं। पीछे अर्थात् भोजनात में कहीं पेय वस्तु वितरित होती है और कहीं भोज्य वस्तु। बुदेलखडी कवि उसका प्रयोग पेय के लिए करेगा और अवध प्रदेश का कवि भोज्य के लिए। कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में इस 'पछियाउरि' का प्रयोग विवाह के अवसर पर 'बव्हार' के समय अब भी होता है। महीन चाले हुए आटे या मैदे के छोटे छोटे टुकड़े कभी कभी विशेष पदार्थों लवंग, लायची के आकार के कभी सीधे टुकड़े, कभी छोटी गुझिया आदि के रूप में बनाकर घी में भूनते हैं। फिर उन्हें चीनी की चाशनी बनाकर पागते हैं। यही दोनिया में सजाकर अत में परोसते हैं। जब यह 'पछावरि' परोसी जाती है तब उसका सकेत होता है कि सबसे पीछे आनेवाला पदार्थ आ गया अब और कोई वस्तु नहीं परोसी जाएगी। यों पीछे से परोसे जाने के कारण इसका नाम 'पछावर' है, जिसका वितरण सबसे पीछे हो, पीछेवाली। 'पछावरि' नमकीन भी हो सकती है। पर बव्हार आदि में कदाचित् 'मधुरेण समापयेत्' का ध्यान कर मीठी का ही व्यवहार करते हैं। नरोत्तमदासजी ने 'सुदामाचरित' में इसका उल्लेख यों किया है—

या विधि सुदामा जू को आछे के जेवाय प्रभु
पाछे तें पछ्यावरि परोसी आनि कंद की।

यहाँ एक तो 'पाछे तें परोसी' शब्द से यह स्पष्ट है कि वह सबसे अत में वितरित होती है। दूसरे 'कंद' से उसके पकवान होने तथा मीठी होने का सकेत है। 'कद' फारसी शब्द

है। चाशनी करके जमाई हुई चीनी या मिस्री को 'कंद' कहते हैं। 'कलाकंद' बरफी का नाम है। इससे यहाँ 'पछ्यावरि' पकवान ही है।

इस प्रकार स्पष्ट हो गया कि 'पछ्यावरि' भोजन के अंत में परोसी जानेवाली वस्तु को कहते हैं। बुंदेलखंड में यह 'मिष्ट पेय' के रूप में और अवध में भोज्य 'मीठे पकवान' के रूप में प्रचलित है। इसी से प्रस्तुत संस्करण के शब्दकोश में उभयत्र इस शब्द का अर्थ किया गया है—सिखरन अर्थात् 'भोजन के अंत में दिया जानेवाला दही से बना पेय' या 'दही मथकर बनाया गया मीठा पेय'। 'दही' को यहाँ उपलक्षण ही समझना चाहिए।

'शब्दकोश' में शब्दों का अर्थ करने में इसी प्रकार सावधानी बरती गई है। फिर भी परिमित ज्ञान और बुंदेलखंडी प्रयोगों से सम्यक् परिचित न होने के कारण कहीं कोई त्रुटि भी हो सकती है, जो अनजाने ही हुई होगी।

आँखें हस्तलेखों का कार्य करते करते थक चली हैं। इससे अक्षरशोधन में अब अधिक श्रम नहीं कर पातीं। इसी से कुछ उनके दोष से और कुछ मुद्रण के दोष से अशुद्धियाँ हो गई हैं जिनके कारण अंत में 'शुद्धिपत्र' लगाना पड़ा। यह 'शुद्धिपत्र' केवल मूल का है। जहाँ 'पुत्री' 'पत्नी' (पृ० ८०४, वीरचरित्र, ३९) हो जा सकती है उस मुद्राराक्षस के यहाँ क्या का क्या हो गया होगा इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

सबसे अंत में कृतज्ञता-ज्ञापन करते हुए सर्वप्रथम अपने गुरुदेव लाला भगवानदीन-जी को प्रणति प्रदान करता हूँ जिन्होंने केशव के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने का आधुनिक युग में सबसे अधिक प्रयास किया और जिन्होने केशवसबधी सम्यक् दृष्टि मुझे ही क्या बहुतों को दी एवम् जिनके प्रयत्नों का सहारा न होता तो केशव-ग्रथावली का जो कुछ भी संभार हो सका है वह कथमपि न हो सकता। मैंने यह कार्य उन्हीं के द्वारा अस-माप्त समझकर समाप्त करने का प्रयास किया है। इसमें जो कुछ गुण है वह उन्हीं की विभूति है और जो कुछ अवगुण की भभूत या राख है उसका उत्तरदायी अकेला मैं हूँ। उनके अनतर कृतज्ञता की ज्ञप्ति के दूसरे अधिकारी श्रीयुत धीरेंद्रजी वर्मा हैं जिन्होंने मुझे यह कार्य सौंपा अथवा कहना चाहिए कि जिन्होंने यह कार्य मुझसे कराया। उनकी प्रेरणा और मरक न मिली होती तो मेरे ऐसा आलसी यह कार्य अपने पूरे जीवन में भी पूरा न कर पाता।

जिन हस्तलेख-स्वामियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करनी है उनमें सबसे प्रथम स्थान काशी नागरीप्रचारिणी सभा का है और उसमें के याज्ञिक-सग्रह का। याज्ञिक महोदयों ने हस्तलेखों का जैसा व्यवस्थित और बहुविध संग्रह कर रखा है वह हिंदी में किसी और व्यक्ति के यहाँ नहीं देखा गया। सभा ऐसी संस्था को उसे देकर उन्होंने हिंदीसेवा का बहुत ही वरिष्ठ कार्य किया है। हिंदी के वे कार्यकर्ता जो हस्तलेखों पर कार्य करेंगे उनके निश्चय ही ऋणी होंगे। कृतज्ञताज्ञप्ति की दृष्टि से ग्रंथस्वामियों में से द्वितीय स्थान तत्रभवान् महाराज विभूतिनारायण सिंह काशीनरेश महोदय का है जिनकी उदारता के कारण उनके 'सरस्वती-भंडार' के हस्तलेखों का उपयोग यथेप्सित समय तक मैं करता रहा। यह कह देना आवश्यक है कि इस 'भंडार' के हस्तलेख इतने सुलिखित और महत्त्वपूर्ण हैं कि पाठशोध के क्षेत्र में उनका विशेष मूल्य है और रहेगा। महाराज संस्कृत और हिंदी के

प्राचीन काव्यों के द्रव्यसाध्य और श्रमसाध्य संस्करणों के प्रकाशन में अभिरुचि रखनेवाले विद्याव्यसनी नरेश हैं। संस्कृत में पुराणों के सुसपादन से और हिंदी में रामचरितमानस तथा तुलसी के अन्य प्रामाणिक ग्रथों के सुसपादन से महाराज ने इस कार्य का श्रीगणेश भी कर दिया है। यहाँ नम्रतापूर्वक यह भी निवेदन कर देना है कि रामचरितमानस के सपादन का कार्य उन्होंने मेरी देखरेख में कराया है जो शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। इन सब कार्यों के लिए मैं क्या, सारा हिंदी-साहित्य आपके प्रति कृतज्ञ और मंगलाशीः का प्रदायक होगा। महाराज टीकमगढ़ के द्वारा रतनबावनी की मुद्रित प्रति मिली तथा अन्य कई पुस्तकालयों से विभिन्न हस्तलेख प्राप्त हुए उन सबके प्रति भी मैं परम कृतज्ञ हूँ। अपने शिष्य श्रीराजेश्वर को भी कृतज्ञताप्रकाशपूर्वक आशीर्वाद देता हूँ जिन्होने प्रतापगढ़ से केशव की कृतियों के महत्त्वपूर्ण हस्तलेख ला दिए। श्री बालकृष्णदास उपनाम बल्ली बाबू और प्रिय शिष्य श्रीलक्ष्मीशकर व्यास भी धन्यवाद के पात्र हैं जिनके उपयोगी हस्तलेखों का प्रयोग इस संस्करण के संपादन में किया गया है।

सर्वश्री बटेकृष्ण, कृष्णकुमार, रामादास, रामबली, रामजी, चंद्रशेखर, गंगाप्रसाद, भर्ग्यनाथ आदि जिन शिष्यों और सहायकों ने पाठ-संकलन, सामग्री-संचयन, अर्थ-लेखन आदि विविध कार्यों में सहयोग किया उन सबको हर्षित चित्त से आशीर्वाद और साधुवाद देता हूँ जिनके सहारे के बिना पार लगना दुष्कर था। सर्वश्री श्रीकृष्ण पंत, गौरीनाथ पाठक, पौराणिकजी आदि संस्कृत के पंडितों का भी परम कृतज्ञ हूँ जिन्होंने सस्कृत ग्रंथों द्वारा सहायता की और प्रमाण के श्लोकों के मूल संकेत और रूप बताने में सहयोग किया।

इस ग्रंथावली के संपादन में प्रभूत वाङ्मय आलोडित करना पड़ा है। जिन जिनके ग्रंथों का उपयोग, जिन जिनकी सामग्री का विनियोग और जिन जिनके अर्जन का प्रयोग किया गया है सबके प्रति मैं सविनय कृतज्ञता प्रकाशित करता हूँ। सबसे अत में महाकवि केशव का स्मरण करता हूँ जिनका प्रयास हिंदी के मध्यकाल में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक प्रयास है। लाला भगवानदीनजी ने निम्नलिखित दोहे में उनके संबंध में जो मंतव्य प्रकट किया है उसमें निहित सत्य में मैं विश्वास करता हूँ—

सूर सोई जि न बाँचियो केसव तुलसी सूर।
सूर सोई जिन बाँचियो केसव तुलसी सूर॥

वाणी-वितान भवन,
ब्रह्मनाल, वाराणसी।
गुरुपूर्णिमा, २०१६

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

ग्रंथ-सूची

संकेत

रतनबावनी

ओड़छा—ओड़छाधीश द्वारा प्रतापप्रभाकर प्रेस टीकमगढ़ में सन् १९१७ मे प्रथम वार मुद्रित प्रति।

दीन—लाला भगवानदीन 'दीन' संकलित 'केशव-पंचरत्न' में मुद्रित सं० १९८६।

वीरचरित्र

सभा—काशी नागरीप्रचारिणी सभा के आर्यभाषा पुस्तकालय की हस्तलिखित प्रति। लिपिकाल अनुल्लिखित।

भारत—भारतजीवन यंत्रालय (काशी) में ओड़छाधीश के आज्ञानुसार सन् १९०४ में प्रथम बार मुद्रित 'वीरसिंहचरित्र'।

शुक्ल—पं० रामचंद्र शुक्ल द्वारा सपादित 'वीरसिंहदेवचरित'। काशी नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।

जहाँगीर-जस-चंद्रिका

सभा—काशी नागरीप्रचारिणी सभा के 'याज्ञिक-संग्रह' की हस्तलिखित प्रति। लिपि०-सं० १७८६।

उदय—उदयपुर के सरस्वती-भंडार का हस्तलेख। लिपि०-सं० १७९६।

राम—रामनगर दुर्ग, काशी राज्य के सरस्वती-भंडार का हस्तलेख। लिपि०-सं० १८४८।

विज्ञानगीता

खोज १—खोज (२६-२३३ एच्), काशी नागरीप्रचारिणी सभा के मुद्रित विवरण। लिपि०—सन् १७०५।

खोज २—खोज (२६-२३३ आई), काशी नागरीप्रचारिणी सभा के मुद्रित विवरण। लिपि०—सं० १६४१

खोज ३—खोज (२६-१६२ जी), काशी नागरीप्रचारिणी सभा के मुद्रित विवरण। लिपि०—सं० १८४६।

वेंकट—वेंकटेश्वर प्रेस (बंबई) से सं० १६५१ में मुद्रित। आधारभूत हस्तलेख का लिपि०—१८०६।

काशि०—काशिराज के स्वकीय संग्रह सरस्वती-भंडार का हस्तलेख। लिपि०— १८५६।

सर०—सरस्वती-भवन, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, का हस्तलेख। लिपि०— १८६६।

[ ]—मूल ग्रंथ में इस कोष्ठक के बीच मुद्रित पाठ संपादक के सुझाव हैं।

( )—मूल ग्रंथ में इस कोष्ठक के बीच मुद्रित अंश छद-लक्षण से अधिक हैं।

×—प्रति में लोपसूचक।

वही—पूर्वगामी संकेत।

सर्वत्र—आधारभूत सभी प्रतियों में उपलब्ध।

ष़—ख।



रतनबावनी

मंगलाचरण—(दोहा)

मूषकवाहन गजबदन एकरदन मुदमूल।
बंदहु गननायक-चरन सरन सदा सुखतूल ॥१॥
ओड़छेंद्र मधुसाह-सुत रतनसिंघ यह नाम।
बादसाह सौं समर करि गए स्वर्ग के धाम ॥२॥
तिनको कछु बरनत चरित जा बिधि समर सु कीन।
मारि सत्रुभट बिकट अति सैन-सहित परबीन ॥३॥

(कुंडलिया)

दिल्लीपति सजि सैन सब चले सहित-अभिमान।
हय गय पयदर को गनय कियो न बीच मिलान।
कियो न बीच मिलान नृपति बढ़ संग सु लीने।
पातसाह खत लिखव अगवनै भेजि सु दीने।
सुनि रतनसेन मधुसाह-सुव अब सुखेत तहँ सज्जियव।
कहि 'केसव' मौलित पूर हुव नभ आपनो छंडियव ॥४॥

(छप्पय)

बाँचो खत तब कुँवर हृदय मह बहुत सु फुल्लिव।
लाज रखहु कुल-सहित बचन साथिन सन बुल्लिव।
लिखि मलेक्ष यह बात ज्वाब सबही सिखि दिज्जहु।
तुम सब सिर मम भार पीठ पर बल सब किज्जहु।
जौ रतनसेन मधुसाह-सुव अगद-सम पग रुप्पिहहिं।
कहि 'केसव' पति सिर धारि पुनि साहिदलह तब लुट्टिहहिं ॥५॥

(दोहा)

साजि चमू मधुसाह-सुव हरवल-दल करि अग्र।
हय गय पयदर सजि सकल छाँडि ओड़छो नग्र ॥६॥

कुमार-वचन—(छप्पय)

रतनसेन कह बात सूर सब मानि सु लिज्जिहु।
करहु पैज पन धारि मार सामंतन किज्जिहु।

बरिय स्वर्ग अपछरिय हरहु रिपु-बर्ग सर्ब आब।
जुरि करि संगर आज सूर-मंडल भेदहु सब।
मधुसाह-नंद इमि उच्चरहि खंड खंड पिंडह करहुँ।
कट्टहुँ सु दंत हथियान के मर्दहुँ दल यह प्रन धरहुँ ॥७॥

तहँ अमान पठ्ठान ठान हिय बान सु उट्ठिव।
जहँ 'केसव' कासी-नरेस दल-रोष भरिट्ठिव।
जहँ तहँ पर जुरि जोर ओर चहुँ दुंदुभि बज्जिय।
तहाँ बिकट भट सुभट छुटक घोटक तन तज्जिय।
जहँ रतनसेन रन कहँ चलिव हल्लिव महि कंप्यो गगन।
तहँ है दयाल गोपाल तब बिप्रभेप बुल्लिय बयन ॥८॥

विप्र उवाच

तुम सुंदर सुकुमार सुखद सब कला सरस अति।
तुम बल-बुद्ध-अगाध साध-संमति सु सुद्धगति।
तुम ज्ञानी गुनवंत संत-सेवक सब लायक।
तुम सरबज्ञ उदार उदित सोभा सुखदायक।
तव परत दीठि पाठानि की तब तौ को सथ्थहि रहइ।
सुन रतनसेन मधुसाह-सुव पत्ति गएँ क्षिन क्यों रहइ ॥९॥

कुमार उवाच

जे मुहिं सथ्थहि सथ्थ सबै समरथ्थ हथ्थ असि।
थोरे बहुत न गनहि हनहि तम-पुंज इक्क ससि।
अब पीछैं पिख्खियव तबहि हूहैं उठि आँगैं।
इनहिं उठत वे उलटि ये न रैहैं बिन भागैं।
धाराह नाह ये सूर सब 'केसव' झूठ न भाखिहैं।
जौ ये पति तजि भागिहैं तौ प्रान छाँडि पति राखिहैं ॥१०॥

विप्र उवाच

जु तौ भूमि तौ बेलि बेलि लगि भूमि न हारै।
जु तौ बेलि तौ फूल फूल लगि बेलि न जारै।
जु तौ फूल तौ सुफल सुफल लगि फूल न तोरै।
जौ फल तौ परिपक पक लगि फलहि न फोरै।
जौ फल पकि तौ काम सब परिपकहि जग मंडियै।
प्रान जु तौ पति वहु रहै पति लगि प्रान न छंडियै ॥११॥

---

[७] सब०—सामत सुनिज्जिय (दीन)। किज्जिहु—ज्ञिज्जिय (वही)। [८] तहँ अमान—जहँ अमान (दीन)। [११] जु तौ भूमि—जिनी भूमि (ओड़छा)।

कुमार उवाच

गई भूमि पुनि फिरहि बेलि पुनि जमै जरे तेँ।
फल फूले तेँ लगहि फूल फूलंत झरे तेँ।
'केसव' बिद्या बिकट निकट बिसरे तेँ आवै।
बहुरि होइ धन धर्म गई संपति फिरि पावै।
फिरि होइ स्वभाव सुसील मति जगत गीत यह गाइयै।
प्रान गएँ फिरि फिरि मिलहि पति न गएँ पति पाइयै ॥१२॥

विप्र उवाच

मातु-हेत पितु तजिय पिता के हेत सहोदर।
सुतहि सहोदर-हेत सखा सुत-हेत तजहु बर।
सखा-हेत तजि बंधु बंधु-हित तजहु सुजन जन।
सुजन-हेत तजि सजन सजन-हित तजहु सुखन मन।
कहि 'केसव' सुख लगि घरनि तजि घरनि-हितहि घर खंडियै।
सुइ छंडिय सब जग-हेत पति प्रान-हेत पति छंडियै ॥१३॥

कुमार उवाच

जासु बीज हरि-नाम जम्यो सुचि सुकृत-भूमि-थल।
एकादसी अनेक बिमल कोमल जाके दल।
द्विज-चरनोदक-बुंद कंद सीँचत सुख बढ्ढिय।
गोदानन के देत धर्म-तरुवर दिन चढ्ढिय।
सत्त-फूल फुल्लिय सरस सुजस-बास जग मंडियै।
कहि 'केसव' फलती बेर कर पति-फल किमि करि छंडियै ॥१४॥

विप्र उवाच

दानी कहा न देइ चार पुनि कहा न हरई।
लोभी कहा न लेइ आग पुनि कहा न जरई।
पापी कहा न कहै कह न बेंचै ब्यौपारी।
सुकबि न बरनै कहा कहा साधु न संचारी।
सुनि महाराज मधुसाह-सुत सूर कहा नहिँ मंडई।
कहि 'केसव' वर धन आदि दै साधु कहा नहि छंडई ॥१५॥
पंच कहैँ सो कहिय पंच के कहत कहिज्जिय।
पंच लहैँ तो लहिय पंच के लहत लहिज्जिय।

---

[१२] फिरि पावै–पुनि पावै (दीन)। [१३] घर–धन (ओड़छा)। [१४] सुकृत–स्वकृत (ओड़छा)।

पंच रहैं तौ रहिय पंच के दिख्खत दिख्खिय।
परमेसुर अरु पंच सबन मिलि इक्कव लिख्खिय।
सुनि रतनसेन मधुसाह-सुव पंचसथ्थ नहिँ लज्जियै।
कहि 'केसव' पंचन संग रहि पंच भजैं तहँ भज्जियै ॥१६॥

कुमार उवाच

जासु पिता मधु-इंद्र प्रगट अरि-मूल उखारे।
जासु बंधु रन राम प्रगट सब सैन सँघारे।
जासु प्रबल बल राय खेत महँ खल-बल कुट्टिय।
जासु प्रबल सब कटक बिकट दुर्जन-दल लुट्टिय।
जासु इस्ट रावन हनिय जियत जगत जस गाइयहु।
सोइ रतनसेन कुल-लाडिलहु (सु) पंचसथ्थ किमि भज्जियहु ॥१७॥

विप्र उवाच

लोकपाल दिगपाल जिते भुवपाल भूमि गुनि।
दानव देव अदेव सिध्ध गंधर्ब सर्ब मुनि।
किंनर नर पसु षक्षि जक्ष रक्षस पंनग नग।
हिंदुव तुर्क अनेक और जलथलहु जीव जग।
सुरपुर नरपुर नागपुर सब सुनि 'केसव' सज्जियहु।
सुनि महाराज मधुसाह-सुव को न जुध्ध जुरि भज्जियहु ॥१८॥

कुमार उवाच

महाराज मलखान ठान लगि प्रान न छंडिय।
गहिय तरल तरवार तुरत अरि-दल-बल खंडिय।
राज-काज धरि लाज लोह लरि तुरक बिहंडिय।
खरग सैन हनि तासु बासु बैकुंठहि मंडिय।
परताप रुद्र परताप करि अरि-कुल बिन तख्खत कियहु।
कहि 'केसव' नर सह जुध्ध करि इंद्रासन उद्दित लियहु ॥१६॥

खामसूद-मद मरदि जूझि भावंत जरे भुव।
काल अताल कहेउ करन जिमि हेमकरन हुव।
जूझ झुक्यो प्रहलाद मारि मुहकम महबूबहु।
परसुराम आमान अमर मुरक्यो न सेँध कहु।
(सु)जिन सब संसार असार गनि 'केसव' पति मति सज्जियहु।
इहि भाँति भाँति कोटिन सुनहु (सु) मम कुल कोउ न भज्जियहु ॥२०॥

---

[१६] लहैं तौ—लहैं तो (दीन)। रहि—रहु (ओड़छा)। [१६] दल-बल—दल दल (ओड़छा)।

(दोहा)

पति मति अति दृढ़ जानि करि सुनि सब बचन समाज।
राम-रूप दरसन दियो 'केसव' त्रिभुवनराज॥२१॥

बिप्र उवाच—(छप्पय)

द्विज माँगै सो देहु बिप्र को बचन न खंगिय।
द्विज बोलै सो करिय बिप्र को मान न भंगिय।
परमेस्वर अरु बिप्र एक सम जानि सु लिज्जिय।
बिप्रबैर नहिं करिय बिप्र कहँ सर्बसु दिज्जिय।
सुनि रतनसेन मधुसाह-सुव बिप्र-बोल किमि लज्जियहु।
कहि 'केसव' तन मन बचन कहि बिप्र कहइ सुइ किज्जियहु॥२२॥

कुमार उवाच

बिप्र चरन मम माथ सदा यह सुभ करि लिक्खिय।
बिप्रहि संकट परहि तहाँ हम सीस सु दिज्जिय।
त्रिभुवनपति निज हृदय भृगु सु पूरन पद पिक्खिव।
बिप्र-सरन हंमेस रहत हम बिघन न दिक्खिव।
सुइ रतनसेन कुल-लाड़िलहु बिप्र-बचन किमि छंडियव।
कहि 'केसव' तन धन देहुँ सब सत्रु पीठ नहिँ दिज्जियव॥२३॥

बिप्र उवाच

दैन कहत गज बाजि बादि दल दिक्खिय जा बिन।
दैन कहत भुवि भुवन भूप भिक्षुक भए जा बिन।
दैन कहत तुम भोग जाहि बंछित सुर नर मुनि।
दैन कहत तन तुरत जतन कीजत जा लगि गुनि।
निज प्रान-दान दैन जु कहत जो दुर्लभ यहि लोक महिं।
देत लेत सबकौं सुगम पिठ्ठ देत नहिं देत किहिँ॥२४॥
पतिहि गएँ मति जाइ गएँ मति मान करै जिय।
मान करै गुन गरै गरैं गुन लाज जरै हिय।
लाज जरैं जस भजै भजैं जस धरम जाइ सब।
धरम गएँ सब करम करम गएँ पाप बसै तब।
पाप बसैं नरकन परै नरकन 'केसव' को सहै।
यह जानि देहुँ सरबस तुम्हैं (सु) पीठ दएँ पति ना रहै॥२५॥

---

[२२] खंगिय—खंडिय (ओड़छा)। [२५] मति—पति (ओड़छा)। करैं—गरैं (दीन)। हिय-जिय (वही)। गएँ सब—जोय सब (ओड़छा)। गएँ पाप०—करतव्य करै (ओड़छा)।

विप्र उवाच

धन्य सुवन - मधुसाह सथ्थ के लोग जु छंडहु।
लेहु स्वार पयदरन खेत महँ रिपु-बल खंडहु।
गहि सुपानि किरवान साह-अन्नी पर गज्जिय।
चलहुँ लागि तुव साथ ध्यान बिप्रहु पद किज्जिय।
सुनि रतनसेन मधुसाह-सुव जियत जगत जय मंडियहु।
कहि 'केसव' आवहु नहि भवन वास सु सुरपुर किज्जियहु ॥२६॥

-रूप-वर्णन

हाटक-जटित किरीट सीस स्यामल तनु सोहै।
हाथ धरें धनुबान देखि मनमथ मन मोहै।
जामवंत हनुमंत बिभीषन भूपति-भूषन।
'केसव' कपि सुग्रीव-संग अंगद अरि-दूषन।
सँग सीता सेष असेषमति गुन असेष अँग-अंग प्रति।
जहँ रतनसेन संकट बिकट (सु) प्रकट भए रघुबंसपति ॥२७॥

(दोहा)

बिमल बचन सुनि दास के रघुपति अति सुख पाइ।
'केसव' पूरब जनम की कही कथा समुझाइ ॥२८॥

(छप्पय)

एक काल बयकुंठ काज किय नारद आए।
तिन तच्छन सह लच्छि सेज सोवत हरषाए।
निपट बिकट करि क्रोध सुध्धमति उलटि चले जब।
'केसव' कैसहुँ भूलिकै जु उपहास कियो तब।
जहँ अति अगाध अपराध तें बंधव तें अवतार धरि।
तू सदा सुखद मम पारषद चलि अब नंद अनंद करि ॥२९॥

कुमार उवाच

बिना लरें जो चलहुँ सुखद सुंदर तब को कहि।
जौ लरि चलौं सदेह लोग भागो कहिं मो कहि।
तातें जुध्धहिं जुरहुँ जुध्ध जोधन अँगवाऊँ।
भुव राखौं दे बाहु सीस ईसहि पहिराऊँ।
राखहुँ सरीर खित्तहि खिभिर नहिं 'केसव' हालहु हलौं।
इहि भाँति लोक अवलोक करि तबहिं सु तुव सथ्थहि चलौं ॥३०॥

---

[१०] हालहु—नेकहु (दीन)। हलौं, चलौ०—हल्यो, चल्यौ (ओड़छा)।

श्रीपरमेश्वर उवाच

प्रथम धरहु अवतार तैं जु मेरो व्रत किन्नव।
जोबन तनु धन मरदि तबहिं मेरो प्रन लिन्नव।
प्रन प्रानन को वाद बहुत मेरे मन भायो।
अब 'केसव' इहि काल अबहि हौं भलो रिझायो।
सुनि महाराज मधुसाह-सुत जदपि लोभ लखि तो हियवँ।
तदपि सु मंगहि मंगने हौं प्रसन्न तो कहुँ भयवँ ॥३१॥

कुमार उवाच

प्रथम मातु पितु रूप जनम तुम दियो नवीनो।
पुनि तुम पै गुन रूप तुम्हारो नाम जु लीनो।
बहुत दियो धन धर्म बहुत मोकहँ सुख दिन्नहु।
अब 'केसव' इहि काल यह जु तुम दरसन दिन्नहु।
दैनहार सुइ सब दियो अब जौ हित चित्तहि धरौ।
परिवार-सहित मधुसाह की (सु) रोम रोम रक्षा करौ ॥३२॥

लैकरि बर तब बीर सभा-मडल सन बुल्लिय।
तुम साथी समरथ्थ सत्रु कहँ सत्त न डुल्लिय।
लाजकाज धरि लाज लोह लरि लरि जस लिज्जिहु।
बिकट कटक मँ हटक पटक भट भुवि मह दिज्जिहु।
यह अनूप मेरो बचन 'केसव' चित धरि सुनहु सब।
मरहु तौ मो सथ्थहि चलहु भज्जहु तौ भजि जाव अब ॥३३॥

साथ के लोगन को बचन

तुम बालक हम बृध्ध इते पर जुध्ध न देखे।
तुम ठाकुर हम दास कहा कहियै इहि लेखे।
कहि आवै सो कहौ कहा हम तुमरो करिहैं।
हम आगैं तुम लरौ तु अब हम बूड़ि न मरिहैं।
कहि 'केसव' मंडहिं रार रन करि राखैं खित्तहि भवन।
सुन रतनसेन मधुसाह-सुव हम भज्जैं जुज्झहि कवन ॥३४॥

जानि सूर सब सथ्थ प्रगट पंचम तनु फुल्लिय।
साधु साधु यह बचन पाइ सुख सबसों बुल्लिय।

---

[३१] लखि—नहिं। (दीन)। [३४] हम भज्जैं०—पुनि न होइ आवागमन (दीन)।

दै बरदान प्रसिध्ध सिध्ध कीनो रन रुध्धहि।
अधिक सुबेस सुदेस उदित उद्दित अरु सुध्धहि।
लखि लोक-ईस गुर ईस मिलि रचि कबिता कबिता ठई।
सुर-ईस ईस जगदीस मिलि एक एक उपमा दई॥३५॥

उपमावर्णनम्

किधौं सत्त की सिखा सोभ-साखा सुखदायक।
जनु कुल-दीपति-जोति जुध्ध-तम मेटन लायक।
किधौं प्रगट पति-पुंज पुन्य-पल्लव करि पिख्खिय।
किधौं किति पाताल तेज-मूरत करि लिख्खिय।
कहि 'केसव' राजत परमपर रतनसेन - सिर सुभ्भियहु।
जनु प्रलय-काल फनपति कहूँ (सु) फनपति फन उद्दित कियहु॥३६॥

सब समथ्थ मधु-इंद्र-नंद संमुह-दल चल्लिय।
कमठ-पीठ कलमलिय भार फनपति-फन हल्लिय।
सह समुद्र सह सैल सकल भुवि-मंडल डुल्लिय।
जय जय जय रघुबीर बचन सबही यह बुल्लिय।
संके सियार हंके सुभट अति अगाध सुइ काल भय।
बल अनंत हनुमंत ज्यौं रतनसेन रनभूमि गय॥३७॥

साज साजि गजराज-राजि आगैं-दल दीनहि।
ता पीछैं पति-पुंज पुंज-पयदर-रथ कीनहि।
ता पीछैं असवार सूर 'केसव' सब मोसन।
चलत भई चकचौंध बाँधि बख्तर बर जोसन।
तब कटक भए दल-भट्ट सब तुरत सैन दपटंत रन।
जनु बिज्जु-संग मिलिए कइक एकहि पवन-झकोर घन॥३८॥

कोइ निबहो पग दोइ कोइ पग तीन तीन पर।
कोइ निबहो पग चार चल्यो कोइ पाँच पाँच कर।
कोइ निबहो पग षष्ट चल्यो कोइ सात सात तह।
कोइ निबहो पग आठ चल्यो कोइ आठ अंक लह।
दसह पाइ दसही दिसह साथी सबहि सटक्कियह।
इक मधुकरसाह-नरेंद्र-सुत सूर-कटक्क अटक्कियह॥३९॥

दीठ पीठ तन फेरि पीठ तन इक्क न दिट्ठिय।
फिरहु फिरहु फिर फिरहु कहत दल सकल उमट्ठिय।
ठानि ठानि निज सान मुर्राक पाठान जु धाए।
काढ़ि काढ़ि तरवार तरल ता छिन तठ आए।

इक इक घाउ घल्लिय सबन रतनसेन रनधीर कहँ।
जनु ग्वाल बाल होरी हरषि खंडल छोड़त और कहँ॥ ४० ॥

(कुंडलिया)

आए सामँथ हिरन चढ़ि रन रोह्यो ऊठार।
पंचम रज-फंदन फद्यो आगें रिपु-दल भार।
आगें रिपु-दल भार सार करबर कर खिच्चो।
हय हाथी सब सैन एक मह एकन नच्चो।
जूझे लाला रतनसेन सर्पनहूँ खाए।
हिरन सुवर को साथ करैं बर सामँथ आए॥ ४१ ॥

(दोहा)

रुपे सूर सामंथ रन करहिँ प्रचारि प्रचार।
पिच्छल पग नहिँ चलहि कोउ जूझत चलहिँ अगार॥ ४२ ॥

(छप्पय)

मरन धारि मन लियो बीर मधुकर-सुत आयो।
बिचल नृपति सब म्लेच्छ देखि दल धर्म लजायो।
कट्टि कुभष सब करिय कुँवर रुप्यहु जुर जंगहि।
तिल तिल तन कट्टिइव मुरकि फेरो नहिँ अंगहि।
कहि 'केसव' तन बिन सीस ह्वै अतुल पराक्रम कमध किय।
सोइ रतनसेन मधुसाह-सुव तब कृपान दुहु हथ्थ लिय॥ ४३ ॥

कोपि कुँवर-मधुसाह हनिय हथ्थी मतवारिहु।
कटिय दंत जुर बाँह डील डोंगर से डारिहु।
हय बर गज सब ढाइ आइ बल दयो सु सैनहि।
भजिय फौज तब साह देखि सामंतन नैनहि।
मुरकंत सैन सहि लखिय तहँ 'केसव' भाजहि कोटि धनु।
सोइ रतनसेन मधुसाह-सुव गहि कृपान रुप्यहु सु रन॥ ४४ ॥

(दोहा)

चले सूर सामंथ सब धरम धारि प्रभु-काम।
कोपहु तहँ मधुसाह-सुव ज्यों रावन पर राम॥ ४५ ॥

(छप्पय)

करि श्रीपतिहि प्रनाम इष्ट अपने सब बुल्लिव।
पातसाह सुनि खबर आइ बीचहि दल ठिल्लिव।

---

[४०] ग्वाल—ज्वाल (ओड़छा)। छोड़त०—छोर अहीर (दीन)। [४२] करहिँ—लरहिँ (दीन)। [४३] मन—मग (ओड़छा)। तन—रुप (वही)।

सकल समिटि सामंथ गहिव तब जाइ बाट कहि।
लहिव जुध्ध अगवान सूर सब चले सौंमुहहि।
रजपूत टुट्टि धरनी गहहिं 'केसव' रन तहँ हंकियव।
सोइ रतनसेन महराज जू बिकट भट्ट बहु कट्टियव ॥ ४६ ॥

(दोहा)

रतनसेन हय छंडियो उत कूदे सामंथ।
नौन पधारत सीस पर कियो लरन को पंथ ॥ ४७ ॥
चतुरबीस सत गोल में रतनसेन भुविपाल।
साठ सहस सैना तबै हलकारी ततकाल ॥ ४८ ॥

साथी लोगन को बचन (छप्पय)

बुल्लिव च्त्रिय बचन सुनहु महराज सु कानहि।
आप जुध्ध कों छंडि जाहु सुरपुर तिहि ठामहि।
हम करिहैं संग्राम आज आवहिं तुव काजहि।
राखि धर्म तुम सुभग त्यागि आपुन परिवारहि।
किज्जिय सुराज अरिमूल हनि 'केसव' राखहि लाज रन।
तुव नौन उबारहिं खित्त महिं जस गावहिं कबि तुव धरन ॥ ४९ ॥
है बानी आकास सुनहु सब सूर समंथहि।
रहहुं तुमारे साथ मनहि करि राखहुँ अग्रहि।
राखहु पति कुल लाज अबहिं खग्गन तनु खंडहु।
जाहु मलेच्छ न इक्क सबै रन सैन बिहंडहु।
कहि 'केसव' राखहु रनभुवन जियत न पिच्छल पग धरहु।
सोइ रतनसेन कुल-लाड़िलहु रिपु रन में कट्टहि करहु ॥ ५० ॥

(दोहा)

राजा सनमुख तनु तजै करै स्वर्ग में भोग।
दुनिया में जस बिस्तरै हसै न जग को लोग ॥ ५१ ॥

साहि को बचन (छप्पय)

सुनि नरेंद्र मधुसाह-पुत्र तव ब्रह्म-रूप अब।
तिहिं लगि प्रगटे राम काम पूरन भे तव सब।
सब संसार असार जानि जिय बचन्न न छंडिय।
साठ सहस दल प्रबल खिभिर च्त्रिय प्रन मंडिय।
अब धन्य धन्य मधुसाह तुव प्रगट जगत जस जगमगहु।
सहि वार बार इमि उच्चरहि 'केसव' कुल उदित कियहु ॥ ५२ ॥

---

[४७] पधारत—उबारन (दीन) । पंथ—तंत (वही)। [५०] समथहि—संत यहि (सर्वत्र) ।

रतनसेन रन रहिव प्रान क्षत्रिय ध्रम राखहु।
करहु सुबचन प्रमान सूर सुरपुर पग नाखहु।
डेढ़ सहस असवार सहस दो पयदर रहियव।
पील पचास समेत इतिक सुरपुर मग लहियव।
सोइ सहस चारि सैना प्रबल तिन महँ कोउ न घर गयव।
सोइ रतनसेन महराज को 'केसव' जस छंदन कह्यव ॥ ५२ ॥

इति श्रीकेशवदासकवीन्द्रविरचिता रतनबावनी समाप्ता।

वीरचरित्र

१

(छपद)

सिखावान-कर-कलित जलज अच्छत सिर सोहै।
हरि-चरनोदक-बृंद, कुंद-दुति अति मन मोहै।
अंग बिभूति बिभाति सहित गनपति सुखदायक।
बृषबाहन संग्राम-सिद्धि-संजुत सब लायक।
उर चतुर चारु चक्री बसतु सँग कुमार हर-मार-मति।
जय संकर संका-हरन-भव पारबती-पति सिद्धगति॥ १॥

(कबित्त)

एक राजा मानसिंह कछवाहो 'केसोदास' जिहि बर बारिधि के उदर बिदारे हैं।
दूसरें अमरसिंह राना सीसौदिया आजु जासों अरिराज गजराज हिय हारे हैं।
तीसरें बुँदेला राजा वीरसिंह ओड़छे को जाकें दुख दुसह जलालदीन जारे हैं।
राजकुल पालिवे कौं अरिकुल घालिवे कौं तीन्यौ नरसिंह नरसिंहजू सुधारे हैं॥२॥

(छपद)

बीरसिंह नृपसिंह मही महँ महाराजमनि।
गहरवार-कुल-कलस ईस-अंसावतार गनि।
जहाँगीरपुर प्रगट दीह दुर्जन दिन-दूषन।
नदी वेतवै-तीर बसत भव भूतल-भूषन।
तिहि पुर प्रसिद्ध 'केसव' सुमति विप्रबंस-अवतंस गुनि।
बुधिबल प्रबंध तिनि बरनियो *वीरचरित्र* विचित्र सुनि॥ ३॥

---

[१] अच्छत–अच्छित (भारत)। [२] तीन्यौ०–जग माहिँ तीनौ (भारत)।

(चौपही)

सबतु सोरह सै त्रैसठा। बीति गए प्रगटे चौसठा।
अनल नाम संबत्सर लग्यो। भाग्यो दुख सब सुख जगमग्यो॥ ४॥
रितु बसंत है स्वच्छ बिचार। सिद्धि जोग मिति बसु बुधबार।
सुकुलपच्छ कबि 'केसवदास'। कीनो बीरचरित्र प्रकास॥ ५॥

(दोहा)

नवरसमय सर्ब धर्ममय राजनीतिमय मान।
बीरचरित्र बिचित्र किय 'केसवदास' प्रमान॥ ६॥

(चौपही)

दच्छिन दिसि सरिता नर्मदा। थिर-चर जीवनि कौं सर्मदा।
पदपद हरिबासा जगमगै। स्वच्छपच्छ-पच्छा सी लगै॥ ७॥
जदपि मतगन कें मद मती। तऊ देवदेवनि तें सती।
जदपि सुरासुर-बंदित-पाइ। तदपि दीनजन कैसी माइ॥ ८॥
जद्यपि निपट कुटिलगति आप। देति सुद्ध गति हति अति पाप।
आपुन अधो अधो गति चलै। पतितनि कौं ऊरध फल फलै॥ ९॥
सिवपुत्री पस्चिम दिसि बहै। सकल लोक दुख देखत दहै।
एक समै ता सरिता-तीर। भई सुरासुर नर की भीर॥ १०॥
एकै होम करत अस्नान। देत देखियत षोडस दान।
एकनि 'केसव' लगी समाधि। पूजा करत वेदबिधि साधि॥ ११॥
आसन असन बसन इक देत। भूपन भाजन बसन समेत।
फलित फलाफल बाग सुवेप। एक देत रस अन्न असेष॥ १२॥
एक देत सुरभी जुगमुहीं। बछरनि संग सुगंधनि छुहीं।
एक देत पुरुषनि कौं नारि। एक पुरुष सुंदरिनि सँवारि॥ १३॥
तुला आदि सब दान प्रयोग। जहँ तहँ देत देखियत लोग।
तन मन पूरन उपज्यो छोभ। देखि दान की महिमा लोभ॥ १४॥
सहि न सक्यो सब बिधि अवदात। लाग्यो कहन दान सों बात॥ १५॥

लोभ उवाच

दान बिगार्‌यो तैं संसार। भूलि गयो तोकों करतार।
विद्यमान जे देखत मोहिं। कहा करै जग पूजन तोहिं॥ १६॥

(छपद)

हौं धरनीधर धन्य धीरु हौं धनुक-धुरंधर।
हौं इक सूर सुजान एकरस सदा सिद्धकर।

---

[६] मान—भान (शुक्ल)। [८] मतगन—मतंगिनि लौं (शुक्ल)।
[११] देखियत—देखिये (भारत)। [१६] करै०—करौं जग पूजत (भारत)।

अद्भुत अमर अनादि अचल अचला अनंतगति।
हौं उत्तिम हौं उच्च उदित हौं अति उद्दिम मति।
कहि 'केसवदास' निवास-निधि मो समान अब और नहिँ।
सुनि दान, दीनदिन मान तूँ हौं समर्थ संसार महिँ ॥ १७ ॥

दान उवाच (चौपही)

लोभ, समुझ अपनो व्यवहार। जानतु है सिगरो संसार।
अपने आनन अपनी बात। अचरजु यहै न कहत लजात ॥ १८ ॥
सुर नर सुनत चहूँ दिसि घनै। उत्तरु मोहिं दियें ही बनै।
मतचल ठग ठठेर बटपार। पसिया चेरे चोर लबार ॥ १९ ॥
बधिक जगाती बनिक सुनार। इन्हैं आदि दै मीत अपार।
पुस्ता पीवहि भाँगहि खाइ। मदिरा पी विस्वा पहँ जाइ ॥ २० ॥
जैसो सेवक तैसो नाथ। मो दासन पहँ वोड़त हाथ।
ऐसो तूँ मोसों सरि करै। सुनि सुनि सुरकुल लाजनि मरै ॥ २१ ॥

(छपद)

तूँ समर्थ कब भयो बिस्व-बंचक बिरुद्धकर।
तूँ लोकप लोकेस कियो परलोक लोकहर।
तूँ अति कृपन कुबुद्धि कूर कातर कुचील तन।
तूँ कुरूप पट कपट निपट कटु सठ कठोर मन।
तिय तातु न मातु न पुत्र पति मित्र न तेरे मानियै।
दिनवान कहाँ तूँ लोभ लघु कैसें बड़ो बखानियै ॥ २२ ॥

लोभ उवाच (चौपही)

ज्यों राजा राखत परजान। त्यों हौं धन कों राखत दान।
देखु विचारि जगत के नाह। राखी लछिमी लै उर माह ॥ २३ ॥
सुरपति कीनो मंदिर मेरु। नवनिधि राखें रहै कुबेरु।
जौं पुर पुरी प्रकार न होइ। तौ सुख सों चिर बसै न कोइ ॥ २४ ॥

(छपद)

मो तें वड़ो न और विस्व में रँग विसेष करि।
हौं रावत रजपूत राज हौं तूँ रैयत-सरि।

---

[१७] इक–सक (भारत)। उद्दिम–उत्तम (वही)। सुनि–सुनु (शुक्ल)। [१९] मतचल–मचला (भारत)। [२०] दै–हौ (शुक्ल)। [२१] पहँ–यह (भारत)। वोड़त–जोड़त (शुक्ल)। [२२] पट–पढ़ि (शुक्ल)। तातु–नातु (वही)। दिनवान–दिनदान (भारत)। [२३] परजान–परजानि (भारत)। राखत–राखहुँ (शुक्ल)। [२४] कीनो–कीन्हौ (शुक्ल)।

तूँ बालक हौं वृद्ध, सिद्ध हौं तूँ साधक गुनि।
कहि 'केसव' परसिद्ध भयो तूँ मोही तें सुनि।
तूँ फलित होत परलोक कहँ, हौं इहँई फल सों लसौं।
सुनि दान, रहै तूँ दिन दुरयो हौं परगट पुहुमी बसौं॥ २५॥

दान उवाच (चौपही)

बिढ़वै बित आपनो अदिष्ट। कहि 'केसव' उद्दिम के इष्ट।
तोतें कबहूँ धर्म न होइ। धर्म बिना बित लहै न कोइ॥ २६॥
नीको खाइ न पहिरै अंग। दया दान के तजै प्रसंग।
बिन अपराध बित्त बिन करै। जैसे ब्याध जंतु-असु हरै॥ २७॥

(छपद)

तूँ भैयन महँ भेद मित्र मित्रन उपजावै।
पति पतिनी कहँ प्रगट पिता पुत्रनि बिहरावै।
राजदोप द्विजदोष दीन के दोष बिचारै।
छल बल गुनगन हरहि प्रान पुनि हरत न हारै।
कहि 'केसव' केवल वित्त-पर बिनयबिनासन अनयमति।
तूँ लोभ, छोनि छाक्यो छ रितु छनकु छुद्र अति तिछ्छ गति॥ २८॥

लोभ उवाच (चौपही)

देखि दान, यह सब संसार। ता महँ एकै हौं ही सार।
गुनी गुनज्ञ छमी सुचि सूर। आनँदकंद सिँगार समूर॥ २९॥
जीव धरै या धरनी माँहि। बसत सदा सुख मेरी छाँहि।
दान, जानि हौं सबको प्रान। देहि बताइ जु मो बिन आन॥ ३०॥

(छपद)

मोहिँ लीन पसु पच्छि जच्छ रच्छस सब छितिधर।
बिद्याधर गंधर्ब सिद्ध किंनर नर वानर।
पूरन देव अदेव जिते नरदेव रिषी मुनि।
चतुराश्रम चहुँ बरन पदारथ चहूँ मध्धि गुनि।
दिनदान, दिब्य दृग देखि तूँ मो महँ, हौं तो में लसौं।
कहि 'केसव' केसवराइ ज्यों हौं सबके घट घट बसौं॥ ३१॥

दान उवाच (चौपही)

बात कहहि अपनो सुख देखि। मन क्रम वचन बिचारि बिसेखि।
कूप माँझ उपज्यो मडूक। मूरख मता इते पर मूक॥ ३२॥

---

[२५] फल सों—फल फल (भारत)। दिन—हिँ न (वही)। [२८] अनय—अपन (भारत)। [२९] यह सब—जो यह (शुक्ल)। [३१] पूरन—पूत्र (भारत)। रिषी—देव (वही)। दिव्य०—देखि दिन दिव्य (वही)।

सुरपुर की क्यों जानै बात। ते मूरख जे पूँछन जात।
अपनैं मुख आपने चरित्र। बिन भीतिहि कत चित्रहि चित्र॥ ३३॥

(छपद)

तूँ कृतघ्न हौं कृती, पाप तूँ हौं पुनीत मति।
तूँ झूठो हौं साँच, निलज तूँ हौं सलज्जगति।
तूँ दुखदायक दुखी, सुखी हौं सब सुखदायक।
तूँ सेवक सब काल, सदा साहिब हौं लायक।
सुनि लोभ लबिंद लबार जग, हौं दाता तूँ माँगनो।
कहि 'केसव' देस बिदेस महँ, मोहिँ तोहि अंतर घनो॥ ३४॥

लोभ उवाच (चौपही)

सुनिय दान, जे दाता भए। तिनकों मैं दीरघ दुख दए।
साधु सूर सकु परम निसंकु। तैं नल कियो राज तें रंकु॥ ३५॥
मंत्री मित्र सत्रु ह्वै गए। जात हथ्यारन हाथ न लए।
दह पारी भूँजी माछरी। कहूँ पुत्र कहुँ कामिनि करी॥ ३६॥

(छपद)

मैं तेरो सुनि सखा स्याम पै सिंधु मथायो।
मैं तेरो हरि हितू मोहिनी रूप हँसायो।
मैं तेरो बलि बंधु बँधायो बावन पह ठै।
मैं तेरो हरिचंद मित्र बेंच्यो सुपच हठै।
प्रिय पंडुपुत्र तेरे तिनहिं दुक्ख दिये केतिक गनौ।
तैं दान दीन साँची कही मोहिँ तोहि अंतर घनौ॥ ३७॥

दान उवाच (चौपही)

दमयंती राजा नल बरे। देव अदेव सबै परिहरे।
इहि दुख देवनि कीनो कोह। नल दमयंती भयो बिछोह॥ ३८॥
तूँ बपुरा को दुख दै सकै। कैसे पंगु सिंधु कों नकै।
साहि छिताई कों लै जाइ। बिहना फूल्यो अंग न माइ॥ ३९॥

(छपद)

मेरे हित श्रीनाथ सिंधु में कियो सदन सुख।
जारि छार किय काम नैक हर हेरि रोष रुख।
'केसव' सपुर सदेह गए हरिचंद देवपुर।
द्वारपाल बलिद्वार भए त्रैलोकपाल गुर।

---

[३४] लबिंद–कबिंद (शुक्ल)। [३५] सुनिय०–सुनु दान जिते नर (शुक्ल)। सकु–सत्र (वही)। तै०–मैं नल (वही)। [३७] पह–यह (शुक्ल)।

पंडव प्रसिद्ध भय पुहुमिप्रभु जीति सकल कौरव-कुमति।
सुनि लोभ, चुद्र छिन चोभ हति मो प्रमान समुझै सुमति ॥ ४० ॥

लोभ उवाच (चौपही)

काहू को नहिँ कोऊ मित्त। मित्त अकेलोई जग बित्त।
सोई पंडित सोई साधु। जाके घर में बित्त अगाधु ॥ ४१ ॥
नीच ऊँच सब जातें होइ। ऊँचहि नीच बखानत लोइ।
ना बित्तहिं तूँ तृनबर गनै। बहुत बिबूचे तोँ से घनै ॥ ४२ ॥

(छपद)

जौ घर बित्त त मित्त सजन जाचक घर आवैँ।
पुत्र कलत्र चरित्र चित्त चित्रहि उपजावैँ।
तौ पुनीत पट प्रगट पुहुमि मेँ आदर पावहिँ।
'केसवदास' प्रकास रंक राजा जस गावहिँ।
तौ सालहिँ सत्रुसमूह-उर यहै मुक्ति जग जानियै।
हौँ संपति बिपति तजौँ नहीँ तूँ संपति मित्र बखानियै ॥ ४३ ॥

दान उवाच (चौपही)

जा बित्तहि तूँ करत प्रधान। ताको तूँ जानत नहिँ ज्ञान।
किहि बिधि होत बित्त अनुकूल। कौन भाँति भजि जात समूल ॥ ४४ ॥
बित्त न तेरे कबहूँ होइ। यह जानै जग मेँ सब कोइ।
बित्त सु मेरे ही आधीन। समुझि देखि यह लोभ प्रबीन ॥ ४५ ॥

(छपद)

साधन साधि अगाध सिद्ध सेवहिँ नर जूझहिँ।
बिद्या बिबिधि बिनोद बेद चारयो बिधि बूझहिँ।
सोधहिँ सातौ सिंधु सातहू जाइ रसातल।
सात दीप अवलोकि लोक अवलोकि सात बल।
कहि 'केसव' कोटि कलानि करि लोभ न छोभ उपाइयै।
जन धनहिँ धरनि मानत धरनि मो बिन रंच न पाइयै ॥ ४६ ॥

लोभ उवाच (चौपही)

एतो गर्ब न कीजै दान। बात कहहि अपने उनमान।
बहुत बित्त उपजावनहार। उपजत बित्त न लागहि बार ॥ ४७ ॥

---

[४०] चुद्र–छोभ (शुक्ल)। [४१] 'भारत' में नहीं है। [४३] सजन–सभन (शुक्ल)। चित्त–चित्र (भारत)। [४५] यह–हिय (शुक्ल)। [४६] सातहू०–सात हजार (शुक्ल)। जन०–जा धनहिँ धनी (वही)।

लेवादेई बिबिधि प्रकार । खेती कीजै बहु ब्यौपार ।
खानि मुकातै लीजै गाउँ । धन पावै मठपती सुभाउँ ॥ ४८ ॥

(छपद)

सम दम संजम नियम ध्यान धारन जु धीर मति ।
तप जप साधि समाधि ब्याधि जिहि जाति आधि मति ।
जंत्र मंत्र बहु तंत्र सिद्धि रसरास रसायन ।
'केसवदास' उपास बास हरितीरथ गायन ।
पारस प्रसिद्ध गिरि कलपतरु कामधेनु धन काज सब ।
साधन अनेक धन हेत तूँ दान भयो कि भयो न अब ॥ ४९ ॥

दान उवाच (चौपही)

हौं न सकौं कछु कहि संकोच । सबही तें दुर्लभ धन पोच ।
बसुधा कहत भरी बहु रत्न । हाथ न आवै कौनहु जत्न ॥ ५० ॥
धन धरनी पति रूप प्रमान । सो पुनि जा पितु दानबिधान ।
दाता श्रध्धाई तें फरै । तूँ न कछू श्रध्धहिँ अनुसरै ॥ ५१ ॥

(छपद)

सुमृति अष्टदस सुनि पुरान अष्टादस जेते ।
चौदह बिद्या चारि बेद बुध बूझहिँ तेते ।
जल थल सकल पुनीत सुधा स्वाहा सुदेस मति ।
सुभ तिथि बार बियोग जोग उपराग कालगति ।
सुनि लोभ, लाभ कारन कहै तप जपादि तैं हूँ अबै ।
धर्म कर्म इहि कर्मभुव मो बिहीन निष्फल सबै ॥ ५२ ॥

लोभ उवाच (चौपही)

दीने ही जौ पैहै सम्ति । राजा नल कब दई बिपत्ति ।
सुपचनि दीने कब हरिचंद । सत्या सुरतरु आनँदकंद ॥ ५३ ॥
कबहीँ लंक बिभीषन दई । मंदोदरी रूप दिन नई ।
गनिका कब दीनी ही मुक्ति । दान छोड़ि दै अपनी जुक्ति ॥ ५४ ॥

(छपद)

दीननि दान दिवाइ करत तूँ वित्तहीन दिन ।
वित्त गएँ बुधि जाइ, गएँ बुधि जाति सुध्धि तिन ।
सुध्धि गएँ नहिँ सिध्धि, सिध्धि बिन सुख नहिँ पावै ।
सुखविहीन बहु दुख्ख, दुख्ख घर-घर भटकावै ।
कहि 'केसव' परघर जाइ तूँ हरिहू की सोभा हरहि ।
रे मिले मोँझ यह बूझियै मित्रदोष दिन-दिन करहि ॥ ५५ ॥

---

[४९] सजम—से जम (शुक्ल) । [५१] जा पितु—जायतु (शुक्ल) ।

दान उवाच (चौपही)

दान दिये नासत सब रोग। दान दिये उपजत दिन भोग।
दान दिये दिन संपति बढ़ै। दान दिये जगती जस पढ़ै॥ ५६॥
लोभ, जु जी महँ जैसो होइ। तैसोई समुझै सब कोइ।
तातें हौं बरनत हौं तोहि। आपुन सों जिन जानहि मोहि॥ ५७॥

(छपद)

देत पत्र रिन काढ़ि बहुरि लै रहत लोभ लचि।
उरगावत रजपूत उरग बिन जात सोचि पचि।
दै जगदीसहि बीच नीच तूँ झूठहि पारहि।
दै पादारघ दुजन प्रेत पुनि लेत न हारहि।
इहि लोक करत निरबंस उहि लोक नरक पारत कुमति।
हौं जाउँ मित्र के साथ तूँ छोड़त मित्र समूल हति॥ ५८॥

लोभ उवाच (चौपही)

जौ धन होइ तौ दीजत दान। धनही तें सबही सनमान।
जाही के धन सोई धन्य। तातें भलो न धरनी अन्य॥ ५९॥
धन्य धनी को जीवन जानि। हानि भएँ सबही की हानि।
जैसे तैसे धन रच्छियै। धन तें धरनीधर लच्छियै॥ ६०॥

(छपद)

जिहिँ धन पतित पुनीत होत साधन विन पावन।
जा बिन पुरुष पुनीत होत ज्यौं पतित अपावन।
जा धन लगि सब काल होत सुर असुरनि विग्रह।
जा धन लगि धरनीस करत धरमनि को निग्रह।
सुनि जु धन्य या धरनि महँ धर्म काम कारन करन।
दिनदान देत दीननि सु धन होत मित्त जीवनहरन॥ ६१॥

दान उवाच (चौपही)

दान दिये कहु को मरि गयो। अजर अमर को लोभी भयो।
ज्यों खैजै पीजै धनधान। जथासक्ति त्यों दीजै दान॥ ६२॥
अनदीने सब हाँसी करै। चोर लेइ अगिहाईं जरै।
कि तौ धरथोई धरनी रहै। जौ मरि जाहि तौ राजा लहै॥ ६३॥

(छपद)

तेरो सखा समूल गयो लंकापति रावन।
करै बिभीपन राज सदा मेरो मनभावन।

---

[६०] धन्य०—धनि वहि धनी को (शुक्ल)। [६१] सु धन—सुघर (भारत)।

टोडरमल तुव मित्त मरे सबही सुख सोयो।
मोरे हित बरबीर बिना टुकु दीननि रोयो।
तुव सुजन जगत महँ प्रात उठि लेइ न कोऊ नावँ कहँ।
मो मीत मधुक्करसाहि को जस जगमगत जगत्त महँ ॥६४॥

२

लोभ उवाच (चौपही)

दान करहु जनि अति हठ हियें। बाँध्यो बलि अति दानहिँ दियें।
हती छिताई अति सुंदरी। सो पुनि छलबल तुरकनि हरी ॥ १ ॥
अधिक गर्ब मार्‍यो सिसुपाल। अति सूरो अर्जुन बेहाल।
अति हित सीतहि भयो बियोग। रोगी भो ससि कियो नियोग ॥ २ ॥

(छपद)

अति उदार धर्मज्ञ बिदुर तैँ मारि निकार्‍यो।
डसे परीच्छित साँप, माघ तैँ भूखनि मार्‍यो।
भोज कियो कंगाल बंदि पुनि पर्‍यो पिथोरा।
सुनि भगवान पवार-पूत नहि पावत कौरा।
अतिदान दान, सब दीन भय जिनि दीननि दिनदान दिय।
कहि 'केसव' तोतैँ होइ सब मैँ काको अपमान किय ॥ ३ ॥

दान उवाच (चौपही)

उलटी लोभ, लोक की रीति। तातैँ हार भएहू जीति।
देइ कछू न आप को लहै। तिनहूँ सोँ मेरोई कहै ॥ ४ ॥
जबही याको होइ बिनास। सबै करैँ तेरो उपहास।
तूँ करि सकै कहा बापुरो। तिनको तोहि लगावत बुरो ॥ ५ ॥

(छपद)

बेनु बान हरिनाच्छ हिरनकस्यप दुखदावन।
सहसबाहु सिसुपाल कहैँ तेरे मनभावन।
कलित कलंक त्रिसंकु बंधु जालंधर को गन।
'केसव' कंस नृसंस सकुनि राजा दुरजोधन।
सुनि लोभ, जीव जानत सबनि जैसी कछु जा कहुँ भई।
लोभ कियो जा धरनि को सो काहू सँग नहिँ गई ॥ ६ ॥

---

[६४] टुकु—दुख (शुक्ल)। जगत०—जगंमनि (वही)।
[३] माघ—भरत (शुक्ल)। कंगाल—तैँ तुरक (वही)। [४] जीति—धीति (भारत)।
[५] हरिनाच्छ—नरिवड (शुक्ल)। सिसुपाल—ससिपाल (भारत)। नृसंस—निसंक (शुक्ल)।

लोभ उवाच (चौपही)

अजहूँ तैं रे अधिक अयान । जग को जानत सबै बिधान ।
भलो बुरो जग में अवतरै । पाप पुन्य सबकों अनुसरै ॥ ७ ॥
कोऊ स्वर्ग नर्क महँ परै । तिनकौं तूँ मेरे सिर धरै ।
लिख्यो कर्म को मेटि न जाइ । कहा रंक कह राजा राइ ॥ ८ ॥

(छपद)

भूप भूमि पर प्रगट मेटि मारत प्रतिपारत ।
सुख तें राखत निकट दुक्ख तें देस निकारत ।
करत रंक तें राज राज तें रंक करत अब ।
सासन सुभ अरु असुभ सदा सेवक मानत सब ।
सुख स्वारथ सिध्धि प्रसिध्ध नृप देत लेत रसहूँ बिरस ।
कहि दान, दोष ह्याँ कौन को जीवत मरत अदिष्ट-बस ॥ ९ ॥

दान उवाच (चौपही)

बहुत निहोरो तोसों करौं । कहै त तेरे पाइनि परौं ।
तोकों हौं सिखऊँ सिख एक । छाँडि देइ जौ अपनी टेक ॥ १० ॥
जौ तूँ सबही को सब लेइ । एक बात तूँ मोकों देइ ।
जिहिं तें तेरो नीको होइ । चिरजीवैं तेरे सब लोइ ॥ ११ ॥

(छपद)

करु कुग्रहनि ग्रहदान ग्रहनि संग्रह धनु पावहि ।
बरु बेंचहि संतान बरुकु सुपचनि सिर नावहि ।
बरु लघन करि परहिं माँगि बरु भीख छंडि पति ।
बवन-अन्न बरु भखहि हियें जौ भूख भई अति ।
गनि एक कोद सब पुन्य अरु एक कोद जौ दीजई ।
बरु पाप पाप लाखनि करै दीनो लोभ त लीजई ॥ १२ ॥

लोभ उवाच (चौपही)

भली भनी तुम मोसों बात । मैं सुनि सुख पायो सब गात ।
तुम अति बड़े धर्म के तात । सिखवत हौ सिख अति अवदात ॥ १३ ॥
हौं जु कहौं सो चित दै सुनौ । सुनि सुनि अपने मन में गुनौ ।
जो कछु जग में होइ प्रमान । मो पै कैसे छूटै दान ॥ १४ ॥

---

[७] अयान–सयान (शुक्ल) । सबै–जदपि (वही) । [९] निकारत–निहारत (भारत) । भनी–कही (शुक्ल) ।

(छपद)

भूल्यो गुन पुनि सीखि लेइ सब कहैं सयाने।
भूल्यो मारग लेइ फेरि जब चलै पयाने।
भूल्यो लेखो लेइ फेरि यह न्याउ कहावै।
भूल्यो बृत जौ लेइ फेरि तौ सोभा पावै।
कहि 'केसव' देव अदेव यह कहत दोष कीजै न चिरि।
सुनि दान, यहै गति दान की भूलि जु देइ सु लेइ फिरि ॥ १५ ॥

दान उवाच (चौपही)

लोभ कहाँ सीखी यह जुक्ति। किधौं आपने उर की उक्ति।
बिप्र पूजि दीजति है गाइ। लीजै दुहती बेर छड़ाइ ॥ १६ ॥
दीजत कन्या बारें ब्याहि। देत दाइजो दीरघ ताहि।
सुंदर साधु हिये में हेरि। कहि धौं लोभ, लेइगो फेरि ॥ १७ ॥

(छपद)

राम भूमि, हरिचंद राज, दीनो लीनो मुनि।
कर्न तुचा, सिबि माँस दियो जगदेव सीस सुनि।
दीनी सुता जजाति तासु को लोभ न कीनो।
जैसें प्रगट दधीचि देह छलबलहू दीनो।
तिन यह संसार असार गनि भूलि दान कौनें न दिय।
कहि कौन भूप सुरलोक महँ सपनेहू दिय फेरि लिय ॥ १८ ॥

लोभ उवाच (दोहा)

देइ लेइ को कौन कौं एकरूप सब जानि।
सरग नरक को जाइ अब जग प्रपंचमय मानि ॥ १९ ॥

(चौपही)

एकै लेवा देवा दान। दान लोभ कै एक निदान।
एक आतमा घटघट बसै। एकै रूप सकल जग लसै ॥ २० ॥
सकल भूमि को भार उतारि। अखिल लोक को काज सुधारि।
चलन लगे बैकुंठहि जबै। कुस कौं राज दियो है तबै ॥ २१ ॥
अवधपुरी तब ऊजर भई। सबै सदेह राम सँग गई।
कुसस्थली कुस बैठे जाइ। आसमुद्र पृथिवी को राइ ॥ २२ ॥
कुस के कुल को एक कुमार। आनि धर्‌यो कासी-भुवपार।
देखि रूप गुन सील समाज। ताकहँ पुरजन दीनो राज ॥ २३ ॥
राजा वीरभद्र गंभीर। तिनकें प्रगटे राजा बीर।
तिन कें करन नृपति सुत भए। दान कृपान करन-गुन लए ॥ २४ ॥

[१७] कन्या—वेटी (शुक्ल)।

तहाँ कर्नतीरथ तिन कर्‍यो। पूरन पुन्य प्रभावनि भर्‍यो।
तिनकें प्रगटे अर्जुनपाल। अर्जुन सम जनपद-प्रतिपाल ॥ २५ ॥
रूठि पिता सों कासी तजी। आनि महौनी नगरी भजी।
तिनके साहनपाल कुमार। जीति लयो तिन गढ़ कुंडार ॥ २६ ॥
सहजइंद्र तिनकें गुनग्राम। तिनकें नृप नौनगद्यौ नाम।
तिनके सुत नृप-कुल-सिरताज। प्रगटे पृथु ज्यों पृथ्वीराज ॥ २७ ॥
तिनकें भए मेदिनीमल्ल। राइसेनद्यौ, पूरनमल्ल।
तिनकें सुत जीते भव भूप। अर्जुनद्यौ नृप अर्जुन रूप ॥ २८ ॥
सकल धर्म तिन धरनी किये। षोडस महादान दिन दिये।
स्मृति अष्टादस सुने पुरान। चार्‍यौ बेद सुने सुनि दान ॥ २९ ॥
तिनकें सुत भयो परम सुजान। रिपुखडन राजा मलखान।
जब जब जहँ जहँ जूझहिँ अरे। भूलि न पाउँ पिछहड़े धरे ॥ ३० ॥
तिनकें सुत भो सीलसमुद्र। नृपति प्रतापरुद्र जनु रुद्र।
दया दान कोऊ न समान। मानहुँ कलपबृच्छ परमान ॥ ३१ ॥
नगर ओड़छो गुनगंभीर। आनि बसायो धरनी धीर।
कृष्नदत्त मिश्रहि तिन दई। पौरानिकी बृत्ति दिन नई ॥ ३२ ॥
मेरे कुल को राजा राउ। सर्व पूजिहै तुम्हरे पाउ।
तिनकें सुत भो भारतिचंद। भरतखंड-मंडन ज्यों चंद ॥ ३३ ॥
तुरकनि सिर न नवायो नेम। पचि हारे सेरन असलेम।
एक चतुर्भुज ही सिर नयो। बहुरि सु प्रभु बैकुंठहि गयो ॥ ३४ ॥
पुत्रन राज देइ नर काहि। राजा भए मधुक्करसाहि।
रानी गनेस दे घर तास। चौदह भुवन भवै जस जास ॥ ३५ ॥
जिन जीत्यो रन न्यामतिखान। अली कुली खाँ बुद्धिनिधान।
जाम कुली खाँ जालिम जयो। साहि कुली खाँ भाग्यो गयो ॥ ३६ ॥
सैदखान तिन लीनो लूटि। अबदुल्लह खाँ पठयो कूटि।
गनो न राजा राउत बादि। हार्‍यो जिनसों साहि मुरादि ॥ ३७ ॥
जिहि अकबर लीनी दिसि चारि। तेहू तिनसों छाँडी रारि।
एकै प्रभु नरसिंह अराधि। स्वारथ परमारथ सब साधि ॥ ३८ ॥
ब्रह्मरंध्र मग छाँडि सरीर। हरिपुर गयो नृपति रनधीर।
तिनकें प्रगटे आठ कुमार। आठौ दिसा समान उदार ॥ ३९ ॥
जेठे रामसाहि रनधीर। गुनगन मन बल बुधि गँभीर।
तिनतें लहुरे होरिलराउ। खड्ग दान दिन दूनो चाउ ॥ ४० ॥
सादिक महमद खाँ जिन रयो। रविमंडल मग हरिपुर गयो।
तिनतें लघु नरसिंघ सुजान। जूझ जुरै नहिँ तासों आन ॥ ४१ ॥

---

[३५] देइ नर–देइयतु (शुक्ल)। घर–षट (भारत)।

रतनसेन तिनतें लघु जानि । गहि जान्यो तिनही खग पानि ।
बानो बाँध्यो जाके माथ । साहि अकब्बर अपनें हाथ ॥ ४२ ॥
बानो बाँधि बिदा करि दियो । जीति गौर कों भूतल लियो ।
गौर जीति अकबर कों दयो । जूझ-ब्याज बैकुंठहि गयो ॥ ४३ ॥
ताको पुत्र राउ भूपाल । जिहिँ जान्यो गति कर करवाल ।
तिनतें इंद्रजीत लघु लसै । सो गढ़ दुर्ग कछौवा बसै ॥ ४४ ॥
गहिरवार कुल को तनत्रान । साहि राम को जानहु प्रान ।
ताके सकल सुखनि कहँ देखि । सुरपति जनम बृथा करि लेखि ॥ ४५ ॥
तिनके उग्रसेन सुत भए । जासों हारि धँधेरे गए ।
तिनतें लहुरे राउप्रताप । दाहत दिन दुर्जन को दाप ॥ ४६ ॥
तिनतें लहुरे उर आनियै । राजा बीरसिंघ जानियै ।
सुत तिनके एकादस सुनौ । एकादस रुद्रहि जनु गुनौ ॥ ४७ ॥
जेठ जुझारराइ रनधीर । पुनि हरदौल बुध्धि गंभीर ।
प्रबल पहारसिंह रनकाल । बाघराज दिन दुर्जनसाल ॥ ४८ ॥
भीम समान बली चँद्रभान । पुनि बलबीरराइ भगवान ।
नर नरकेहरि नरहरिदास । कृष्नदास अरु माधवदास ॥ ४९ ॥
तिनतें लहुरे तुलसीदास । बिमल कृत्ति अति जग में जास ।
तिनतें लहुरे हरिसिँघ देव । मूरतिवंत मनो कोउ देव ॥ ५० ॥
तिनके पुत्र दोइ सुखदाइ । राइ बसंत 'रु खाँडेराइ ।
सबके राजा राजाराम । जिनिको दसहूँ दिसि है नाम ॥ ५१ ॥
अकबर साहि कृपा करि नई । राम नृपति कहँ बैठक दई ।
तिनके सुत भए साहि सँग्राम । दच्छिन दिसि जीत्यो संग्राम ॥ ५२ ॥
तिनके सुत श्री भारतसाहि । भरत भगीरथ के सम आहि ॥ ५३ ॥

(दोहा)

बंस बखान्यो सकल गुन बहु बिक्रम उतसाहु ।
बीरसिंघ जिहिँ पुर बसैं तहँ दोऊ जन जाहु ॥ ५४ ॥

इति श्रीमत्सकलभूमंडलाखंडलेश्वरमहाराजाधिराजश्रीवीरसिंहजूदेवचरित्रे दानलोभ-विंध्यवासिनीसंवादवर्णन नाम द्वितीयः प्रकाशः । २ ॥

---

[४५] त्रान–जान (शुक्ल) । [४८] हरदौल–हर धीर (भारत) ।

३

लोभ उवाच (चौपही)

बोल्यो लोभ छोभ मति भई । सुनि सुनि राजनीति यह नई ।
सुनियत एक पिता के पूत । दोई जन धरमज्ञ सपूत ॥ १ ॥
ऐसी कहूँ सुनी नहिं होइ । एकहि घर में राजा दोइ ।
अब यह हार जीति क्यों भई । सब कहिजै जू सो ठिक ठई ॥ २ ॥

(हीरक)

कहौ मात, कौन पाप बहु बिरोध बढ्ढियो ।
राम-धाम बाम हीन बीरसिंघ बढ्ढियो ॥ ३ ॥

श्रीदेव्युवाच (चौपही)

सुनहि लोभ तैं बूझी भली । फेरि दुहुनि की कीरति चली ।
कहौं बिरोध पाप ज्यों बढ़्यो । पूरब पूरे पुन्यनि गढ़्यो ॥ ४ ॥
हौं उनकी कुलदेवी, दान । देखति दुहुँ भैयानि समान ।
कहिहौं पाप बिरोधनि सनै । चित दै सुनियै दोई जनै ॥ ५ ॥

(दोहा)

मधुकरसाहि महीप मनु राखि प्रेम के भौन ।
बीरसिंघ कौं बृत्ति कै बैठक दई बड़ौन ॥ ६ ॥

(सवैया)

बीर नरप्पति के भुजदंड अखंड पराक्रम मंडप भौंडी ।
जाइ जड़ी जड़ सेस के सीस सिंची दिनदान जलावलि औंडी ।
फैलि फली मनकाम सबै दुजपुंजनि के करि सींवें पिछौंडी ।
देखत दूरि भए दुख 'केसव' सोंच की बेलि बड़ौन में बौंडी ॥ ७ ॥

(चौपही)

उबरे कहुँ बड़ौनिहा भागि । भागे सेख सबै मुँह लागि ।
लीनो प्रथम पवाँओ पेलि । पुनि जीत्यो तोंवर-दल ठेलि ॥ ८ ॥
बस्यो त्रास नरवर प्रतिभौन । केलारस जाकें औरौन ।
बहुरौ सबरे मैना मारि । डारे जाट सबै संघारि ॥ ९ ॥
सुभट बिकट जनि गनौ गँवार । जूझ असूझ कियो तिहि बार ।
दोई गढ़ लीने लै परा । एक बेरछा अरु करहरा ॥ १० ॥
हथनौरा कीनो चौतरा । मार्‍यो बाघ जंग जागरा ।
भाग्यो हसन खान तजि त्रास । तब भोंडैर कियो बसबास ॥ ११ ॥

---

[३] धाम०—बान धाम दीन (शुक्ल) । [७] भौंडी—झौडी (भारत) । जड़ी०—जटी जट (वही) । [९] जाट—नाट (शुक्ल) ।

बारक समाइची खाँ कही। एरछ की सब लीनी मही।
काँपत गोपाचल को अंग। उतरि गयो मद ज्यों मातंग॥ १२॥

(नगस्वरूपिणी)

बड़ौन-बैठकै लई। जलालसाहि की मही।
सुकृत्ति जित्ति कै गई। दसौं दिसा नई नई॥ १३॥

(दोहा)

बीरसिंघ अति जोर में सुन्यो साहि सिरताज।
ता उमरावहि सौं पिजै जाहि राज की लाज॥ १४॥

(चौपही)

भई फिराद साहि सिर धुन्यो। एक दंड लौं मन में गुन्यो।
आसकरन कों भो फुरमान। बीरसिंघ को घालहि मान॥ १५॥
रामसाहि कहँ लीजै साथ। राह चलाइ लगावहि हाथ।
माथें मानि लियो फरमान। तबही गढ़ तें कियो पयान॥ १६॥
दल चतुरंग चौगुनो चाउ। मेल्यो आइ चाँदपुर गाँउ।
राजा रामसाहि तहँ गए। मिले जगंमनि भय के लए॥ १७॥
सकिले सिगरे मैना जाट। नहटा नाहट गूजर जाट।
मिल्यो हसन खाँ जाइ पठान। अरु हरधौर पँवार सुजान॥ १८॥
राजाराम पँवार सुजान। और हसन खाँ प्रबल पठान।
इन पूरब दिसि कियो मिलान। उत्तर कर्न जगंमनि जान॥ १९॥
इंद्रजीत अरिमर्दन आप। बीरसिंघ अरु राउ प्रताप।
छाँडि बड़ौन तिहूँ नरनाह। चौकी करी दुहूँ दल माह॥ २०॥
दिन दिन दूनो ढोवा होइ। फिरि फिरि जात सकल मद खोइ।
ऐसी भाँति बहुत दिन भए। जगमनि आसकरन पहँ गए॥ २१॥
करन कह्यो सुनि जगमनि धीर। परम ढीठ ये तीनौ बीर।
कहै जगंमनि माथौ ढोरि। यह सब रामसाहि की खोरि॥ २२॥
छाँडौ राजा अपनी टेक। ये चारयौ भैया हैं एक।
आसकरन सुनि रिसबस भए। रामसाहि के डेरा गए॥ २३॥
राम कियो आदर बहु भाँति। उदौ कियो ससि तैं ही राति।
सकुचि कह्यो तब दूलह राम। आए राज इहाँ किहि काम॥ २४॥
सुनि यों रामबचन के बर्न। बोल्यो हसन खाँन सों कर्न।
कटकु साजि आयो यहि देस। देस देस के जोरि नरेस॥ २५॥
आए बिरसिंघ द्यौ की ओर। केवल रामसाहि की बोर।
मेरी गई रही कै माम। बिगरत सबै साहि के काम॥ २६॥
देखहु बिधि ससि सोभन कियो। करिकै बहुरि कुलच्छन दियौ।
समुझि कह्यो तब दुल्लह राम। करहु सु तिहिँ सुधरहि सब काम॥ २७॥

[२७] कुलच्छन—कुलांच्छन (भारत)।

ससि तम पियें देखियै अंक। भूलि लोग ते कहत कलंक।
तब हँसि आसकरन यह कह्यो। कहे बिना अब जाइ न रह्यो ॥ २८ ॥
गढ में इंद्रजीत रनजीत। मन क्रम बचन तुम्हारो मीत।
जाहि तुम्हारो लाग्यो काम। तासों क्यों करिहौ संग्राम ॥ २९ ॥
यह सुनि बोल्यो राजाराम। करनो मोहि साहि को काम।
दिन उठि करहु मोरचा नए। घर बैठें गढ़ कौनैं लए ॥ ३० ॥
बहुरे कर्न महासुख पाइ। राम मोरचा दिये चलाइ।
कीने जाइ मोरचा जबै। प्रबल पहारी दौरे तबै ॥ ३१ ॥
भागे सुभट मोरचा छोंडि। जूझे मयाराम रन माँडि।
मयाराम स्यौं भैयहि भरे। सुनतहि राम महारिस भरे ॥ ३२ ॥

(त्रिभंगी)

सुनि प्रोहित जुझ्झे लाज अरुझ्झे राज बिरुझ्झे बैर बढ़े।
जहँ तहँ गज गज्जिय दुंदुभि बज्जिय सज्जिय सुभट तुरंग चढ़े।
तुपकैं सर छुट्टहिं तरुबर टुट्टहिं फुट्टहिं काय-कवच्च घने।
जुझ्झै कुलनायक जालप पायक सुद्ध बिनायक क्रुद्ध सने ॥ ३३ ॥

(चौपही)

इहि बिधि ढोवा किये अपार। दुहूँ ओर बहु भयो हथ्यार।
उठकि गाँउ सों डेरा करे। हय गय नर बहु घायनि भरे ॥ ३४ ॥
कह्यो कर्न सों राम नरेस। लरे लोग मेरे उठि पेस।
जौ यह गाँउ हमै तुम देहु। तौ हम जूझ करैं करि नेहु ॥ ३५ ॥
कर्न कह्यो सुनि राजाराम। ये तौ लगत पवावैं ग्राम।
राम नृपति दुख पायो, दान। उचकि चले नृप सहित पठान ॥ ३६ ॥
उचकि गए जब राजा राम। उचक्यो करन जगंमनि बाम।
ऐसो बीरसिंघ परताप। ह्वै गयो दस दिसि कटक कलाप ॥ ३७ ॥

(दोहा)

दान लोभ यहि भाँति सुनि उपजे बंधु-बिरोध।
कपटनि लपटे अटपटे सुनि पट्ठ प्रगट्यो क्रोध ॥ ३८ ॥

(चौपही)

आयो दच्छिन दिसि मन धरैं। बैरम खाँ के सुत आगरैं।
जगन्नाथ अरु दुर्गाराउ। इन्हैं आदि दै बहु उमराउ ॥ ३९ ॥

---

[२९] इद्रजीत—बैठि रह्यो इंद्रजीत (शुक्ल)। [३२] स्यौं०—सों भायहि भरे (शुक्ल)। [३३] तरुबर—तट्टर (शुक्ल)। फुट्टहिं०—घुट्टहि कायक पच बनैं (वही) [३६] दुख—रुख (शुक्ल)। [३७] कटक—कटत (भारत)।

अकबर पातसाहि नरनाथ। रामसाहि नृप दीने साथ।
राजाराम मिले तब ताहि। अति आदर कीनो चित चाहि॥ ४०॥
बीरसिंघ पुनि कियो हुलास। पठए तिन पहँ गोबिँददास।
रामसाहि बहु द्विज अकुलाइ। अपनैं डेरहि लयो बुलाइ॥ ४१॥
दान मान भय भेद बखानि। कियो बिप्र नृप अपनैं पानि।
सँग लै आवै सँग लै जाइ। रात द्यौस इहि रीति रहाइ॥ ४२॥
तौ लौं राख्यो अपनैं हाथ। यह दुख रामसाहि नरनाथ।
जौ लगि दौलतिखान पठान। आनि सैमरी कियो मिलान॥ ४३॥
प्रगट पवावैं भो आकूत। आवै बैरम खाँ को पूत।
यह कहि बिप्र बिदा करि दियो। कहा करैं हम बहुतौ कियो॥ ४४॥
नाहिन मानत दौलति खान। जूझहु जनि भजि राखहु प्रान।
आनि कह्यो यह गोबिँददास। बोले बिरसिँघदेव प्रकास॥ ४५॥
यह द्विज दै भैया अरु राज। दुहुँ मिलि कीनो परम अकाज।
तब तिहिं कुँवर भगायो गाँउ। आपुन तमकि रह्यो तिहिं ठाउँ॥ ४६॥
दौलति खान साथ को गनै। मुगल पठान खान बल घनै।
बीरसघि अति खिझवै ताहि। या बन तें उठि वा बन जाहि॥ ४७॥
आगै मारै पाछै जाइ। हरै पाछिले अगिले आइ।
तहाँ ते सबै घेरत फिरैं। कुँवर न तिनको घेरयो घिरै॥ ४८॥
सोयो नहीं न खायो खान। पचि हारयो हिय दौलति खान।
हाथ न आवै कुँवर समर्थ। ज्यों जड़ कै जिय पूर्न अनर्थ॥ ४९॥
गए पवावैं सब उमराउ। लौटि खानखाना सब भाउ।
तबै दिये सु बसीठ पठाइ। लिख्यो लेख दै बहुत बड़ाइ॥ ५०॥
जौ तुम मिलहु मोहिं यहि बार। बहुत बढ़ाऊँ राजकुमार।
तिन कहँ मिलन कुँवर तब गए। दौलति खाँ आगै ह्वै लए॥ ५१॥
मिले नबाब बहुत सुख पाइ। डेरह कहँ पठए पहिराइ।
जब ही जाइ कुँवर दरबार। लै बहुरै बहु सुक्ख अपार॥ ५२॥
दच्छिन दिसि कों कियो पयान। बीरसिंघ लै संग सुजान॥ ५३॥

(मनोरमाभव)

लुके भूड़ भाना गई आसमाना, बड़े विंध्यसाना भए धूरि धाना।
तला तोयमाना भए सुक्खमाना, कलगी विठाना तिलंगी न ठाना।
सुविद्यानिधाना तजें खान पाना, करैं जातुधाना पलानी पलाना।
उगे ठानठाना सुदिग्देवताना, हलैं छत्र नाना चलैं खानखाना॥ ५४॥

---

[४२] रात–सात (शुक्ल)। [५२] बहु–तब (भारत)। [५४] भूड़०–बूड़ मानो (शुक्ल)।

(चौपही)

नियरी कछु बरार जब रही। बीरसिंघ तब बिनती कही।
मो कहँ देइ नबाब बड़ौन। मैं सब ही राखौं तिहिं भौन॥ ५५॥
सुचित होहिं मेरे रजपूत। हौं अति सेवा करौं अभूत।
सुनि नबाब यह उत्तर दियो। मैं अपनो घर दच्छिन कियो॥ ५६॥
दच्छिन में मुँहमाँग्यो देउँ। अपने सम तुमकों करि लेउँ।
बीर कह्यो दच्छिन किहिं काज। हौं बड़ौनि की बाँधौं लाज॥ ५७॥
बिन बड़ौनि पल एक न रहौं। झूठो क्यों नबाब सों कहौं।
यह बिनती करि राजकुमार। डेरा कीनो आनि बिचार॥ ५८॥
तब संग्रामसाहि यहि बीच। सौंह करी हरि दीने बीच।
सब मिलि कीनो चलन-बिचारु। चल्यो अहेरैं राजकुमारु॥ ५९॥
करे मिलान बीच द्वै बारि। आयो अपने देस मझारि।
आवत ही थाने भगि गए। तब तन मन सुख पूरन भए॥ ६०॥
सुन्यो नबाब बीर घर गयो। अपनो मन अति दुचितौ कियो।
तब तिहि समै छिद्र यह पाइ। रामपूत यह बिनयो जाइ॥ ६१॥
वह हमकों लिखि दीजै पान। करिहैं दूरि कि हरिहैं प्रान।
दयो नबाब लेख लिखि हाथ। पठयो दौलति खाँ के साथ॥ ६२॥
दौलति खाँ गोपाचल गए। राजकुँवर घर आवत भए।
सजि दल बल परिजन परिवार। गयो पवावैं राजकुमार॥ ६३॥
राय भुपाल बली इँद्रजीत। राउ प्रताप सदा रनजीत।
बीरसिंघ के हित के लए। ये चार्‌यौ एकै ह्वै गए॥ ६४॥
सो चार्‌यौ ठाकुर भए एक। अरु लरिबे की कीनी टेक।
दौलति खान इतै पग दयो। फिरि बन दच्छिन ही कहँ गयो॥ ६५॥
साहि सँग्राम तबहिं पछिताइ। आए फिरि औरछें लजाइ।
आवन जानि दिये करि कानि। बिरसिंघ देउ भतीजे जानि॥ ६६॥

(हीरक)

सुनहु एहु, तजि सनेहु बहु बिरोध पाप को।
तीसरे जु ठयो अफल भयो पूत बाप को।
कहहि और करहि और और चित्त आनवी।
जगत कहहि बीर सहहि ईस सहै जानवी॥ ६७॥

इति श्रीमत्सकलभूमंडलाखंडलेश्वरमहाराजाधिराजश्रीवीरसिंहजूदेव चरित्रे दानलोभ-विंध्यवासिनीसंवादवर्णनं नाम तृतीयः प्रकाशः॥ ३॥

---

[६०] वारि—चारि (शुक्ल)। [६२] पान—ठान (शुक्ल)।



दान उवाच (चौपही)

कहत दान यह अंजलि जोरि। प्रनत देव तैं तीस करोरि।
और जु कहियै पाप-बिरोध। सबतें तुमकों बहुत प्रबोध॥ १॥

श्रीदेव्युवाच

दान दुराइ कपट कहँ हिये। इंद्रजीत के हित कों लिये।
बीरसिंघ सों दूलहराम। सौंह करी छ्वै सालिग्राम॥ २॥
मेरी सेव करी तुम तात। सबै जानिबो एकै बात।
सुख सों रहौ तात तुम धाम। जा जनपद की रच्छा काम॥ ३॥
तुम रच्छहु मो कहँ चित चाहि। हौं रच्छहुँ तुमकों भजि साहि।
एक समै बुधि बल अवगाहि। दच्छिन चले अकब्बरसाहि॥ ४॥
साहि मुराद गए परलोक। सुनि यह उर बहु उपजै सोक।
मन ही मन सोचै सुलतान। आनि धौरपुर कर्‌यो मिलान॥ ५॥
सुनि अकुताने राजाराम। भूलि गयो तिहिँ बल धन धाम।
सुभ तिथि बार नखत तजि भौन। सत्वर राजा गए बड़ौन॥ ६॥
इहि बिधि दिल्लीपति जिय जानि। गोपाचल गढ़ मेले आनि।
बीरसिंघ की सासन सुनी। हैं गे रैयत रावत घनी॥ ७॥
तब बोल्यो कछवाहा राम। मोहिँ पर्‌यो दच्छिन को काम।
मैं सब गुनह छमौं सुख मानि। बीरसिंघ कहँ मिलऊँ आनि॥ ८॥
राजा जब ही कियो पयान। आइ गयो तब ही फरमान।
बीरसिंघ आगे ह्वै लए। अति आदर अहदिनि कों दए॥ ९॥
अहदिनि कों सुभ डेरा दए। बीरसिंघ राजा पहँ गए।

वीरसिंह उवाच

हमकों दीजै सीख दिमान। सीख तुम्हारी सदा प्रमान॥ १०॥
राजा कह्यो सुनौ हो बीर। हम तुम सों बोलैं गंभीर।
हौं जु जात हौं सेवा साहि। तुमहीं लगि चिंता चित दाहि॥ ११॥
या कहि राजा कियो पयान। गोपाचल भेंटे सुलतान।
रामसाहि देखवही चित्त। सुख पायो दिल्ली के मित्त॥ १२॥
कै विधान मन बुध्धिनिधान। सब ही कूच कियो परमान।
जंगम जीवन कों जलराइ। उमगि चल्यो जनु कालहि पाइ॥ १३॥

---

[३] तात तुम—जाइ० (शुक्ल)। [७] हैं गे—हैं अति (शुक्ल)। [१२] गोपाचल—गोपालैं (भारत)। [१३] विधान—विचार (शुक्ल)। निधान—बिधान (वही)।

देस देस के राजा घनै। मुगल पठाननि कोँ को गनै।
जहाँ तहाँ गज गाजत घने। पुरवाई के जनु घन बने॥ १४॥
चौपद दुपद कहाँ लौँ कहौँ। कहन चहौँ तौ अंत न लहौँ।
मारग एक चलेई जात। एक देखियै पीवत खात॥ १५॥
उलहत ऊँट एक देखियै। लादत साज एक पेखियै।
एकन तंबू दियो गिराइ। रखत उठावत एक बनाइ॥ १६॥
बनिक चलत इक लादि अपार। एकन के बैठे बाजार।
दल मेँ सबको चित्त भुलाइ। कूच मुकाम न जान्यो जाइ॥ १७॥
औरै अति उतायले भए। साहि अकब्बर नरवर गए।
सुनि कंदरा सिंघ की घनी। छोड़ि गयंद जात यह बनी॥ १८॥
त्योँ सुनि बीरसिंघ की ठौनि। अकबर डेरी दई बड़ौनि।
नरवर तेँ जब घाटी गए। तब देखे पुर ऊजर भए॥ १९॥
भागे इंद्रजीत के लए। साहि कछू सुनि रोसिल भए।
ताही बिच अहदी फिरि गए। तिन सोँ बचन भाँति इमि भए॥ २०॥
जाइ कहौ को सेवा करै। नेकहु बीरसिंघ नहिँ डरै।
रामसाहि बोले सुलतान। कह्यो बचन यह बुद्धिनिधान॥ २१॥
तूँ या भूमंडल को राज। अरु तेरे बहु दल-बल साज।
इंद्रजीत अरु बिरसिँघदेव। कै करि दूरि, कराऊँ सेव॥ २२॥
बिनती करी राम कर जोरि। देहु बड़ौनि तजौँ पुर कोरि।
वाहि मारिकै मारौँ याहि। दच्छिन कोँ पग धारौ साहि॥ २३॥
साहि कह्यो सुनु राजाराम। जौ दोई ये करिहै़ँ काम।
राह चलाइ बड़ो जस होहि। पंचहजारी करिहौँ तोहि॥ २४॥
जौ तूँ बचिहै भैया जानि। मेरो बचन सत्य करि मानि।
जितने भूमि बुँदेला जीव। सब ही कोँ करिहौँ निर्जीव॥ २५॥
बोले राजसिंघ नरनाथ। पठए रामसाहि के साथ।
घोरो दै दीनो सिरपाउ। साथ दिये दूजे जुवराउ॥ २६॥
तब उत कूच कियो सुरतान। ये पठए इत बुध्धिनिधान।
दुहूँ राज तब दलबल साजि। घेरी तिन बड़ौनि गलगाजि॥ २७॥
राउ प्रताप आपु ही गए। इंद्रजीत जोधा पाठए।
गए बड़ौनि माँझ करि मोद। बहु भट बीरसिंघ की कोद॥ २८॥
पाइ सबै छल बल दल दाम। राजसिंघ पहिराए ताम।
मतो कियो दुहुँ राजनि तबै। कीजै संधि न विग्रह अबै॥ २९॥

---

[१५] कहन०—कहे लहौँ (शुक्ल)। मारग—या रँग (वही)। [२०] रोसिल—सोचित (भारत)। 'भारत' में चौथा चरण नहीँ है [२७] उत—उन (शुक्ल)।

पठै दिये तहँ राम बसीठ। हठ न करीजै कबहूँ ईठ।
छाँडि देउ दिन दोइ बड़ौन। हम फिरि जैहैं अपने भौन॥ ३०॥
बीरसिंघ यह उत्तर दियो। तुम हम बीच ईस ही कियो।
कैसे आवै हमैं प्रतीति। छल सों आपुन कीजै प्रीति॥ ३१॥
उठि सु बसीठ राम पै आइ। कह्यो बीर सों कह्यो बनाइ।
उत्तर दीनो राजाराम। ये सब आहिँ साहि के काम॥ ३२॥
वेई बोल हमारे चित्त। बोले बोल जु तुमसों मित्त।
राजसिंघ के पन्नहिँ मनाइ। फिरि बैठौ अपने घर जाइ॥ ३३॥
बीच दिये तब सर सिरमौर। अबकै दीजै बीच पचौर।
बहुरि बसीठ बड़ौनिहि गए। उनके बचन सबै सुनि लए॥ ३४॥
बीरसिंघ तब कियो बिचार। जौ पै है परमेस्वर सार।
जौं उह झूठो परिहै जाहि। सोई हरि संघरिहै ताहि॥ ३५॥
जेठो भैया दूजौ राज। इनकी हमैं सेव सों काज।
जो कछु राजा आयसु दियो। सिर पर मानि सबै हम लियो॥ ३६॥
बीच लिये भैया हरिबंस। आनंदी प्रोहित द्विज अंस।
अरु देवा पायक परवान। बीच लिये फिरि श्री भगवान॥ ३७॥
दुहुँ नृप सौहैं करी सुभाउ। बीरसिंघ तब छोड़्यो गाँउ।
जारि उजारे भवन प्रकार। भूली राजहि सौंह सम्हार॥ ३८॥
राम सु रामसिंघ सों कही। साहि दई मोकौं यह सही।
तब उन कही दिखावहु छाप। रामदास की राखहु थाप॥ ३९॥
ऐसे ही क्यौं दीजै ठाँउ। ये तौ लगत पवाँवहि गाँउ।
यह बिचार किय राजाराम। परौ साहि कों दच्छिन काम॥ ४०॥
भैयै हतियै परम अयान। रामसिंघ तब कियो पयान।
राम चले तब दुचिते भए। राजसिंघ तब डेरहि गए॥ ४१॥
बीरसिंघ पुर सूनो सुन्यो। यह बिचार मन ही मन गुन्यो।
थोरे सुभट संग तब लए। बीरसिंघ जू बड़वनि गए॥ ४२॥
मैना एक गयो तब देखि। राजसिंघ सों कह्यो बिसेखि।
बीरसिंघ पुर में नरनाथ। सुभट पचासक ताके साथ॥ ४३॥
सोवत जहाँ तहाँ भुव परे। कहुँ घोरे कहुँ आपुन खरे।
वड़े प्रात तुम घेरहु राज। तुमकौं जस दीनो ब्रजराज॥ ४४॥
सुन्यो दूत को वचन समाज। सबै लयो सँग सेना साज।
चले दमोदर औं जुवराज। डेरा रहे अकेले राज॥ ४५॥
पूजी भली कुँवर की घात। घेरे घनै बड़े ही प्रात।
अकबकाइ रावर संभ्रहे। लोगनि लपकि खड़िहरा लहे॥ ४६॥

[३०] करीजै—कीजिये (भारत)। फिरि—उठि (भारत)। [३२] कह्यो बीर—बात और (शुक्ल)। [३४] सर०—सुरसरि मौर (भारत)। [३६] सही—मही (शुक्ल)। [४६] घात—चात (शुक्ल)। [४६] लहे—गहे (शुक्ल)।

बगसराय सुंदर परधान। केसौ चंपतराय प्रमान।
मुकट गौर जादौ बलवंत। कृपाराम सुभ सॉवथ संत ॥ ४७ ॥
निकसे सबै एकही मूठि। उमगे अपने पिय सों रूठि।
एक एक इनि मार्‍यौ दौरि। दल सिगरे में पारी रौरि ॥ ४८ ॥
उठ्यौ दमोदर सपदि सम्हारि। सुभट दिये सब पुर में भारि।
तब ये अपने अपने ठौर। उठे उठाएँ जादौ गौर ॥ ४९ ॥
इन्हैं उठत गौ धीरज नाठि। फूटि गई सुभटनि की गॉठि।
भैया बगसराय तरवारि। हनै दमोदर दल संघारि ॥ ५० ॥
इहि बिच बीरसिंघ उठि परे। गजदल हय पयदल खरभरे।
जहाँ तहाँ भजि चले नरिंद। सिंघ देखि कै मनौ करिंद ॥ ५१ ॥
सोदर लै दामोदर भग्यौ। भगे दमोदर सब दल डग्यौ।
काहुहि काहू की न सम्हार। पवन पाइ ज्यों पत्र अपार ॥ ५२ ॥
भदौरिया जागरा अपार। जादव बड़गूजर तिहिँ बार।
कौन गनै सुभटन को साज। जूझे जूझ तहाँ जुबराज ॥ ५३ ॥
एक ति ढीहनि तें गिरि परे। बूड़ि इके सरिता महँ मरे।
इके गयंदनि मारे चॉपि। इक मरे अपडर ही कॉंपि ॥ ५४ ॥
ऐसो सुन्यौ न देख्यौ बाल। गोपाचल भगि बच्यौ भुवाल।
बीच दिये ही त्रिभुवनराय। बीरसिंघ कों कियौ सहाय ॥ ५५ ॥
बीरसिंघ के जय की गाथ। जग में गावत नर नरनाथ ॥ ५६ ॥

(भुजंगप्रयात)

सुनौ दान लोभा, तबै चित्त छोभा।
सुनौ साधु सुध्धा, चवंथो बिरुध्धा।
कह्यौ तैं जु बुझ्यौ, सुन्यौ मैं समुझ्यौ।
जहाँ वीर पैजै, तहाँ वेगि जै जै ॥ ५७ ॥

इति श्रीमत्सकलभूमंडलाखडलेश्वरमहाराजाधिराजश्रीवीरसिंहदेवचरित्रे दानलोभसवादे विंध्यवासिनीवर्णनं नाम चतुर्थः प्रकाशः ॥ ४ ॥

---

[४९] सपदि–सन्नदु (भारत)। [५१] बिच–त्रिधि (शुक्ल)। [५३] जुबराज–जुगराज (भारत)। [५५] बाल–चाल (शुक्ल)। [५७] जु०—सुनुझ्यौ(भारत)। समुझयौ–समुझ्यौ (वही)।

५

लोभ उवाच (चौपही)

सुनिजै सकल लोक की माइ। कहा कह्यौ सुनि दिल्लीराइ।
कह्यौ आगिलो सब व्यवहार। राजसिघ अरु राम बिचार ॥ १ ॥

श्रीदेव्युवाच

सुन्यौं साहि जूझ्यौ जुबराज। तमकि उठ्यौ काबिल सिरताज।
तैसहि बिच आए मेवरा। साहि भए अहि तें जेवरा ॥ २ ॥
साहिनंद अरु मान नरेस। छोड़ि सबै राना को देस।
घर ही कौं फिरि कियौ पयान। सुनि यह दुचितो भौ सुलतान ॥ ३ ॥
उपजें बहुत भाँति के छोभ। इनकी कौन चलावै, लोभ।
लै औसरै रोष हिय धरें। अकबर साहि गए आगरें ॥ ४ ॥

दान उवाच

होहु कृपाल जगत की मात। कहियै बीरसिघ की बात।
रामसाहि सों कैसी चली। बैरबेलि कित फूली फली ॥ ५ ॥

श्रीदेव्युवाच

सुनें जलालदीन घर गए। बीरसिंघ अति दुचिते भए।
गोबिंद मिरजा, जादौ गौर। बलि मूकटे मते मह और ॥ ६ ॥

बीरसिंह उवाच

साहि सत्रु अरु घर में बैर। यहै चलत है घरघर घैर।
रहै कौन बिधि पति अरु प्रान। अपनो अपनो कहौ सयान ॥ ७ ॥
मुकट कह्यौ सुनि राजकुमार। आपुस में उपजै जंजार।
आए अबही सुनियत साहि। कैसी चलै पूत सों ताहि ॥ ८ ॥
दच्छिन चपे जाहि उमराउ। खुरासान तन जिन्हैं प्रभाउ।
इत राना सों बढ़्यौ बिरोध। है उत मानसिघ सों क्रोध ॥ ९ ॥
सुनि लीजै सबही की गाथ। तब तैसी करि लीबो नाथ।
घर के बैर कहौ को डढ़ै। मारें मिटै मिटाएँ बढ़ै ॥ १० ॥
बोले मिरजा गोबिंददास। जौ पै है जिय घर को त्रास।
करिहै राजा दिन दिन प्रीति। जौ चलियै साहिब सों रीति ॥ ११ ॥

---

[६] बलि०—चाली मुकट (शुक्ल)। [७] अपने०—अपनी अपनी कही (शुक्ल)। [९] चपे—चले (शुक्ल)। [१०] डढ़ै—दुढ़ै (भारत)। [११] बोले—बोल्यौ (शुक्ल)। जौ चलियै०—चलि बलि ऐसी साहिब (वही)।

यह सुनि बोल्यौ जादौ गौर। पहिलो सो अब नाहीं ठौर।
फेरि अकब्बर के फरमान। कछुवाहे सों बैरबिधान ॥ १२ ॥
इंद्रजीत सौं हती समीति। कछू दिनन तें ऐसी रीति।
कोई कैसोई हितु रचै। घातै पाइ न राजा बचै ॥ १३ ॥
छोड़ौ सबै सुघर की आस। चलौ सलैमसाहि के पास।
घटि बढ़ि अपने करमहि लगी। उद्दिम सबकी कीरति जगी ॥ १४ ॥
जानै कौन करम की गाथ। काहू के ह्वै रहियै नाथ।
सबही कीनौ यही बिचार। चल्यौ प्रयागहि राजकुमार ॥ १५ ॥
अहीछत्र किय कुँवर मिलान। मिल्यौ मुदफ्फर सैद सुजान।
तासौं मतो कुँवर सब कह्यौ। सुनि सुनि समुझि रीझि हिय रह्यौ ॥१६॥
कह्यौ सु तिहिं सुनि अरिकुलहाल। चलियै तौ चलियै इहिं काल।
जौ लौं काहू कछू न कियौ। उमग्यौ जाहि न अरि को हियौ ॥ १७ ॥
जौ ह्यॉ ह्वैहै कछू उपाउ। दियौ न जैहै आगें पाँउ।
घर के रहें बिगरिहै काज। दुहूँ भाँति चलनो है आज ॥ १८ ॥
मन क्रम बचन धरौ यह नेम। तुम सेवक प्रभु साहि सलेम।
सैद मुदफ्फरखाँ की बात। सुनि सुख भयौ कुँवर के गात ॥ १६ ॥
चल्यौ चपलगति बुध्धिनिधान। साहिजादपुर कर्यौ मिलान।

(दोहा)

पूरब पूरे पुन्य तरु फलित भयौ बड़भाग।
सकल मनोरथ दानि दिन देख्यौ आनि प्रयाग ॥ २० ॥

(चौपही)

जब प्रयाग को दरसन भयौ। जीवन जनम सुफल करि लयौ ॥ २१ ॥
देखत पाप हरै प्राचीन। परसत दुरितन दहे नवीन।
बारू महँ चारू दुति लसै। ताहि देखि मति अति हित बसै ॥ २२ ॥
सूछम अंस करैं सब सेव। जानु प्रयागहि देव अदेव।
हरहि जु जग जीवन के पाप। दूरि करत जनु तिनके दाप ॥ २३ ॥
जमुना संग कियें मति थिरा। गंग मिलन कौं आई गिरा।
मृगमद केसरि घसि घनसारु। कीनौ चर्चित चंदन चारु ॥ २४ ॥
वंदित देखि देव अवनीप। तिलक कियौ जनु जंबूदीप।
जहाँ तहाँ जल नरपति न्हात। देखत आनँद उपजत गात ॥ २५ ॥

---

[१४] सबै०—सब पुर घर (शुक्ल)। सलैम—सलीम (वही)। [१५] चल्यौ०—चलौ प्रात ही (शुक्ल)। [१६] मुदफ्फर—मुजफ्फर (शुक्ल)। [२१] सकल—सजल (शुक्ल)। [२२] दहे—देह (शुक्ल)। बारू—चारू (भारत)। [२४] कियें—लिये (शुक्ल)। [२५] देखि देव—देखि देखि (शुक्ल)।

नारी नर बहु बुड़की लेत। जनु अपने अभिलाषनि हेत।
हरि पूजत सब बारहु पार। जहाँ तहाँ षोड़स उपचार ॥२६॥
होति आरती तिनकी जोति। प्रतिबिंबित पानी महँ होति।
अपनो जनम करन कौं सुखी। जनु अन्हाति जल ज्वालामुखी ॥ २७ ॥
अति अरुनाई अति उद्दोत। धूमसहित जहँ तहँ जल होत।
देखि देखि उपमा बड़भाग। धूमकेतु जनु न्हात प्रयाग ॥ २८ ॥
इहि बिधि सोभा सुखद अपार। बरनै सोभा को संसार।
पहिरि धोवती, बसन उतारि। कूप तोय तब पाय पखारि ॥ २६ ॥
करि आचवन परम सुचि भए। वीरसिंघ गंगा महँ गए।
कुसमुद्रिकनि मुद्रित कै हाथ। नारिकेल कर सुबरन साथ ॥ ३० ॥
भेंट दई यह राजकुमार। लीनी भागीरथी उदार।
मंजन करि तब तरपन कियौ। मंत्र जप्यौ करि पावन हियौ ॥ ३१ ॥
अनँत अनेकनि जात न गने। पाट जटे पट हाटक घने।
महिषी सुरभी हय गय ग्राम। भूषन भाजन भोजन धाम ॥ ३२ ॥
पुष्पित फलित ललित बन बाग। सकल सुगंध सहित अनुराग।
छत्र चौर गजराजनि बने। को कबि जान बिमाननि घने ॥ ३३ ॥
अति दीरघ अति पीवर साज। दीबे कौं आन्यौ गजराज।
जब गज गंगाजल महँ गयौ। बहुत भाँति करि सोभित भयौ ॥ ३४ ॥
स्वेत कुसुम चौसर मय स्वच्छ। सोहत तुलसी कैसो बृच्छ।
अमल सुमिल मोतिन के हारु। ता महँ मनौ नीलमनि चारु ॥ ३५ ॥
मानहु कुमकुम पूर प्रमान। ता महँ मृगमद बुंद समान।
कुंदकली अवली महँ सोभ। जनु अलि बस्यौ गंध के लोभ ॥ ३६ ॥
सुभ कैलास सिला के माहिँ। मानहु सजल जलद की छाँहिँ।
सूरज सेत सेज मन हरै। तापर जनु सनि क्रीड़ा करै ॥ ३७ ॥
नारद को उर उज्जल लसै। ता महँ मनौ कृष्नतनु बसै।
देवसभा महँ मनु मोहियौ। बैठे व्यासदेव सोभियौ ॥ ३८ ॥
जब सब अंग जलनि मिलि जाय। केवल इभकुंभै दरसाय।
मनौ गंग पौढ़ी परजंक। स्याम कंचुकी सोभित अंग ॥ ३६ ॥
कहौं कहाँ लगि सोभासार। कहौं तौ बाढ़ै ग्रंथ अपार।
आयौ जलबाहिर गजराज। सोभित सकल अंग को साज ॥ ४० ॥
तनु चर्चित चंदन कर्पूर। कुंभ कलित बंदन सिंदूर।
चारु चंद्रमा भाल लसंत। रच्यौ पुष्पमय एकै दंत ॥ ४१ ॥
जलजहार देखत दुख भजै। मनिमय नूपुर पायनि बजै।
वीरसिंघ सो विप्रहि दियौ। लेत विप्र को हरषित हियौ ॥ ४२ ॥
मनौ पढ़ावन कौं मन कियौ। सिव गनपति गुरु कौं सौंपियौ।
दै सब दाननि परम उदार। डेरहि आए राजकुमार ॥ ४३ ॥

---

[२६] बरनै०—बरनी सोभ कोधि (भारत)। [३७] सनि—जन (भारत)।

सरीफखाँहि देखि सुख भयौ। छीर नीर ज्यौं मन मिलि गयौं।
गुदर्‌यौ जब सरीफखाँ जाय। हरख्यौ दिल दिल्ली को राय॥ ४४॥
बोलहु बेगि कह्यौ सुलतान। मेरें बीरसिंघ तनत्रान।
साहिसभा जब गयौ नरिंदु। सूरजमंडल में मनु इंदु॥ ४५।
देखत सुख पायौ सुलतान। ज्यौं तन पायौ अपने प्रान।
कै तसलीम गहे तब पाय। उमग्यौ आनँद अंग न माय॥ ४६॥
सोभ्यौ बीर देखि यौं साहि। जैसें रहै सुमेरहि चाहि।
बीरसिंघ कों बाढ़ी सोह। पारस सों परस्यौ जनु लोह॥ ४७॥
परम सुगंध नीम ह्वै जाय। जैसें मलयाचल कों पाय।
कह्यौ साहि नीके है राय। अब नीकें जब देखे पाय॥ ४८॥
भली करी तैं राजकुमार। छोड़्यौ सब आयौ दरबार।
ह्वैहै भलै पूजिहै आस। जौ तूँ रहिहै मेरे पास॥ ४९॥
यह कहि पहिराए बहु बार। हाथी हय औरहु हथियार।
भीतर गौ दिल्ली को नाथ। बहुर्‌यौ खाँ सरीफ गहि हाथ।
जब जब जाय कुँवर दरबार। लै बहुरै अहलाद अपार॥ ५०॥

(कुंडलिया)

सुख पायौ बैठे हते एक समय सुलतान।
खाँ सरीफ तिनि बोलि लिय बिरसिँघदेव सुजान।
बिरसिँघदेव सुजान मान दै बात कही तब।
या प्रयाग में कुँवर सौंह करियै मोसों अब।
तोसों करौं बिचार करहि अपने मन भाए।
अनत न कबहूँ जाउ रहहु मो सँग सुख पाए॥ ५१॥
पायनि परि तसलीम करि बोल्यौ बिरसिँघ राज।
हौं गरीब तुम प्रगट ही सदा गरीबनिवाज।
सदा गरीबनिवाज लाज तुमहीं लघु लामी।
बिनती करियै कहा महाप्रभु अंतरजामी।
लोभ मोह भय भाजि भजैं हम मन बच कायनि।
जौ राखहु मरजाद तजौं सपनेहु नहिँ पायनि॥ ५२॥

(चौपही)

सौंहैं कीन्ही माँझ प्रयाग। बीरसिंघ सुलतान सभाग॥ ५३॥
तुमहीं मेरे दोई नैन। तुमहीं बुधिबल भुज सुखदैन।
तुमहीं आगें पीछें चित्त। तुमहीं मंत्री तुमहीं मित्त॥ ५४॥
मात पिता तुम पार्‌यौ पान। तुम लगि हौं छाड़ौं निज प्रान।

---

[४५] त्रान–प्रान (शुक्ल)। [५४] लगि हौं–लगि (शुक्ल)। निज–अपने (वही)।

वीरसिंह उवाच

इक साहिब अरु कीजत प्रीति। सब दिन चलन कहत इहि रीति॥ ५५॥
तुम्हैं छोड़ि मन आवै आन। तौ सब भूलै धर्मबिधान।
यह सुनि साहि लह्यौ सब सुक्ख। लीनौ कहन आपनो दुक्ख॥ ५६॥
जितनो कुल आलम परबीन। थावर जंगम दोई दीन।
तामें एकै बैरी लेख। अब्बुलफजल कहावै सेख॥ ५७॥
वह सालत है मेरे चित्त। काढ़ि सकै तौ काढ़हि मित्त।
जितने कुल उमरावनि जानि। ते सब करहिँ हमारी कानि॥ ५८॥
आगे पीछे मन आपनै। वह न मोहिँ तिनका करि गनै।
हजरति को मन मो हित भर्‌यौ। याके पारें अंतर पर्‌यौ॥ ५९॥
सत्वर साहि बुलायौ, राज। दच्छिन तें मेरे ही काज।
हजरति सों जौ मिलिहै आनि। तौ तुम जानहु मेरी हानि॥ ६०॥
बेगि जाउ तुम राजकुमार। बीचहि वासों कीजौ रार।
पकरि लेहु कै डारौ मारि। मेरो हेत हियें निरधारि॥ ६१॥
होय काम यह तेरे हाथ। सब साहिबी तुम्हारे साथ।
ऐसो हुकम साहि जब कियौ। मानि सबै सिर ऊपर लियौ॥ ६२॥
राजनीति गुनि भय भ्रम तोरि। बिनयौ बीरसिंघ कर जोरि।
वह गुलाम तू साहिब ईस। तासों इतनी कीजहि रीस॥ ६३॥
प्रभु सेवक की भूल बिचारि। प्रभुता यहै जु लेइ सम्हारि।
सुनिजतु है हजरति को चित्त। मंत्री लोग कहत हैं मित्त॥ ६४॥
तौ लगि साहि करै जब रोष। कहियै यौं किहिं लागै दोष।
जन की जुवती कैसी रीति। सब तजि साहिब ही सों प्रीति।
तातें वाहि न लागै दोष। छोड़ि रोष कीजै संतोष॥ ६५॥

(दोहा)

सहसा कछू न कीजई कीजै सबै बिचारि।
सहसा करैं ते घटि परैं अरु आवै जग गारि॥ ६६॥

साहसलीम उवाच (चौपही)

बरन्यौं मीत मते को सार। प्रभुजन को सब यहै बिचार॥ ६७॥
जौं लगि यह जीवन है सेख। तौ लगि मोहि मुओ ही लेख।
सबै विचार दूरि करि चित्त। बिदा होहु तुम अबही मित्त॥ ६८॥

---

[५५] इहि—यह (भारत)। [५६] लीनौ—लाग्यो (शुक्ल)। [६१] मेरो०—यह मन निहचै करहु बिचारि (शुक्ल)। [६३] गुनि—तम (भारत)।

कसि तुरतहि बखतर तन बेग। लै बाँधी कटि अपने तेग।
घोरो दै सिरपा पहिराय। कीनी बिदा तुरत सुख पाय ॥ ६९ ॥
दरिखाने तें राजकुमार। चलत भई यह सोभा सार।
रबिमंडल तें आनँदकंद। निकसि चल्यौ जनु पूरन चंद ॥ ७० ॥
सैद मुदफ्फर लीनौ साथ। चलै न जानै कोऊ गाथ।
बीच न एकौ कियौ मुकाम। देख्यौ आनि आपनो ग्राम ॥ ७१ ॥
आनंदे जनपद सुख पाय। नीलकंठ जनु मेघहि पाय।
पठए चर नीके नरनाथ। आवत चले सेख के साथ ॥ ७२ ॥
चारन कही कुँवर सों आय। आए नरवर सेख मिलाय।
यह कहि भए सिंध के पार। पल पल लखैं सेख की सार ॥ ७३ ॥
आए सेख मीच के लिये। पुर पराइछे डेरा किये।
आबुलफजल बड़े ही भोर। चले कूँच कै अपने जोर ॥ ७४ ॥
आगे दीनी रसधि चलाइ। पीछे आपन चले बजाइ।
बीरसिंघ दौरे अरि लेखि। ज्यौं हरि मत्त गयंदनि देखि ॥ ७५ ॥
सुनतहि बीरसिंघ को नाउ। फिरि ठाढ़ौ भयौ सेख सुभाउ।
परम रोष सों सेख बखानि। जैसे असुर नृसिंघहि जानि।
दौरत सेख जानि बड़भाग। एक पठान गही तब बाग ॥ ७६ ॥

पठान उवाच

नहीं नवाब पसर को ठौरु। भूलि न सत्रुहि सामुहँ दौरु ॥ ७७ ॥
चलु चलु ज्यौं क्यौं हूँ चलि जाहि। तोहि पाय सुख पावै साहि।
पुनि अपने मन में करि नेम। जैबो चढ़ि तहँ साह सलेम ॥ ७८ ॥

सेख उवाच

कहि धौं अब कैसें भगि जाउँ। जूझत सुभट ठाउँहीं ठाउँ।
आनि लियो उन आलमतोग। भाजे लाज मरैगो लोग ॥ ७९ ॥

पठान उवाच

सुभटन को तौ यहऊ काम। आपु मरे पहुँचावै राम।
जौ तूँ, बहुतै आलमतोग। तौ तूँ बचिहै रचिहैं लोग ॥ ८० ॥

सेख उवाच

मैं बल लीनों दच्छिन देस। जीत्यौ मैं दच्छिनी नरेस।
साहि मुरादि स्वर्ग जब गए। मैं भुवभार आप सिर लए ॥ ८१ ॥

---

[६९] सिर पा०—सिर पाग पिन्हाइ (शुक्ल) । [७१] बीच०—बीचन एकै (भारत) । [७३] सिंघ—सँभ (भारत) । [७६] असुर—अपर (शुक्ल) । [७९] भगि—चलि (शुक्ल) । [८०] तौ तूँ—जौतू (शुक्ल) ।

मेरो साहि भरोसो करैँ। भाजि जाउँ मैं कैसेँ घरैँ।
कहि यौँ आलमतोग गँवाय। कहिहौ कहा साहि सोँ जाय ॥ ८२ ॥
देखत लियौ नगारो आय। कहाँ बजाऊँ हौँ घर जाय।
घर को मेरे पाइन परै। मेरे आगे हिंदू लरै ॥ ८३ ॥

पठान उवाच

सेख बिचारि चित्त महँ देखु। काज अकाज साहि को लेखु।
सुनि नवाब तूँ जूझहि तहाँ। अकबरसाहि बिलोकै जहाँ ॥ ८४ ॥
प्रभु पै जाय जमातिहि जोरि। सोकसमुद्र सलीमहि बोरि।

सेख उवाच

तूँ जु कहत चलि जैयै भाजि। उठे चहूँ दिसि बैरी गाजि ॥ ८५ ॥
भाजे जात मरन जौ होय। मोसोँ कहा कहै सब कोय।
जौँ भजिजै लरिजै गुन देखि। दुहू भाँति मरिबोई लेखि ॥ ८६ ॥
भाजौ जौ तौ भाज्यौ जाय। क्यौँ करि दैहै मोहिँ भजाय।
पति की बेरी पाइ निहार। सिर पर साहि मया को भार ॥ ८७ ॥
लाज रही अँग अँग लपटाय। कहु कैसै कै भाज्यौ जाय।
छोड़ि दई तिहिँ बाग बिचारि। दौरयौ सेख काढ़ि तरवारि ॥ ८८ ॥
सेख होय जितही जित जबै। भरभराइ भट भागैँ तबै।
काढ़े तेग सोह यौँ सेख। जनु तनु धरे धूमधुज देख ॥ ८९ ॥
दंड धरे जनु आपुन काल। मृत्यु सहित जम मनहु कराल।
मारै जाहि खंड द्वै होय। ताके संमुख रहै न कोय ॥ ९० ॥
गाजत गज, हींसत हय खरे। बिन सुंडनि बिन पायनि करे।
नारि कमान तीर असरार। चहुँ दिसि गोला चले अपार ॥ ९१ ॥
परम भयानक यह रन भयौ। सेखहि उर गोला लगि गयौ।
जूझि सेख भूतल पर परे। नैकु न पग पाछे कोँ धरे ॥ ९२ ॥

(सोरठा)

अवधि धर्म की लेख, दुज दीनन प्रतिपाल तैँ।
रन मेँ जूझे सेख, अपनी पति लै साहि की ॥ ९३ ॥

(चौपही)

जब खुरखेट निपट मिटि गई। रन देखन की इच्छा भई।
कहूँ तेग कहुँ डारे तास। कहुँ सिंदूख पताक प्रकास ॥ ९४ ॥
कहुँ डारे नेजा तरवारि। कहुँ तरकस कहुँ तीर निहारि।
कहूँ रुंड कहुँ डारे मुंड। कहुँ चौंर मुर्दान के झुंड ॥ ९५ ॥
ठिलत लुठत कहुँ सुभट अपार। टूटनि टिकि टिकि उठत तुखार।
देखत कुँवर गए तब तहाँ। अब्बुलफजल सेख है जहाँ ॥ ९६ ॥

[८९] काढ़े०—काटे तेग सोहियै (भारत)।

परम सुगंध गंध तन भर्‍यौ। सोनितसहित धूरि धूसर्‍यौ।
कछु सुख कछु दुख व्यापत भए। लै सिर कुँवर बड़ौनिहिँ गए ॥ ९७ ॥

(कबित्त)

आवत है जीते जोर दच्छिन, अभयपद
लैनहार दैनहार दच्छिन नगर को।
सालनि ज्यौं, तालनि ज्यौं 'केसव' तमालनि ज्यौं
तेरे भुवपाल साल ईस धीरधर को।
दीनौ छाँडि छितिनाथ साहिब सलेम साहि
महाबीर बीरसिंघ सिंघ मधुकर को।
अब्बुलफजल मदमत्त गजराज राज
मारि डार्‍यौ सखा सेख साहि अकबर को ॥ ९८ ॥

(चौपही)

देव सु बड़गूजरसुत भले। चंपतिराय सीस लै चले।
सीस साहि के आगे धर्‍यौ। देखत साहि सकल सुख भर्‍यौ ॥ ९९ ॥
किधौं बिरोधबिटप को मूल। किधौं सकल फूलनि को फूल।
ऐसी सोभ सीस की भनौं। साहिमनोरथ को फल मनौं ॥ १०० ॥
सबके सुनत साहि यह कह्यौ। दिल्ली के घर को बध रह्यौ।
बीरसिंघ की यहई ठई। हमकों सकल साहिबी दई ॥ १०१ ॥
बीरसिंघ हमैं लीन्हे मोल। करी साहिबी निपट निडोल।
फिरि थाप्यौ काबिल को राज। कीन्हौ सकल खलक को काज ॥ १०२ ॥
राख्यौ आजु हमारो राज। अब हम दैहैं उनको राज।
तबही माँग्यौ कंचनथारु। मुक्ताफल कै रोचन चारु ॥ १०३ ॥
अरुन तरनि उड़गननि समेत। सूरजमंडल ज्यौं सुख देत।
नेजा नवल जरायनि जर्‍यौ। चँवर छत्र ससि सोभा भर्‍यौ ॥ १०४ ॥
बिदा कर्‍यौ तब बिप्र बुलाय। चंपति बड़गूजर पहिराय।
दयौ नगारो अति सुख पाय। पठए साहि निसान बजाय ॥ १०५ ॥
आए घर आनंद्यौ लोग। मित्रनि सुख सब सत्रुन सोग।
सुभससिबरन नखततिथि जानि। बैठारे सिंघासन आनि ॥ १०६ ॥
सकल मरातिब ठाढ़े किये। हरसिँघदेव छरी कर लिये।
दै सिर छत्र छबीलो साज। अलकतिलक दै दीनौ राज ॥ १०७ ॥

(दोहा)

कुल मेँ बढ़्यौ बिरोध सुनि दान लोभ यह भेव।
रामसाहि जीवत भए राजा बिरसिँघदेव ॥ १०८ ॥

इति श्रीमत्सकलभूमंडलाखंडलेश्वरमहाराजाधिराजराजाश्रीवीरसिंहदेवचरित्रे दान-लोभविंध्यवासिनीसंवादे राजप्राप्तिवर्णनं नाम पचमः प्रकाशः ॥ ५ ॥

६

दान उवाच (चौपही)

सुन्यौ साहि जब मार्‌यौ सेख। कहा कर्‌यौ कहिजै सुबिसेष।
कहा आपने मन में गुन्यौ। सब ब्यौरा हम चाहत सुन्यौ॥ १ ॥

श्रीदेव्युवाच

मार्‌यौ सेख जहीं जिहिं सुन्यौ। अपनो सीस तहीं तिहिं धुन्यौ।
जहाँ तहाँ उमरावनि सोच। क्यौं कहिजै यह बढ़ो सँकोच॥ २ ॥
यह कहि उठे साहि दिन एक। सुनत हते उमराउ अनेक।
आवत सेख कहैं सब लोइ। रह्यौ कहाँ यह जानत कोइ॥ ३॥
काहू कछू न ऊतर दियौ। साहि कछू मनु दुचितो कियौ।
तब प्रभु रामदास सों कह्यौ। सेखसोध तुमहीं नहिं लह्यौ॥ ४॥
रामदास यह ऊतर दयौ। सेखसाहिसिर सदकै भयौ।
सुनत साहि ह्वै गए अधीर। परे धरनि सुधिबिगत सरीर॥ ५॥
सबही हाइ हाइ ह्वै रही। पूरि रही सब आँसुनि मही।
अति निहसब्द भयौ दरबार। पवनहीन ज्यौं सिंधु अपार॥ ६॥
घरी चारि में आई सुध्धि। तब उठि बैठ्यौ साहि सुबुध्धि।
रामदास तूँ कहहि सम्हारि। किसा सेख को बचन बिचारि॥ ७॥
कहि धौं कछू औसिलो भयौ। कै काहू बन जीवन हयौ।
पर्‌यौ किधौं बैरिन सों काम। कै काहू सों भयौ सँग्राम॥ ८॥

रामदास उवाच

आवत हो अपनें मग चल्यौ। अब्बुलफलज सेख सुखफल्यौ।
साहि सलेम हेत गहि सेल। उठ्यौ बीच बिरसिंघ बुँदेल॥ ९॥
तासों तबहिं जूझ बहु भयौ। जूझि सेख परलोकहि गयौ।
सोक न कीजै आलमनाथ। ताकहँ तुरत लगावहु हाथ॥ १०॥
ऐसे वचन सुने नरनाह। नैननीर के चले प्रवाह।
कोलाहल महलनि में भयौ। तिनकी प्रतिधुनि सुनि मन रयौ॥ ११॥
मुग्धा मध्या प्रौढ़ा नारि। उठि बैठीं जहँ तहँ डर डारि।
भूषनपट न सम्हारत अंग। अधिक सोभ बाढ़ी अँगअंग॥ १२॥
चंचल लोचन जल झलमले। पवन पाय जनु सरसिज हले।
चिलकै अलिकअलक अति वनी। तरकी तन अँगिया की तनी॥ १३॥
राजकुमारि हँसैं मुँह मोरि। तुरकिनीनि उपजै दुख कोरि।
रोवति तन तोरति अति वनी। विच विच बाजति ढोलक घनी॥ १४॥

---

[२] तिहिं—तेइ (शुक्ल)। बढ़ो—बड़ो (वही)। [४] लह्यौ—लयौ (शुक्ल)। [९] रामदास—राजदान (भारत) । अब्बुलफजल—औवलिफजलि (वही) । [१०] बहु—अति (शुक्ल)। [१२] बैठीं—दौरी (शुक्ल)।

(कवित्त)

'केसौराय' अब्बुलफजलि मारयौ बीरसिंघ साहि के महल जहँ तहँ उठि धाई है।
पीरी पीरी पातरी निपट पट पातरेई कटितट छीन उर लट लटकाई है।
भृकुटि-सीव झुकी सी, झझके से लोचननि, उझके से उरजनि, उर छबि छाई है।
खानजादी खान डारि पान डारि सेखजादी साहिजादी पान डारि पीटने कौं आई है॥

(चौपही)

खाँ नाजिम कछुवाहो राम। सेख फरीदहि भूल्यौ काम।
राउ भोज अरु दुरगा राउ। जगन्नाथ औरे उमराउ॥ १६॥
खत्री त्रिपुर साथ कै लए। सब मिलि निकट साहि के गए।
साहि बिलोकै आजमखान। बोलि उठ्यौ दिल्लीसुलितान॥ १७॥
मेरे प्रान जात हैं देखु। आँखिन आनि दिखावहु सेखु।
हाथी हय हाटक मनि धीर। गायक नायक गुनी गँभीर॥ १८॥
राग बाग फल फूल बिलास। डासन आसन असन सुबास।
भूषन भाजन भवन बितान। संपति सकल कितेब पुरान॥ १६॥
पसु पत्ती भट सेना अंग। बिद्या बिबिधि बिनोदप्रसंग।
देस नगर सॉथर गढ़ ग्राम। सेख बिना मेरे किहि काम॥ २०॥

खान उवाच

जैसो सेख हतो इहि धाम। तैसे तेरे बहुत गुलाम।
ता लगि कब तें करियत दुख्ख। खान पान छाँडत सब सुख्ख॥ २१॥
भारामल सिर सदकै भयौ। भव भगवंतदास कित गयौ।
खानजहाँ रु कुतुबदी खान। आलमखान मुदफ्फरखान॥ २२॥
नृपति गुपाल सदा रनधीर। टोडरमल्ल राज बलवीर।
को यह सेख सुनै सुलतान। जा लगि छाँडन कहत जहान।
मीच कौन पर राखी जाय। कीजै राजकाज सुख पाय॥ २३॥

(कुंडलिया)

कहै खान आजम जवन समझावन के बैन।
समुझै साहि न कहि थके समुझै नेकु न ऐन।
समुझै नेकु न ऐन नैन जलधरगति धारी।
अति धारासंपात होत 'केसौ' भ्रमकारी।
उमग्यौ सोकसमुद्र कहौ क्यौं राखें रैहै।
वार बार समुझाय रहे थकि जोइ सु कैहै॥ २४॥

---

[१६] कितेब–कितेक (शुक्ल)। [२२] भगवत–भगवान (शुक्ल)। [२४] जोइ०–जोइ जु (शुक्ल)।

(कवित्त)

अमिठि अमिठि निरवारि जाति आपुही तें 'केसौदास' भृकुटी लता सी गिरिबर की।
जारि जारि सीरी होति, सीरी ह्वै जरति छाती, क्वैला कैसी दाही देह दीह हैमहर की।
भरि भरि रीति जाति, रीति रीति भरै पुनि रहटघरी सी आँखि साहि अकबर की।
मधुकरसाहिसुत राजा बीरसिंघजू की कीनी है कथा बिरंचि न्याय घर घर की ॥२५॥

(चौपही)

साहि कह्यौ तब प्रगट प्रभाउ। सुनौ सकल मेरे उमराउ ॥ २६ ॥
मैं सब कीने बड़े बढ़ाय। मो कहँ काम परयौ यह आय।
मारनहारौ सेख कों चाहि। लै आवहु जीवत गहि ताहि ॥ २७ ॥
सब सुनि रहे न ऊतर दियौ। सबही को डर डरप्यौ हियौ।
कह्यौ रायराया यह तबै। हिंदू तुरक सुनत हैं सबै ॥ २८ ॥
कै तसलीम सु करयौ प्रनाम। जिनके मो सारिखो गुलाम।
सो प्रभु कैसें दुचितो होय। ल्याऊँ गहि जीवत वह लोय ॥ २९ ॥
तौ मोपै ह्वैहै सब काम। मेरे सँग दीजै संग्राम।
यह सुनि साहि उठे सुख पाय। ताकी बिदा करी पहिराय ॥ ३० ॥
बोल्यौ साहि, साहि संग्राम। कह्यौ बृद्ध भौ राजा राम।
तूँ यह करहि हमारो काज। कंटकहीन करहि निज राज ॥ ३१ ॥
इंद्रजीत बिरसिंघ कराल। ये दोई हैं मेरे साल।
इनही तें ह्वैहै सब काज। येई हरिहैं तेरो राज ॥ ३२ ॥
पायनि परयौ दौरि संग्राम। हौं करिहौं ये केतिक काम।
दयौ कछौवा, दई बड़ौन। पहिरायौ पग धारयौ भौन ॥ ३३ ॥
तब कछु सुख पायौ सुलतान। बदन पखारयौ खाए पान।
राजसिंघ अरु तुरसीदास। ये पहिराय चलाए पास ॥ ३४ ॥
दिए रायराया के साथ। अकबर दूहूँ दीन के नाथ।
गोपाचल गढ़ मेले जाय। जोरयौ अधिकौ कटक बनाय ॥ ३५ ॥
सिकरवार जादौ, जागरे। तोंवर, हाड़ा, खीची खरे।
गूजर, मैना, जाट, अहीर। मुगल, पठाननि की अति भीर ॥ ३६ ॥

(नराच)

वेरछा पँवार पाइ। अर्ति कै लिए बुलाइ।
पेस ही प्रतापराइ। आपु ही मिले त जाइ।
दीह दुक्ख देह साहि। साज साहि में डिढ़ाहि।
चेति चित्त सत्रु साहि। मित्र भौ सुजानसाहि ॥ ३७ ॥

---

[२८] रायराया—राम राजा (शुक्ल)। [२९] लोय—सोइ (शुक्ल)। [३०] सुख पाय—मुसुकाइ (शुक्ल)। [३२] तें०—हतें होइ (शुक्ल); तें ह्म हैं (भारत)। [३३] धारयौ—धरयौ न (भारत)। [३४] 'भारत' में दूसरा और चौथा चरण नहीं है। [३७] पेस ही—ऐस ही (भारत)। डिढ़ाहि—उठाहि (वही)।

(चौपही)

जब ही मिल्यौ पँवार सुजान। खत्री मानौं करिकै प्रान।
मेल्यौ तिपुर आनि आतुरी। पुनि मेल्यौ उचाट की तरी॥ ३८॥
साहि सलैम कियौ फरमान। तबही आयौ परम प्रधान।
बीरसिंघ तूँ परम सुजान। तो पर अति कोप्यौ सुरतान॥ ३९॥
पठई तो पर फौज प्रचारि। तिन सों तूँ माड़ै जनि रारि।
सो फरमान मानि सिर लयौ। बड़वनि छाँड़ि सु दतिया गयौ॥ ४०॥
तबही रामसाहि अकुलाय। मिले रायराया कहँ जाय।
तिपुर राम जब एकै भए। बीरसिंघ तब ऐरछ गए॥ ४१॥
तब तिहिँ समय तिपुर अकुलाय। ऐरछगढ़ में मेले जाय।
ऐरछ घेरि लई तब खरी। पहिल उठान पठाननि करी॥ ४२॥
उठ्यौ गाजि तब हरिसिँघदेव। गहैं साँग मानौं बलदेव।
ऊकै सी निकसी तरवारि। परै तीर तुपकनि की मारि।
लोह चहूँ दिसि बरसत घनै। नेकहु हरसिँघदेव न गनै॥ ४३॥

(कवित्त)

सकल सयान गुन, नाहिन गुमान उर, 'केसौदास' जानहु अजान मन भायौ है।
लरती के आगे आगे, भागती के पाछे पाछे, बाईं ओर दाहिने ई लरत बतायौ है।
सेना कैसों नाह सेनानाह को सनाह जगनाह कैसो मीत जगजीव गीत गायौ है।
राजा बीरसिंघजू को बंधु हरिसिंघदेव सिंघ की दुहाई हरिसिंघ कैसो जायौ है॥ ४४॥

(चौपही)

जूझि परे सामुहे सपूत। जमल जमालखान के पूत।
भागे सुभट सबै भहराय। लोथिन तन चितयौ नहिँ जाय॥ ४५॥
सिगरो दिन बीत्यौ इहिँ भाँति। जूझ बुझानी, आई राति।
चहूँ ओर गढ़ यह गति भई। अति औंड़ी खाई खनि लई॥ ४६॥
सिगरे उमरावनि दुख भयौ। साहि सलैमहि इक सुख छयौ।
राति भए आरत्ति असेख। कित निकरैगो चंचल बेख॥ ४७॥
प्रगटी अधराती चाँदनी। भारी दृग आनंदकादनी।
मीरा सैद मुदफ्फर बोलि। चलन कह्यौ सबही भय खोलि॥ ४८॥

(दोहा)

पावक पानी पवनगति निकसे सिंघ समान।
सबही के देखत चले गाजि बजाय निसान॥ ४९॥

---

[३८] आतुरी–आतरी (भारत)। [३९] प्रधान–प्रवान (भारत)। [४०] प्रचारि–बिचारि (भारत)। माड़ै–मानै (वही)। [४३] लोह–लोहु (भारत)। [४४] लरती के–सत्रुगन (भारत)।

(कबित्त)

बीरसिंघदेव पौरि बाहिर दपटि दौरि बैरिन
को सैन बेर बीसक कचौंदि गौ।
कंचन बुँदेलमनि सेल्हनि ढकेलि कोटि
हाथी पेलि चौकीदार बेतवै में सौंदि गौ।
दुंदुभी धुकार सों हजार कों चुनौती देत
भीम कैसी पैज लेत रेत खेत खौंदि गौ।
रामसी को नाम स्यौरि घाम सी जुन्हाई माँझ
तामसी तिपुर के तनाउ तंबु रौंदि गौ॥ ५० ॥
साहिब सलैमसाहिजू के कहैं बीरसिंघ
छाँड़ि दीनी बड़वनि दतियाउ दीहतर।
'केसौदास' तिपुर तुरक है दुनी कों घेर्यौ
जाय ऐरछे में घेर होत घनी घरघर।
कोट फोरि, फौज फोरि, सलिता समूह फोरि
हाथिन की बैट फोरि कटक बिकट बर।
मारू दै दमामो दै कै गारी दै गरूर महँ
पाँउ दै सिधारे सिरदार ही के सिर पर॥ ५१ ॥

(चौपही)

जात जात सबही दल होय। पीछें लागि सकै नहिं कोय।
तिपुर गयंद हीनमद भयौ। बीरसिंघ दतिया फिरि गयौ॥ ५२ ॥
दतियातें फिरि कर्यौ मिलान। जहाँ सलैम साहि सुलतान।
गयौ साहि के जब दरबार। पहिरायौ बहु दै सुखवार॥ ५३ ॥
खीझि रीझि खत्री रस रयौ। उचक्यौ तुरक कछौवहि गयौ।
पग पग पेलि तिपुर को त्रास। गए आगरें 'केसौदास'॥ ५४ ॥
तुरत तिपुर कों भौ फरमान। बोले इंद्रजीत मतिमान।
दै गढ़ इंद्रजीत कौ राय। तबही कूँच कियौ अकुलाय॥ ५५ ॥

(दोहा)

उचकायौ रिपु गाउँ तें लै आए फरमान।
'केसव' कों यह रीझ भौ लीनौ दीनौ दान॥ ५६ ॥

(चौपही)

जात बीच लागी नहिँ बार। गए रायराया दरबार॥ ५७ ॥
कन्हर के सिर दीनौ भार। छाड़यौ घर को सबै विचार।
राजाराम विदा कै दए। इंद्रजीत हजरत पै गए॥ ५८ ॥

इति श्रीभूमंडलाखंडलेश्वरमहाराजाधिराजराजाश्रीवीरसिंहदेवचरित्रे दान-लोभविंध्य-वासिनीसंवादे साहिरोपवर्णनं नाम षष्ठः प्रकाशः॥ ६ ॥

७

दान उवाच (चौपही)

सुनहु जगत जननी मति चारु। साहि कियौ पुनि कहा बिचारु।
साहि साहिजादे की बात। कहियौ हम सों उर अवदात॥ १॥

श्रीदेव्युवाच

जबहिँ तिपुर घर के मग लगे। जहाँ तहाँ के थाने भगे।
सूनौ जानि भँडेरि मुकाम। बैठे आइ साहि संग्राम॥ २॥
गए साहि पै साहि सलेम। भयौ साहि के तन मन छेम।
दतिया राखे बिरसिंघदेव। भसनेहे में हरसिंघदेव॥ ३॥
खड़गराय सों भौ संग्राम। जूझे हरसिंघद्यो बलधाम।
बीरसिंघ सुनि कीनौ रोस। मन ही मन मान्यौ बहु सोस॥ ४॥
एही समै प्रीति अति नई। बिरसिंघ संग्रामै भई।
तब संग्रामसाहि हिय हेरि। बीरसिंघ कौं दइ भँडेरि॥ ५॥
बीरसिंघ संग्रामहि ऐन। कह्यौ चबूतर लै गढ़ दैन।
खड़गराइ खल खरो जिहान। महामत्त मातंग समान॥ ६॥
बीरसिंघ बरु ता पर चढ़्यौ। बंधुबरग बहु बिग्रह बढ़्यौ।
तज्यौ लचूरा आवत दीठ। चमू चली ताकी परि पीठ॥ ७॥
रुक्यौ लौटि अमिलौटा गाँउ। खड़गराय जूझ्यौ जिहि ठाँउ।
जूझ्यौ तब ताको परिवार। काटे सिर सब तज्यौ बिचार॥ ८॥
लीनौ जीति लचूरा ग्राम। बैठारे तहँ साहि सँग्राम।
मूड़ काटि दै घाले तहाँ। साहि सलैम छत्रपति जहाँ॥ ९॥
अकबरसाहि सुनी यह बात। मूड़ देखि सुख पायौ तात।
उपज्यौ रोष सुनतहीं बात। जालिम जलालदीन के गात॥ १०॥
पठयौ तहँ कछवाहो राम। साहि सलैम जहाँ बलधाम।
करि तसलीम समै जब लह्यौ। बचन निवारि राम सब कह्यौ॥ ११॥
दुहूँ दीन प्रभु साहि जलाल। तुम ऊपर अति भए कृपाल।
तुम सुख सकल साहिबी करौ। सत्रुन के सिर पर पग धरौ॥ १२॥
बीरसिंघ बासुकी गनेहु। जौ तुम सुख सरीफखाँ देहु।
हय गय माल मुलक उमराउ। इन पर कीजै प्रगट प्रभाउ॥ १३॥
इतनो बचन कहत ही राम। साहि सलैम हँसे बलधाम।
रामदास सुनि मेरी गाथ। यह साहिबी ईस के हाथ॥ १४॥

---

[१] उर–मति (भारत)। [६] चबूतर०–लचूरागढ़ लैं (शुक्ल)। 'भारत' में उत्तरार्ध नहीं है। [७] ×(भारत)। [१३] उमराउ–पजाउ (भारत)।

स्वर्ग नर्क दसहू दिसि धाव। काहू की कोउ दई न पाव।
रंकहि राजा होत न बार। राजा रंक भए ति अपार ॥ १५ ॥
जिय में कत उपजावत छोभ। याको हमैं दिखावत लोभ।
बाबाजू के पग उद्धरै। अपनो सीस निछावर करै ॥ १६ ॥
बीरसिंघ अरु बासकि भूप। सुनि सरीफखाँ बुद्धि अनूप।
इन्हैं देत कैसो देखियै। हौं हजरति को सुत लेखियै ॥ १७ ॥
रामदास तब ऐसो कह्यौ। अब सरीफखाँ बासकि रह्यौ।
अपने घर में सुख कीजई। राजा बीरसिंघ दीजई ॥ १८ ॥
सुनि सुनि साहि कह्यौ बुधि लही। रामदास तैं नीकी कही।
मेरो बीरसिंघ जौ होय। तौ मैं बाँधि देहुँ पति खोइ ॥ १९ ॥
मन क्रम बचन चित्त यह लेखि। मो कहँ बीरसिंघ कहँ देखि।
दैन कहत जगती को राज। ता कहँ तूँ चाहत है आज ॥ २० ॥
वाके साथ बिपति बरु बरौं। वा बिन राज कहा लै करौं।
तूँ मेरो सदई सुखकारि। और होय तौ डारौं मारि ॥ २१ ॥
जाहि बेगि जौ चाहत छेम। चले कूँच कै साहि सलेम।
कर्‌यौ कूँच पै कूँच सभाग। गयौ प्रगट प्रभु तुरत प्रयाग ॥ २२ ॥
रामदास सब ब्यौरो कह्यौ। समुझि साहि सुनि चुप ह्वै रह्यौ।
तेही समै गयौ अकुलाय। खड़गराय को लहुरो भाय ॥ २३ ॥
करी साहि सों जाय फिरादि। अधिक अनाथन दीजै दादि।
साहि मुराद जबै उत गए। रामसाहि तब आगी भए ॥ २४ ॥
तब बोले हम साहि मुरादि। हम से दीनन दीनी दादि।
सेवा देखि कृपा दृग दिये। खड़गराय उनि राजा किये ॥ २५ ॥
सुनियै आलमपति इहि भेव। मारे सब हम बिरसिंघदेव।
राजा बिरसिंघ अरु संग्राम। इन दुहून को एकै काम ॥ २६ ॥
हमहि मारि तब सुनहु सभाग। बीरसिंघ नृप गए प्रयाग ॥ २७ ॥

(दोहा)

वोलि तिपुर सों यह कही दिल्ली के सुलतान।
इनकों नीकै राखियै दै भोजन परधान ॥ २८ ॥

(चौपही)

रामदास सों कहियहु येहु। कोऊ एक बिदा करि देहु।
देखैं जाय ओड़छौ ग्राम। ल्यावैं वोलि वेगि संग्राम ॥ २९ ॥
भीतर भवन गए तिहिं घरी। पहिरावनि पठई पामरी।
रामदास सारो आपनो। पठै दियौ अपनी प्रति मनौ ॥ ३० ॥

[१६-१७] 'बाबाजू......सुत लेखियै' 'भारत' में नहीं है। [१९] बाँधि०—बाहि देउँ (शुक्ल)। [२१] बरौं—परौं (शुक्ल)। होय०—जो होतो (वही)। [२५] आगी—भागी (भारत)। [२६] आलमपति०—विनती पति इहि देव (भारत)। [२९] कहियहु—करियहु (भारत)।

कहै साहि आलम रिस भर्‌यौ। बहुत गुनाह बुँदेलनि कर्‌यौ।
माड़ौ लात पै खाली देस। मेरे सुत को भयौ प्रबेस ॥ ३१ ॥
बहुत बुँदेलनि बढ़्‌यौ प्रभाव। करिहै साहि सलैम सहाव।
रोप उठ्यौ मेरे मन महा। इंद्रजीत कौं कीजै कहा ॥ ३२ ॥
बोल्यौ असरफखाँ चित चाहि। घालै आज बुँदेलनि साहि।
बिमुखनि को कीजै कुलनास। पद सनमुखनि बढ़ावत आस ॥ ३३ ॥
अर्ज मेरि यह मानिय आज। इंद्रजीत कों दीजै राज।
रामदास सों कह्यौ बुलाय। करौ नवाजसि वाकी जाय ॥ ३४ ॥
सुभ दिन होय तौ चेला करौ। चेला करि बिपदा सब हरौ।
यह कहि साहि झरोखहि गए। इंद्रजीत कौं देखत भए ॥ ३५ ॥
इंद्रजीत तैं जैहै तहाँ। सठ संग्राम गयौ है जहाँ।
इंद्रजीत तब ऐसो कह्यो। मैं तौ साहिचरन संग्रह्यौ ॥ ३६ ॥
मेरे मन यहई व्रत धर्‌यौ। हजरति-चरन-कमल घर कर्‌यौ।
इंद्रजीत तसलीम जु करी। साहि दई आपनि पामरी ॥ ३७ ॥
बूझै साहि सभासद सबै। बिरसिंघदेव कहाँ है अबै।
इतहि नाउ कहि आयौ बैन। उत अति जल भरि आए नैन ॥ ३८ ॥
जब जब साहि सुनत यह नाउ। भूलत तन मन सुख्ख सुभाउ।
सूल हियें तब हित सब सलै। नैननि तैं जलधारा चलै ॥ ३९ ॥

(कबित्त)

सूरन कौं भूषन कै, दूषन असूरन कौं कैधौं प्रतिसूरन कौं साल उर पर है।
राजन कौं तिलक बिराजै किधौं 'केसौराय' अरिगजराजन कौं अंकुसनिगर है॥
माँगने कौं पारस, कि राजश्री कौं सारस कहौं न हौं बनाइ घैर होत घरघर है।
राजामनि बीरसिंघजू को नाउ किधौं यह अकबर साहि नैन-नीरद की कर है ॥४०॥

(चौपही)

आवत ही सुभ दिन सुभ घरी। रामदास तब बिनती करी ॥ ४१ ॥
आई साहि-सुफल-फर-फरी। इंद्रजीत-सिच्छा की घरी।
साहि कह्यौ सुनि कूरम तात। इंद्रजीत सों कहि यह बात ॥ ४२ ॥
मन बच कर्म कही यह बात। कह्यौ गुरू को चेला तात।
जौ याकी अखत्यारी होय। देउ राज जानै सब कोय ॥ ४३ ॥
इंद्रजीत सों यहई बात। जाय कही ऊदा के तात।
इंद्रजीत यह ऊतर दियौ। मैं अखत्यार सबै कछु कियौ ॥ ४४ ॥

---

[३३] बढ़ावत—बढ़ाव अकास (शुक्ल)। [३७] व्रत—प्रन (शुक्ल)। [४२] आई—आयसु (शुक्ल)। [४३] मन०—मन क्रम बचन कही व्रत घरै (शुक्ल)। तात—करै (वही)। याकी०—याके ह्यॉ त्यारी (वही)।

जौ कछु साहि कहैंगे आज। सबै करौं पै लेहुँ न राज।
यहै कही हजरति सों जाय। भीतर भवन गए दुख पाय ॥ ४५ ॥

(दोहा)

दासी सब कुल तिय तजैं ज्यौं जड़ त्यौं यह जानु।
इंद्रजीत किय कुमति हित राजश्री अपमानु ॥ ४६ ॥

(चौपही)

बोलि तिपुर तेही छिन साहि। दीनौ राज कृपा करि ताहि।
मन क्रम बचन कियौ अति मीत। तासों कह्यौ बिक्रमाजीत ॥ ४७ ॥
तासों मतौ कर्‍यौ करि नैम। बोल्यौ हौं मैं साहि सलैम।
हौं अब रोकि राखिहौं ताहि। तूँ अब बेगि ओड़छै जाहि ॥ ४८ ॥
चल्यौ तिपुर तहँ इतहि बसीठ। पठए साहि पुत्र पै ईठ।
गए तहाँ जहँ साहि सलेम। प्रगट्यौ जाय पिता को प्रेम ॥ ४९ ॥
तुम बिन सूनो साहि को चित्त। कल न परत सुनि आलममित्त।
बेगमखाँ तन तजि यह लोक। छोड़ि गयौ लीनौ परलोक ॥ ५० ॥
तिनको दुक्ख रह्यौ परि पूरि। दूरि करै को तुम अति दूरि।
इतनो सुनत छूटि गयौ छेम। सोक संग्रहे साहि सलेम ॥ ५१ ॥
दिन दो इक यह दुख अवगाहि। आए बाहिर आलम साहि।
मुजरा कियौ बसीठनि आनि। पूछी बात तिन्हैं जिय जानि ॥ ५२ ॥
अकबर साहि गरीबनिवाज। इंद्रजीत कौं दीनौं राज।
कहे बसीठनि सब ब्यौहार। जैसें कछू भए दरबार ॥ ५३ ॥
तब बोल्यो हँसि सरिफाखान। बीरसिंघ तन को तनत्रान।
राजा बासुकि केसौदास। तिन सों कह्यौ चित्त को बास ॥ ५४ ॥
मोपै बेगमजू को सोग। रह्यौ न जाय भगे सब भोग।
मेरे मन उपज्यौ यह भाउ। देखौं पातसाहि के पाउ ॥ ५५ ॥
राजा बासुकि उत्तर दियौ। अपने चित्तहु में समुझियौ।
करन कह्यौ नहि साहिनि सोग। सोग किये तें उपजै रोग ॥ ५६ ॥
रोग भएँ भागे सब भोग। भोग गएँ नहिं सुख-संजोग।
सुख बिन दुख दिन करत उदोत। दुख तें कैसें मंगल होत ॥ ५७ ॥
तातें सोग न कीजै साहि। गवन तुम्हारो भावत काहि।
केसौराय अरज तब करी। लीनें हाथ छबीली छरी ॥ ५८ ॥
साहि-समीप गए हैं तबै। कहा जाय पुनि कीजै अबै।
हजरति के जक यहई हियें। होत प्रसन्न न सेवा कियें ॥ ५९ ॥

---

[४५] पै०—पै न लैहौं (भारत)। जाय—गाय (वही)। [४६] तहँ—उत (शुक्ल)। [५४] केसौदास—केसोराइ (शुक्ल)। वास—भाइ (वही)। [५७] गएँ—भगे (शुक्ल)। बिन०—बिन दुख कर दिन उद्दोत (वही)।

करियै साहि जु करनै होय। गति न तुम्हारी जानै कोय।
करि तसलीम सुमिरि नरहरी। बीरसिंघ तब बिनती करी॥ ६० ॥
जैजत हैं बेगम के हेत। आलम प्रभु के नगरनिकेत।
जिहिं सुख होय साहि के गात। सोई कीजै तजि सब बात॥ ६१ ॥
मोहिं साहि कौं सौंपौ जाय। जातें कुल को कलह नसाय।
हौं हजरत-सिर सदकै भयौ। एक गुलाम भयौ नहिं भयौ॥ ६२ ॥
खाँ सरीफ बोले रिसभरे। बीरसिंघ तुम राजा करे।
सु तौ साहि अब देत न बनै। राजा दीनै पातक घनै॥ ६३ ॥
तातें मोहिं मया करि देहु। बढ़ै साहि सों दिन दिन नेहु।
उपजावत छितिमंडल छेम। बोलि उठे तब साहि सलेम॥ ६४ ॥
तुम्हैं देउँ हजरत-हित-काज। काहि बढ़ाऊँ आपन राज।
बहुरि न मोसों ऐसी कहौ। मेरें जीवत निरभै रहौ॥ ६५ ॥
साहि सलैम साहि पै गए। साहि बहुत तिनकों दुख दए।
दूरि सरीफखान भगि गयौ। सबै मुलक अति दुचितो भयौ।
बिरसिंघद्यो भैया संग्राम। देख्यौ आनि ओड़छौ ग्राम॥ ६६ ॥

इति श्रीभूमडलाखंडलेश्वरमहाराजाधिराजराजाश्रीवीरसिंहदेवचरित्रे दानलोभविंध्यवासिनी-संवादे छितिपतिछलवर्णन नाम सप्तमः प्रकाशः॥ ७ ॥



दान उवाच (चौपही)

कहौ, देवि, कित गयौ अभीत। साहि कियौ जु विक्रमाजीत॥ १ ॥

श्रीदेव्युवाच

मेल्यौ तिपुर सिंधु के तीर। भुमियाँ मिले रीँघ तजि धीर।
तबहि तिपुर दतिया तन गए। इंद्रजीत अपने घर भए॥ २ ॥
खोजा अबदुल्लह आइयौ। मिलि भदौरिया सुख पाइयौ।
तिपुर सुजानसाहि सों कहै। चलौ बेतवै जल-संग्रहै॥ ३ ॥
बेहड़ काटत चल्यौ सुभाउ। रह्यौ आनि खम्हरौली गाँउ।
इंद्रजीत बिरसिंघदेउ आप। लीने सुभट दरैं अरिदाप॥ ४॥

(दोहा)

दुहूँ कटक अरु ओड़छैं आधकोस को वीच।
बेहडु काटत मिसि पर्‍यौ काटतु कालै नीच॥ ५ ॥

---

[४] देउ—दै (भारत)। [५] कालै—काटलै (भारत, शुक्ल)।

(चौपही)

इत कठगरु उत सरिता-कूल। मारग कियौ परम अनुकूल।
तदपि न गयौ ओड़छैँ परै। निसिबासर सिगरो दल डरै॥ ६॥
एक समय सिगरे उमराउ। लगे बिचारन मगन उपाउ।
जौं कोऊ कछु करै बिचार। मानै नहीँ तिपुर तिहिँ बार॥ ७॥
राजा रामसिंघ तब कह्यौ। हमसोँ बैठे जाय न रह्यौ।
भोर होत नहिँ लाऊँ बार। जारि ओड़छौ करिहौँ छार॥ ८॥
मारू कह्यौ सुनौ नरनाथ। हौँ आयौँ राजा के साथ।
तिपुर तिन्हैँ बहु बरजत भए। बरजत ही उठि डेरहि गए।
राजा जगे बड़े ही भोर। बजे दमामे जनु घनघोर॥ ९॥
सकिलि सकल दल सज्जित भयौ। रह्यो न मारू हठ को लयौ।
सजि चतुरंग चमू नृप चल्यौ। गाजत गज चालत भुव हल्यौ॥ १०॥
दुंदुभि सुनि कासीसुर चढ़्यौ। चढ्यौ तिपुर सबही बर बढ़्यौ।
राजारामसाहि गलगज्यौ। वीरसिंघ को दुंदुभि बज्यौ॥ ११॥
तमकि चढ़्यौ तब साहि संग्राम। ताके चित्त बस्यो संग्राम।
इंद्रजीत अरु राउ प्रताप। बाँधे कवच लिये कर चाप॥ १२॥
उग्रसेन अरु केसौदास। जानत हैँ बहु जुद्ध बिलास।
ठाकुर और कहाँ लौँ कहौँ। कहन लेउँ तौ अंत न लहौँ॥ १३॥
दोऊ दल बल सज्जित भए। बहुधा ब्योम बिमानन छए।
राजसिंघ की पति पद्मिनी। नव दुलहिनि गुन सुख-सद्मिनी॥ १४॥
सिर सब सीसौदिया सुदेस। बानी बड़गूजर बर बेस।
श्रुति-सिरफूल सुलंकी जानु। लोचन-रुचि चौहान बखान॥ १५॥
भनि भदौरिया भूषित भाल। भृकुटि भेटिभाटी भूपाल।
कछवाहे-कुल कलित कपोल। नैषध-नृप नासिका अमोल॥ १६॥
दीखत दसन सुहाड़ा हास। बीरा बैस बनाफर बास।
मुख-रुख मारु, चिबुक चंदेल। ग्रीवा गौर, सुबाहु बघेल॥ १७॥
कुल कनौजिया कंचुकि चारु। कुच करचुली कठोर विचारु।
पानि पवैया परम प्रबीन। नृप नाहर नख-कोर नवीन॥ १८॥
कौसल कटि जादौ जुग जानु। पदपल्लव कैकेय बखानु।
तोंवर मनमथ, मन पड़िहार। पट राठौर, सरूप पँवार॥ १९॥
गूजर वे गति परम सुवेस। हावभाव भनि भूरि नरेस।
केसौ मारू सखि सुखदानि। दामोदर दासी उर जानि॥ २०॥

---

[१६] भूषित०—भूतल भालु (भारत)। [१९] पद०—पदप लवा (भारत, शुक्ल) पट—पद (वही)।

(दोहा)

राजसिंघ पति पद्मिनी दुलहिनि रूपनिधान।
दूलह मधुकर-साहि-सुत बिरसिंघदेव सुजान ॥ २१ ॥

(चौपही)

तिनको सिर स्वयंभुमय मानि। श्रवननि कौं बैश्रवन बखानि।
भाल भलौ भागनि मय मानि। बृष कंधर सुर मेघ बखानि ॥ २२ ॥
भुज जुग भनि भगवती-समान। अति उदार उर तुमहिं समान।
कटि नरकेहरि के आकार। जानु बरुन मय रूप कुमार ॥ २३ ॥
पद कर कँवल सुबाहन बास। आयुध सक्र-समान सहास।
जयकंकन बाँधे निज हाथ। पनरथ परम पराक्रम गाथ ॥ २४ ॥
टोपा सोभत मोर-समान। बागे सम सोहै तन-त्रान।
पावक प्रगट प्रताप प्रचंड। रक्षक नारायन नवखंड ॥ २५ ॥
पंच सब्द बाजत अवदात। सुभट बराती फौज बरात।
दोऊ दल बल बिग्रह बढ़े। देखत देव विमाननि चढ़े ॥ २६ ॥

(दोहा)

बीरसिंघ नृप दूलहै नृपपति दुलहिनि देखि।
घूँघट घाल्यौ भ्रम-सहित सभय सकंप बिसेखि ॥ २७ ॥

(चौपही)

घूँघट सों पट दुलहिनि नई। बीरसिंघ राजा गति लई।
देखी पति कासीसुर हाथ। कोप कियौ कूरम नरनाथ ॥ २८ ॥
जहँ तहँ बिक्रम भट प्रगटए। गज घोटक संघटित सु भए।
तुपक तीर बरछी तिहि बार। चहूँ ओर ते चले अपार ॥ २९ ॥
जंग जागरा जंगल जुरे। काहू के न कहूँ मुँह मुरे।
हींसत हय, गाजत गज-ठाट। हाँकत भट बरम्हावत भाट ॥ ३० ॥
जहँतहँ गिरिगिरि उठिउठि लरैं। टूटैं असि काढ़ैं जसधरैं।
भूलि न कोऊ जानै भाजि। मारत मरत सामुहें गाजि ॥ ३१ ॥
अपने प्रभु कौं सकट जानि। उठ्यौ दमोदर गति असि पानि।
सकल जागरा जुद्ध अमोर। चमू चाँपि आई चहुँ ओर ॥ ३२ ॥
घोरो कढ्यो धरनि धुकि गयौ। तब सग्राम पयादो भयौ।
तापर आयौ राउ प्रताप। संग लियें बहु सूरनि आप ॥ ३३ ॥
कियौ हथ्यार आपनें हाथ। गावत गाथा सुर नरनाथ।
सकतसिंघ कछवाहे आनि। गयौ अगावड़थतें पहिचानि ॥ ३४ ॥
घोरन तैं दोऊ गिरि गए। भूतल लोथकपोथा भए।
राउ प्रतापहि देखत आसु। तिन पहँ दौरे केसौदासु।
हन्यौ दमोदर हाथहि हेरि। बरछा हन्यौ बरछ लै फेरि ॥ ३५ ॥

---

[२३] तुमहिं०--तुम हिय मान (भारत, शुक्ल)।

हरिकेश उवाच (कवित्त)

कारी पीरी ढालैं लालैं देखियै बिसालैं अति
हाथिन की अटा घन घटा सी अरति है।
चपला सी चमकै चमूनि माझ तरवारि
सारही सो सार फूलझरी सी झरति है।
प्रबल प्रतापराउ जंग जुरै 'केसौदास'
हनै रिपु करै न छिपा पनु भरति है।
पेस हरिकेस तहाँ सुभट न जाय जहाँ
दुहूँ बाप पूतै दौड़ हौड़ सी परति है॥ ३६॥

(चौपही)

देखि पयादो बल को धाम। अरु संग्राम साहि संग्राम।
दौरयौ उग्रसेन रनजीत। दौरे इंद्रजीत सुभगीत॥ ३७॥
दल बल सहित उठे दोइ बीर। मनौ घनाघन घोर गँभीर
धुंध धूरि धुरवा से गनौ। बाजत दुंदुभि गर्जत मनौ॥ ३८॥
जहाँ तहाँ तरवारैं कढ़ी। तिनकी दुति जनु दामिनि बढ़ी।
तुपक तीर ध्रुव धारापात। भीत भए रिपुदल भटव्रात॥ ३६॥
श्रोनित-जल पैरत तिहिं खेत। कूरम कुल सब दलहि समेत।
परम भयानक भौ यह ठौर। भागि बचे मारू हरधौर॥ ४०॥
जगमनि प्रोहित घोरो दियौ। चढ़ि संग्राम साहि हरखियौ।
जूझि परयौ दामोदर जबै। भागि बच्यो कूरम-दल तबै॥ ४१॥
जगमनि दामोदर तिहिं बार। पठए सिर साँटै सिरदार।
राजसिंघ भए अति वहबहे। जाय औड़छैं रावर गहे॥ ४२॥
अति रूरी राजति रनथली। जूझि परे तहँ हय गय बली।
खडनि सुंड लसैं गजकुंभ। श्रोनित-भर भभकंत भसुंड॥ ४३॥
रुधिर छाँडि अँग अँग रुचि रवै। गैरिक धातु सैल जनु द्रवै।
धावत अंध कबंध अपार। छिदी सैहथी उरनि उदार॥ ४४॥
हीन भए भुजबल के भार। जनु हिय हरपि गहे हथियार।
उठि बैठे भट तरु की छाँहि। लागी साँगि तिन्हैं मुँह माँहि॥ ४५॥
दाँतन की किरचन रँग रँगे। वहु विधि रुधिर हलूका लगे।
भखि तमोर त्रिपई मनु हरैं। मनहुँ कपूर करूरा करै॥ ४६॥
घन घायनि घायल घर परैं। जोगिनि जोरि जंघ सिर धरैं।
अंचल मुख पोंछति जगमगी। कंठ श्रोन पिय मारग लगी॥ ४७॥
मोंचहु मृतक मानि भय दली। मानहु सती छोड़ि सत चली।
गीधिनि के सुत सोभित घने। लीलत पल मुख श्रोनित सने॥ ४८॥
चंद्र जानि चामर चहुँ ओर। चुंचनि चुनत अँगार चकोर।
श्रोनित सोभा रचे सरीर। तहँ देखियै डरे वर बीर॥ ४६॥

खेलि फागु मानौ फगुहार। सोय रहे मदमत्त गँवार।
एक जूझि भूतल पर परे। एक बूड़ि सरिता महँ मरे ॥ ५० ॥
गय घोटक करभनि को गनै। छूटे बन बन डोलत घने।
ऐसो भयौ करम को जोग। तज्यौ नकारो आलमतोग ॥ ५१ ॥
जहँ तहँ हसम खसम बिन भए। जल थल रखत बखत भगि गए।
माही महल मरातब साथ। आई पति कासीसुर हाथ ॥ ५२ ॥
लीनौ खलक खजानो लूटि। कूरम भगे चहूँ दिसि फूटि।
देखै तिपुर तमासो आप। ऊपर होहि नही परताप ॥ ५३ ॥

(कवित्त)

ह्वै गयौ बिठान बल मुगल पठानन को
भंभरे भदौरियाउ संभ्रम हियै छयौ।
सूखे मुख सेखनि के, खर्थौई खिसान्यौ खत्री
गाढ़ो गह्यौ गाढ़ पाँउ एकौ न इतै दयौ।
बीरसिंघ लीनी जीति पति राजसिंघ की
तुसार कैसो मारयौ मारु केसौदास ह्वै गयौ।
हाथीमय हयमय हसम हथ्यारमय
लोहमय लोथिमय भूतल सबै भयौ ॥ ५४ ॥

(चौपही)

बीरसिंघ अति हरषित हियैं। राजसिंघ पति दुलहिनि लियैं।
घेरयौ नगर ओड़छौ जाय। मारू केसौदास रिसाय ॥ ५५ ॥
घुस्यौ घूंसि ज्यौं घर के कौन। तजि रजपूती साधी मौन।
राजा राजसिंघ हिय डरयौ। सोक छाँड़ि मन संसै परयौ ॥ ५६ ॥
अमल कमल-दल लोचन ऐन। स्यामल जल भरि आए नैन।
पति-दुलहिनि करुनारस-भरी। बीरसिंघ सों बिनती करी ॥ ५७ ॥
महाराज जौ करहु सनेहु। इनको धर्मद्वार अब देहु।
इतनो कहत आइयौ रोय। ह्वै गयौ करुनामय सब कोय ॥ ५८ ॥
बीरनि बोलि अभै कों दए। बीरसिंघ तब डेरहि गए।
मारू सहित सोक-रँग-रए। राजसिंघ तब कुठौली गए ॥ ५६ ॥

(सवैया)

ओरनि लै अरु ओस उसीर उवै जब 'केसव' जोन्ह बिभाती।
घोरि घनो घनसार तुसार सों अंक लगावत पंकजपाती।
सोधि सबै सियरे उपचारनि ज्यौं ज्यौं सिरावत त्यौं अति ताती।
केसव मारू गए पुरजारन सो न जरयौ पै जरी उठि छाती ॥ ६० ॥

---

[५१] करभनि—करमनि (भारत)। [५४] सभ्रम०—सभ्र मुह पै (भारत)।

(चौपही)

ता दिन तें सिगरे उमराउ। चलदल कैसो गह्यौ सु बाउ।
आवन जान न पावै कोय। सब दल रह्यौ महा भय होय ॥ ६१ ॥

इति श्रीभूमडलाखडलेश्वरमहाराजाधिराजराजावीरसिंहदेवचरित्रे दानलोभविंध्यवासिनी-संवादे युद्धजयविवाहवर्णनं नाम अष्टमः प्रकाशः ॥ ८ ॥

९

लोभ उवाच

राजसिंघ मारू की हार। कहा कर्‌यौ सुनि साहि बिचार।
सो तुम कहौ जगतबंदिनी। जिनके जस की चिरचंदिनी ॥ १ ॥

श्रीदेव्युवाच

राजसिंघ के जुद्धबिधान। सुनि सुनि सीस धुन्यौ सुलतान।
उमराउनि को प्रगट प्रमान। यह लिखि पठै दियौ फरमान ॥ २ ॥
कै तुम गहियौ हज कों राहु। कै उनकी बसहिनि पर जाहु।
उन नृपपति लीनी करि नेहु। तुमहू उनकी पतिनी लेहु ॥ ३ ॥
जहँ जहँ जाइ तहाँ तुम जाउ। मैटौ मेरे उर को दाउ।
यह सुनि बीरसिंघ सुख पाय। बसहिनि माँझ चले अकुलाय ॥ ४ ॥
को मन मीच अधर मधु छकै। को मेरी दासी लै सकै।
बरजि रहे बहु राजा राम। ऐसो करि छोड़ौ घर धाम ॥ ५ ॥

(सवैया)

कालिहि बैठि गुपाचल से गढ़ सोधि सुरेसन के गुन गाहौं।
दान कृपान विधानन 'केसव' दुष्ट दरिद्रन के उर दाहौं।
खानजिहान के खान करौं सब खानजमान बृथा अवगाहौं।
मेरे गुलामनि ह्वैहै सलाम सलामति साहि सलेमहि चाहौं ॥ ६ ॥

(चौपही)

वीरसिंघ राजा बरबीर। बसही जाय लई धरि धीर।
तेही समय छाँड़ि भुवलोक। अकबर साहिं गए परलोक ॥ ७ ॥
कासीसुर जहँ तहँ गलगजे। जहाँ तहाँ तें थाने भजे।
पातसाहि भौ साहि सलेम। माड़ौ छितिमंडल को छेम ॥ ८ ॥

(कवित्त)

दामबल, दलबल, बाहुबल बुध्दिबल
बंसहू को बल जु निधानो जान्यौ जबही।

बाँधि कटितट फेंट पीतपट की निकट
पाँयनि पयादो उठि धायौ प्रभु तबही।
निपट अनाथनाथ दीनानाथ दीनबंधु
दयासिंधु 'केसौदास' साँचे जाने अबही।
हाथी कौं पुकार लागे काननि सुनें हो हरि
औड़छे कौं लागत पुकार देखे सबही॥ ९॥

(दोहा)

दान लोभ सब आदि दै कही जु बूझी मोहि।
जाहु जहाँ जाके गुननि रही सकल मति तोहि॥ १०॥

दान उवाच

जगमाता औरौ कहौ जौ परिपूरन प्रेम।
बीरसिंघ कहँ कह दयौ साहिब साहि सलेम॥ ११॥

श्री देव्युवाच (चौपही)

दान लोभ तुम परम सुजान। जानत हौ सबके परवान।
अकबर साहि गए परलोक। जहाँगीर प्रभु प्रगटे लोक॥ १२॥
गाजी तखत बैठियौ गाजि। सोक गए लोगन के भाजि।
पारस सो सबको गिरि गयौ। चिंतामनि सो कर परि गयौ॥ १३॥
अत्तैबर सो भयौ अरिष्ट। सुरतरु सो देख्यौ दृग इष्ट।
अथै गयौ ससि सो, सुनि, दान। सूरज सो भयो उदित जहान॥ १४॥
रज तम सत्व गुननि के ईस। तिन करि मंडल मंडित दीस।
बैठे एकछत्रतर लसैं। छाँह सबै छितिमंडल बसैं॥ १५॥
ऐसो राज रसा महँ करै। भुमिया के नाके भुव धरै।
गढ़नि गढ़ोई के बल देव। सेवत कर जोरे नरदेव॥ १६॥
राजसिंघ सोहत चहुँ पास। दिन देखत गजराज प्रकास।
बैठे तखत सकल सुख लियें। सुधि आई हजरत के हियें॥ १७॥
राजा बीरसिंघ लै आउ। दियौ तुरंगम स्यौं सिरुपाउ।
पठयौ लेखि अंबिका जानु। अपनें हाथ लिख्यौ फरमानु॥ १८॥
डाँग चौकिया पहुँचे सेख। बीरसिंघ देख्यौ सुभ वेख।
यौं पायौ प्रभु को फरमान। महामृतक ज्यौं पावै प्रान॥ १९॥
लै सँग भारथ बीर सुठाउँ। तव प्रभु आए ऐरछ गाउँ।
हिलिमिलि रामसाहि नरनाथ। ह्वै गयौ इंद्रजीत को साथ॥ २०॥
खेलत हँसत वहुत दिन भरे। आए निकट नगर आगरे।
ऐसो मग देख्यौ वाजार। मनौ गनागन कवित विचार॥ २१॥
देख्यौ जोई सोइ अपार। मनहुँ धनपती को व्यवहार।
जाहि देखि भूल्यौ संसार। देख्यौ अति अद्भुत वाजार॥ २२॥

(कबित्त)

परम बिरोधी अबिरोधी ह्वै रहत सब दीनन के दानि दिन हीननि को छेम है।
अधिक अनंत आप सोहत अनंत अति असरन सरननि रखिबे को नेम है।
हुतभुक हितमति श्रीपति बसत हिय जदपि जलेस गंगाजल ही सों प्रेम है।
'केसौदास' राजा बीरसिंघ देव देखि कहैं रुद्र है समुद्र है कि साहिब सलेम है ॥२३॥

(चौपही)

जहाँगीर जगती को इंद्र। देख्यौ बिरसिंघ देव नरिंद।
कर जोरे सेवत दिगपाल। बिद्याधर, गंधर्ब रसाल ॥ २४ ॥
सोभत है गजराज चरित्र। ढारत चँवर कलानिधि मित्र।
सकल मंजुघोषा सुंदरी। गावति सुखद सुकेसी खरी ॥ २५ ॥
पूरब दिव दुति दीपित करै। मनि गति मंडित बज्रहि धरै।
साहि देखि राख्यौ उर लाय। ज्यौं हरि सुखद सुदामहिं पाय ॥ २६ ॥
देखत दुख्ख दूरि सब गयौ। पायनि परि जब ठाढ़ो भयौ।
पूछैं साहि सबनि सुख पाय। नीके हैं राजन के राय ॥ २७ ॥
अब नीके देखे जब पाय। उज्जल अमल कमल से राय।
हय गय हीरा बसन हथ्यार। हजरत पहिरायौ बहु बार ॥ २८ ॥
भारथसाहि बहुरि इंद्रजीत। मिलवत भयौ साहि को मीत।
जब जब गयौ बीर दरबार। तब तब सोभा बढ़ै अपार ॥ २९ ॥
खान राउ राजा मनहार। ऊपरि बीर लिये हथियार।
कटरा कटि दाबैं तरवारि। ताहि समीप रहैं सुखकारि ॥ ३० ॥
कबहूँ हय गय हेम हथ्यार। कबहूँ खग मृग बसन अपार।
कबहूँ बाने भूषन छेम। दै बहुरावत साहि सलेम ॥ ३१ ॥
कौन गनै राजा अरु राउ। खोजा देखै सब उमराउ।
काहू को न जाय मन जहाँ। बिरसिंघ देउ को आसन तहाँ ॥ ३२ ॥
एक समय हजरति हँसि कह्यौ। बीरसिंघ तूँ दुख सों रह्यौ।
और बड़ौ बड़ौ परिगन सेखि। मेरो राज आपनो लेखि ॥ ३३ ॥
जाहि भुवन त्रिभुवन सुख देखि। सबै तुमारो जो कछु पेखि।
सकल बुँदेलखंड है जितौ। तुमकौं मैं दीनौ है तितौ ॥ ३४ ॥
औरौ बड़े बड़े परिगने। तो कहँ मैं दीने बहु घने।
हौं जु भयौ साहिनि सिरताज। तुहू होइ रायनि को राज ॥ ३५ ॥
तोहि न मानै मारौं ताहि। बिदा होय अपने घर जाहि।
बीरसिंघ कीनी तसलीम। गाजी जहाँगीर के भीम ॥ ३६ ॥

---

[२३] प्रेम—नेम (भारत, शुक्ल)। [२५] सोभन···मित्र—भारत' में नहीं है। [२९] को मीत—के मीत (शुक्ल)। [३०] ताहि—माहि (शुक्ल)। [३२] बिरसिंघ०—बीरसिंह (शुक्ल)। [३५] तुहू—तुही (भारत)।

तब तिन बोलि इंद्रजित लए। करन बिचार सु डेरहि गए।
कियौ बिचार बहुत बिधि जाय। एकहु भाँति न जिय ठहराय ॥ ३७ ॥
कोऊ छाँडै कोऊ धरै। कछु बिचार नहिँ जिय मैँ परै।
जाय गही आगेँ आपनै। हमैँ जतहरा लेत न बनै ॥ ३८ ॥
कह्यौ सरीफखान समुझाय। बीरसिंघ सोँ अति सुख पाय।
अपनी भुँइ मेँ तूँ प्रभु होहि। मुगल गएँ दुख ह्वैहै तोहि ॥ ३९ ॥
कीनी बिदा बेगि पहिराय। दिये परिगने बहु सुख पाय।

(दोहा)

राजा बिरसिँघ देव की बिदा करी सुलितान।
ऐरछगढ़ आए सुने 'केसव' बुद्धिनिधान ॥ ४० ॥

(चौपही)

आए घर तब भारथसाहि। कही राज सोँ बात निबाहि ॥ ४१ ॥
पटहारी आए नृप राम। सबही जान्यौ बिग्रह काम।
यह सुनि प्रताप राउ बुलए। बीरसिंघ पुर ऐरछ गए ॥ ४२ ॥
यह सुनि रामसाहि गुनग्राम। बैठे मतैँ आपने धाम।
बिजैनरायन देवाराय। लीने गिरधरदास बुलाय ॥ ४३ ॥
मंगद पैमु बहादुर अली। बूझी बात इन्हैँ प्रभु भली।
कहौ मतौ तुम बुद्धिबिसाल। करने मोहि कहा यहि काल ॥ ४४ ॥
ऐसी बात बुँदेलनि कही। एक जूझ हम कीजै सही।
जूझि गयौ हमरो परिवार। तब तुम कीजहु और बिचार ॥ ४५ ॥
कह्यौ पायकनि मंत्र सु येहु। उनही की बातैँ सुनि लेहु।
तब करि लीबो तैसो मतौ। अब ही तेँ उनसोँ जनि दतौ ॥ ४६ ॥
दुहूँ पिरिन कहि लीनो जबै। मिश्र उदैनि बोलियौ तबै।
हौँ जु कहौँ सब सुनिबौ आप। मिले सुने हम राउ प्रताप ॥ ४७ ॥
उनको बेटा केसौदास। तिनही देस दियौ उदवास।
इंद्रजीत घर नाहीँ राज। उग्रसेन बीचे यहि काज ॥ ४८ ॥
बेटा ऐसो भयौ न होय। मानौ जानि हमारो लोय।
भैया बंधु मिलत ही जात। परिजहु लोग सबै अकुलात ॥ ४९ ॥
नाहीँ फौज माँझ सरदार। कीजै कैसो बुद्धिबिचार।
एरछ ही जैयै सब छोड़ि। हौँ जु कहत हौँ ओली ओड़ि ॥ ५० ॥
उहाँ गयौ मिटि जैहै भर्म। इहि बिधि रहत सबन को धर्म।
मीठो खाएँ बिनसै व्याधि। कौन मरै औषधि कटु साधि ॥ ५१ ॥

---

[४५] जूझि०—सूझ हम कीने (शुक्ल)। [४८] दियौ—बियौ (भारत)।
[५०] ओली०—त्रोड़ी त्रोड़ि (भारत)।

(दोहा)

सुगलनि आएँ जौ करहु अपने चित्त बिचार।
तौ अबही सब समझियै बूझौ प्रभु परिवार ॥ ५२ ॥

(चौपही)

यहै सबनि ठहराई बात। कियौ पयानो होतहि प्रात।
रामदेव एरछ गढ़ गए। बीरसिंघ आनंदित भए ॥ ५३ ॥
बहुत भाँति तिन आदर कियौ। फाट्यो देखि रोय कै हियौ।
कीनौ सब जन कैसो काम। मनहुँ भरत कें आए राम ॥ ५४ ॥
भोजन करि कीनौ बिश्राम। भयौ दिवस को चौथो जाम।
जितने साहि परिगने दिये। तिनके पटे आपु कर लिये ॥ ५५ ॥
बीरसिंघ अति आदरभरे। रामदेव के आगें धरे।
रामदेव बिष्टारौ करयौ। बातनि बातनि अंतर परयौ ॥ ५६ ॥

(दोहा)

निपट अटपटी काल गति करन गए है प्रीति।
भूलि सयान सबै गए है गई उलटी रीति ॥ ५७ ॥

(चौपही)

बहुत विनौ विरसिंघ द्यो कियौ। राजा तिन में चित्त न दियौ।
कियौ मतौ कूरो सु अपार। भूलि गयौ सब चित्त विचार ॥ ५८ ॥

(दोहा)

जन परिगहु उमराउ सब बेटा भैया बंध।
बीरसिघ कों मिलि गए बिविधि भाँति प्रतिबंध ॥ ५९ ॥

(चौपही)

नृप पठाहरी आए जबै। बीर चले एरछ तें तबै।
आए वीरसिंघ पिपरहाँ। मिल्यौ खान अबदुल्ला तहाँ ॥ ६० ॥
छाँडि लचूरा छाँडि गुमान। मिल्यौ तुरत ही दरियाखान।
छूटि गयौ पुनि गढ़ कुंडार। छूट्यौ जंत्र घटा गढ़सार ॥ ६१ ॥
छाँडी पठाहरी नृप राम। मेले आनि बनिगवाँ ग्राम ॥ ६२ ॥

(दोहा)

प्रात भए तारानि ज्यौं रवि को होत प्रवेस।
हरें हरें छूटत चल्यौ 'केसव' दीरघ देस ॥ ६३ ॥

इति श्रीमत्सकलभूमंडलाखडलेश्वरमहाराजाधिराजराजाश्रीवीरसिंहदेव चरित्रे दानलोभविंध्यवासिनीसंवादे जनपदसंग्रहवर्णननाम नवमः प्रकाशः ॥ ९ ॥

---

[६०] पठाहरी—पटहारी (शुक्ल)।

१०

दान उवाच (चौपही)

राजा रामसाहि के लोग। पुरिखा गति ते सुख संजोग।
पायक प्रोहित परिगहु दास। फौजदार सिकदार खवास॥ १॥
सुत सोदर परिवार अपार। बृती सुरजु जानै ससार।
राजा बीरसिघ कौं अबै। कैसें मिलन बूझियै सबै॥ २॥

श्री देव्युवाच

रामराज बैठे तहिँ खरे। उदासीन सिगरेई करे।
सुनि अभिषेक समै नरनाथ। एकौ रानी लेइ न साथ॥ ३॥
सुतनि समेत सबै त्रिय त्रसीं। अपने अपने गॉवनि बसीं।
रिपुदलखंडन दुरगादास। दान कृपान बिधान निवास॥ ४॥
जासों प्रेम हियें जब हयौ। उदासीन सिगरो कुल भयौ।
रन भैरव भनि खान जहान। जाके जस कों जपै जहान॥ ५॥
ताकौं बिरतु बिबिधि बिधि रयौ। सो लै अपने पुत्रनि दयौ।
सैद समुद्र गहिर अति घोर। जूझ्यौ आमनदास अमोर॥ ६॥
ताके सिर सॉटे को गाँउ। अपने सुत कौं दयौ सुभाउ।
मुगल बुलाय बानपुर लियौ। राउ प्रताप परावो कियौ॥ ७॥
तजि पँवार भगवान सुधीर। कीनौ साहिब भॉट वजीर।
सुंदर जिहिं लोभहि दुख दिये। ऐसे पुरिख दूर तिन किये॥ ८॥
रैयति राउत भए उदास। जाचक जीव न आवै पास।
दोऊ अपने अपने धाम। देखत तरुनिन के गुनग्राम॥ ६॥
राजा श्री घरघर पग धरै। दुवौ बिकल रच्छा को करै।
ताराचंद प्रेम के पूत। अरु प्रोहित मंत्री रजपूत॥ १०॥
इहिं बिधि उदासीन सब भए। बीरसिंघ राजहि मिलि गए।
लै पठाहरी बीर सुभाउ। मेले आनि बरेठी गॉउ॥ ११॥

(दोहा)

बीर बरेठी बनिगवॉ राजा राम सुजान।
आध कोस को अंत है दुहूँ भूप उर आन॥ १२॥

(चौपही)

आवत जात गुपाल खवास। दुहूँ ओर को करि उपहास।
एही बीच खुरू सुलतान। भाग्यौ दुचितो भयौ जहान॥ १३॥

---

[५] रन०—सभै रोप (भारत)। [१३] एही०—यही बीच खुसरो (शुक्ल)।

पीछें लग्यौ साहि सिरताज। ज्यौं सुबास पीछें अलिराज।
बीरसिंघ के सुत सँग गए। इंद्रजीत घर आवत भए॥ १४॥
आनि राम के पाँयन परे। मानौ लछिमन आनँद भरे।
रामदेव भेटे सुख पाय। जैसे प्यासो पानिहि पाय॥ १५॥
आनंदे जनपद चहुँ ओर। मेघ गजैं ज्यौं चातक मोर।

राम उवाच

तुमही मेरे सुत के ठौर। भैया बंधुन के सिरमौर॥ १६॥
तुमही बल बुधि बचन बिचारु। तुमहि बाहु लोचन उर चारु।
तुमही सेनापति सरदार। तुमही कर तुमही करवार॥ १७॥
तोही राज काज को भार। सौंप्यौ तुमही सब परिवार।
बीरसिंघ उत राउ प्रताप। जूझ करहु कै करहु मिलाप॥ १८॥
तजी आजु तें मैं सब बात। सबै लाज तेरे सिर तात।
पति अरु संपति सब सुखदाय। तुम राखौ ज्यौं राखी जाय॥ १९॥
मंत्री मित्र बोलि नरनाथ। सौंपे इंद्रजीत के हाथ।
दुहुँ दिसि भटन होय भटभेर। दिन उठि इत उत टेराटेर॥ २०॥
बिरसिंघ कों सौंप्यौ परिवार। इहि बिच मिले कटेरावार।
एक वेर गोपाल खवास। स्यामदास परतीतिनिवास॥ २१॥
पायक दुर्जन लीने संग। गए बरेठी बात प्रसंग।
बीरसिंघ सौं बात बनाय। भारथसाहिहि गए लिवाय॥ २२॥
सुख सों सौंपे भारथसाहि। सबै साहिबी सौंपी ताहि।
भैया बंधु हते भट जिते। रैयति राउत सौंपे तिते॥ २३॥
जेते राज काज के गाँउ। राखे सब बाहिरे सुभाउ।
बीरसिंघ अरु भारथसाहि। कीनी सौंज दुहूँ चित चाहि॥ २४॥
इतनी बात जु मेटै कोय। ताको भलो न कबहूँ होय।
ताके बीच दए जगनाथ। हरि सामुहें पसार्‌यौ हाथ॥ २५॥
राजा अपने वचन रहाय। तजि बनिगवाँ ओड़छें जाय।
इन बातन की करी पतीठि। आए कुँवरहि छोड़ि बसीठि॥ २६॥
जब यह बात सुनी नृप राम। भूलि गए सिगरेई काम।
अब हम तुमकों ऐसी कही। करि यह सौंह छाँडियहु मही॥ २७॥
सबै बसीठी झूठी करी। बिन पूछें जु छुवै नरहरी।
तब बसीठ उठि एकै लए। इंद्रजीत के रावर गए॥ २८॥
इंद्रजीत सुनियौ यह बात। तन मन दुख पायौ निज गात।
फरि करि अपने चित्त विचार। गए राजा पहँ राजकुमार॥ २९॥
तिनि यह बात नृपति सों कही। अब तौ सबै बसीठी रही।
जब भगवंत होय प्रतिकूल। फूल फूल तें होय त्रिसूल॥ ३०॥

---

[२९] पहँ—पर (भारत)। [३०] त्रिसूल-त्रिफूल (भारत)।

तजि बनिगवाँ चलहु नरनाथ। हरि राखियै आपने हाथ।
गए औड़छैं जबहि नरेस। तबही जानौ छूट्यौ देस ॥ ३१ ॥
राजा राम औडछैं आय। बहुत भाँति मन कों समुझाय।
कहा होय गुनगन के नाथ। फाट्यौ दूध न आवै हाथ ॥ ३२ ॥
मंगद पायक प्रेम बनाय। पठए केसव मिश्र बुलाय।
जो कछु करि आवहु सु प्रमान। या कहि पठए राम सुजान ॥ ३३ ॥
गए बरेठी कहँ बहु घने। बीरसिंघ पै तीनौ जने।
पहिले देखे केसवदास। बीरसिंघ नृप रूपप्रकास ॥ ३४ ॥
बैठे सिंघासन सिर छत्रु। चौंर ढुरत भ्रमि भाजत सत्रु।
निकट भयें देख्यौ भवभूप। जैसो कछु सुभाव को रूप ॥ ३५ ॥
नियरे ही बैठारे भूप। कुसल प्रस्न पूछी बहु रूप।
पायक प्रेम चलाई बात। सुनन लग्यौ नृप उर अवदात ॥ ३६ ॥
प्रेम कहै जोई जब बात। बीरसिंघ सुनि हँसि हँसि जात।
समुझे प्रेम सहज को हास। मंगद जान्यौ है उपहास ॥ ३७ ॥
बोलि कह्यौ यह नृप सिरमौर। मेटहु सौंह चलावहु और।
केसव मिश्र कही यह बात। सुनिये महाराज के तात ॥ ३८ ॥
राजन सौं बैठे दीवान। बिनती करत परम अज्ञान।
जब हम समय पायहैं राज। बिनती करिहैं नृप सिरताज ॥ ३९ ॥
इतनी सुनि हिय अति सुख पाय। बैठे न्यारे ह्वै नृप जाय।
बोलि लिये कबि केसवदास। कियौ नृपति यह बचन प्रकास ॥ ४० ॥
कासीसनि के तुम कुलदेव। जानत हौ सबही के भेव।
जानत भूत भबिष्य बिचार। बर्तमान को समुझत सार ॥ ४१ ॥
जिहिं मग होय दुहुन को भलौ। तेहि मग होहि चलायो चलौ।
यह सुनि केसवदास बिचारि। बात कही सुनियै सुखकारि ॥ ४२ ॥
नृपति मुकुटमनि मधुकरसाहि। तिनके सुत ह्वै दिन दुखदाहि।
दुहूँ भाँति सुख के फर फरे। परमेस्वर तुम राजा करे ॥ ४३ ॥
तुम नरहरि नृप कीने नाहु। कहौ कौन पर मेटे जाहु।
है द्वै बाट भली अनभली। चलिबो कुसल कौन की गली ॥ ४४ ॥
बाँई एक दाहिनी ओर। सुखद दाहिनी बाँई घोर।
बीरसिंघ तजि बोले मौन। कौन दाहिनी बाँई कौन ॥ ४५ ॥
सकल बुद्धि तेरें नरनाथ। दल बल दीरघ देख्यौ साथ।
देह दाम बल दीसहि घने। धर्म कर्म बल गुन आपने ॥ ४६ ॥
सोधि सील बल दीनौ ईस। सकल साहि बल तेरे सीस।
तुमहि मित्र अकपट बलवंत। जुद्ध सिद्धि बल अरु जसवंत ॥ ४७ ॥

---

[४४] नाहु—नाउ (शुक्ल)।

उनके इनमें एक न आज। कीने चित्त जुद्ध की साज।
जुद्ध परे तें जानि न परै। को जानै को हारै मरै॥ ४८।
इत को उत को दल संघरै। तुमकौं दुहूँ भाँति घटि परै।
उत आँगें भुवपाल अजीत। सो जूझै जूझै इंद्रजीत॥ ४९॥
इंद्रजीत बिन राजा मरै। राजा बिन पुर जौहर करै।
पुर में ब्राह्मन बसत अपार। कीजै राज जु परै बिचार।
यह मैं बाट बताई बाम। महा बिषम जाके परिनाम॥ ५०॥

(दोहा)

भैया राजा बाम्हननि मारें यह फल होय।
स्वारथ परमारथ मिटै बुरो कहै सब कोय॥ ५१॥

(चौपही)

सुनियै बाट दत्त दाहिनी। जो दिन दुसह दुक्ख दाहिनी।
इक पुरिखा अरु राजा बृध्ध। दूहूँ दीन दीरघ परसिध्ध॥ ५२॥
नैनबिहीन रोगसंजुक्त। जीवत नाहीं जेठो पुत्र।
ताके द्रोह बड़ाई कौन। सुख दैकै बैठारौ भौन॥ ५३॥
सेवा कै सुख दै सुखदानि। पाँउ पखारि आपने पानि।
भोजन कीजै तिनके साथ। ढारौ चौंर आपने हाथ॥ ५४॥
पूजा यौं कीजै नरदेव। ज्यौं कीजै श्रीपति की सेव।
जौं लगि रामसाहि जग जियैं। बनिहै राज सेवही कियैं॥ ५५॥
पीछे है सब तुमहीं लाज। लीबो पद, जन साज समाज।
निपटहि बालक भारथसाहि। तिन तन कुसल कृपादृग चाहि॥ ५६॥
भारथसाहि राउ भूपाल। उग्रसेन सब बुद्धिबिसाल।
इनको तुम्हें सुनौ, नरनाथ। राजा सौंपे अपने हाथ॥ ५७॥
तब तुम जानौ ज्यौं त्यौं करौ। राज लाज अपने सिर धरौ।
अपने कुल की कीरति कली। यहई बाट दाहिनी भली॥ ५८॥
यह सुनि सुख पायौ नरनाथ। कही आपने जिय की गाथ।
राजहि मोहिं करौ इकठौर। बिबिधि बिकारनि की तजि दौर॥ ५९॥
मैं मानी, जौं मानै राज। सफल होहिं सबही के काज।
तब हँसि मंगद प्रेम बुलाय। कीनी बिदा परम सुख पाय॥ ६०॥
सुनि यह राजहि परो बिचार। कीजै मिलन बिप्र यहि बार।
इहि बिच प्रेम कह्यौ हरवाय। कल्यानदे रानी सों जाय॥ ६१॥
हमन मते को जानै भेव। जानै मिश्र कि बिरसिंघ देव।
ज्यौं क्यौंहू घटि बढ़ि परि जाइ। हमकों दोष न दीजै माइ॥ ६२॥

[६१] हरवाय–हरखाय (भारत)।

इतनो कहत महाभय छियौ। कल्यानदे रानी को हियौ।
रानी कह्यौ सु पूछै काहि। लै आवहु सुत भारथसाहि ॥ ६३ ॥

(कुंडलिया)

कीनौ कछु कल्यानदे कल्यान न चित चाहि।
प्रेम जु कीनो प्रेम कछु ल्याए भारथसाहि।
ल्याए भारथसाहि ढाहि मरजाद पंथ की।
मिलई धूरिहि धरा धरनिधर धर्म अरथ की।
फूटि गयौ जस कलस फट्यौ पट मन रस भीनौ।
परमेस्वर पग पेलि बुरो बरु अपनो कीनौ ॥ ६४ ॥

इति श्रीमत्सकलभूमंडलाखंडलेश्वरमहाराजाधिराजरानावीरसिंहदेवचरित्रे दानलोभ-विंध्यवासिनीसंवादे शपथभंगवर्णनं नाम दशमः प्रकाशः ॥ १० ॥

११

जबहीँ टूटि बसीठी गई। तबही बरषा हरषित भई।
आई बीच करन कौँ मनौ। सकल साज साजेँ आपनौ ॥ १ ॥
चहूँ दिसा बादल दल नचै। उज्जल कज्जल की रुचि रचै।
दिसि दिसि दमकति दामिनि बनी। चकचौंधति लोचन-रुचि घनी॥ २ ॥
गाजत बाजत मनौ मृदंग। चातक पिक गायक बहु रंग।
नंदन बन मेँ रंभाबनी। तहँ नाचत जनु रंभा बनी ॥ ३ ॥
अति सज्जल बद्दल की पाँति। तामेँ हंसावलि बहु भाँति।
जल स्यौँ संखावलि पी गई। उगिलत ताकी सोभा भई ॥ ४ ॥
सक्र सरासन सोभा भर्यौ। बरन बरन बहु जोतिन धर्यौ।
रतनमई जनु बरुना मार। बर्षागम दिवि गंधी बार ॥ ५ ॥
बरषत बुंद बृंद घन घने। बरनत कबिकुल बुधिबलसने।
बीर प्रगासा नर परगास। ताको धूम धर्यौ आकास ॥ ६ ॥
खेचर दृगगन दीरघ दली। जिनकी जलधारा जनु चली।
बिन अपराध धरा तन नए। तिनकी पीड़ा पीड़ित भए ॥ ७ ॥
मेघ ओघ मघवा बल बढ़े। मानौ तमकि तपनि पर चढ़े।
गरजत ब्याजनि बजैँ निसान। जंत्र पात निर्वात निधान ॥ ८ ॥
इंद्रधनुष घन सज्जल-धार। चातक मोर सुभट किलकार।
खद्योतन कौँ बिपदा भई। इंद्रवधू घर घरनिहि दई ॥ ९ ॥

---

[६४] कलस—सबल (भारत)। पट—पेट (वही)।

किधौं धूम के पटल बखानि। जगलोचननि बिलोपक मानि।
कैधौं तमकि बढ्यौ तमराज। ज्योतिवंत सब मेटन आज॥ १० ॥
रिच्छराज-सेना सी लसै। दच्छिनमुखी न काहू त्रसै।
अनसूया सी सुनौ सुदेस। चारु चंद्रमा गर्ब सुबेस॥ ११ ॥
रच्छसपति सो दल देखियौ। स्वर्ग सामुही गति लेखियौ।
कुसल कालिका सी सोहियै। नीलकंठ तन मन मोहियै॥ १२ ॥
परकीया सी अभिसारिनी। सतमारग की बिध्वंसिनी।
द्रुपदसुता कैसी दुति धरै। भीम भूरि भावनि अनुसरै॥ १३ ॥

(दोहा)

बरनत 'केसव' सकल कबि बिषम गाढ़ तमसृष्टि।
कुपुरुषसेवा ज्यौं भई, संतत निष्फल दृष्टि॥ १४ ॥
बीते बरषाकाल ज्यौं आई सरद सुजाति।
गए अँध्यारी होति है चारु चाँदनी राति॥ १५ ॥

(चौपही)

चिकुर चौंर, रुचि चंद्राननी। कुंद दंतदुति मदमोचनी।
भृकुटि कुटिल सुधनु दुति सनी। खंजरीट चंचल लोचनी॥ १६ ॥
बिंबाधर सुक नासा बनी। तिलक चिलक रुचि जात न भनी।
अंबर लीन पयोधर धरै। जलजहार मनु हरषित करै॥ १७ ॥
अमल कमल कर पट पावनी। राजहंस मंदर सावनी।
निसि बरषागत मनहारिनी। मानौ सरद प्रतीहारिनी॥ १८ ॥
लच्छिमन कैसी लच्छिम लसै। रामानुगत प्रेम हिय बसै।
मढ़ी देव दीपति अनुसार। अर्द्ध चंद्रमा ललित लिलार॥ १९ ॥
मंडित मंडल हंस अपार। मनौ सारदा उदित उदार।
नारद कैसी दसा बिसेषि। तमकि तमोगुनलोपक लेखि।
पतिदेवतानि कैसी सिद्धि। समुभत सतमारग की बुद्धि॥ २० ॥

(दोहा)

काहू को न भयौ कहूँ ऐसो सगुन न होत।
बीरसिंघ के चलतहीं, भयौ मित्रउद्दोत॥ २१ ॥

(चौपही)

सोहत अरुनरूप भगवंत। जनु रिपुरुधिरवलित वलवंत॥ २२ ॥
रामचंद्रजू कों अनुसरै। तारापति के तेजहि हरै।
चितवत चित्त कुमुदिनी त्रसै। चोर चकोर चिता सी लसै॥ २३ ॥

---

[१९] लच्छिम–लक्ष्मी (शुक्ल)। [२०] मडल–मडप (शुक्ल)। पति–तमकि (मही)। [२१] कहूँ–कहू (भारत)। [२२] वलित–चली (भारत, शुक्ल)।

(छप्पय)

अरुनगात अति प्रात पद्मिनीप्राननाथ भय।
जनु 'केसव' ह्वै गए कोकनद कोक प्रेममय।
किधौं सक्र को छत्र मढ्यौ मानिकमयूखपट।
परिपूरन सिंदूर पूर कैधौं मंगलघट।
सुभ सोभित कलित कपाल कै किल कापालिक काल को।
ललित लाल कैधौं लसत दिगभामिनि के भाल को॥ २४॥

(चौपही)

परसे कर कुमुदिनि कौं लैन। कैधौं कमलनि कौं सुख दैन।
यहै जानि जनु तारा भगी। जहँ तहँ अरुन जोति जगमगी॥ २५॥

(दोहा)

दिनकर बानर अरुनमुख चढ़्यौ गगनतरु धाय।
'केसव' ताराकुसुम बिन कीनौ झुकि झहराय॥ २६॥

(चौपही)

गगन अरुन दुति लसी बिसाल। ज्यौं बारिधि बड़वानलज्वाल।
हरिदल खुरनि खरी दलमली। खचरहिं धूरि पूरि मनु चली॥ २७॥
मिटी अरुनता सोभा भनौ। नित्तकाल जमनिका मनौ।
दूरहि तें तम नासत भयौ। जनु अज्ञान जगत को गयौ॥ २८॥

(दोहा)

जही बारुनी की करी रंचक रुचि द्विजराज।
तही कर्यौ भगवंत बिन संपति सोभा साज॥ २९॥

(चौपही)

चलत गयंद तरुन पर चढ़े। मनौ मेघमाला हरि बढ़े।
नदी बेतवै परम पवित्र। देखी वीर नरेस बिचित्र॥ ३०॥
दरसे दूरि करै तनताप। परसे लोपै पाप-कलाप।
स्नान करें सब पातक हरै। देखत ज्ञान-उदौ जल करै॥ ३१॥
सब्दति चंचल चतुर बिभाति। मनौ राम सों रूसी जाति।
अबिवेकी कैसी गति गहै। परसि असाधु साधुगति लहै॥ ३२॥
बिधिमग मति सी बड़भागिनी। हरिमंदिर सों अनुरागिनी।
हरिपदपदवी सी संसार। चक्रादिन के चिन्ह अपार।
भवमारग भूमिनी बिचारु। बृषचरननि के चिन्हित चारु॥ ३३॥

(दोहा)

सुर नर मुनि गुन गनत गन 'केसव' सेवत सिद्ध।
कलि में गंगाजल सवै कहत पुरान प्रसिद्ध॥ ३४॥

(चौपही)

पार उतरि तब करि अस्नान। गए बीरगढ़ दै बहु दान ॥ ३५ ॥
गए सु बीरसिंघ गढ़ बीर। कै गए राम सचित्त सरीर।
राजा रानी लै इंद्रजीत। लै भूपाल राउ मनमीत ॥ ३६ ॥
कह्यौ सबै तुम बुद्धिबिसाल। करने कहा मोहि यहि काल।
रानी कह्यौ सुनौ नरनाथ। बुधिबल इंद्रजीत के साथ ॥ ३७ ॥
करौ जु इनके चित्त बिचार। और कछू समुझौ इहि बार।
इंद्रजीत यह कह्यौ प्रबीन। मेरे जीवत होहु न दीन ॥ ३८ ॥
जाही माँझ तुम्हारो काजु। हमको सोई करने आजु।
कह्यौ राउ भूपाल विचारि। कीजै केवल जूझ बिचारि ॥ ३९ ॥
केसव मिश्र कह्यौ गुनि चित्त। दोऊ तुम हौ इनके मित्त।
कहिजै जिहिं सब को प्रतिपाल। अबही नही सकुच को काल ॥ ४० ॥
जितनो जुद्ध करन को साजु। तामें देख्यौ एक न आजु।
तुम में नहीं मंत्र-बल एक। नहीं मित्रबल बुद्धिबिबेक ॥ ४१ ॥
दल बल नहीं दुर्गबल आजु। देखत नहीं दानबल साजु।
नहीं बाहुबल राज सरीर। नहीं ईसबर तुमकौं बीर ॥ ४२ ॥
समझौ अपने मन मत सुद्ध। कहौ कौन बिधि जीतौ जुद्ध।
जूझ बूझ तीनौ फल फरे। जीति हारि कों प्रभु साँकरे ॥ ४३ ॥
जौ तुम केहूँ जीतौ राज। उनकी है हजरति सों लाज।
जौ तुम भाजि जाउ तजि भौन। तौ राजा को रक्षक कौन ॥ ४४ ॥
जौ तुम जूझि जाउ नृपनाथ। राजा परै सत्रु के हाथ।
जीवत ताको होय अलोक। अरु दिन दूनो बाढ़ै सोक ॥ ४५ ॥
तातें हठ छाँडहु बर बीर। हठी भए सब परम अधीर।
हठ ही अधगति कीन त्रिसंक। हठ ही हारी रावन लंक ॥ ४६ ॥
हठ तें भयौ कंस को काल। हठ तें दुरजोधन कों साल।
मंत्री सठ द्विज राजा हठी। इतनी बात देखियै नठी ॥ ४७ ॥
सब तजि बीरसिंघ कौं आज। लै आवहु घर दीजै राज।
सेवक ज्यौं वे करिहैं सैव। ये है बीर रह्यौ नरदेव ॥ ४८ ॥
यह सुनि रानी अति दुख पाय। केसव मिश्र दए बहुराय।
बहुत राज सों औगुन गनै। इनकों जनि जानौ आपनै ॥ ४९ ॥
इंद्रजीत पादारघ लए। केसौदास बीरगढ़ गए।
बीरसिंघ तब कियौ पयान। लियौ बबीना उत्तिम थान ॥ ५० ॥

(दोहा)

आवत सैद मुदफ्फरहि कीनौ फेरि पयान।
उपवन स्वामितराय कैं मेल्यौ बुद्धिनिधान ॥ ५१ ॥

[४३] बूझ—बूच (शुक्ल)। साँकरे—सङ्करे (वही)।

(चौपही)

आए तिहिँ डेरा जनु भूत। खोजा अबदुल्लह के दूत।
देखि लिखे के आखर नए। बीरसिंघ चित दुचिते भए॥ ५२॥
जाकेँ होय प्रेम अधिकाइ। जाइ सु राजा देय जनाइ।
सावधान ह्वै लोहो गहौँ। पुर उजारि सूधे ह्वै रहौँ।
लिखि पठयौ तब केसवदास। लेख देखि कीनौ उपहास॥ ५३॥

(दोहा)

सभय सरोष सलोभ कछु समद मोह को जाल।
आए करन बसीठई आनंदी गोपाल॥ ५४॥

(चौपही)

मन औरै मुँह औरै कहै। सत्रु मित्र की सुधि नहिँ लहै॥ ५५॥
देखै सुनै न समुझै बात। जानै नहीँ काल की जात।
तिनको सिगरो देखि सयान। बीरसिंघ कीनौ प्रस्थान॥ ५६॥
तिनही के आगे बलबीर। सेना बाँटि दई रनधीर।
किये बिचारि चमूपति चारि। सूर सुबुधि ते हितू बिचारि॥ ५७॥

इति श्रीमत्सकलभूमडलाखंडलेश्वरमहाराजाधिराजराजाश्रीवीरसिंहदेवचरित्रे दानलोभविंध्य-
वासिनीसंवादे मंत्रविभ्रमो नाम एकादशमः प्रकाशः॥ ११॥

१२

दान उवाच (चौपही)

विंध्यबासिनी सुनहु सभाग। किये कहा करि चमूविभाग।
क्यौँ पुर आयो कहौ निदान। बीरसिंघ अबदुल्लह खान॥ १॥

श्रीदेव्युवाच

सुनौ दान तुम जुद्धविधान। चारि चमूपति बुद्धिनिधान।
जादौराय जोर गंभीर। बीरसिंघ को दूजौ वीर॥ २॥
कृपाराम ताको सुत राज। जाके सीस लाज की लाज।
बीरसिंघ मंत्री सो कियौ। राजभार ताके सिर दियौ॥ ३॥
साँचो सूरो मित्र सयान। सदा सहोदर पुत्र प्रमान।
सो समर्थ सेना मुख चल्यौ। राजसिंघ कोँ जिहि दल दल्यौ॥ ४॥
भयौ दमोदर तजि सब साज। मारयौ जिहिँ रन मेँ जुगराज।
मुकट गौर को पूत बसंत। चल्यौ वाम दिसि बनि बलवंत॥ ५॥

केसौदास जुद्ध जमदूत। देवागढ़ गूजर को पूत।
सो दच्छिन दच्छिन दिसि चल्यौ। हसनखान कों जिहि दल दल्यौ ॥ ६ ॥
ईस्वर राउत जुद्ध अभीत। लोधी लोहु गहै रनजीत।
सो सेना के पाछें भयौ। भीमसेन को जिहिं जस लयौ ॥ ७ ॥
भोर होत ही चारौ बीर। आए सेना सजे गँभीर।
गजबाहनि सोहैं पाखरैं। सुंदर सिरी सूरमन हरैं ॥ ८ ॥
अति ताते अति तरल तुरंग। मान्यौ चाहत भयौ बिहंग।
सुभटनि सहित सजैं तन त्रान। रहे भूमि पर बुद्धिनिधान ॥ ६ ॥
गज गाजत सुनि परदल हलै। कुनित किंकिनी दुतिझलमलै।
घूघर घन-घंटा घननात। अति मदमत्त भौंर भननात ॥ १० ॥
मनिगनसहित मनौ गिरि बने। तरलतड़ितजुत जनु घन घने।
मनौं तमोगुन गगनहि ग्रसै। बाँधे जोतिवंत तन लसै ॥ ११ ॥
आगें सबै अराबो कियौ। तिहिँ पाछें पैदल दल दियौ।
तिन पाछैं गाजत गजराज। तिनके पाछैं सुभट समाज ॥ १२ ॥
इहि बिधि चमू चारिहू ओर। मध्य प्रताप राउ जिय जोर।
सुंदर सूरौ सुभट अतीत। बीरसिंघ को मानहु मीत।
वीरसिंघ यह चढ़ि बल बढ़्यौ। मनौ पवन पर पावक चढ़्यौ ॥ १३ ॥

(सवैया)

जुद्ध कौं वीर नरेस चढ़े धुनि दुंदुभि की दसहू दिसि धाई।
प्रात चली चतुरंग चमू बरनी अब 'केसव' क्यौं हू न जाई।
यौं सबके तनत्राननि तें झलकी अरुनोदय की अरुनाई।
अंतर तें जनु रंजन कौं रजपूतन की रज ऊपर आई ॥ १४ ॥

(चौपही)

भूतल सकल भ्रमित ह्वै गयौ। लोक लोक कोलाहल भयौ।
गाजि उठे दिग्गज तिहि काल। संकि सकल अंकित दिगपाल ॥ १५ ॥
राँर परी सुरपुरी अपार। बाढ़ौ सुरपति चित्तबिचार।
कल्पवृच्छ गज वाजि समेत। सौंपे सुरगुरु कौं इहि हेत ॥ १६ ॥
धर्मराज कें धकपक भई। दंडनीति कुंभज कौं दई।
चिंता तरुन वरुन उर गुनी। तबही उतरि गई वारुनी ॥ १७ ॥
कामधेनु केसव सुखदाय। सौंपी सेष नाग कौं धाय।
तब कुबेर जच्छनि के नाथ। नौ निधि दई ईस के हाथ ॥ १८ ॥
मधुकर साहि नंद ढिग चल्यौ। खंड खंड भुवमंडल हल्यौ।
सब दल हिंदू तुरक प्रकास। सोभत मनौं सितासित मास ॥ १६ ॥

(दोहा)

तनत्राननि प्रति तननि प्रति प्रतिबिंबित रवि-रूप।
आगे ह्वै जनु लै चले कहि 'केसव' बहु भूप ॥ २० ॥

(चौपही)

अधर धूरि आकासहि चली। हय गय खुरनि खरी दलमली।
जानि गगन को हालत हियौ। ठौर ठौर जनु थंभित कियौ ॥ २१ ॥
रह्यौ अकास बिमाननि पूरि। मनौ उसारनि धाई धूरि।
जूझहिंगे रन सुभट अपार। समुहे घायनि राजकुमार ॥ २२ ॥
तिनकौं सुखद मनहु मग कियौ। स्वर्गारोहन मारग बियौ।
रही धूरि परि पूरि अकास। मिटे निकट ह्वै सूर-प्रकास ॥ २३ ॥

(दोहा)

अपने कुल को कलह क्यौं देखैं रबि भगवंत।
यहै जानि अंतर कर्‌यौ मानहु मही अनंत ॥ २४ ॥

(चौपही)

तामें बहुत पताका लसैं। धूम अनल जनु ज्वाला बसैं।
मनहुँ काल की रसना घोर। कैधौं मीच नचति चहुँ ओर ॥ २५ ॥
पवन प्रकास दीह गति होति। मनहु अकासदियन की जोति।
जनु अकास बन बलित बलत्र। तरलित तुंग ताल के पत्र ॥ २६ ॥
किधौं बिमानन की दुति हलै। देवन के अंचल सी चलै।
जयश्री भुज सी धुज देखियै। किधौं चौर चंचल लेखियै ॥ २७ ॥

(दोहा)

बीरसिंघ की बलध्वजा धूरिन में सुख देति।
जुद्ध जुरन कौं मनहु प्रतिजोधनि बोले लेति ॥ २८ ॥

(चौपही)

टूटत तरु फूटत पाषान। चमकत आयुध अरु तनत्रान।
नगर-सामुहें सेना चली। दुंदुभिध्वनि दिसि बिदिसनि भली ॥ २९ ॥
ये ही बिच अबदुल्लहखान। आनि औड़छें कर्‌यौ बिहान।
ताके जोधा भैरो भूत। मानौ कालजमन के पूत ॥ ३० ॥
राम नृपति के दुंदुभि बजैं। जहँ तहँ सूर धीर गलगजैं।
तब भुवपाल राउ गज चढ़े। इंद्रजीत बहुधा बल बढ़े ॥ ३१ ॥
रचे दुहून जुद्ध के भेव। मानौ दीरघ देखत देव।
प्रगट परसपर जोधा लरैं। कढ़ी तेग बिजुरी सी झरैं ॥ ३२ ॥
काटैं बाहु कंध सिर कटैं। इभभसुंड घोटकपग घटैं।
गिरि गिरि सुभटनि उठि उठि लरैं। धरैं खंग खजुवा जमधरैं ॥ ३३ ॥
दौर्‌यौ इंद्रजीत रनजीत। जुद्ध जुरै जनु जम को मीत।
मारत ही भट हय तें झुकैं। भट नट मनौ कुल्हाटैं चुकैं ॥ ३४ ॥

---

[२६] बलित०–कलितकलत्र (शुक्ल)। [३३] काटैं–टूटत (शुक्ल)। [३४] झुकैं–धुकैं (शुक्ल)।

कोप्यौ कालराज भूपाल। पावक सम जनु पवन कराल।
एक पठान बान कर लयौ। इंद्रजीत को घोरो हयौ ॥ ३५ ॥
लागतही ह्वै गयौ अचेत। गिरयौ भूमि असवार-समेत।
भूमि होत ही राजकुमार। दौरे मुगल गहे करिवार ॥ ३६ ॥
मथुराई मारयौ असवार। इंद्रजीत हय मारनहार।
येही समय राउ भूपाल। दुर्जन दौरि करे बेहाल ॥ ३७ ॥
कीनौ हाथ हथ्यार अपार। भयौ लाल लोहू करिवार।
भभरि गयौ अबदुल्लहखान। भूलि गयौ सब जुद्धबिधान ॥ ३८ ॥

(दोहा)

काँपन लागी भूमि भय भागियौ सु जनु भानु।
बाजि उठ्यौ दिसि बाम तें बीरसिंघ निस्सानु ॥ ३९ ॥

(चौपही)

सुनि सुनि मुरयौ राउ भूपाल। जदपि करयौ मुगलनि को चाल।
आयौ तहाँ जहाँ इँद्रजीत। बिहबल अंग देखियत भीत ॥ ४० ॥
कवचमध्य घायनि की भीर। अंतरपीड़ा रूँधिय पीर।
सुधि सरीर की गई नसाय। सुभट सबै लै चले उठाय ॥ ४१ ॥
पहुँचे जानि दूरि इँद्रजीत। या कहि सब सों उठ्यौ अभीत।
मुगलनि घेरि लियौ अवरोध। कीजै अब राजा को सोध ॥ ४२ ॥

(कुंडलिया)

भाजनहारे जाउ भजि जिनकौं प्यारो गात।
मरौ तो मो सँग लागियौ मैं राजा पै जात।
मैं राजा पै जात सुनौ प्रोहित गुनगायक।
फौजदार सिकदार सूर सरदार सहायक।
व्रतधारी बानैत मित्र मंत्री जन साजन।
कहौ राउ भूपाल सबै तुम सुभट समाजन ॥ ४३ ॥

इति श्रीमत्सकलभूमंडलाखंडलेश्वरमहाराजाधिराजराजाश्रीबीरसिंहदेवचरित्रे दानलोभविध्यवासिनीसंवादे युद्धवर्णनं नाम द्वादशमः प्रकाशः ॥ १२ ॥

१३

काहू कछू न उत्तर दियौ। ए कहि कुँवर पयानो कियौ।
देखि अकेलोई भुवपाल। बोलि उठ्यौ तब छेत्रसुपाल ॥ १ ॥

---

[३९] भागियौ—भागि गयौ (शुक्ल)। [४१] रूँधिय—रुधिर (भारत), मूँदी (शुक्ल)।

क्षेत्रपाल उवाच (छप्पय)

अबदुल्लहखाँ खेत खर्ग बल तैं मुरकायौ।
अपने हाथ हथ्यार कर्‌यौ जग को जस पायौ।
प्रबल घनाघन मनहु सुनहु यौं दुंदुभि बाजत।
यौं गाजत गजराज लाज दिग्गज गन साजत।
ध्वज देखि बीर बिरसिंघ की चमक मनौ चपलानि की।
अब कुसल कुसल घर जाहि जनि बाँधैं मोट कलानि की ॥ २ ॥

भुवपाल राव उवाच

भूपति भूल्यौ मंत्र वैर बहु भाँति बढ़ायौ।
करि करि झूठो रोप कोस सब पाय नसायौ।
लिये बाजि गज रीझि देस मिस ही मिस लीनौ।
सोये निसि लै तियन चेत कछु चित्त न कीनौ।
सब सुखसमाज जिहि राज किय कहि 'केसव' जानति मही।
रन छाँडि भगे ता राज कों कौन कला हम पै रही ॥ ३ ॥

देव उवाच

कौनउ एक अदिष्ट गयौ पचि बिष पियूष ह्वै।
चंदन सो सुखकंद भयौ ज्यौं दहन देह छ्वै।
को जानै किहि पुन्य भयौ केहरि गो जन सों।
कहि ऊपर तें पर्‌यौ लस्यौ सुभ सीस सुमन सों।
कहि 'केसव' कौनहुँ काल जौ माल भए अहिबाल की।
किहि भाग भग्यौ अरि जारि घर पीठि परहि जनि काल की ॥ ४ ॥

कुँवर उवाच

दिल्लीदल-दलमलन राज रावर महँ छोड्यौ।
काबिलपतिहि भजाय जुद्ध जिहिं काबिल माड्यौ।
कुलकामिनि परिवार सहित राजा अरु रानी।
सुरसुंदरी समेत इंद्र सँग ज्यौं इंद्रानी।
बहु बालकजाल रसाल सब पति पतिनी संपत्ति तर।
छितिपाल सुनहु यहि काल भजि कहाँ कहा लै जाहुँ घर ॥ ५ ॥

देव उवाच

जौ जीवन तौ जगत बहुरि कै फिरि पति पावहि।
जौ जीवन तौ पुत्र मित्र वित्तन उपजावहि ॥
जौ जीवन तौ राज राजकुल लै उरगावहि।
भव में भीम समान दुक्ख दै दिवस गँवावहि ॥

काकी भनैजि भाभी भली जन साजन सजनी जनी।
सुनि कुँवरि जीउ लै जाहि जौ जीवन तौ जुवती घनी॥ ६॥

कुँवर उवाच

जहँ जहँ उरगन जाहुँ कहै सोइ स्वामीद्रोही।
गाय न जानौं नाचि माँगि आवै नहिं मोही।
सेवा करि करि मरहि राति दिन दीरघ छोटी।
बीरसिंघ सतु छाँड़ि देहि कबहूँ नहिं रोटी।
अब पति पतिनी कहँ छोड़ि को जरै भूख भव आगि झर।
चढ़ि आज बाजि महराज चढ़ि ब्याधा काके जाउँ घर॥ ७॥

देव उवाच

पति पतिनी बहु करै, पति न पतिनी बहु करही।
पति-हित पतिनी जरहि, पति न पतिनी-हित मरही।
एक नायिका दुख्ख कहा बहु नायक दूखै।
सूखै सरिता एक कहा बहु सागर सूखै।
कहि 'केसव' काटै काल ज्यौं काल न काटै तोहि बर।
नृपनंदन आनंदमय देखि अखारो जाइ घर॥ ८॥

कुमार उवाच

इक राजा अरु बृद्ध इते पर हीन सुलोचन।
हमहीं सेवक सुभट सखा सेवक दुखमोचन।
हमहीं मंत्री मित्र पुत्र हमहीं सुनि संपति।
हमहीं हाथ हथ्यार हियें है सही बुद्धि मति।
हौं करत सौंह जगदीस की ता बिन जीव न लेखिहौं।
जो जियौं त घर सुरपुर करौं मरें अखारो देखिहौं॥ ९॥

(दोहा)

साँई छाँडै साँकरें फेरि लेइ दै दान।
तिनि के नामहि लेतहीं थूकै सकल जहान॥ १०॥

देव उवाच (छप्पय)

तूँ छत्री-कुल-चाल तोहि सब दुनी सराहै।
तूँ सूरो सब माँहि सिद्ध संग्रामहि थाहै।
तूँ अभीत रनजीत सत्यवर्ती जगवंदन।
तूँ उदार परिवार तोहि ल्यायौ नृपनंदन।

[७] महराज०—नन पीठि दै (शुक्ल)।

सुनि रतनसैन रनधीर सुत दूरि करहि सब चलि कलुष।
हो मरन काल आयौ निकट देहि मोहि माँगौ जु मुख ॥ ११ ॥

कुमार उवाच

माँगहु मंत्री मित्र पुत्र प्रभु सकल कलित्रन।
माँगहु भोजन भवन भूमि भाजन भूषन गन।
माँगहु आसन असन आन परिधान जानि गनि।
माँगहु बाग तड़ाग राग बड़ भाग भोग भनि।
कहि 'केसव' माँगहु सकल पुर सुत समेत बसु असु घनो।
सब दैहौं जो कछु माँगिहौ धर्म न दैहौं आपनो ॥ १२ ॥

देव उवाच (दोहा)

बिबिधि धर्म भ्रुव धरनि में बरनत वेद पुरान।
कौन धर्म जु न देहि तूँ दैहौं कहत जु प्रान ॥ १३ ॥

कुमार उवाच

संत गाय द्विज मीत कौं संतत रच्छा कर्म।
स्वामी तजै न साँकरें यहै हमारो धर्म ॥ १४ ॥

देव उवाच (छप्पय)

नारी ह्वै नर-देव बचे सब परसुराम-डर।
देव बचे करि सेव अंध दसकंधर के घर।
वेई हाथ हथ्यार हुते अपने मन भाए।
अर्जुन नारिन ग्वाँइ घरैं नीकें ही आए।
रन मार्‍यौ कुंजर-नर कह्यौ जब भारत भुव मंडियौ।
भुवपाल राउ जगजीव लगि सत्य जुधिष्ठिर छंडियौ ॥ १५ ॥

कुमार उवाच

प्रथम जाय मतिमान लाज जिय तें जसु भाकौ।
चौंकि चले चतुराइ ते जु तव हित की ताकौ।
सुख सोभा नसि जाइ सु पुनि पति प्रगट प्रमुक्कइ।
तच्छिन लच्छइ लच्छ नाउ लेतहि जग थुक्कइ।
यह लोक नसै परलोक पुनि सत्रु निसंकहि खंडई।
कहि 'केसव' सत्रु न छंडियै जो छंडत सब छंडई ॥ १६ ॥

---

[१२] परिधान०—जाननि माँगहू मनि (शुक्ल); परिवान० (भारत)।
[१४] संत—सत्य (शुक्ल)।

देव उवाच

पेस भगे परदेस छोड़ि भैया भारथ कहँ।
होरिल रावहि छाँड़ि भगे निज देस जुद्ध महँ।
भजे करहरा छाँड़ि राम दूलह कहँ दिख्यउ।
अब भागे यहि भाँति ज्ञातिजन जिय जनि लिख्यउ।
भूपाल राउ कासीस सुनि जब जब जिहिँ रन मंडियौ।
तब तब कहि 'केसवदास' जग कौनहि सत्य न छंडियौ ॥ १७ ॥

कुमार उवाच

महाराज मलखान पाँउ रन दियौ न पीछैं।
आमनदास अमोल मर्‍यौ सुनि जस जिय ईछैं।
मर्‍यौ न होरिल राउ बास बैकुंठहि पायौ।
खरगसैन रनबीर जूझि राजा पहुँचायौ।
रन कियौ पच्छि मेरे पिता मृतक पच्छि के पच्छ कौ।
कहि क्यौं न करौं अब पच्छि मैं जीवत अपने पच्छ कौ॥ १८ ॥

देव उवाच (कवित्त)

भैरौ कैसे भारे भूत, गनपति कैसे दूत सज्जे जीमूत जनु कारे कारे बेस के।
विधि कैसे बंधव मदंध प्रति बंधन कों कलित कराल गंध करि न कलेस के।
काली कैसे छौवा काल जौन कैसे दौवा महानीच कैसे भैया चेति हौवा परदेस के।
आपुनपौ भागि रच्छि कौन करै पच्छि दच्छ काल कैसे साथी हाथी आए हैं बीरेस के ॥१९॥

कुमार उवाच (छप्पय)

भीत करहि जनि भीति बंस रन जीति हमारो।
व्रतधारी जस अमल ताहि अब करौ न कारो।
राजनि के कुल राज कहा फिरि फिरि अवतरियौ।
अब तब जब कब मरन कहत अबहीं किनि मरियौ।
सुर सूरज-मंडल भेदि ज्यौं बिना गए से हरिसरन।
सब सूरनि-मंडल भेदि त्यौं रामदेव देखै सरन ॥ २० ॥

देव्युवाच

उतहि चमू चतुरंग इतहि तेरें सँग को है।
लग्यौ अंग में घाउ महा मेरो मन मोहै।
तुपकैं तीर अपार चलतिं चहुँ ओर चपलगति।
नगर गली चौहटें रहे भट भूरि पूरि अति।

[१७] दिख्यउ—दिक्खहु (शुक्ल)। ज्ञाति—क्षत्रि (शुक्ल)।

है जाइ कछू जौ बीच ही कौनहु काज न सुध्धरै।
कहि 'केसव' कैसें कुँवर तूँ राजलोग कों उध्धरै॥ २१॥

कुमार उवाच (कुंडलिया)

पीछें पुर बिक्रम बली सत साहस बल साथ।
स्वामिधर्म मैं करत हौं सिर पर सीतानाथ।
सिर पर सीतानाथ चितै को सकै तिरीछैं।
जिनके बल हौं जाउँ राखिहै आगैं पीछैं॥ २२॥

इति श्रीमत्सकलभूमडलाखंडलेश्वरमहाराजाधिराजराजावीरसिंहदेवचरित्रे दानलोभ विंध्यवासिनीसंवादे युद्धवर्णनं नाम त्रिदशम' प्रकाशः॥ १३॥

१४

(चौपही)

तब तिनि बिदा करी सुख पाय। निर्भय पट पियरौ पहिराय।
भाल सुजस को टीका कियौ। सकल सिद्धि को बीरा दियौ॥ १॥
करि प्रनाम कहि चल्यौ कुमार। अभय करी बर दियौ अपार।
सोभ्यौ तब सुग्रीव समान। रामकाज जिनकों परिवान॥ २॥
सुभ लच्छन लछिमन सो लसैं। मन क्रम बचन रामव्रत बसै।
औरन उर आयौ तिहि काल। अंगद ज्यों अँगए रिपुकाल॥ ३॥
रामदेव दुखहृतन अनंत। सोभ्यौ कुँवर मनौ हनुमंत।
रिपुभट भागि गए भहराय। भीतर भवन गयौ सुख पाय।
देखि राजकुल आनँद भर्यौ। रामदेव के पायनि पर्यौ॥ ४॥

(दोहा)

काज सुधारि बिदारि दल यौं आयौ बलबीर।
अभयदेव संग्राम ज्यौं रामदेव के तीर॥ ५॥

(चौपही)

राजहि भयौ परम सुख गात। तिहिं सुख फूले अंग न मात॥ ६॥
अति प्यासो ज्यौं पानी पाइ। वहु भूखो भोजन सुखदाइ।
परम पंगु ज्यौं पाए पाँय। गुंग लह्यौ ज्यौं बचन बनाय॥ ७॥
लहै अंध ज्यौं लोचन चारु। भीजत जनु पायौ अंगारु।
सीतारत ज्यों अग्निहि लहै। बनभूल्यौ मारग ज्यौं गहै॥ ८॥

---

[२२] इसकी दो पंक्तियाँ किसी प्रति में नहीं हैं। [३] 'भारत' में चौथा चरण नहीं है।

(दोहा)

राजलोक अरु राज के तन मन फूले फूल।
फूले रबि कौं परइ ज्यौं अमल कमल के फूल ॥ ६ ॥

(चौपही)

अंग लगायौ लै सिर बास। निपट मिट्यौ कुल को उपहास।
पूँछी नृपति जुद्ध की बात। बार बार तन की कुसलात ॥ १० ॥
करै न कोऊ करिहै काज। जैसें कुँवरै करने आज।
दान लोभ सुनियत तिहिं काल। बाजि उठे दुंदुभी कराल ॥ ११ ॥
बीरसिंघ आयौ रनरुद्र। प्रलयकाल को मनौ समुद्र।
देखतही भागे रिपुलोग। ज्यौं धन्वंतर आएँ रोग। १२ ॥
अरि की फौज भगी गहि त्रास। अंधकार ज्यौं सूरप्रकास।
परम दानि सुनि जैसें रोर। जैसें नखत बड़े ही भोर॥ १३ ॥
जहाँ तहाँ भट यौं भगि गए। राम सुनत ज्यौं पातक नए।

(दोहा)

आए बली पहार रन बीरसिंघ नरसिंघ।
पायक पुंज समेत जहँ बसत हते रनसिंघ ॥ १४ ॥

(चौपही)

छूटि गई जहँ तहँ की गढ़ी। चमू चमकि सिगरे पुर मढ़ी।
भए सधूम अटारी अटा। मानहु सजल सरद की घटा ॥ १५ ॥
लुटन लग्यौ पुर सघन अपार। जच्छराज कैसो भंडार।
यौं सत्रुन के सत लुटि गए। द्विज-दोषिन के ज्यौं सुख नए।
पकरी सूरन की सुँदरी। काम-कलपतरु कैसी फरी ॥ १६ ॥

(दोहा)

किरवानैं काँधै कवच तन लीन्हे हथियार।
बंदि परे सब सूर बकि सुँदरि-सहित कुमार ॥ १७ ॥

(चौपही)

बीरसिंघ तब देखत भए। करुनामय तबहीं ह्वै गए।
कोऊ जनि काहू कौं हनौ। बरज्यौ लोग सबै आपनौ ॥ १८ ॥
अबदुल्लहखाँ ढोवा ठयौ। बीरसिंघ आएँ बल भयौ।
मुगल राम दूलह के लोग। प्रगटन लागे जुद्धप्रयोग ॥ १९ ॥
आसपास तुरकनि को जाल। राजत मध्य राउ भुवपाल।
मत्त गजनि ज्यौं करथौ बिचार। घेरि लियौ मृगराजकुमार ॥ २० ॥

---

[१४] रन–तहँ (शुक्ल)

मनहु पर्वतन अति बल भयौ। इंद्रपुरी कौं ढोवा ठयौ।
मनौ निसाचरगन बलवंत। घेरि लियौ मानौ हनुमंत॥ २१॥
मानौ अंधकार बल लए। बारक सूर-सामुहैं गए।
दीरघ सर्प बहुत पुर कढ़ैं। मानहु कोपि गरुड़ पर चढ़ैं॥ २२॥
जनु प्रहलाद रामरसरयौ। घेरि पिता के दोषनि लयौ।
अध ऊरध मंदिर चहुँ कोद। बाहिर भीतर भवन अमोद॥ २३॥
कैसेहूँ काहू नहिँ डरै। सबसौं कुँवर अकेलौ लरै।
छलबल दलबल बुद्धिविधान। कै उटक्यौ अबदुल्लहखान॥ २४॥

(कवित्त)

साहि को सराहि सिघ सैद अबदुल्लह सु धायौ ओड़छै कौं मूढ मोहनी सी मेलि कै।
पंचम प्रचारि लरयौ और न बिचार करयौ ठौर ठौर ठेल्यौ दल खग्गखेल खेलि कै।
राख्यौ राजलोकपन, रनरस भीज्यौ मन, 'केसौदास' देवगन रीझ्यौ दृग पेलि कै।
मॉगें पाइजैं न कछू बलहू अमोल पति लै रह्यो भुपालराउ सबकों सकेलि कै॥२५॥

(चौपही)

राजत रन अंगन सुखकारि। कंध धरे नॉगी तरवारि।
अति राती रिपुसोनित भरी। तरनिकिरन सी उज्जल खरी॥ २६॥
रतनसेन-सुत कौं तिहिँ घरी। बरनत देव देवसुंदरी।
रनसमुद्र-बोहित कों छियौ। करिया सो किरवारो लियौ॥ २७॥
पारथ सो सेना संघरै। जनु जम कालदंड कौं धरै।
सोभत बलि कैसौ प्रतिहार। गदा धरें सेवत दरबार॥ २८॥
राजश्री चंचल मानियै। ताको जामिन्न सो जानियै।
जनमेजय तें ज्यौं हरि डरै। तत्तक की रत्ता सी करै॥ २९॥

(कवित्त)

कालिका की केलि सी, कै कालकूटबेलि सी,
कै काली कैसी जीभ किधौं कालदंडकामिनी।
किधौं 'केसौदास' ओछी तत्तक की देहदुति,
जातना की जोति किधौं जात अंतगामिनी।
मीच कैसी छॉह, बिषकन्या कैसी बॉह,
किधौं रनजयसाधि ताकी सिद्धि अभिरामिनी।
राती राती माती अति लोहू की भूपालराइ
तेरी तरवारि पर वारि डारौं दामिनी॥३०॥
मन जिमि निकसि लराई कीनी मन ही ज्यौं,
आनि छिके रावर में जानियै न कब के।

---

[२९] जामिन०—दामिनि सी (शुक्ल)।

राखि लीनौ राजलोक लोक राजसिंघ सम
ठान ठान मुगल पठान ठेलि ठब के।
लैगो गजगामिनिन गाजि गजराज सम
'केसव' सराहैं सूर तब के औ अब के।
बाँकुरा भूपालराउ भीर परैं ता दिन की
तेरे रूप ऊपर सरूप वारौं सबके॥ ३१॥

(सवैया)

बाज ज्यौं बाँकुरा श्री महराजा जू धाए जबै अबदुल्लह जू पर।
साधियै हाथ को हाथ,हथ्यार न एक सों एक भिरयौ भट दू पर।
हिंमति के हद केहरि 'केसव' यौं जस राउ भुवाल जू भू पर।
आवनि धावनि लैउ पठावनि तीनि करी तिहुँ लोक के ऊपर॥ ३२॥

(कबित्त)

भोरहू की ज्वाल में भूपाल राउ बाँकुरा सु रबि कर बाल ससिपालपुर वै रह्यौ।
कंकन उभेर मुठभेरहू के गलबल, वाजिद को दल सनमुख पल द्वै रह्यौ।
पंचम के हाथ लागे हाथिन तें रथी गिरे, सैहथी के मथे मद गजन को च्वै रह्यौ।
सिरी झरि, सार झरि, झनन झनन बाजै ठनन ठनन सब्द खोलन में ह्वै रह्यौ॥३३॥

(दोहा)

लिये तरल तरवारि कर सोहत श्री भूपाल।
हाथ छरी जनु राजकुल गोकुल को गोपाल॥ ३४॥

(चौपही)

विविधि बंधु रजपूत बुलाय। सुजन सजन सब बरनि सुनाय।
वीरसिंघ राजा यह कह्यौ। हम पर दुख न जाइ संग्रह्यौ॥ ३५॥
एक मुदफ्फर बिन सब कोय। जा काहू के जिय रज होय।
अबहि जाय राजा में मरे। मरयौ न जाइ त लै उद्धरै॥ ३६॥
ताको जस जग में जानिबो। अरु मेरे प्रतिदिन मानिबो।
काहू कछू न उत्तर दियौ। सुनि सबही सिर नीचो कियौ॥ ३७॥
अति दृढ़ जान्यौ नृप आगार। अबदुल्लह को थक्यौ हथ्यार।
आदमगीर सों कह्यौ बुलाय। क्यौंहू राजहि मिलवहु आय॥ ३८॥
तिहि सुंदर कायथ सों कह्यौ। हमसों तुमसों विग्रह रह्यौ।
जहाँगीर को पंजा लेव। राजा कों मिलवौ करि नेव।
राजा अरु नवाब सुख पाय। देखहिं जाय साहि के पाँय॥ ३९॥

(दोहा)

छिये नवाब मुसाफ कों लीजैं बीच खुदाय।
जाव दिवावे आँड़छौ हजरति सों पहिराय॥ ४०॥

---

[३८] आदमगीर—यादगार (शुक्ल)।

(चौपही)

सुंदर कही राज सों बात। राजा सुख पायौ सब गात ॥ ४१ ॥
आदिगार पै सौंह कराय। राम मिले खोजा कों जाय।
खोजहिं भजे तजी सब मही। चहुँ दिसि हाय हाय ह्वै रही ॥ ४२ ॥
जीत्यौ जिहिँ तुम सम रनधीर। जालिम जामकुली सो वीर।
जानि न जाय करम की गाथ। राम सु अबदुल्लह के साथ ॥ ४३ ॥
अलीकुलीखाँ लीनौ लूटि। साहिमखाँ जिनि पठयौ कूटि।
जीत्यौ महाबली रनरुद्र। दरियाखाँ जिनि सूर समुद्र ॥ ४४ ॥

(दोहा)

जानै को नहि जानिहै कठिन करम की गाथ।
हाँकनहार हकीम कों अबदुल्लह के हाथ ॥ ४५ ॥

(चौपही)

सूरज अंधकार जब हर्यौ। भैरौ भूतनि के बस पर्यौ।
बाज कागचुंगल चपि गयौ। मत्त गयंद ससा गहि लयौ ॥ ४६ ॥
बन में सिंघ स्यार बरु हर्यौ। सर्पनि मनौं गरुड़ बस कर्यौ।
ऐसे ही अबदुल्लह राम। छल बल चल्यौ संग लै ताम ॥ ४७ ॥

(दोहा)

बीरसिंघ राखन कहै ज्यौं ज्यौं राजाराम।
त्यौं त्यौं चालै रामही कठिन करम को काम ॥ ४८ ॥

(चौपही)

बीरसिंघ राजा हरि कियौ। सबही कुल सिर टीका दियौ।
बिहट राउ भूपालहि दियौ। इंद्रजीत गढ़ को प्रभु कियौ ॥ ४९ ॥
बाँध राउ परताप कों दई। आनँदमति सबही की भई।
तिनकौं सौंपि देस फर फले। बीरसिंघ हजरत पै चले ॥ ५० ॥
यह बिचारि छाँडौ सब काम। लै आऊँ घर राजाराम।
देख्यौ राज जाय कुरुखेत। धरनीतल में धर्मनिकेत ॥ ५१ ॥
गज घोटक हाटक पट नए। हरषि हरषि बहु बिप्रनि दए।
मुक्ता अरु मुहरैं बहु लईं। धरनीधर सबही धर वईं ॥ ५२ ॥
जानि गए जबही अति दूरि। जनपद उठी जोर की धूरि।
भारथसाहि संग लै आय। सोर उठायौ देवाराय ॥ ५३ ॥
पटहारी तिन लई सुभाउ। मारे जंत्र घटा के गोंउ।
नगर ओड़छौ कंपन लग्यौ। जनपद यौं चलदल ज्यौं कँप्यौ ॥ ५४ ॥

---

[४२] आदिगार—यादगार (शुक्ल)। [४३] तुम सम—तू रस (शुक्ल)। राम—साम (भारत)। [५०] मति—पति (भारत) [५२] अरु—वर (भारत)।

(सरस्वती)

नारायनादिक सृष्टि है जिनतें प्रसिद्ध प्रवीन।
निर्लेप निर्गुन ज्योति अद्भुत ताहि में मन दीन।
जामें रमे बहु भाँति भासत होत जा महिं लीन।
बिद्रूप निर्मल निर्बिकार निरीह नित्य नवीन॥ १८॥

(दोधक)

ज्योति निरीह निरंजन मानी। तामहिं क्यौं ऋषि इच्छ बखानी।
क्यौं तिहि तें भवभेदहि जानौ। ईस अकर्तहि जो जिय मानौ॥ १९॥

विवेक (विहस्य, दोहा)

जड़हु की विद्या भई, निपट कुतर्कनि लीन।
होमधूम तें मलिन तनु, जद्यपि हुती प्रवीन॥ २०॥

(रूपमाला)

ज्योति अद्भुत भाव तें भए बिस्नु प्रेरक मानि।
माय तें अवलोकियौ जग भयौ मायक जानि।
जौ कहौं वह जानियै जड़ क्यौं करै जग जोय।
पाय चुंबक तेज ज्यौं जड़ लोह चेतन होय॥ २१॥

देवी (दोहा)

तातें जड़न तें सखी जानौ जगत प्रकास।
जौ फल दीजै ईस कौं तौ तबही भवनास॥ २२॥

यथा श्रीकृष्ण अर्जुन प्रति

यत्करोपि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुस्व मदर्पणम्॥ २३॥

(दोहा)

यह सुनि तब हौं उठि चली ता जड़नि की सृष्टि।
एकदेसथित परि गई मीमांसा सम दृष्टि॥ २४॥

---

[१८] केवल प्रथम और तृतीय चरण 'काशि०' में हैं। जिनतें—जितने (सर०)। निगुन—निर्मल (वही)। बहु—जेहिं भाँति (काशि०)। होत०—हो सु ता महँ (वही)। [१९] ऋषि०—भवभाव (सर०)। तिहि तें—तिनतें (काशि०)। [२१] रूपमाला—सरस्वती (काशि०)। मानि—जानि (वही)। जड़—उर (सर०)। करै—कहो (काशि०)। [२२] प्रकास—अमित्र (काशि०)। नास—जित्र (वही)। [२३] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। इसके अनंतर 'सर०' में यह दोहा अधिक है—

यह सुनि उनि मों सों कही जाजक गतउत्साह।
हैहै देवी सुनतही जहाँ रुचे तहँ जाह॥

(रूपमाला)

कर्तृ कर्म बिभाग को अधिकारभाजन पाय।
बेद्अंगन सों मिली उपदेस देति बनाय।
मोहिं पूछि उठी कहौ तुम कर्तृ कौन बिचार।
मैं कह्यौ उनसों वहै सब उत्तरन को सार ॥ २५ ॥

(दोहा)

अंतेबासिन सुनतहीं, तन मन पायौ मोद।
देखि परस्पर तब कर्‌यौ, मेरो अति अनुमोद ॥ २६ ॥

(हीर)

एक जीव अंध एक जगतसाखि कहत है।
एक कामसहित एक नित्य कामरहित है।
एक कहत परम पुरुष दंड दान लीन है।
एक कहत संगरहित क्रियाकर्महीन है ॥ २७ ॥

(दोहा)

बिदा माँगि तबहीं चली हौं तिन तें अकुलाय।
देखी बिद्या तर्क की बहुत सिष्यजुत जाय ॥ २८ ॥

(रूपमाला)

एक बिस्व बिसेष वस्तुबिकल्पना जिय जानि।
एक न्यायपरायना अरु बादबृद्ध वखानि।
एक थापत आपने परपक्षदोष बितानि।
एक मायहि ईस स्यौं कहैं एक भिन्न प्रमानि ॥ २९ ॥

(दोहा)

तिनि मों बूझी देबि कहि कौनहिँ हौ तुम लीन।
यह सुनि मैं उत्तर दयौ उनकों वहै प्रवीन ॥ ३० ॥
उन मों सों उपहास सों वात विचारि कही सु।
बिस्व होत परमानु तें निमित्त कारन ईसु ॥ ३१ ॥
क्यौं अबिनास अरूप सो करिकै रूपप्रकार।
बिनासीन सों करत अब जुक्ताजुक्तबिचार ॥ ३२ ॥

---

[२५] वेद–देखि। (वेंकट); खेद (काशि०)। [२६] अंते०–एती वातन (सर०)। तब–अति (काशि०)। मेरो०–तब मेरो अनुकोद (वही)। [२७] हीर–चामर (काशि०)। काम०–नित्य कामसहित एक कामहिं रहत है (वही)। नित्य–एक (सर०)। [२८] विदा०–अंतेवनि (काशि०)। [२९] रूपमाला–झूलना (सर०); सरस्वती (काशि०)। भिन्न–चित्त (काशि०)।

विवेक

एक तर्कै बिद्या सबै यहौ न जानत मूढ़।
झूठौ तौ लौं सत्य सो जौ लौं सत्य न गूढ़ ॥ ३३ ॥
भ्रम ही तें जो सुक्ति में होति रजत की जुक्ति।
'केसव' संभ्रमनास तें प्रगट सुक्ति की सुक्ति ॥ ३४ ॥
रजत जानि ज्यौं सुक्ति में भ्रम तें मन अनुरक्त।
भ्रम नासे तें रजतहूँ छीवत नहीं बिरक्त ॥ ३५ ॥
अबिकारी जगदीस है भ्रम ही तें सबिकार।
'केसव' कारी रजुन में सूझत सर्पबिकार ॥ ३६ ॥

(रूपमाला)

निकलंक है सुनिरीह निर्गुन सांत ज्योतिप्रकास।
मानिहै मन मध्य ताकहँ क्यौं बिकारबिलास।
होति बिस्नुपदी न म्लान जु कल्मषादिक पाय।
राहुछाँह छियै न स्यामल सूर क्यौं कहि जाय ॥ ३७ ॥

देवी (दोहा)

गह्यौ गह्यौ तब सबनि मिलि मों सों कह्यौ रिसाय।
गई दंडकारन्य हौं भाँतिनि तें अकुलाय ॥ ३८ ॥
लई रामरच्छा सबै हौं बचाय मुनि साखि।
कंठ लगाय लई लपकि गीता के गृह राखि ॥ ३९ ॥

गीता

अप्रमान मन तुम करे माता जे जग जंतु।
नरक परहिंगे जन्म बहु जिनको नाहीं अंतु ॥ ४० ॥
इहिं बिधि हौं अपनी कथा कहौं कहाँ लगि ईस।
तुम अंतर्जामी सबै जानत हौ जगदीस ॥ ४१ ॥

केसवराय

सुनि सुनि देवी के बचन उर आयौ कछु ज्ञान।
प्रस्न करी तब ज्ञान की जिहिं उपजै विज्ञान ॥ ४२ ॥

---

[३३] तर्कै—नि को (काशि०)। यहौ०—पठि नहिं (वही)। झूठौ—मूढ़ौ (वेंकट, काशि०)। सत्य—सस्व (वही)। [३४] रजत—तरक (सर०)। [३६] केसव०—भ्रम नासे तें ईस कों जानत नहीं (सर०)। सूझत—समुझत (काशि०)। [३७] रूपमाला—सरस्वती (काशि०)। निर्गुन—निर्मल (सर०)। म्लान—मृलान (काशि०)। जु०—कलिंदजा सँग (सर०)। [३८] तब—यह (सर०)। अकुलाय—भजि लाइ (वही)। [४१] कथा—दसा (काशि०)। सबै—सदा (वेंकट, काशि०)। [४२] देवी—सुंदरि (काशि०)।

जीव

अज्ञान ज्ञान की भूमिका हमहिँ सुनाउ सुजान।
सुनत नसै अज्ञान सब जातेँ बाढ़ै ज्ञान॥ ४३॥

देवी

वीज जु जाग्रत एक अरु दूजी जाग्रत जानु।
महा जु जाग्रत तीसरी जाग्रतस्वप्न बखानु॥ ४४॥
स्वप्न पाँचईँ है समुझि स्वप्नोजाग्रत षष्ठ।
प्रभा सुषुप्ता सातईँ सुनौ सदा मतिनिष्ठ॥ ४५॥
सात भाँति को मोह यह मिले अनेक प्रकार।
बाँधि महाप्रभु आनियै मोहत भाँति अपार॥ ४६॥
सहित बासना गर्भ मेँ प्रथम मोह अज्ञान।
बीजै जाग्रत नाम यह ताको नित्य बखान॥ ४७॥
गर्भ आय पर आपनो, नहिँ जानत मन माँहि।
वह जाग्रत बिज्ञान है पूर्व बासना छाँहि॥ ४८॥
सोहौँ जाको यह सबै हौँ प्रभु ये सब दास।
महाजागरत मोह यह बर्नत 'केसवदास'॥ ४९॥
तन्मय ह्वै कै करत है मन अभिलाषबिलास।
जानौ चौथो नाम यह जाग्रतस्वप्न प्रकास॥ ५०॥
जानत कारी रज्जु मेँ जैसो कारो साँप।
तैसेँ कर्मनि करत यह स्वप्न पाँचयोँ आप॥ ५१॥
समुझाएँ समुझै हियेँ भूलि जाय पुनि चित्त।
स्वप्नेजाग्रत मोह की छठी भूमिका मित्त॥ ५२॥
अपनो पर नहिँ जानई कहै और की और।
यहै सुषुप्ता सातईँ मोह कहत सिरमौर॥ ५३॥

---

[४३] अज्ञान–ज्ञान (वेंकट, काशि०)। जातेँ०–बाढ़ै ज्ञान प्रमान (सर०)। [४४] देवी–ज्ञान की भूमिवर्ननम्। बीज–जीव (वेंकट, काशि०)। अस–है (काशि०)। बखानु–प्रमानु (वही)। [४५] पाँचईं है–पात्र. द्यो (काशि०)। सुनो–प्रगट (सर०)। बाँधि०–साधि महापति आपनी (वही)। [४६] आनियै–आपनी (सर०); आपनो (काशि०)। मोहत–सोहत (वेंकट, काशि०)। [४७] प्रथम०–प्रगट होत अज्ञान (सर०)। बीजै–दूजो (काशि०)। नाम–जुक्त (वेंकट, काशि०)। [४८] आय०–थंभ बरु (वेंकट, काशि०)। नहिँ–कहि (वही)। माहिँ–मोह (वेंकट); माह (काशि०)। वह–महा (वेंकट, काशि०)। बिज्ञान–ज्ञान (वही)। छाँहि–छोह (वेंकट); छाँह (काशि०)। [५०] ह्वै–होइ (काशि०)। जाग्रत–जानत (वही)। [५१]। 'वेंकट, काशि०' मेँ नहीँ है। [५२] जाय–जात (काशि०)। छठी–छुटी (वही)। [५३] अपनो–आपा (सर०); आपा (काशि०)।

योगवासिष्ठे यथा

षडावश्यंपरित्यागाजडा जीवस्य या स्थिता।
भविष्यद्दुःखबोढोऽसौ सुषुप्तिरुच्यते बुधैः ॥ ५४ ॥
अज्ञान ज्ञान की भूमिका मैं बरनी सबिसेष।
कहौं ज्ञान की भूमिका सात सुनौ सुभ बेष ॥ ५५ ॥
प्रथम *सुभेच्छा* जानबी, पुनि *विचारना* जान।
तीजी है *तनमानसा* 'केसवराय' प्रमान ॥ ५६ ॥
चौथी *सत्वापत्ति* पुनि *असंसक्ति* कों जानि।
छठी *अर्थ आभावना* सप्त *तुर्य* कों मानि ॥ ५७ ॥
श्रवन मूढ जो हौं रह्यौं बूझौं सास्त्र सु साधु।
याही सों सब कहत हैं सुभ इच्छा तमबाधु ॥ ५८ ॥
इच्छाजुत बैराग कों करै जु चित्त विचार।
सदाचार को वेदमत वह बिचारनाचार ॥ ५९ ॥
अति बिचार तें होति है इंद्रिय-कर्म-बिरक्ति।
सूच्छम रूप हियें धरै तनमानसा प्रसक्त ॥ ६० ॥
सूच्छम रूप प्रकासे तें महा सुद्ध मन होत।
सुद्ध सत्व हिय आवई सत्वापत्ति उदोत ॥ ६१ ॥
'केसव' सत्वापत्ति तें छूटि जात सब संग।
झूठो जानै जगत कों असंसक्ति भूअंग ॥ ६२ ॥
रमै आतमाराम मन दुख सुख भूलहि चित्त।
परइच्छा इच्छा करै छठी भूमिका मित्त ॥ ६३ ॥
तुर्यावस्था सातईं जातें जीवनमुक्त।
तातें ऊपर होति है अतिबिदेहताजुक्त ॥ ६४ ॥
सुनि बिदेह की जुक्ति जग राज्य करयौ प्रहलाद।
तैसें तुमहूँ सुद्ध मन राज्य करौ अबिषाद ॥ ६५ ॥

वीरसिंह

एक भूमिका दूसरी तीजी आवै कोय।
कालवस्य भयौ बीचहीं ताकी का गति होय ॥ ६६ ॥

---

[५४] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [५५] अज्ञान–यहै (सर०)। मैं०–कही देवि सिरमौर (वही)। सात–सास्त्र (काशि०)। सुभ०–अब ठौर (सर०)। [५६] प्रमान–बखानि (काशि०)। [५८] सास्त्र०–साधु असाधु (सर०)। इच्छा०–इच्छा आराधु (वही)। [६०] इंद्रिय०–इंद्रिअ कर्म दुरंक्त (काशि०)। रूप०–पहिले ही लसैं (सर०)। [६५] जुक्ति०–गति जगत (सर०)। सुद्ध०–जगत में (वही)। [६६] वीरसिंह–जीव उवाच (काशि०)। भूमिका–अवस्था (सर०)।

केशव (रूपमाला)

लोक लोक रमै बिमान चढ्यौ बढ्यौ बहुरंग।
मेरु मंदर भूमि में सुरसुंदरी बहु संग।
कर्मभू उत्पन्न ह्वै शुभ पंडितनि के गेह।
धर्मशास्त्र पढ़ै रटै बहु ज्ञान ही सह नेह॥ ६७॥

(दोहा)

केसव पूरन ज्ञान तें परिपूरन बिज्ञान।
चिदानंद के रूप सों जाय लगौ मतिमान॥ ६८॥

इति श्री मिश्रकेशवरायविरचितायां श्रीविज्ञानगीतायां चिदानंदमग्नायां जीवविवेक-वेदसिद्धिसंवादे चतुर्दशभूमिकावर्णनो नाम सप्तदशमः प्रभावः॥ १७॥

१८

(दोहा)

अष्टादसें बखानिये श्रीप्रह्लादचरित्र।
ताहि सुने तें जानियै जग में मित्र अमित्र॥ १॥

जीव

क्यौं बिदेह की रीति सों राज कर्‌यौ प्रह्लाद।
देबी हमैं सुनाउ ज्यौं ज्ञान बढ़ै अबिपाद॥ २॥

देवी

हिरनयकस्यपु हति भए नरहरि अंतर्ध्यान।
उपज्यौ उर प्रह्लाद कें सोकबिचार प्रमान॥ ३॥

प्रह्लाद (रूपमाला)

तात आदि सह्मारियै सब बिस्नु श्रीभगवंत।
बात दीह महाप्रलै हम ज्यौं गिरीस अनंत।
बिस्नु के प्रभु जीतिवे कहँ दीह कर्मनि आनि।
आसु ही जिहि होय वस्य करौं सु वेगि विधान॥ ४॥

---

[६७] केसव–चामर (काशि०)। रटै–बढ़ै (सर०)। सह–मह (काशि०)। [६८] लगौ–मिली (सर०)।

[१] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [२] सुनाउ०–सुनाइयै (काशि०)। [३] देवी–देव्यु (वेंकट, काशि०)। भए०–प्रभु भए जबही (काशि०)। नरहरि–प्रभु जब (वेंकट)। बिचार–बिलास (वेंकट); बिसाल (काशि०)। [४] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है।

नमो नारायननाथ यह मंत्र बसौ मम चित्त।
'केसवदास' अकास ज्यौं बसति बात सुभ नित्त ॥ ५ ॥
'केसव' अब हौं बिस्नु ह्वै करौं बिस्नु की सेव।
बिस्नु भए बिन बिस्नु की सेवा निष्फल देव ॥ ६ ॥

देवी (रूपमाला)

बिस्नु ह्वै पुनि बिस्नु मूरति कों हिये महँ आनि।
सर्ब भावनि सर्बदा करि पूजियौ हरि मानि।
राति द्यौस मनोमई हरिसेव सों रति मंडि।
राजकाजनि छाँडि कै अरु और ग्रंथनि छंडि ॥ ७ ॥
देस के अरु ग्राम के सब लोग एक प्रकार।
बिस्नुभक्त भए महा चित माहिँ हीनविकार।
देवलोक प्रसिद्ध 'केसव' ह्वै गई यह बात।
छीरसागर कों गए सब देवता अवदात ॥ ८ ॥

देवता (दोधक)

हौ प्रभु देवन के रखवारे। देवबिदूषन मारनहारे।
होत जु दैयत भक्त तिहारे। देवन पै तेइ जात न मारे ॥ ९ ॥

सदाचारो यथा (श्लोक)

शत्रोरत्यन्तमित्रंयत् नष्टमैत्री विवर्जयेत्।
आयते तद्विरोधेन प्रतिष्ठा तस्य घातने ॥ १० ॥

श्रीविष्णु (चौपाई)

देव बिषाद तजौ जिय भारे। भक्त सदा प्रहलाद हमारे।
दैयत भक्त अभक्त सदाई। मोकहँ जानहु देव सहाई ॥ ११ ॥

देवता

श्रीभगवंत जहाँ पगु धारे। आपु तहाँ प्रहलाद बिचारे।
बिस्नुहि देखतहीं सुख पायौ। पूजन कै बहुधा गुन गायौ ॥ १२ ॥

प्रह्लाद (रूपमाला)

नाथ-नाथ बिनाथ-नाथ अनाथ-नाथ सुसिद्ध।
देव-देव बिदेव-देव अदेव-देव प्रसिद्ध।

---

[५] बसति०—सदा बसत मम मित्त (काशि०)। बात—सदा (वेकंट)। सुभ०—सब चित्त (वही)। [६] ह्वै—कै (काशि०)। [७] देवी—चामर (काशि०)। महँ—मन (वही)। सर्बदा—सर्वथा (वेंकट, काशि०)। करि—मन (सर०)। और—छुध (वही)। [८] चित०—सब तजि महिँ (सर०)। माहिँ—मध्य (काशि०)। [९] मारे—जाने (काशि०)। [१०] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [११] जानहु०—जानत भक्त (काशि०)। [१२] पूजन—पूरन (वेंकट, काशि०)।

लोकपालक-पाल हौ सब काल-काल मुरारि।
देहु जू बर बिस्वनायक चित्तबृत्ति बिचारि॥ १३॥
कर्मकारन धर्मधारन पापबारन बीर।
साध्य साधक बाध्य बाधक जाच्य जाचक धीर।
रक्ष्य रक्षक भक्ष्य भक्षक सर्बदा सुप्रकारि।
देहू जू बर देवपालक चित्तबृत्ति बिचारि॥ १४॥

(दोहा)

सुरकुल-कमल-दिनेस सुनि, दिति-कुल-कमल-हिमेस।
देहु देवनायक निरखि चित्तबृत्ति-लवलेस॥ १५॥
दास-चित्त-चातकहि प्रभु बोलि उठे घनस्याम।
माँगि सुमति प्रह्लाद बर, जासों तुमसों काम॥ १६॥

प्रह्लाद

सुनि सर्बग सर्बज्ञ निज नित्य सत्य सर्बेस।
सबतें नीको होय कछु सो दीजै उपदेस॥ १७॥

श्रीविष्णु

परम भक्त प्रह्लाद सुनि सरस बिस्नुपद दृष्टि।
परमानँदमय देखि पुनि परमानँद की सृष्टि॥ १८॥

देवी

बिस्नुहि होत अदृष्ट पुनि तबहीं श्रीप्रह्लाद।
पद्मासन सों बैठिकै करि बिचार अवदात॥ १९॥

प्रह्लाद

जाहि बिस्व में हौं नहीं अरु ब्रह्मा परजंत।
सबमें है सब बाहिरो हौं तिहि रूप अनंत॥ २०॥

(दोधक)

चंचल जौन प्रमान जु देखौ। रूप न आपनो रूपक लेखौ।
सब्द न गंध न है रस नीको। हेरि तुचा-रस लागत फीको॥ २१॥
निर्मल सब्द सबै तन सोभै। भूलिहुँ इंद्रियलोभ न लोभै।
बाहर भीतर व्यापक जो है। एक निरीह निरंजन सो है॥ २२॥

---

[१४] 'वेंकट, काशि॰' में नहीं है। [१६] दास॰—सदा चित्त हित वाक हित (सर॰)। प्रभु—प्रति (काशि॰)। सुमति॰—पुत्र प्रहलाद पुनि (सर॰) [१७] निज—अज (सर॰)। [१८] दृष्टि—इष्ट (वेंकट, काशि॰)। [१९] देवी—देव्यु (वेंकट, काशि॰)। पुनि—प्रभु (सर॰)। बैठिकै—बैठि पुनि (काशि॰)। [२०] जाहि॰—या जग मध्य सु (सर॰)। ब्रह्मा—बिरचि (वही)। [२१] दोधक—चौपैही (काशि॰)। जौन—पवन (वही)। रूपक—अरूपकै (सर॰)। [२२] निर्मल—निर्मम (वेंकट, काशि॰)। जो—सो (काशि॰)।

मोँ महिँ है जु हौँ जामेँ रहौँ जू। आपुहि आपने काम लहौँ जू।
दूसरो और न जाकहँ बूझौँ। एक चिदानँदरूप अरूझौँ ॥ २३ ॥

(दोहा)

चिदानंद संभोगमय, एक रूप अति सुद्ध।
अखिल सृष्टि ऊपर लसै, मेरी दृष्टि प्रबुद्ध ॥ २४ ॥

(दंडक)

जाको नाहीँ आदि अंत अमित अबाध जुत अकल अरूप अज चित्त मेँ अरत है।
अमर अजर अरु अद्भुत अबर्न अग अच्युत अनाम नाम रसना ररत है।
अमल अनंग अति अच्छर असंग अरु अस्तुत अदृष्ट देखिवे कोँ पसरत है।
बिधिहरिहर अरु बेद कहैँ जोसि सोसि 'केसौराय' ताकहँ प्रनामहि करत है ॥ २५ ॥

(दोहा)

महामोह अहिराज सो कोप कंचुकनि गात।
आवत ही गरुड़ध्वजै जान्यौ तहीँ बिलात ॥ २६ ॥
निपट अहंकृति पद्मिनी मम उर-पिंजर छंडि।
को जानै कित उड़ि गई तृस्ना रज्जुनि खंडि ॥ २७ ॥

देवी (रूपमाला)

यहि भाँति श्रीप्रहलाद 'केसव' चित्त माँझ बिचारि।
चित्त रूप समाधि साधि रहे सरीर बिसारि।
गिरिसृंग से प्रभु चित्त कारक चित्रियौ जनु चित्र।
तहँ बर्ष पंच सहस्र बीति गए सुनौ अब मित्र ॥ २८ ॥

(दोहा)

भयौ तबै पाताल मेँ महा अराजक देस।
भयौ बिस्नु के चित्त मेँ कछू सोच को लेस ॥ २९ ॥

श्रीविष्णु (तोटक)

प्रभु सोँ प्रहलादहि लीन भए। दिति-सूनु सबै इहि पंथ रए।
निरवेद भए दिबि देवन के। अरु अस्त भए ससि सूरज के ॥ ३० ॥

---

[२४] सृष्टि—दृष्टि (वेंकट, काशि०); लोक (सर०)। [२५] दंडक—सवैया (काशि०)। अरु—अज (वेंकट, काशि०)। नाम-यसु (वही)। अति०—सुभ अच्छत (सर०)। अदृष्ट—दृष्टि (काशि०)। वेद—देव (सर०)। जोसि०—खोजि खोजि (वही)। [२६] अहिराज—महिराज (काशि०)। [२७] रज्जुनि—राजनि (वेंकट, काशि०)। [२८] भाँति—बिधि (वेंकट, काशि०)। साधि—वित (वही)। अब—मख (वही)। [३०] तोटक—दोधक (काशि०)। प्रभु सोँ०—प्रहलाद तबै प्रभु (वही)। सूनु०—पुत्रन सोँ (सर०); सूत० (काशि०)। निरवेद—निर्वेद (वेंकट, काशि०)। दिबि—दिति (काशि०)।

बिनु सूरज क्यौँ भुवलोक लसै। भुवलोक नसेँ सब लोक नसै।
हम एक इहाँ केहि भाँति बसैँ। अध ऊरधहूँ जलजाल ग्रसैँ॥ ३१॥

(दोहा)

हमकोँ देवी सासना सुनियत है इहिँ रीति।
रक्षहु जग आकल्प लौँ दुष्ट अनेकनि जीति॥ ३२॥

योगवासिष्ठे

आकल्पहिमवास्तव्यं देहेनानेन चेतन।
एवं हि निहतिर्देवी निश्चिता परमेश्वरी॥ ३३॥

देवी (रूपमाला)

चित्त-मध्य बिचारियौ हरि सर्व-देव-समेत।
पक्षिराज चढ़े गए प्रहलाद-भक्त-निकेत।
चौर ढारत सिंधुजा जय-सब्द बोलत सिद्ध।
नारदादिक बंद्यमान असेषभाव प्रसिद्ध॥ ३४॥

(दोहा)

संख बजायौ जाय तब नारायन हित साधि।
जागि उठे प्रहलाद तब क्रम क्रम छोड़ि समाधि॥ ३५॥

श्रीविष्णु

परमभक्त प्रहलाद तुम, संतत जीवनमुक्त।
देह-त्याग यहि काल सुनि तुमकौँ नाहीँ जुक्त॥ ३६॥
राज दयौ आसिष दयौ नारायन सबिसेष।
सूरज ससि जौ लौँ रहैँ तौ लौँ राज असेष॥ ३७॥
राज कर्यौ प्रहलाद यौँ अहंकार कोँ छंडि।
त्यौँ तुमहूँ या लोक मेँ राज करौ अरि खंड़ि॥ ३८॥

वीरसिंह

लीन परमपद सोँ हुती पूरन दृष्टि विसुद्ध।
फिरि तब ह्वाँ तेँ बूझियै कैसेँ होहिँ विरुद्ध॥ ३९॥

केशवराय

सुद्ध बासना रहति है भूजे बीज प्रमान।
निज आतम सम सब लखत नीच 'रु ऊँच महान॥ ४०॥

---

[३१] लसै—बसै (काशि०)। [३२] दोहा—देव उवाच (काशि०) [३३] 'वेंकट, काशि०' मेँ नहीँ है। [३४] देवी०—चामर छंद (काशि०) [३५] 'वेंकट' काशि०' मेँ नहीँ है। [३७] लौँ—जगि (वेंकट, काशि०)। [३८] अरि०—सुख मंडि (सर०)। [३९] वीरसिंह—जीव उवाच (काशि०)। [४०] केसवराय—श्रीदेव्युवाच (काशि०)। भूजे०—इहई बात (वेंकट)। प्रमान—समान (सर०)। निज... ...महान—ज्ञान जन्म तेँ रहित है यहई बात प्रमान (सर०); 'काशि०' मेँ नहीँ है।

तातें जीवनमुक्त सम फिरत जगत सानंद।
चाहै तज्यौ सरीर कों तबहिं तजै नृपचंद ॥ ४१ ॥

योगवासिष्ठे

भूर्जबीजोपमा भूयो जन्मान्तरविवर्जिता।
हृदये जीवन्मुक्तानां शुद्धा वसति वासना ॥ ४२ ॥

इति श्रीमिश्रकेशवरायविरचितायां विज्ञानगीतायां चिदानंदमग्नायां प्रह्लादचरित्र-वर्णनं नाम अष्टादशमः प्रभावः ॥ १८ ॥

१९

(दोहा)

उनईसे में बर्निबो बलि को अतिविज्ञान।
ब्रह्मभक्त हरिभक्त को कहिबो सबै विधान ॥ १ ॥
ज्यौं साध्यौ बलि आपुही त्यौं साधौ विज्ञान।

जीव

कहियै माता करि कृपा बलिविज्ञानविधान ॥ २ ॥

देवी (सुंदरी)

पुत्र बिरोचन को बलि दानव। बंदत ताहि सुरासुर-मानव।
लीलहिं लोक बिलोक लए सब। एकहि छत्र त्रिलोक छए तब ॥ ३ ॥
भक्ति के बस्य करे हर श्रीहरि। दैयत भूतल स्वर्ग रहे भरि।
राज अकंटक तीनिहुँ लोकनि। दैयत बास बिदेस के ओकनि ॥ ४ ॥

(दोहा)

बरषैं दसकोटिक कर्‌यौ भलो राज बलिराज।
धर्म चल्यौ चौंहूँ चरन तिहूँ लोक सुखसाज ॥ ५ ॥

(रूपमाला)

रत्न सृंग सुमेरु के पर बैठिकै इक काल।
बुद्धिबृद्धि भई हिये महँ भाँति भाँति बिसाल।

---

[४१] तातें—वातें (वेंकट); जाते (काशि०)। सम—सत्र (सर०, काशि०)। तवहिं—ताहि (सर०)। [४२] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है।

[१] उनईसे में—उनविंसति मो (काशि०)। [२] माता—भक्ति सु (सर०)। 'काशि०' में नहीं है। [३] देवी०—देव्यु सुंदरी (वेंकट); देव्यु दोधक (काशि०)। लीलहिं—ख्यालहिं (वेंकट, काशि०)। तब—सब (काशि०)। [४] करे—भए (सर०)। हर०—हरि श्रीहरु (वेंकट, काशि०)। रहे०—महाभरु (वही)। [५] धर्म०—सब लोकन कों जीति कै बस्य कर्‌यौ अहिराज (सर०)। सुखसाज—सुखराज (वेंकट)।

बलिराज

भोग मैं बहु भोगियै तिहुँ लोक को करि राज।
तृप्ति होति न चित्त में यह कौन है सुखसाज ॥ ६ ॥

(दंडक)

चढ़ि कै बिमान दिसि दिसि जस मढ़ि मढ़ि बढ़ि बढ़ि जुद्ध जुरि वैरी बहु मारे हैं।
'केसौदास' भूषनबिधान परिधान पान भामिनी सहित तिहुँ लोकनि बिहारे हैं।
जल दल फल फूल मूल पटरसजुत व्यंजन अनेक अन्न खायकै बिगारे हैं।
तदपि न भागी भूख चित्त न बिसुद्ध होत सकल सुगंध दुरगंध कै कै डारे हैं ॥ ७ ॥

देवी (दोहा)

यह बिचारि गुरु पै गए कीने बिबिध प्रनाम।
बात आपने चित्त की कहन लगे गुनग्राम ॥ ८ ॥

बलिराज (तारक)

सुनियै चित दै यह बात महागुरु। सब दूरि करे सुरलोकन के सुर।
अब मो मति लीन चहै हर श्रीहरि। बिधि बस्य करे बहु जज्ञनि कों करि ॥ ९ ॥
भय भागि दरीनि दुरयौ सुरनायक। और है जीतिबे कों कोउ लायक।
कहियै सु कृपा करि ताहि करौं बस। अति धौत करौं जगती अपने जस ॥ १० ॥

शुक्र

है इक देस बिसाल महामति। सब देसनि ऊपर देस महा अति।
सूरज सोम को अस्त उदोत न। नित्य प्रकास निसा निसि होत न ॥ ११ ॥
है न तहाँ सरिता गिरि-कूप न। भूमि अकास न सिंधु सरूप न।
काम न क्रोध न लोभ बिरोध न। दंभ न पाप, अपाप-प्रबोधन ॥ १२ ॥

गीतायां

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परम मम ॥ १३ ॥

---

[६] रूपमाला—चंचला (काशि०)। बैठिकै०—बैठे हैं तिहु (वही)। राज—साज (वेंकट, काशि०)। साज—राज (काशि०)। [७] दंडक—सवैया (सर०); विजय (काशि०)। चढ़ि०—भोगए तिहु लोक को (काशि०)। बढ़ि०—जुद्ध क्रुद्ध जरि (सर०)। परिधान०—गान (काशि०)। पान—जान (वेंकट)। [८] देवी—देव्यु (वेंकट, काशि०)। [९] तारक—दोधक (काशि०)। चहै०—चलै हरि (काशि०)। [१०] धौत—सौध (वेंकट); धौंस (काशि०)। [११] महामति—मनोहर (सर०)। सब०—सुंदर लोक सहस्रन घर (वही)। निसि—दिन (सर०, काशि०)। [१२] विरोध—न मोह (वेंकट, काशि०)। दंभ—बध (वही)। [१३] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है।

(दोहा)

राजा है ता देस को सम सर्वंग सर्वज्ञ।
अजित अनंत अमेय है जानत नाहिँन अज्ञ ॥ १४ ॥
ताके मंत्री एक है कर्तुमकर्तुंसमर्थ।
प्रगट अन्यथाकरन अरु जानत अर्थ-अनर्थ ॥ १५ ॥

बलिराज

नाम कहा ता देस को मंत्री को कहि आसु।
कौन धाम वा राज को मोतेँ अजित प्रकासु ॥ १६ ॥

शुक्र (रूपमाला)

आनंदमय वह देस है तिहुँ लोक को अति इष्ट।
राजा तहाँ चिद्ब्रह्म पूरन सर्वभाव अदृष्ट।
मंत्री प्रभाव प्रसिद्ध है इहिँ नाम अद्भुत भेष।
कर्तार पालक बिस्वघालक जुक्ति सक्ति असेप ॥ १७ ॥
सासना जिनकी भवैँ ससि सूर बासर राति।
सेषनाग सदा रहैँ धरनी धरेँ इक भाँति।
मैंड छाँडि सकैँ न सिंधु बहै निरंतर बायु।
छ्वै सकै नहिँ काल प्राननि छीनता बिनु आयु ॥ १८ ॥

(सवैया)

'केसवदास' अकास मेँ सब्द अकास न सब्द-प्रकासन जानत।
तेज बसै तरुखंडन मेँ तरुखंड न तेजन कोँ पहिचानत।
रूप बिराजत चित्रन मेँ पुनि चित्र न रूप-चरित्र बखानत।
त्योँ सब जीवन मध्य प्रभाव, सुमूढ़न जीव प्रभाव न मानत ॥ १९ ॥

(दोहा)

जाकी सत्ता तेँ लगत साँचो सो संसार।
जैबे कोँ ता देव नृप कीजै चित्त बिचार ॥ २० ॥

बलिराज (रूपमाला)

जौँ दई प्रभुता सबै प्रभु ह्वै कृपालु सुभाउ।
मोहिँ देहु बताय सो थल बेगि दै जिहि जाउँ।

---

[१४] सम०—सब समान (वेंकट, काशि०)। अजित० अमित अजेय अमेय अज अद्भुत बिज्ञान अज्ञ (सर०)। नाहिँ—ताहि (काशि०)। [१५] ताके- तामि (काशि०)। [१६] राज—देस (सर०)। [१७] रूपमाला—गीतिका (काशि०)। लोक—देव (सर०)। अदृष्ट—निदिष्ट (वेंकट, काशि०)। भेष—वेष (काशि०)। [१८] प्राननि—बीचहिँ (काशि०)। [१९] न जानत—हि मानत (काशि०)। पुनि—परि (वेंकट, काशि०)। प्रभाव०—प्रभा प्रभु मूढ न जीव प्रभावहिँ जानत (काशि०)। [२०] सत्ता०—सत्या सो (काशि०)। ता देव—तिहिँ दिवस (सर०)।

कौन भाँति सु जीतियै प्रभु दीजियै समुझाय।
मंत्र जंत्र तपादि तें तेहि माहिँ चित्त लगाय ॥ २१ ॥

(दोहा)

ब्रह्मभक्ति हरिभक्ति प्रभु कैसें होहिँ प्रसन्न।
सोई मति उपदेसियै मन क्रम बचन प्रसन्न ॥ २२ ॥

शुक्र

ब्रह्मभक्ति हरिभक्ति तहँ प्रतीहारिनी दोइ।
तिनकों सेवहु सर्बदा तबहीं दर्सन होइ ॥ २३ ॥
ब्रह्मभक्ति कीजै नृपति उपजि परै हरिभक्ति।
तातें पहिले ही तुम्हैं हौं सिखऊँ द्विजभक्ति ॥ २४ ॥

रामचंद्र सीताप्रति स्कंदपुराणे

ब्रह्मभक्तिर्विना सुभ्रु विष्णुभक्तिर्न जायते।
तस्माद्विष्णोस्तु भक्त्यर्थं ब्रह्मभक्त्यैव संमतम् ॥ २५ ॥

(दोधक)

बिप्रनि की सब सीख सुनौ जू। ब्राह्मन ब्रह्मसमान गुनौ जू।
देहु सबै इक दुक्ख न दीजै। आसिष स्यों चरनोदक लीजै ॥ २६ ॥
छोंडि अहंकृति बिप्रनि पूजौ। भूतल में एइ देव न दूजौ।
काम सबै तेहि पूजन पूजैं। ब्राह्मन पावहु पूज न दूजैं ॥ २७ ॥

धर्मशास्त्रे यथा

देवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीना च देवता।
ते मन्त्राः ब्राह्मणाधीनास्तस्मात् ब्राह्मणदेवता ॥ २८ ॥

(रूपमाला)

निग्रहानुग्रह करै अरु देइ आसिष गारि।
सो सबै सिर मानि लीजै सर्बथा मनुहारि।
जानि उत्तम बिस्नु जू भृगु कों धर्यौ उर लात।
सर्बभाव अजेयता तिन पाइयौ इहिँ बात ॥ २९ ॥

---

[२१] रूपमाला—गीतिका (काशि०)। थल—मग (सर०)। सु जीतियै०—त्रिलोकियै (सर०); नि जीतिये तेहि कौन कर्म प्रभाउ (काशि०)। तपादि०—जपो तपो धन देइ सो उपदेस (सर०); पदेस दै चित जाहि करो लगाउ (काशि०)। [२३] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [२५] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [२६] ब्राह्मन०—आतम माँह प्रकास (काशि०)। [२७] में०—देखियै (सर०)। [२८] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [२९] रूपमाला—गीतिका (काशि०)। लात—तात (वेंकट)। इहिँ—यह (वेंकट, काशि०)।

पद्मपुराणे

न यज्ञयोगेन तपोभिरुग्रैर्न मन्त्रतीर्थैर्न च मार्जनेन ।
तथा हरिस्तुष्यति देवदेवो यथा महीदेवसुतोपणेन ॥ ३० ॥

(रूपमाला)

पंगु ब्राह्मन गुंग अंध अनाथ राज कि रंक ।
अज्ञ होहि कि विज्ञ भेद न मानियै करि संक ॥ ३१ ॥
पूजियै मन बचन कर्मनि प्रेम पुन्य प्रमान ।
सावधाननि सेइयै सब बिप्र ब्रह्म-समान ॥ ३२ ॥

गीतायां यथा विष्णु

साचारो वा निराचारः साधुर्वासाधुरेव च ।
अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनुः ॥ ३३ ॥

पद्मपुराणे धर्मराज

पश्यन् हि भेदं न ध्यायेद् ब्राह्मणः शंकरं यतः ।
विरता विष्णुविद्यासु नरा निरयगामिनः ॥ ३४ ॥

वीरसिंह (दोहा)

कहै भागवत में असम गीता कहै समान ।
अप्रमान कौनहिं करौं कौनहिं करौं प्रमान ॥ ३५ ॥

श्रीभागवते यथा

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखात् श्वपचं वरिष्ठम् ॥ ३६ ॥

केशवराय (दोहा)

दोऊ बचन प्रमान हैं अपने विषयनि पाय ।
इह जानौ हरिभक्ति पर समुझौ सुत सुखदाय ॥ ३७ ॥
गायत्रीसंजुक्त हैं सबै बिप्र हरिभक्त ।
बेद पुराननि में कहे चारो बिप्र अभक्त ॥ ३८ ॥
तिन्हैं छाँडि संपूजियै ब्राह्मन ब्रह्मसरूप ।
कबहूँ भेद न मानियै बिप्र होत जुगरूप ॥ ३९ ॥

---

[३०] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है । [३३-३४] 'वेंकट, काशि०' में नहीं हैं । [३६] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है । [३७] केसवराय–शुक्र (वेंकट, काशि०) । वचन–बरन (सर०) । प्रमान–समान (वही) । बिषयनि–जीवनि (काशि०) । सुत–सुख (वेंकट) । [३९] संपूजियै–सब पूजियै (काशि०) । ब्रह्म–बिस्नु (सर०) ।

पराशर

युगे युगे तु ये धर्माः ये द्विजा याश्च देवताः ।
तेषां न निन्दा कर्तव्या युगरूपाश्च देवताः ॥ ४० ॥

(दोहा)

स्रुति स्मृति सास्त्रनि सुनि समुझि, कर्म करै प्रतिकूल ।
हरिपदबिमुख जो बिप्र हैं नरकनि कों अनुकूल ॥ ४१ ॥
पतित संग अपवित्र नृप तिनिहूँ को हित हेरि ।
स्रुति स्मृति सास्त्रनि करत हैं ताकी निंदा टेरि ॥ ४२ ॥
चारि कर्म जुत बिप्रकुल जो कैसोई होय ।
सब ही को गुरु सर्बदा सब तें पावन सोय ॥ ४३ ॥

धर्मशास्त्रे यथा

पतितोऽपि वरो विप्रो न च शूद्रो जितेन्द्रियः ।
कः परित्यज्य गां दुष्टां खरीं शीलवतीं दुहेत् ॥ ४४ ॥

वृद्धयाज्ञवल्क्ये

ब्राह्मणं साधुकं मान्यं अर्थतो यो न पूजयेत् ।
तस्य पुण्यचयो ह्याशु क्षयं याति न संशयः ॥ ४५ ॥

ब्रह्मनारदीयपुराणे

सन्निकृष्टं वाधीनं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत् ।
भोजनैश्चैव दानैश्च दहत्यासप्तमं कुलम् ॥ ४६ ॥

बलिराज

चारि कर्म ते कौन हैं जिन तें होत अभक्त ।
हम सों कहि समुझाइयै जिय में ह्वै अनुरक्त ॥ ४७ ॥

शुक्र

हरि कों हिय जानै नहीं द्विज द्रव्यनि अनुरक्त ।
जनक जननि कहँ देत दुख माठापत्य अभक्त ॥ ४८ ॥

यथा श्रीनारायण लक्ष्मी प्रति

मद्भक्तः शंकरद्रोही मद्द्रोही शंकरप्रियः ।
तावुभौ नरकं यातो यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ४९ ॥

---

[४०] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है । [४१] सुनि०—कों सबै (सर०) । विप्र०—सर्वदा (वही) । [४२] हित—हिय (सर०) । श्रुति०—स्मृति सास्त्र सब (काशि०) । [४३] जुत—तजि (सर०); है (काशि०) । [४४ से ४६] 'वेंकट, काशि०' में नहीं हैं । [४७] तें—सो (काशि०) । ह्वै—मुनि (सर०) । [४८] हरि०—भेद करहिं जे हरिहरहिं (सर०) । द्रव्यनि—कर्मनि (वेंकट, काशि०) । माठा०—मठपति विप्र (सर०); मठपति कही (काशि०) । [४९ से ५५] 'वेंकट, काशि०' में नहीं हैं ।

वामनपुराणे

न विषं विषमित्याहुः विषं ब्रह्मस्वमुच्यते।
विषमेकं दहत्येव ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकान्॥ ५०॥

यथाग्निपुराणे

नाजारजः पितृद्वेषी नाजारा भर्तृवैरिणी।
नालम्पटोऽधिकारी स्यात् नाकामी मण्डनप्रियः॥ ५१॥

रामायणे

ब्रह्मस्वं देवद्रव्यं च स्त्रीणां बालवधं च यत्।
द्रव्यं हरति यो मोहाद्द्रष्ट्रा सह पतत्यधः॥ ५२॥

स्कंदपुराणे

हरस्य चान्यदेवस्य केशवस्य विशेषतः।
मठाधिपत्यं यः कुर्यात् सर्वधर्मबहिष्कृतः॥ ५३॥

देवीपुराणे

अभोज्यं मठिनामन्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।
स्पृष्ट्वा मठपतिं विप्रं सवासा जलमाविशेत्॥ ५४॥

पद्मपुराणे

पत्रं पुष्पं फलं तोयं द्रव्यमन्नं मठस्य च।
योऽश्नाति स पचेत् घोरे नरके चैकविंशतिः॥ ५५॥

(दोहा)

इनकों तौ नृप छाँडिजै कीजै द्विज-आसक्ति।
त्रिविध पाप मिटि जाहिं उर उपजि परै हरिभक्ति॥ ५६॥
अकल अविद्या-रहित है स्रद्धाजुत हरिभक्ति।
साधौ नवधा अंग सों तजि सब सों आसक्ति॥ ५७॥
नवरसमिश्रित साधि नृप नवधा भक्ति प्रमानु।
दानव मानव देवगन भक्त-कमल हरि-भानु॥ ५८॥

भागवते यथा

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं सख्यं दास्यमात्मनिवेदनम्॥ ५९॥

---

[५६] तौ नृप–तूरन (वेंकट, काशि०)। कीजै०–विप्रचरन (काशि०)। [५७] अकल–सकल (सर०)। रहित–अहित (वही)। सब सों०–जग की (वही)। [५८] देवगन–इंद्र मुनि (सर०)। भक्त०–दितिकुलपंकज (वही)। [५९-६०] 'वेंकट, काशि०' में नहीं हैं।

नवरसवर्णनं भरताचार्यैः

श्रृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः ।
बीभत्साद्भुतशान्ताश्च नव काव्यरसाः स्मृताः ॥ ६० ॥

(दोहा)

जीतहु अद्भुत स्रवन सों, सुमिरन करुना जानि ।
सहित जुगुप्सा दासता पाद-भजन भय मानि ॥ ६१ ॥
बंदन बीर, सिंगार स्यौं अर्चन सख्य सहास ।
रौद्र कीरतन, सम सहित आत्मनिबेद प्रकास ॥ ६२ ॥

(रूपमाला)

दीन ह्वै स्मर दीनबत्सल नाम नाम निदान ।
कर्म अद्भुत भाव सों सुनि नित्य बेद पुरान ।
छोंडि मान अमान स्यौं उपहास ह्वै जो दास ।
पादसेवहु ब्रह्म को तजि सर्बभावनि त्रास ॥ ६३ ॥

(दोहा)

कीरति पढ़ि नीरसक ह्वै रुद्र रूप मन जीति ।
मन जीते उर उपजिहै परब्रह्म सों प्रीति ॥ ६४ ॥

(रूपमाला)

काम क्रोधहि जीतिकै मद लोभ मोह निवारु ।
मित्र ज्यौं हँसि मग्न आनँद अर्चि साजि सिंगारु ।
रूप-संवर रौद्र स्यौं बपु अर्पियौ अनयास ।
पाय पूरन रूप कों सम-भूमि 'केसवदास' ॥ ६५ ॥

यथा मत्स्यपुराणे

मोक्षदात्री च संपूर्णलोभदम्भादिवर्जिता ।
जगदीशस्य नवधा भक्तिर्नवरसात्मिका ॥ ६६ ॥

देवी (दोहा)

सुक्राचारज के कहे बलि साधी सब रीति ।
सुद्ध भयौ मन सर्वथा बढ़ी ब्रह्म सों प्रीति ॥ ६७ ॥
तैसें तुमहूँ छोंड़ि भ्रम होउ ब्रह्म सों लीन ।
पावहु परमानंद ज्यों संतत नित्य नवीन ॥ ६८ ॥

इति श्रीमिश्रकेशवरायविरचितायां चिदानंदमग्नायां विज्ञानगीतायां बलिचरित्रविज्ञान-प्राप्तिवर्णनं नाम एकोनविंशतितमः प्रभावः ॥ १९ ॥

---

[६१] जीतहु–जो जहँ (सर०) । जुगुप्सा०–जो गुरपरसादता (काशि०) । [६३] रूपमाला–गीतिका (काशि०) । सुनि–पुनि (सर०) । उपहास०–उपमान कीजै (वेंकट, काशि०) । [६५] रूपमाला–गीतिका (काशि०) । काम०–वंदना रसवीर (सर०) । काम......निवारु–'काशि०' में नहीं है । लोभ०–इंद्रियादिक मास (सर०) । हँसि०–हरि मान (वही) । रौद्र०–सदि सो वहु आपुयो (वेंकट, काशि०) । पाय.........केसवदास–'काशि०' में नहीं है । सम–रमि (सर०) । [६६] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है ।

२०

(दोहा)

पंच बीज को बीसएँ उत्तम बिस्नु प्रकास।
सप्तभूमि हरिभक्ति की कहिबो 'केसवदास' ॥ १ ॥
सृष्टिबीज के बीज को ताके बीजहि जानि।

जीव

कौन बीज ता बीज को ताको बीज बखानि ॥ २ ॥

देवी

जुक्त सुभासुभ अंकुरनि बीजसृष्टि को देह।
भावाभाव दसान मै सुखदुख्खद यह गेह ॥ ३ ॥

(नाराच)

बीज देह को बिदेह-चित्तबृत्ति जानियै।
जाहि मध्य स्वप्न-तुल्य संभ्रमादि मानियै।
दोइ बीज चित्त के सुचित्त ह्वै सुनौ अबै।
एक प्रानस्पंद है द्वितीय भावना सबै ॥ ४ ॥

(दोहा)

प्रानस्पंद चलचित्त गति अति भावनाभिलाख।
तिनतें उपजति बासना छिप्र सहस दस लाख ॥ ५ ॥

(रूपमाला)

चंद सूरहि चंद के मग सुष्मनागत दीस।
प्रानरोधन कों करै जेहि हेत सर्व ऋषीस।
चित्त-सोधन प्रान-रोधन चित्त सुद्ध उदोत।
ब्याधि आदि जरै जराजुत जन्म मरन न होत ॥ ६ ॥

(पादाकुल)

जद्यपि तीरथनीरनि सेवहु। सकल सास्त्रमय देवनि देवहु।
जद्यपि चित्तप्रबोध न बोधिय। तद्यपि प्रान निरोधन रोधिय ॥ ७ ॥

---

[१] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [३] देवी—देव्यु (वेंकट, काशि०)। सुभा०—सुभ्र अंकुरन में (सर०)। भावा०—भावभयानि दिसान में सुख रत्ती को (वही)। [४] अबै—सबै (काशि०)। [५] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [६] रूपमाला—गीतिका (काशि०)। चंद०—होत सर्व अनर्थ व्यर्थ ति प्रानरोधन रीस (सर०); प्रान रोधन कों करै जेहि हेतु सर्व रिषीस (काशि०)। प्रान०—ब्रह्म कों करि साधना तब होइ ब्रह्म सरीस (काशि०)। जरा०—ज्वरादिक (सर०)। [७] 'काशि०' में नहीं है। प्रान—चित्त (वेंकट)।

जदपि ज्ञान बियोग धरा बढ़्यौ । तबहुँ सोदर साथ सदा बढ़्यौ ।
जद्यपि जर्जर सेष बखानिय । तबहूँ चित्त सुमित्त न मानिय ॥ ८ ॥

(दोहा)

दोइ बीज हैं चित्त के ताके बीजनि जानि ।
सो संवेद बखानियै 'केसवराय' प्रमानि ॥ ९ ॥
बीज सदा संवेद को संबिद बीजबिधान ।
संबिद अरु संवेद को छोंडत हैं मतिमान ॥ १० ॥
संबिद को चित बीज है ताकों सत्ता होय ।
'केसवराय' बखानियै सो सत्ता बिधि दोय ॥ ११ ॥
एक सु नाना रूप है एक रूप है एक ।
एक रूप संतत भजौ तजियै रूप अनेक ॥ १२ ॥
एक कालसत्ता कहै बिमत चित्त को ताहि ।
एक बस्तुसत्ता कहै चितसत्ता चित चाहि ॥ १३ ॥
ताको बीज न जानियै जाकी सत्ता साधु ।
हेतु जु है सब हेतु को ताही कोँ आराधु ॥ १४ ॥

(सुंदरी)

संग वै अर्थ अनर्थ बढ़ावत । संग वै बस्तु-बिचार पढ़ावत ।
संग वै भुक्तिलता कहँ बारन । ताते करौं प्रभु संग निवारन ॥ १५ ॥

जीव (दोहा)

संसय तृनचय दाहिकै देबि सुनौ सुखदाय ।
संग कहावत है कहा कहि माता समुझाय ॥ १६ ॥

(दोधक)

एक संग जनसंग कहावै । एक संग यह देह कहावै ।
एक बासना संग तजौ जू । जीवनमुक्त प्रभाव भजौ जू ॥ १७ ॥

---

[८] जर्जर०—चतुर्दस (सर०) । शेष—रस सु (काशि०) । [९] चित्त—बीज (सर०) । बीजनि—चित जनि (काशि०) । प्रमानि—बखानि (वही) । [१०] संबिद०—संबिद वेद बखानि (काशि०) । बिधान—बखान (सर०) । संबेद—संघात (वेंकट, काशि०) । [११] दोय—होय (काशि०) । [१२] एक रूप०—कालरूप सत्ता भयो (सर०) । [१३] बिमत०—एक कालसत्ताहि (सर०) । वस्तु—वत्स (काशि०) । [१४] जाकी—ताकी (सर०) । । [१५] सुंदरी—दोधक (काशि०) बढ़ावत—को कारन (सर०) । पढ़ावत—बिचारन (वही) । [१७] सग जन—सुराज सु (वेंकट, काशि०) । कहावै—सुभावै (काशि०) । एक—और (वेंकट, काशि०) । प्रभाव—कथान (सर०) ।

गीतायां यथा

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ १८ ॥

(दोहा)

नसें बासना संग की संग सबै नसि जात।
निसा नसें नसि जात ज्यौं निसिचर को संघात ॥ १९ ॥

जीव

महामोह-तम-चंद कै नसें संग की ज्योति।
ता देही के देह की कहौ कौन गति होति ॥ २० ॥

देवी

संग नसै जिहि भाँति ज्यौं उपजै पाप अपाप।
तिन सों लिप्त न होहिं ते ज्यौं उपलन को आप ॥ २१ ॥

योगवासिष्ठे

बलादपि हिंसा जाता न लिम्पत्याशयं सतः।
लोभमोहादयो दोषाः पयांसीव सरोरुहम् ॥ २२ ॥

वीरसिंह

बेद कहै सिव सों सदा सब बिधि जीवनमुक्त।
कहि 'केसव' कैसें भयौ ब्रह्मदोषसंजुक्त ॥ २३ ॥

केशव

अकस्मात जो असुभ सुभ उपजि परै कहुँ आनि।
तौ वह लिप्त न होय जो सिव कीनौ यह जानि ॥ २४ ॥

वीरसिंह

महाप्रलय करतार को कैसें बंधन होय।
हम सों कहि समुझाइयै कहिय दोष क्यों होय ॥ २५ ॥

---

[१८] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [१९] संग की—गध को (वेंकट)। जात ज्यौं—जीव कों (सर०)। [२०] नसें०—तिनकी संगति (वेंकट, काशि०)। कहौ०—कौन दसा तब होति (सर०)। [२१] देवी—देव्यु (वेंकट, काशि०)। संग—सगुन (काशि०)। आप—आप (वही)। [२२] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [२३] वीरसिंह—जीव उवाच (काशि०)। [२४] केशव—देव्यु (काशि०)। [२५] वीरसिंह—जीव उवाच (काशि०)। बंधन०—लाग्यौ पाप (सर०)। कहिय०—कहियै दोष प्रताप (वही)।

केशव (रूपमाला)

ईस कों जगदीस कों यह सासना सब काल।
मारि आपु अधर्म कों करि धर्म कों प्रतिपाल।
पाप कों तिहि हेत तें तिनि कर्यौ आसु बिनास।
धर्म को जगमध्य में पुनि कीन पुंज-प्रकास ॥ २६ ॥

(दोहा)

दुहूँ भाँति की सासना मनोभाव भय मानि।
जौ न मानियै सर्बथा प्रभु को द्रोह बखानि ॥ २७ ॥

राजधर्म

आज्ञाभंगो नरेन्द्राणां विप्राणां मानखण्डनम्।
पृथक्शय्या वरस्त्रीणामशस्त्रवध उच्यते ॥ २८ ॥

(दोहा)

प्रभु को कह्यौ करै न यह अधिकारीनि अधर्म।
तातें राखै लोक में लोकाधिप को धर्म ॥ २९ ॥

ब्रह्मनारदीये

ब्रह्मविष्णुमहेशाणां यस्यांशाः लोकसाधकाः।
समाधिदेवचिद्रूपं विश्वेशं परमं भजेत् ॥ ३० ॥

(दोहा)

देव दुरायौ ईस को रूप सु ताहि प्रकास।
तेही तें संसार को ह्वैहै आसु बिनास ॥ ३१ ॥
जैसें देवनि देवमनि करत जदपि जगदीस।
तैसें अपने रूप को जतन करौ तुम ईस ॥ ३२ ॥

योगवासिष्ठे

ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राद्याः यद्यत् कर्तुं समुद्गताः।
तदहं चिद्वपुः सर्वं करोमीत्येव भावयेत् ॥ ३३ ॥

जीव

भू हरिभक्तिबियोग की कैसें साधत साधु।
कैसो तिनको रूप है कहियै देबि अगाधु ॥ ३४ ॥

---

[२६] केसव–देव्यु (काशि०)। आपु–आसु (वेंकट, काशि०)। पुनि–सुनि (वेंकट); अति (काशि०)। [२७] द्रोह०–देहु बखानि (वेंकट); देहु नखानि (काशि०)। [२८] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [२९] यह–गजु (सर०); जहाँ (काशि०)। [३०] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [३२] करत०–जपत रहत (सर०)। [३३] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [३४] भू–जो (वेंकट, काशि०)।

देवी (रूपमाला)

एक जीव प्रबृत्ति एक निबृत्ति जानि सुजान।
स्वर्ग सों अपवर्ग सों रति होति हेत बखान।
है कहा अपवर्ग 'केसव' नित्य संसृति लोक।
स्वर्गभोगनि भोगवै जग तें निवृत्ति बिलोक॥ ३५॥
स्वर्ग नर्कनि जात आवत कों फदीहति होय।
आइयै जिहि लोक तें मन जो बिचारै कोय॥
आगिलें मरिहैं मरत अब पाछिलें परतच्छ।
मेटियै मरिबो बखान निबृत्ति जे मतिअच्छ॥ ३६॥

गीतायां

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥ ३७॥

(दोहा)

क्यौं तजियै कुलराग अरु क्यौं तजियै संसारु।
या बिचार तें होति है प्रथम भूमिका चारु॥ ३८॥

(रूपमाला)

लोभ दंभ मदादि मान बिमोह क्रोध बिहीन।
वेदभेदबिचार धारन ध्यान कर्महिं लीन।
बस्तु सिद्ध प्रसिद्ध साधन साधिबे कहँ जुक्त।
भूमिका यह दूसरी जब होय जी अनुरक्त॥ ३९॥

(दोहा)

असंसंग जू तीसरी जोगभूमिका जानि।
तामें मन पौढ़ायकै सेज फूल की मानि॥ ४०॥

(त्रिभंगी)

निंदै बहु बारनि करि निरधारनि बस्तुबिचारनि संसारनि।
फलफूलअहारी बिपिनबिहारी तजि बिभिचारी मतिचारनि।
तजि दुख सुख साथनि नाथ अनाथनि गुनगन साथनि श्रीनाथनि।
भ्रमभार अतीतनि मोहबितीतनि इंद्रियजीतनि दिन रातनि॥ ४१॥

---

[३५] देवी०—गीतिका छंद (काशि०)। स्वर्ग—सर्व (वेंकट)। निवृत्ति—प्रवृत्ति (वही)। [३६] मन०—नहिं जीव चारै कोय (वेंकट, काशि०)। [३७] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [३९] रूपमाला—गीतिका (काशि०)। मदादि मान—महाभिमान (सर०)। बिमोह—समोह (काशि०)। [४०] 'वेंकट काशि०' में नहीं है। [४१] साथनि—गाथनि (काशि०)।

(दोहा)

पाय तीसरी भूमिका 'केसव' होत प्रबुद्ध।
असंसंग द्वै भाँति के मोपै सुनि मतिसुद्ध ॥ ४२ ॥
एक होय साधारनै दूजी इष्ट सु जानि।
तिनके रूप प्रकार अब तुमसों कहौं बखानि ॥ ४३ ॥

(रूपमाला)

भोगता करता न हौं अब बाध्य बाधक हौं न।
व्याधि आधि बियोग जोग अभोग भोगन कौन।
संपदा बिपदा सबै सुख दुक्ख आवत जात।
एक पूरब कर्म तें भ्रमियै न कौनहुँ नात ॥ ४४ ॥

(दोहा)

यह साधारन जानिबो असंसंग इत्यादि।
कहौं दूसरो चित्त है सुनियै देव अनादि ॥ ४५ ॥
बाहिरहूँ भीतर भजौ अध ऊरधन दिसानि।
नाहीं अर्थ अनर्थ में ना जड़ अजड़नि मानि ॥ ४६ ॥
जाकी प्रभा प्रकासियै अस्ति अनंत अगाधु।
सबतें न्यारो सर्बदा असंसंग सो साधु ॥ ४७ ॥

(विजय)

चित्त सुनाल के अग्र लसै बहु कंटक कष्ट बिनास बिलासे।
कारन कोमल पल्लव 'केसवदास' सँतोष सुबासनि बासे।
भक्ति असंग की तीसरी भूमि मिलै असि अद्भुत संसृति नासे।
भूप बिवेक हिये सरसी सह मित्र बिचार प्रकास प्रकासे ॥ ४८ ॥

(दोहा)

प्रथम भूमिका अंकुरै दूजी होत प्रकास।
फलै तीसरी भूमिका फल अद्भुत अबिनास ॥ ४९ ॥
भासत है अद्वैत उर द्वैतन सों अकुलाय।
लोक बिलोकै स्वप्नवत भूमि चतुर्थी पाय ॥ ५० ॥

---

[४३] इष्ट०—संस्तुति (वेंकट); सेष्टा (काशि०)। प्रकार०—प्रकास सुनि (सर०); प्रकास अब (काशि०)। [४४] नात—जात (वेंकट, काशि०)। [४५] यह०—यहई साधन साधिबो (सर०)। [४६] बाहिरहूँ—चारि चहूँ (वेंकट); चारिहूँ (काशि०)। ना०—भाजै जड़नि समानि (सर०)। [४७] प्रकासियै—प्रभासियै (सर०)। अस्ति—अति (सर०); अमित (काशि०)। सर्बदा—सब्बनियै (सर०)। [४८] बिनास—बिलास (वेंकट, काशि०)। कारन—बारिज (सर०)। भक्ति—भूत (वेंकट, काशि०)। सह—महँ (वही)।

तृतिया जाग्रत सम लसै चौथी स्वप्न समान।
जानि सुषुप्तक पाचईं भूमि-बिभाग प्रमान ॥ ५१ ॥
छूटि जाति है आपु तें ग्रंथि सु सब अनयास।
जीवनमुक्त दसा लसै छठी भूमि भ्रम-नास ॥ ५२ ॥
सुखद सप्तमी भूमिका निस्चल चित्त-बिलास।
चित्तदीप की ज्योति तब पूरन परम प्रकास ॥ ५३ ॥
अंतर बाहिर हीन है पूरन बाहिर अंत।
जल-थल घट आकास ज्यौं पूरन पूरनवंत ॥ ५४ ॥
अन्तःशून्यो बहिःशून्यः शून्यः कुम्भ इवाम्बरे।
अन्तःपूर्णो बहिःपूर्णः पूर्णः कुम्भ इवार्णवे ॥ ५५ ॥
पाय सप्तमी भूमिका भक्ति न होति बिदेह।
देवरूप स्वच्छंद जग रहत बिपिन अरु गेह ॥ ५६ ॥

जीव

हमको देबी करि कृपा कहौ देव को नाम।
जिनको करि उच्चार मुनि पल पल करत प्रनाम ॥ ५७ ॥

देवी (भुजंगप्रयात)

कहैं एक तासों सिवै सून्य एकै। महाकाल एकै महाबिस्नु एकै।
कहैं अर्थ एकै परब्रह्म जानौ। प्रभापूर्न एकै सदा सत्य मानौ ॥ ५८ ॥

(दोहा)

एक आतमा कहत हैं एक कहैं चित भक्त।
इहि बिधि नाना नाम जग लसत सबै अनुरक्त ॥ ५९ ॥

वीरसिंह

अमित अमेय अरूप के ऐसे हैं सब नाम।

केशव

मुनि भक्तनि हैं गहि लए महाराज गुनग्राम ॥ ६० ॥

योगवासिष्ठे

एकमात्मपरं ब्रह्म सत्यमित्याह वै बुधः।
कल्पनाव्यवहारार्थं तस्य संगो महात्मनः ॥ ६१ ॥

---

[५३] तब–वत (सर०, काशि०)। परम–प्रेम (सर०)। [५४] जल०–सुखद सप्तमी भूमिका सदा होति अति सत (सर०)। [५५] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [५६] भक्ति०–निस्चल चित्त (काशि०)। [५८] महाकाल–कहैं काल (वेंकट, काशि०)। सत्य–सून्य (वही)।

भक्तिजोग की भूमिका इहि बिधि साधत साधु।
होत पार संसार के जदपि अनंत अगाधु ॥ ६२ ॥

(सवैया)

पाय पदारथ कुंभ निरै दिबि सुंडि त्रिषा तरुनी जनियै जू।
कर्म अकर्म बिलोचन जीभ पियास-छुधा भव में भनियै जू।
लोभ बिलोभति बासना वास दरी मनु दीरघ में गनियै जू।
इच्छगजी मदमत्त बनी तन में सर धीरज सों हनियै जू ॥ ६३ ॥

(दोहा)

जीव जु इच्छा बिच्छुरित आवत कब जब दीन।
इच्छा निज जे चलत हैं परइच्छा परबीन ॥ ६४ ॥
तजें न करिबो कर्म कों जब लगि जगत प्रकास।
ह्वै जैहै जब एकता सहजै कर्मबिनास ॥ ६५ ॥

इति श्रीमिश्रकेशवरायविरचितायां विज्ञानगीतायां भक्तियोगसप्तभूमिकावर्णनं नाम विंशतितमः प्रभावः ॥ २० ॥

२१

(दोहा)

एकबीस में बर्निबो महामोह-परिहार।
उत्तर मन को सृष्टि को रामनाम निस्तार ॥ १ ॥

जीव

अहंकार कै भाँति है ताहि तजौं केहि भाव।
कहौ देवि तुम करि कृपा उपजै ज्ञान-प्रभाव ॥ २ ॥

देवी

तीनि भाँति त्रैलोक्य में अहंकार के भेव।
द्वै सुभ संतत समुझियै असुभ तीसरो देव ॥ ३ ॥

---

[५९] लसत—लत (सर०, काशि०)। [६०] गहि—धरि (सर०)। [६१] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [६३] त्रिषा०—त्रिधा वरुनी (वेंकट, काशि०)। जनि—गनि (सर०, काशि०)। विलोचन—दियौ वन (वेंकट, काशि०)। भव में—उलटी (सर०)। लोभ०—लोक त्रिभेदति (वेंकट, काशि०)। सर—हँसि (सर०)। [६४] नित—तजि (वेंकट, काशि०)।

[१] उत्तर—तत्व जु (सर०)। [३] देवी—देव्यु (वेंकट, काशि०)।

(चौपही)

अति सूछम रोमालि सुबेस। उपमा दान दई सब सेस।
उर में मनौ मैन सुचि रेख। ताकी दीपति दिपति असेख ॥ ७९ ॥
बामन बाँधि एक बलि लोभ। तीनि लोक की लीनी सोभ।
बाँधि त्रिबलि त्रिय त्रिगुनित भई। नव नव खंडन की छबि छई ॥ ८० ॥
कटि को तत्व न जान्यौ जाय। ज्यौं जग सत न असत कहि जाय।
इहि तें अति नितंब गुरु भए। कटि के बिभव लूटि सब लए ॥ ८१ ॥
सिसु तारुन्य-आगमन जानि। उर में लोभ भोग प्रति मानि।
अति सुंदर जंघा जुग जानि। उज्जल पृथुल अलोम बखानि ॥ ८२ ॥
छवा छबीले छबि के हियैं। नैननि पैने जाहिं न छियैं।
चरन महावरचर्चित चारु। तिनको बरनत दान उदारु ॥ ८३ ॥
कठिन जानु जनु उपबन थरी। मानिकतरुता तरवनि धरी।
नवदुति बरनत कबिकुल थकैं। पिय-मन की आनो बैठकैं ॥ ८४ ॥
नूपुर मनिमय पायनि बने। मानौ रुचिर बिजय-बाजने।
पद जुग जेहरि रूप-निधान। रति-गृह कैसे सुभ सोपान ॥ ८५ ॥
छुद्रघंटिका कटि सुभ बेष। ससि अनंत कैसे परिबेष।
बरन बरन अँगिया उर धरैं। चौकी चलत चित्त मनु हरैं ॥ ८६ ॥
मनिमय अमित हार उर बसैं। किरन चलत जुत भुज रबि लसैं।
अंचल अति चंचल रुचि रचै। लोचन चल जिनके सँग नचै ॥ ८७ ॥

मूर्तिवर्णनं

मोहनि सक्तिनि सी लेखियै। मकरध्वजध्वज सी देखियै।
वसीकरन ओषधि सी भनी। मंत्रसिद्धि सी मनकर्षनी ॥ ८८ ॥
ससि की कला एक लै ईस। रुचि कै राखी अपने सीस।
इनि अनखनि जनु कियौ अपार। मृदु मुखहास चंद्र-अवतार ॥ ८९ ॥
एकै मदन हतौ जग माह। ताको तन जार्‌यौ जगनाह।
यातें निज प्रभु के उर मार। उपजावति प्रतिदिवस अपार ॥ ९० ॥
कंटक अटकत फटि फटि जात। उड़ि उड़ि जात बसन बसबात।
तऊ न तिनके तन लखि परैं। मनिगन-अंस अंसकन धरैं ॥ ९१ ॥

(दोहा)

उपमागन उपजाय कै बगराए संसार।
इनकों उपमा परसपर रचि राखी करतार ॥ ९२ ॥

इति श्रीमत्सकलभूमंडलाखंडलेश्वरमहाराजाधिराजराजाश्रीवीरसिंहदेवचरित्रे दानलोभसंवादे वनितागणवर्णनं नाम द्वाविंशतितमः प्रकाशः ॥ २२ ॥

---

[८०] छई—लई (सभा)। [८१] तत्व—तनु (सभा)। [८२ [सिसु०—सिसुता बादनि नियम सुजान (भारत)। भोग०—लोभ मति (वही)।

२३

(चौपही)

नृपति अनेक दान बहु दियौ। सब ही को मनभायो कियौ।
देखत सबके लोचन चले। पवन पाय जनु सरसिज हले॥ १॥
सीस लाज अलज्जितन भई। उपमा तैसी जाइ न दई।
तब तरुनीनि कह्यौ सुख पाय। उपबन हम देखहिँ सब जाय॥ २॥
सौंभे तब देखत आराम। मानौ बर बसंत को ग्राम।
बोलत मोर बार ही बार। गुदरत है मानौ प्रतिहार॥ ३॥
बोलत कल कोकिला सुदेस। उपमा दीनी ताहि नरेस।
जनु बसंत की सजनि सुबेस। मनौ हरखि मन मदनप्रवेस॥ ४॥
देखे सकल तरुनि तरु जाइ। समसाखा मूलनि सुखदाइ।
आलबाल-अवली जलभरी। मनौ मनोहर हर-जरहरी॥ ५॥
फूले फूल द्रुमनि तेँ भरैँ। आनँद-आँसू भरि जनु ढरैँ।
मधुबन देखि देखिजति अंक। रितु-जुवतिन के जनु तार्टक॥ ६॥
फूले जनु खूझिनि के फूल। प्रति फूलन पर अलि अनुकूल।
जनु उड़गन कोँ उड़पति जान। दीनौ बाँटि कलंक समान॥ ७॥
दाड़िम-कलिका सोहति खरी। कनक-कुपी जनु वंदनभरी।
उज्जल फूल बेल के लसैँ। रूठि सु तारा जनु भुव बसैँ॥ ८॥
सुमन कनैर सु कली समान। सोभत मनौ मदन के बान।
फूली फैलि केतकी-कली। सोहति तिनपर अलि-आवली॥ ९॥
तिनहिँ न महादेव रुचि करैँ। यह अपजस जिनि माथेँ धरैँ।
बिन पातन फूले पालास। सोभत स्यामल अरुन अकास॥ १०॥
बर बसंत की वैहरि लगै। मनहु कामकैला जगमगै।
फूली चंपक-कलिका लसै। तिनके केस माँझ अलि बसै॥ ११॥
उपमा देति देखि सुंदरी। कनक-कुपी जनु सौंधेँ भरी।
कुसुम अगस्ति साँवरो कुंद। राहु मनौ उगिलत है चंद॥ १२॥
अलि उड़ि धरत मंजरी लाल। देखि लाज साजति सब बाल।
तरु तजि मधुप लतनि पर जात। मनौ कहत मिलिबे की बात॥ १३॥
अलि अलिनी कोँ देखत धाय। भेंटत चपल चमेली जाय।
अदभुत गति सुंदरी बिलोकि। हँसति सु घूँघटपट मुख मोकि॥ १४॥
गिरत सदाफल श्रीफल ओज। जनु धँसि देत देखि वच्छोज।
सुदतिन के जनु दसन निहारि। उदरे उरनि दाड़िमी फारि॥ १५॥

---

[४] सजनि–जनी (सभा)। [१०] अकास–प्रकास (भारत)। [१४] धाय–पाय (भारत)। पट०–पट रोकि (वही)। [१५] धँसि–रस (सभा)। वच्छोज–छबि छोज (भारत)।

निरखे नालकेलि फर फरे। कुच सोभा अभिलाखनि भरे।
अति तप करन अधोमुख औन। मनौ मौन ह्वै मूँदे नैन॥ १६॥
सोहत बंजुल कुंजल कुंज। जनु लिपटे गुंजन के पुंज।
काम-अंध मगधन के नैन। एक ठौर जनु राखे मैन॥ १७॥
सीतल तप्त जहाँ द्वै ओक। मानौ सोम सूर के लोक।
जहाँ तहाँ जलजंत्र प्रकास। धर तें धारा चली अकास॥ १८॥
जनु जमुना को सूछम बेस। चाहत रबिपुर कियौ प्रबेस।
थल जल कमल प्रफुल्लित प्रभा। मनौ पुरंदर कैसी सभा॥ १९॥
देख्यौ सब आनंदे बाग। मानौ सुभ मंडल को भाग।
तरुबर लता तहाँ बहु भाँति। कहौं कहाँ लगि तिनकी जाति॥ २०॥
तिनकी बिबिधि बिसद बाटिका। बरनत सुभ नाटक नाटिका।
रसनाहीन बढ़ै रसतंत्र। मोहन बसीकरन के मंत्र॥ २१॥
सब सपच्छ पै थिर लेखियै। जदपि थिरा चंचल देखियै।
चंचल तऊ तपोधन मानि। तपःसील पै गृहथिति जानि॥ २२॥
गृहथिति दिगंबरा सोभियै। देखत मुनि मनसा लोभियै।
दिगंबरा पै सकुसुम मित्र। पुहुपावति पै परम पवित्र॥ २३॥
है पवित्र पै गर्भसँजोग। होत गर्भ सुरतनि के जोग।
सुरति-जोग पै भाव-बिहीन। भावहीन जगजन के लीन॥ २४॥
जगत-लीन जनगत जानियै। पति के प्राननि-सम मानियै।
ज्यौं ज्यौं पति सों बढ़ै सुहाग। त्यौं त्यौं सौतिन सों अनुराग॥ २५॥
इहि बिधि तिनकी अद्भुत भाँति। रसना एक सु क्यौं कहि जाति।
ब्रह्मघोख घोखनि अति घनी। मनौ गिरा के तप की बनी॥ २६॥
करुनामय मन-कामनि करी। कमला कैसी बासस्थली।
नाचत नीलकंठ रस घूमि। मनौ उमा की क्रीड़ाभूमि॥ २७॥
सोभै रंभा सोभा-सनी। किधौं सची की आनँदकनी।
मनौ मलय की चंदन-बनी। लोपामुद्रा की तप-तनी॥ २८॥
मदन वसंत छरितु की पुरी। मनौ बसति बसुधा में डरी।
विच विच ललित लता आगार। केरिनि की परदा प्रतिबार॥ २९॥
खारिक दारयौ दाख खजूर। नारिकेल पुंगीफल भूरि।
एला लपटी ललित लवंग। नागवेलि दल दलित बिरंग॥ ३०॥
मृगमद कुंकुम चंदन वास। वनलछिमी कैसो आवास।
चंदन तरु उज्जल तन धरै। लपटी नागलता मन हरै॥ ३१॥
देखि दिगंबर वंदित भूप। मानौं महादेव के रूप।
कहूँ पढ़त मुनिजन सुक ज्ञान। मनौ परीछित के दीवान॥ ३२॥

---

[२९] आगार–अपार–(सभा)। [३०] बिरंग–सुभृंग (सभा)।

एक कहत फूलन को लोक। एक कहत फल ही को ओक।
किधौं सुगंधन ही को ग्राम। 'केसव' सोभा ही को धाम ॥ ३३ ॥
कैधों काममई महि भई। कै नित निर्मलता ह्वै गई।
बरन्यौ जाय न ताको भेसु। मानौ अद्भुत रस को देसु ॥ ३४ ॥
उज्जलता सब कालनि लसै। कुहू पिकन के मुँह में बसै।
रजनी बिदित अनंदनंदिनी। मुखचंदन की जहँ चंदिनी ॥ ३५ ॥
जहाँ सकल जीवनि कहँ सुक्ख। केवल बिरहीजन कों दुक्ख।
सीतल मंद सुगंध सुबात। तिनमैं आवत ही ह्वै जात ॥ ३६ ॥
आगम पवनहिं को जानियै। हानि असोभा की मानियै।
तृष्ना चातक ही के चित्त। सभ्रम भौरन ही कें मित्त ॥ ३७ ॥
सुक सारो को बिद्याबाद। गर्भजनित तहँ यहै बिपाद।
ताड़न तापन ही के गात। दल फल फूलनि ही अवदात ॥ ३८ ॥

इति श्रीमत्सकलभूमंडलाखंडलेश्वरमहाराजाधिराजराजाश्रीवीरसिंहदेवचरित्रे वनवाटिका-वर्णनं नाम त्रयोविंशतितमः प्रकाशः ॥ २३ ॥

२४

(चौपही)

तिनमें क्रीड़ापर्वत रच्यौ। मृग पच्छिन्न की सोभा सच्यौ।
कृत्रिम सिखर सिला सोहियै। तरुबरलता चित्त मोहियै ॥ १ ॥
सुबरनमय सुमेरु सो गनौ। सहज सुगंध मलय सो भनौ।
सीतल हिमगिरि सो परसियौ। उदयाचल सो सुभ दरसियौ ॥ २ ॥
सोभा के सागर में बसै। बर मैनाक सैल सो लसै।
एनन जूथ कहूँ जगमगै। रिष्यमूक पर्वत सो लगै ॥ ३ ॥
आनँदमय हरि कैसो ओक। हंसनि जुत अज कैसो लोक।
वृपभ सिंह क्रीड़हिं अहि मोर। सिवगिरि सो सोहत चहुँ ओर ॥ ४ ॥
गूढ़ गुफाहू दीरघ दरी। त्रिय मनु सिद्धन की सुंदरी।
कहुँ तापर धाराधर-धाम। सुभ्रक लोक वलाका वाम ॥ ५ ॥
वरषति सी दरसति जलधार। चपला सी चमकति वहु वार।
सक्र-सरासन चातिक मोर। सुनिजत विच विच घन की घोर ॥ ६ ॥
तातें प्रगटीं नदिका तीनि। सरितन की लीनी छवि छीन।
एक कुंकुमा के जल वहै। ताकी सोभा को कवि कहै ॥ ७ ॥

---

[३८] अवदात–के गात (सभा)। [५] तापर–आतप (सभा)।

सुखद सुगंध स्वेत जल बहै। गंगा सी त्रिभुवन पति लहै।
सुरगज मारग सोभा भर्‍यौ। मनौ गगन तें भुव गिरि पर्‍यौ ॥ ८ ॥
सोभत जाकी सोभा लियै। जंबूदीप तिलक सो कियै।
सोभति सोभा बिसद बिसाल। तुटित मालती कैसी माल ॥ ९ ॥
उपबन सोभा कहँ लौं गनौ। तिनको सकुल सत्वगुन भनौ।
दूजी मृगमद के जल बहै। ज्यौं जमुना त्यौं ही जग कहै ॥ १० ॥
सो सिंगार रस कैसी धार। नील नलिन कैसी महि मार।
सोभति सुख कैसी तरवारि। असुभ खलनि की खंडनिहारि ॥ ११ ॥
क्रीड़ागिरि दिग्गज सो लगै। ताकी साँकर सी जगमगै।
तजि क्रीड़ागिरि दिग्गज दरी। तम कैसी अवली निःसरी ॥ १२ ॥
मागध सूत बदत इहि भाँट। मनौ प्रतापअनल की बाट।
जितनौ उपवन तरुगन बसै। तिनको मनौ तमोगुन त्रसै ॥ १३ ॥
और नदी कुंकुमजलदुती। मानौ मन मोहै सरसुती।
बरनहिँ दुति कवि कोबिद जसी। बीरसिंघ के उपबन बसी ॥ १४ ॥
जंबूदीप इंदिरा बसै। ताको चरनोदक सो लसै।
जलदेविन कैसो स्रमबारि। किधौं दहनदुति सी सुखकारि ॥ १५ ॥
ब्रह्मसूत सो हित लेखियै। भरथखंड सो द्विज देखियै।
कसी कसौटी में अति नीक। 'केसव' कंचन कैसी लीक ॥ १६ ॥
राजत जितने राजसमाज। तिनको मनौ रजोगुन राज।
कुसुमपरागनि के रस सनै। पावन पुलिन दुहूँ दिसि बनै ॥ १७ ॥
एलाकन बालुका सबास। सेवति ललित लवंग प्रकास।
कदलिकुसुम केतकि कल कुंज। तिनके दीरघ दल मनरंज ॥ १८ ॥
तिनकी सोभा सोभति खरी। सहज सुगंधन के धन भरी।
वार पार अरु मध्य प्रवाह। खेवत मधुकर मत्त मलाह ॥ १९ ॥
तीन जोति जब एकति होय। तेही काल त्रिवेनी होय ॥ २० ॥

इति श्रीमत्सकलभूमंडलाखंडलेश्वरमहाराजाधिराजराजाश्रीवीरसिंहदेवचरित्रे क्रीडागिरि-वर्णनं नाम चतुर्विंशतितमः प्रकाशः ॥ २४ ॥

२५

(चौपही)

भ्रमि आराम राम के संग। स्रमित भई रामा अँगअंग।
कुसुमभार कबरी छुटि गई। लोचन वचन सिथिल गति भई ॥ १ ॥
छूटी मुकतालर निरमोल। लपटी लर लटिकैं अति लोल।
मुर्म्यौंबिधु सँग तजिबे रस दुहू। जनु भेटी पूरनिमा कुहू ॥ २ ॥

आनन पर स्रम-सीकर घने। बसन सरीर सुगंधित सने।
पायन तें घौंचा गिरि गए। भूषन तें फिरि दूषन भए॥ ३॥
बैठि रहे इक तरु के मूल। नैन लगावति एकनि फूल।
पिय पर एक चढ़ावति भौंह। उठि चलिबे की द्यावति सौंह॥ ४॥
जानि भयौ श्रम सबनि अपार। चल्यौ जलासय राजकुमार।
जहँ जहँ द्रुमदल बिरले फूल। रबिरुचि होत तहाँ अनुकूल॥ ५॥
ताहि निवारति बारहिं बार। सोभीं सब सुंदरि सुकुमार।
एक देति लोचन करि बोल। पंकजदलतल जनु अलि लोल॥ ६॥
एक चली अति श्रम कै हियै। सखी चौंर की छाया कियै।
जनु उर करि करुना के धाम। बसे हंस सारस के ठाम॥ ७॥
चली जाति इक रस आपने। सखिन सहित पट ऊपर तने।
बदन बिराजत आनँदकंद। ज्यौं छबि-मंडल में बर चंद॥ ८॥
जेठी जुवति जु सबही माँहि। चली सु सेत छत्र की छाँहि।
मनौ सोम सीतल के लियै। सोमलता पर छाया कियै॥ ९॥
घाम न ताहि लगै तन माँहि। जापर पिय पलकन की छाँहि।
कैहूँ कैहूँ इहि रुचिरई। जुवती जलासयन में गई॥ १०॥
भए बिगतश्रम सकल सरीर। लागै सीत सुगंध समीर।
आए अमल बास सुखदैन। मुखबासिनि आगे है लैन॥ ११॥
देख्यौ जाय जलासय चारु। सीतल सुखद सुगंध अपारु।
अमल कपोल अमोल सु बारि। चावक चारु चहूँधा पारि॥ १२॥
प्रतिमूरति जुवतिनि सुख देति। निरखत सुषमा मन हरि लेति।
राजश्री को दरपन मनौ। किधौं गगन अवतारयौ गनौ॥ १३॥
हिमगिरिबर दव सौं परसियौ। चंद्रातप तन सौं दरसियौ।
किधौं सरदरितु को आवास। मुनिजनमन को मनौ बिलास॥ १४॥
बिरहीजन ऐसो देखियै। बिसवलतानि बलित लेखियै।
सूछम दीरघ नीर तरंग। प्रतिबिंबित दलदुति बहु रंग॥ १५॥
सूरकिरनि करि जल परसियै। मानौ इंद्रचाप दरसियै।
प्रतिबिंबित जहँ थिर चर जंतु। मानौ हरि को उदर अनंत॥ १६।
परमहंस सेवत देखियै। मानसरोवर सो लेखियै।
बिषमय पय सब सुख को धाम। संबररूप बढ़ायो काम॥ १७॥
बंधनजुत अति सोभावंत। मानौ बलि राजा जसवंत।
कमलन मध्य मधुप सुख देत। संत-हृदय मनु हरिहि समेत॥ १८॥

---

[६] एक–देखि (सभा)। पंकज–चंपक (वही)। [७] ठाम–काम (भारत) [११] समीर–सुतीर (सभा)। [१३] निरखत०–जलदेवी जनु दरसन देति (सभा)। [१४] बर०–कोऊ (सभा)। [१६] जहँ–जल (सभा)। [१८] मानौ०–समल आप परमल को हंत (सभा)।

बीच बीच फूले जलजात। तिनतें अलिकुल उड़ि उड़ि जात।
संत हियन तें मानो भाजि। चंचल चली असुभ की राजि॥ १९॥

(दोहा)

क्रीड़ा सरवर में नृपति कै बहु बिधि जलकेलि।
निकसे तरुनि समेत ज्यौं सूरज किरन सकेलि॥ २०॥

(चौपही)

तब तिहिँ समय बिराजी बाल। बिनहूँ भूषन भूषित भाल।
मिटे कपोलनि चंदनचित्र। लागै केसरि तहाँ बिचित्र॥ २१॥
जल कज्जल बिनु कीने नैन। निज छबिरोधक जानै ऐन।
मोतिन की सब छूटी छटैं। आनि उरोजन लपटीं लटैं॥ २२॥
मनौ सिँगार हास बल्लरी। कल्पलतनि भेंटत सुंदरी।
सोभत जलकन केसरि अग्र। जनु तम उगलत नखत समग्र॥ २३॥
भीजे बस्त्रनि सों तिहि काल। तिनतें छूटत जलकन-जाल।
पल पल मिलि कीने बहु भोग। रुदन करत जनु जानि बियोग॥ २४॥
नव नव अंबर पहिरैं जाति। दीपति झलमलाति फहराति।
जनु अंगनि में हँसि हँसि जात। इहि सुख फूले अंग न मात॥ २५॥
जल में रहे ते भूषनजाल। लिये ति बागवान की बाल।
भूषन बसन लिये सब साजि। उठी दुंदुभी तबहीं बाजि॥ २६॥

इति श्रीमत्सकलभूमंडलाखंडलेश्वरमहाराजाधिराजराजाश्रीवीरसिंहदेवचरित्रे जलकेलि-वर्णनं नाम पचविंशतितमः प्रकाशः॥ २५॥

२६

(चौपही)

तहँ असोक तरु फूल्यौ फरयौ। भूतल सकल दुलीचनि भरयौ।
मानिक कनकनि के फर फरे। वहुरँग विविधि सुगंधनि भरे॥ १॥
तरुवर जून ज्वान अरु नए। मखमल जरवाफनि मढ़ि लए।
सोभन कनकसिँघासन धरयौ। जलजनि सहित जरायनि जरयौ॥ २॥
तापर बैठे बीर भुवाल। मित्र कलपतरु सत्रुन साल।
कनककलस गंगाजल भरे। विविधि फूल फल तिन महँ धरे॥ ३॥
सजि सिँगार आई सुंदरी। नवलरूप नवजोवन भरी।
गौर प्रभानि प्रभासित अंग। चंदनचर्चित चारु तरंग॥ ४॥

[२१] भाल–ताल (भारत)। [२५] 'जनु...मात' 'भारत' में नहीं है।

राहुग्रसनभय उर में मॉडि। आए चंद्र मंडलहिँ छाँडि।
नृपतिसरन सोभंत अनंत। मनौ चंडिका मूरतिवंत ॥ ५ ॥
अंब अपद्म प्रभासद्मिनी। देह धरें मानो पद्मिनी।
मुक्ताहार बिहारत हए। फूलन के भाजन करि लए ॥ ६ ॥
लछिमी छीरसमुद की मनौ। छीर छीट छाजत तनु घनौ।
अवनतलोचन लोचन हरै। मानौ ललित अरुन तनु धरै ॥ ७ ॥
अंबर अरुन जोति जगमगै। पावकजुत स्वाहा सी लगै।
सहज सुगंध सहित तनुलता। मलयाचल कैसी देवता ॥ ८ ॥
सिर सोभित अतिसौरभ मौर। हितु करि धरे नृपतिसिरमौर॥

(दोहा)

अति रति सों अति अरति सों पतिपूजा अतिरूप।
रति ही मूरति आपनी मनौ रची बहु रूप ॥ ६ ॥

(चौपही)

आसन बैठे नृपसिरमौर। सिर पर लसत आम को मौर।
धरनी सब सुगंधमय भई। थिर चर जीवन कौं सुखमई ॥ १० ॥
नृप कर फूलन को धनु लियौ। फूलि फूलि सरसंजुत कियौ।
अपनै पति पतिनीनि अनूप। कीनौ कामदेव को रूप ॥ ११ ॥
कीनी पूजा परम अनूप। पारवती रानी रतिरूप।
रोचन सों मन रोचन कियौ। मोतिन के सिर अच्छित दियौ ॥ १२ ॥
प्रगट भए जनु दोई भाल। जस अनुराग एक ही काल।
पूजे बहुत धनुष अरु बान। बहु बिधि पूज्यौ अग्रकृपान ॥ १३ ॥
पूज्यौ छत्र धुजा सुंदरी। पूजि चरन अरु पायनि परी।
पूजा करि पद पद्मिनि परी। पद्मन की माला उर धरी ॥ १४ ॥
जुवतिन की जनु हृदयावली। पहिराई पिय के उर भली।
कोऊ कुंकुम छिरकै गात। कोऊ सोंधो उर अवदात ॥ १५ ॥
काहू चंदन बंदन धूरि। मृगमद चंद्रक कौं करि चूरि।
मिलै गुलाव रु कुंकुमवारि। कीनौ छिरकि सूर उनहारि ॥ १६ ॥
जब अनंगपूजा करि लई। चहूँ ओर दुंदुभिधुनि भई।
बिच बिच भेरिन के झंकार। झाँझ झालरी संख अपार ॥ १७ ॥
तेही समै दुवौ सुखकारि। दान लोभ बरनत तरवारि ॥ १८ ॥

दान उवाच (कवित्त)

देखत ही लागि जाति बैरिनि के बहुभाँति कालिमा कमलमुख सब जग जानी जू।
जदपि जनम भरि जतन अनेक किये धोवत पै छूटति न 'केसव' बखानी जू।

[७] अरुन–लज्या (सभा)। [१४] अरु–पुनि (सभा)। [१७] झंकार–भंकार (सभा)।

निज दल आँगै जोति पल पल दूनी होति अचला चलनि यह अकह कहानी जू।
पूरन प्रतापदीप अंजन की राजि राजि राजति है बीरसिंघ पानि में कृपानी जू ॥१६॥

लोभ उवाच

देखत ही मोहति है मोहन महीपमति सुधिबुधिहीन अति देह की दसा करी।
गजघट घोटक बिकट प्रतिभट ठट निपटि निकट कंठ काटिबे कौं संचरी।
सोइ सोइ बैठे पाकसासन के आसननि जिन्हे ढौरैं चौंर ये सुकेसी ऐसी सुंदरी।
वीरसिंघ नरनाथ हाथ तरवारि सोहै हौं कहौं अपूरब बिषम बिषबल्लरी ॥२०॥

(दोहा)

बीरसिंघ कर कुसुमधनु सुमनन ही के बान।
देखि देखि सुक सारिका बरनत सुनौ सुजान ॥ २१ ॥

शुक उवाच (कबित्त)

दान की तरंगिनि के तरल तरंगनि में बोरि बोरि मारे रोर कहत प्रबीने हैं।
अकबरसाह के अनेक खान जीति जीति 'केसौदास' राजनि अभयपद दीने हैं।
सोधि-सोधि रिपुसिंघ कीने बनसिंघ नरसिंघग्राम गहि गहि ग्रामसिंघ कीने हैं।
चिरु चिरु राज करौ राजा बीरसिंघ काम, काम के धनुष बान कौन काम लीने हैं ॥२२॥

सारिका उवाच

खग्गजल पूरि खल देखि देखि कोरि कोरि बोरि बोरि मारे एक बीररस भीने हैं।
डारि डारि असिदंड लीने बहु दंड दंड एकनि को दंड धारि दूने दंड दीने हैं।
'केसौदास' एकनि सु छोड़ि नाम ग्राम ग्राम धाम धाम बामवेष नारिन के कीने हैं।
राजन के राजा महाराजा बीरसिंघ सुनौ काम के धनुप बान इन कर लीने हैं ॥२३॥

(दोहा)

गूंगे कुबजे बावरे बहिरे बावन वृद्ध।
जानि लए जन आइयो खोरे खंज प्रसिद्ध ॥ २४ ॥

(चौपही)

सुखद सुखासन बहु पालकी। फिरक बाहिनी सुखचाल की।
एकनि जोते हय सोहियै। वृषभ कुरंगनि मन मोहियै ॥ २५ ॥
तिहि चढ़ि राजलोक सब चल्यौ। सकल नगर सोभाफल फल्यौ।
मनिमय कनकजाल लच्छिनी। मुक्तन के झौरन सों बनी ॥ २६ ॥

---

[२०] नरनाथ०—अमरेस नरनाथ तरवारि सोहति (सभा)। [२२] नर०—ग्राम-नगर निवास हेत (सभा)। बीरसिंघ०—बीरसिंघदेव (वही)। कौन काम—कौन मन (वही)। [२३] एकनि सु—एकनि पु (सभा)। [२४] खंज—पंड (भारत)। [२५] फिरक—फेरि (भारत)।

घंटा बाजत चहुँ दिसि भले। बीरसिंघ तिहिं गज चढ़ि चले।
हंसगामिनीजुत गुनगूढ़। मनौ मेघ मघवा आरूढ़॥ २७॥
चहूँ ओर उपबन दरबार। दीजत दीरघ दान अपार।
तहँ दारिद दुख भीनै हियैं। पढ़त गीत द्विजबेषहिं कियैं॥ २८॥

(सवैया)

भूतल तें नृग के बलि के सिबि के भय तें अति हौं निकरयौ हौं।
मारत मारत श्रीबरबीर पै जानै को 'केसव' क्यौं उबरयौ हौं।
दुख्ख दियौ हरिचंद दधीच सु तौ अजहूँ उर माह अरयौ हौं।
या जग में हमकौं दुख कौं अमरेस कहा अमरेस धरयौ हौं॥ २९॥

(चौपही)

दारिद पढ़त हतौ दुखभरयौ। सब्द जाय नृपस्रवननि परयौ।
या कहि उठ्यौ नृपति जब मीत। बोलहु ताहि पढ़त यह गीत॥ ३०॥
लै आए जहँ बिप्र बोलाय। आसिष राजहि दीनौ आय।
कह्यौ राज सुनि बिप्र अभीत। पढ़त हुतो सु पढ़हु धौं गीत॥ ३१॥
पढ़्यौ सबै सो राजा सुन्यौ। कहहि बिप्र तूँ किहि दुख धुन्यौ।
मेरे राज न बिप्र डराहि। तोहि देहि दुख मारौं ताहि॥ ३२॥
तब तिहिं पढ़्यौ सवैया और। लाग्यौ सुनन नृपतिसिरमौर॥ ३३॥

(कवित्त)

हाथिन सों हरखि रुँदाइयत 'केसौदास' हयखुरखुरनि खुदाइ डारियत है।
पटनि सों बाँधि बोरि सौंधे के ससुद्र माँझ सोने के सुमेरु तें गिराय पारियत है।
खीर खाँड घृतन के कीजै नकवानी दिन होम की हुतासन की ज्वाल जारियत है।
बीरसिंघ महाराज ऐसो है तुम्हारो राज जहाँ तहाँ कहौ कौन दोष मारियत है॥३४॥

(चौपही)

जान्यौ नृप सो बिप्र न होय। यह दरिद्र जानत नहिं कोय।
तोही मारन कों बिधि रच्यौ। बिप्रबेष आयौ तिहि बच्यौ॥ ३५॥

(दोहा)

अभयदान दीजै नृपति कीजै ठौर नरेस।
'बैरी साह सलेम के जाय बसै तिहिं देस'॥ ३६॥

(चौपही)

बाजे नगर निसान अपार। ह्वै गए नृपति भीर के भार।
आनि जुरे राजन के राज। कौन गनै रजपूतसमाज॥ ३७॥
घरघर प्रति आनंदे लोग। साजे सुभ सोभासंजोग।
जब ही जब निकसे नरदेव। तबहीं तहँ पूजा के भेव॥ ३८॥

द्वार द्वार साजैं आरती। गावति तरुनी मनु भारती।
गज पर नृप सोहै बहु भाँति। आसपास राजन की पाँति ॥ ३९ ॥
जनु कलिंद पर चंद अनूप। सब सिंगार पर जैसे रूप।
बर्षारितुजुत मनौ बसंत। जनु प्रलंब पर बल बलवंत ॥ ४० ॥
लोभ बसीकृत मानौ दान। बंदीकृत तम मानौ भान।
देखन कौं नृप तेही घरी। प्रतिमंदिरनि चढ़ी सुंदरी ॥ ४१ ॥
यौं सोभति सोभा सों सनी। मोहनगिरिअग्रनि मोहनी।
जनु कैलास सैल पर चढ़ी। सिद्धन की कन्या दुतिमढ़ी ॥ ४२ ॥
देवि देवि सी सुखसद्मिनी। पद्मिनि पर मानौ पद्मिनी।
सुभ कबित्त-उक्तै सी धरै। जुक्ति तरक सबको मन हरै ॥ ४३ ॥
मनौ छजनि पर कीरति लसै। रूपनि पर दीपति सी बसै।
गृहगृह प्रति जनु गृहदेवता। जनु सुमेरु सोने की लता ॥ ४४ ॥
एकनि कर दर्पनु मन हरै। मनौ चंद्रिका चंद्रहि धरै।
एक अरुनअंबर रसभिनी। जनु अनुरागरँगी रागिनी ॥ ४५ ॥
एकै बरखति पुष्प असेष। मानौ पुष्पलता सुखबेष।
एकै सुभ कपूर की धूरि। डारति चंदन बंदन भूरि ॥ ४६ ॥
बरन बरन बहु फूल निहारि। एक कुंकुमा कुंकुमबारि।
बरपत मृगमदबुंद बिचारि। मानौ जमुनाजल की धारि ॥ ४७ ॥
मनौ त्रिबेनी जलअभिषेक। करत देवत्रिय करै बिबेक।
इहि बिधि गए राजदरबार। बंदीजन जस पढ़त अपार ॥ ४८ ॥

(सवैया)

भूपित देह बिभूति दिगंबर नाहिन अंबर अंग नवीने।
दूरिकै सुंदर सुंदरि 'केसव' दौरि दरीन में आसन कीने।
देखिजै मंडित दंडन सों भुजदंड दुवै असिदंडबिहीने।
वीर नरप्पति के डर राज कुमंडल छाँडि कमंडल लीने ॥ ४९ ॥

(दोहा)

कमलकुलनि में जात ज्यौं भौंर भर्यौ रसभेव।
राजलोक में त्यौं गए राजा बिरसिंघदेव ॥ ५० ॥

इति श्रीमत्सकलभूमंडलाखंडलेश्वरमहाराजाधिराजराजाश्रीवीरसिंहदेवचरित्रे मदन-महोत्सववर्णन नाम षड्विंशतितमः प्रकाशः ॥ २६ ॥

---

[४५] मन–नहिं (भारत)। [४७] जमुना०—वर बसंत की नारि (सभा)।
[५०] मों०–में रत ज्यों भौंह भर्यौ रसभीनै। (सभा)।

२७

(चौपही)

इहि बिधि दान लोभ रुचिरए। बहुत द्वैस पुर देखत भए।
बासर एक तीसरे जाम। देखन चले राज के धाम ॥ १ ॥
देख्यौ जाय राजदरबार। आठौ रस कैसो आगार।
आवत जात राज रनधीर। द्रुपद चतुष्पद की बहु भीर ॥ २ ॥
हाटकघटित जटित मनिजाल। बिच बिच मुक्तामाल बिसाल।
ऐसें परजा प्रजनि समेत। जामिनि करिनी करि सुख देत ॥ ३ ॥
द्वारपाल सोहै दरबार। भीतर सोरन भूमि अपार।।
बैठी अधिकारिन की पाँति। ताकी सोभा कही न जाति ॥ ४ ॥
बैठे लेखक लिखत अपार। दस सत सहस लक्ष लिपिकार।
धर्मराजपुर कैसे लोग। जानत सकल सकल कृत भोग ॥ ५ ॥
मोक्षन ग्रहन निपुन ब्यौहार। जोतिष कैसे कालबिचार।
बनमानुष बनमहिष सुदेस। सुरभी मृगमद मृग सुभवेस ॥ ६ ॥

(दोहा)

महिष मेष मृग बृषभ कहुँ भिरत मल्ल गजराज।
लरत कहूँ पायक नटत, कहुँ नर्तक नटराज ॥ ७ ॥

(चौपही)

अंगन देखी सोभा सभा। सकल रतनमय प्रगटति प्रभा।
तामैं नृप सुभमंडल चारु। सुरमंडल कैसो अवतारु ॥ ८ ॥
सकल सुगंध सुगंधित अंग। सुमन लसैं फूले बहुरंग।
सुभग चंदमय सी लेखियै। जामें बिबिधि बिबुध पेखियै ॥ ९ ॥
उत्तम मध्यम अधम सँजोग। मनौ बिबिधि ब्याकरनप्रयोग।
जद्यपि ब्रह्म भव्य जग ररै। ब्रह्मपुत्र की निंदा करै ॥ १० ॥
अद्भुत बातन को करतार। अमल अमृतमंडल को सार।
गुनगन कौं आदर्स अपार। अघ कौं गंगा कैसी धार ॥ ११ ॥
सरनागत कौं मनौ समुद्र। दुष्ट जननि कौं अद्भुत रुद्र।
सत्य-लता कौं ताल तमाल। छमा दया कौं मनौ दयाल।
जाचक-चातक कौं घनरूप। दीन मीन जलजाल-सरूप ॥ १२ ॥

---

[३] प्रजनि—गुननि (सभा)। जामिनि—जामिक (वही)। करि०—करनि समेत (भारत)। [४] ताकी०—मानौ देवसभा दरसाति (सभा)। [५] दस०—सत सहस्र सासनलिवियार (सभा)। [७] नर्तक—पाइक (सभा)। [९] जामैं०—रतनजटित सोभा (सभा)। [१२] रूप—सूर (सभा)। सरूप—सुपूर (वही)।

(दोहा)

'केसव' दारिद-दुरद कौं केहरिनख-उनहारि।
बीरसिंघ नरनाथ कें हाथ लसति तरवारि ॥ १३ ॥

(सवैया)

जूझ अजूझ अँध्यारिनि में अभिसारिनि सी तिहिँ काल लसी है।
पापकलाप-पखारिनि 'केसव' कोपि कुनाथनि साथ गसी है।
तेई हैं बीर नरप्पति ये कल कीरति सागर आसव सी है।
बैरिन की सब श्री जिनकी तरवारि-तरंगिनि माँझ बसी है ॥ १४ ॥

(चौपही)

कबहूँ बरुनबेप सो लसै। सोभा के सागर में बसै।
जिनकी कृपादृष्टि अनुहारि। कामधेनु कैसी सुखकारि ॥ १५ ॥
कहुँ कुवेर की सोभा धरै। राजराज सब सेवा करै।
जाकी प्रीति माँझ सब कहैं। सब की सब सिधि नवनिधि रहैं ॥ १६ ॥
कबहुँक धर्मराज के बेष। राजनीति जहँ बसै असेष।
सब दिन धर्मकथा संचरै। धर्मातमा जहाँ पग धरै ॥ १७ ॥

(दोहा)

ब्रह्म आदि दै कीट लौं सुनिजै दानप्रभाव।
सबही के सिर पर बसै दंडनीति के भाव ॥ १८ ॥

(चौपही)

कबहुँक बिरसिंघद्यो तिहिँ सभा। सूरज कैसी सोभित प्रभा।
जगत जीविका जाके हाथ। बसति रची उर कमलानाथ ॥ १९ ॥
उदै उदौ सबही को होय। वहै जगै सोवै सब कोय।
सोई काल ठीक तें ठयो। सदा काल सब को प्रभु भयो ॥ २० ॥
कबहुँक सुरनायक सो लगै। धरें बज्र कर अति जगमगै।
ठाढ़े कवि सेनापति धीर। कलित कलानिधि गुन गंभीर ॥ २१ ॥
गुनी गिरापति विद्याधारि। इष्ट अनुग्रह निग्रह भारि।
कहुँ मन महादेव ज्यौं हरै। अंग बिभूतिनि भूपित करै ॥ २२ ॥
सक्ति धरे सोभियत कुमार। गुन गनपति गनपति-दरबार ॥ २३ ॥

(दोहा)

गंगाजल जस भाल ससि सहित सुभगती नित्त।
सोहत उरसि अनंत जू महादेव से मित्त ॥ २४ ॥

---

[१४] पास०—आसअरी (सभा); पास अरी (भारत)। [१५] वरुन—कुवर (भारत)। कैसी०—सी सदा दुधारि (सभा) [१६] सबकी०—सबही कौं सो भवनिधि कहैं (भारत)। [१८] भाव—पाव (सभा) [२०] ठीक—ढिग तें ढिठयौ (भारत)।

पुरुपारथ प्रभु सो सोहियौ। नल सो दानि जगत मोहियौ।
हरिस्चंद सो सत्यावंत। दिन दधीचि सो धीरजवंत ॥ २५ ॥
श्रीपति रामचंद्र सो साधु। भृगुपति ज्यौं न छमै अपराधु।
जानि भोज हनुमत सो जसी। बिक्रम बिक्रम सो साहसी ॥ २६ ॥

(कवित्त)

दानिन मेँ बलि से बिराजमान जिहिँ पहँ माँगिबे कौँ ह्वै गए त्रिबिक्रम तनक से।
पूजत जगतप्रभु द्विजन की मंडली मेँ 'केसौदास' देखियत सौनक सनक से।
जोधन मेँ भरत भगीरथ सुरथ पृथु दसरथ पारथ सु बिक्रम-बनक से।
मधुकरसाहि-सुत महाराजा बीरसिंघ राजन की मंडली मेँ राजत जनक से ॥२७॥

(चौपही)

यह सुनिकै तन मन रीझियौ। हाटकजटित ताहि गज दियौ।
केसव सोँ यह बोल्यौ बोल। राज धर्म सबही को मोल ॥ २८ ॥
परमानँद पापनि को मूल। दुख को फल अपजस को सूल।
नैकहि मोहि न नीको लगै। सोई भलो जु पाँचैँ लगै ॥ २९ ॥
कहा राज ऐसोई राज। तुमकौँ उलटो बचन समाज।
उदासीन क्यौँ हूजै चित्त। तुमकौँ बल बरु सौंप्यौ मित्त ॥ ३० ॥

(दोहा)

दान लोभ देखे नृपति देखी सभा उदार।
मूरति धरि ठाढ़े भए जाय राजदरबार ॥ ३१ ॥

इति श्रीमत्सकलभूमंडलाखडलेश्वरमहाराजाधिराजराजाश्रीवीरसिंहदेवचरित्रे नृपतिसभावर्णनं नाम सप्तविंशतितमः प्रकाशः ॥ २७ ॥

२८

(चौपही)

तिन्हैँ देखि नृप सोँ प्रतिहार। गुदरन आयौ बुद्धिअपार।
महाराज द्वै बिप्र उदार। अद्भुत द्युति ठाढ़े दरबार ॥ १ ॥
पीत धोवती पहिरेँ गात। ऊपर उपरैना अवदात।
सोहत उर उपवीत सुदेस। गौर स्याम वपु तरुन सुवेस ॥ २ ॥
कुंकुम तिलक अलक सुभरंग। सहज सुगंध सुगंधित अंग।
हिमगिरि विंध्य धरेँ द्विजरूप। किधौँ प्रगट रस बिरस सरूप ॥ ३ ॥

---

[२८] मोल—तोल (भारत)। [१] अपार—उदार (भारत)।

दुख सुख दुवौ कि प्रेम बियोग। पुन्य पाप अग्यान प्रबोध।
सत्य झूठ कै हास सिँगार। कैधौं अनाचार आचार ॥ ४ ॥
साधु असाधु कि मानामान। कैधौं जोग-बियोग प्रमान।
कृतजुग कलिजुग अपजस सोभ। बिष पियूष कै लोभालोभ ॥ ५ ॥
सुक्लासुक्ल पच्छ अनुमान। गंगा जमुना रूप प्रमान।
कै जय अजय अथर्वन साम। रूपारूप मनौ ससि काम ॥ ६ ॥
कैधौं बरषा सरद प्रभाउ। कैधौं भागाभाग सुभाउ।
किधौं अबिद्या बिद्यारूप। पुंडरीक इंदीवर भूप ॥ ७ ॥
किधौं अनुग्रह साप प्रकार। सुक्र सनीचर के अवतार।
सतो तमोगुन नारद ब्यास। बासुकि काली रूप प्रकास ॥ ८ ॥
किधौं राम लछिमन द्वै साग। मन क्रम बचन किधौं अनुराग।
देखि प्रनाम कियौ नरनाथ। लै गए सभामध्य सुरगाथ ॥ ९ ॥
जुग सिघासन नूत मँगाय। बैठारे दोऊ सुरराय।
निज करकमल पखारे पाय। कीनी पूजा बिबिधि बनाय ॥ १० ॥

(दोहा)

भूषन पट पहिराय तन अंग सुगंध चढ़ाय।
बीरा धरि आगें नृपति बिनती करी बनाय ॥ ११ ॥

(चौपही)

परम अनुग्रह मो पर कर्‌यौ। चारु चरन यह अंगन धर्‌यौ।
मेरे घर सब सोभा भरे। पुन्य पुरातन तरुबर करे ॥ १२ ॥
जो कछु आए चित्त बिचारि। कहौ कृपा 'केसव' सुखकारि ॥ १३ ॥

(दोहा)

दान लोभ नृपबचन सुनि तन मन अति सुख पाय।
पढ़े गीत तब द्वै दुहुँनि बदनकमल मुसक्याय ॥ १४ ॥

दान उवाच (कवित्त)

बाड़व अनल ज्वाल साजि लाज जारी जिन जोर जलजाल की कराल तुंग बीची है।
'केसौदास' पर्वत कराल अहि कालहू ने कीनी देखि जाको सदा निज आँख नीची है।
सर्व सर्व मद को अखर्व गर्व गंजकानि वज्रहू की धारा धीर रीझ-रस सीची है।
नाचै इभकुंभनि में तेरी तरवारि रन देखिकै तमासो ताको मीच आँखि मीची है ॥१५॥

लोभ उवाच

रंच्यौ जिहिं 'केसौदास' टूटति अरुनलाल प्रतिभट अंकनि तें अंक पसरत है।
सेना सुंदरीन के बिलोकि मुख भूपननि किलकि किलकि जाही ताही कों धरत है।

---

[९] द्वै साग—द्वइ भाग (सभा)। सुर—सुभ (सभा) । [१५] सर्व०—मेघ ओघगामिनी को कौन गुनै काल दंड चाहि कर चढ़िकान कीनी ग्रीव नीची है (सभा)।

गाढ़े गढ़ खेलही खिलौननि ज्यौं तोरि डारै जगजयजस चारु चंद कों अरत है।
बीरसिंघ साहिबजू अंगनि बिसाल रन तेरो करबाल बाललीला सी करत है ॥१६॥

(चौपही)

दान लोभ अपनो बपु गह्यौ। आदि अंत को ब्यौरो कह्यौ।
देव देवि को सासन पाय। तुम पर हम आए सुखदाय ॥ १७ ॥
जेही भाँति होय निरधार। कीजै सोई चित्त बिचार।
यह सुनि वीरसिंघ सुख पाय। बचन कह्यौ सब सभै सुनाय ॥ १८ ॥

(दोहा)

बिवुध मित्र मंत्री सुनौ राजकाज कबिराज।
कौन भाँति पूरन करौं दान लोभ के काज ॥ १९ ॥
देवी सातौ दीप की सोध्यौ सबै सयान।
दान लोभ पठए इहाँ सुनिजै करथौ प्रमान ॥ २० ॥

(चौपही)

दान लोभ के एकै धर्म। तातें सुनौ दान के कर्म।
तीन प्रकार कहावत दान। सत्व रजोगुन तमो निधान ॥ २१ ॥
पात्र सुविप्रहि दीजे दान। देसकाल सो सात्विक जान।
अनाचार साचार अगाधु। मूरख पढ्यौ कि साधु असाधु ॥ २२ ॥
बिप्र होत जग जुग अनुरूप। तातें विप्र अतिथि को रूप ॥ २३ ॥

(श्लोक)

साचारो वा निराचारः साधु र्वासाधुरेव च।
अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनुः ॥ २४ ॥

(चौपही)

आपुन देइ न देइ जु दान। तासौं कहियै राज सुजान।
बिन स्रद्धा अरु वेदबिधान। दान देहि ते तामसदान ॥ २५ ॥
तीन्यौ तीनि तीनि अनुसार। उत्तम मध्यम अधम विचार।
उत्तम द्विजवर दीजै जाय। मध्यम निज घर देइ बुलाय।
माँगे दीजै अधम सु दान। सेवा को सब निरफल जान ॥ २६ ॥

(श्लोक)

अभिगम्योत्तमं दानमाहूयैव च मध्यमम्।
अधमं याचमानं च सेवादानं च निष्फलम् ॥ २७ ॥

(चौपही)

सु पुनि नित्य नैमित्तिक दान। नित्य जु दीजै नित्यहि जान।
नैमित्तिक सुनिजै सुख पाय। दीजै दान सु कालहि पाय ॥ २८ ॥
पहिल निमित्य नजीकहि देउ। वहुरै नगरवासिकन देउ।
वहुरै अपने वसैं जु देस। वचै जु ताकहँ देउ विदेस ॥ २९ ॥
सो सकाम जानौ निहकाम। वहुरि सु जानौ दच्छिन वाम।

सफलहि छियै कह्यौ सब काम। हरि हित दीजै सो निहकाम ॥ ३० ॥
धर्म निमित्त सु दच्छिन जानि। तिनमैं एक सुदान कुदान।
धर्म बिना सो बाम बखानि। बिप्रनि दीनै द्वै बिधि दान।
देहु दान जिनसों बहु सुख्ख। दै कुदान जनि देखौ मुख्ख ॥ ३१ ॥

(श्लोक)

तपःपरं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥ ३२ ॥

(दोहा)

यौंहू लोभहि दान मय जानत संत असंत।
दान लोभ दोऊ जने देवसरूप अनंत ॥ ३३ ॥

(चौपही)

दान लोभ सब जग के काज। यहै जानि कीने सुरराज ॥ ३४ ॥

(छप्पय)

जौन लोभ कछु लेहि दान को दान कहावै।
लिये दिये बिन लोग कहौ क्यौं सुख दुख पावै।
दान लोभ में बसत लोभ पुनि बसत दान तन।
इहि बिधि 'केसव' लोभ दान गति भनत बिबुधगन।
भव दियौ लियौ भगवंतही दिये लिये बिन क्यों बने।
निज कारन सब संसार कहँ दान लोभ दोऊ जने ॥ ३५ ॥
रिपुहि न दीजे सुख्ख कछू अनखई न लीजे।
जिहिं तें उपजै पाप न लीजै ताहि न दीजै।
दीबे ही कहँ दान लोभ लीबे कहँ कीनै।
देहि न लेहि ते वेद कहैं सबही तें हीनै।
संतत सदा समान तुम देहु लेहु हरि देत जग।
तुम दान लोभ दोऊ जने देवदेव लागे सुभग ॥ ३६ ॥

(चौपही)

ऐसो वचन कहत जगमित्त। हरखि उठे सव ही के चित्त ॥ ३७ ॥

इति श्रीमत्सकलभूमंडलाखंडलेश्वरमहाराजाधिराजराजाश्रीवीरसिंहदेवचरित्रे दानलोभ-समानवर्णनं नाम अष्टविंशतितमः प्रकाशः ॥ २८ ॥

---

[३६] न लीजै०—पुन्य दीजै नहिं (सभा)।

२९

(चौपही)

बीर नरेस सुनौ मतिधीर। देखहुँ तुम्हैं सचिंत सरीर।
जो कछु होय तुम्हारे चित्त। कहिबे होय तौ कहिजै मित्त ॥ १ ॥

महाराज उवाच

राज रच्यौ बिधि दुख को मूल। अनुकूलनि कौं है अनुकूल।
जाहि देन लीजत है सुख्ख। सोई देत हमैं फिरि दुख्ख ॥ २ ॥
बहुत भाँति हम हिय हित भरी। रामदेव सों बिनती करी।
आपुन सुखमै कीजौ राज। हम करिहैं सब सेवासाज ॥ ३ ॥
जोई हम उनिको हित करैं। सोई वे उलटी कै धरैं।
सोई सोई कीनौ काज। जेहीं जेहीं भयौ अकाज ॥ ४ ॥
जौ हम रानी राखन लई। वा हित भागि कछौवहि गई।
लरिका जानि राउ भूपाल। तिनको करन लयौ प्रतिपाल ॥ ५ ॥
हम उनिके सिर छाँड्यौ धाम। उनि कीनौ सब उलटौ काम।
सुनी जु ह्वैहै सिगरी आपु। जैसें बुरे राउ आलापु ॥ ६ ॥

(दोहा)

जाकौं कीजत पुन्य अति ताके जिय मैं पाप।
सबके जिय की बात तुम सब समुझत हौ आप ॥ ७ ॥

दान उवाच (चौपही)

महाराज सुनि बिरसिंघदेव। तुमसों कहौं राज के भेव।
इक तौ नृप यह कर्म कराल। दूजे बर्तत है कलिकाल ॥ ८ ॥
यामें बरति जु जाने लोय। ताकौं दुहूँ लोक सुख होय।
सोदर सुत अरु मंत्री मित्र। इनके हम पै सुनौ चरित्र ॥ ९ ॥
इनही लग्यौ राज को काज। इनही तें सब होत अकाज।
राजभार नल भैयनि दियौ। छल बल छीनि सबै उनि लियौ ॥ १० ॥
तब उनि अपनो राज बिचारि। नल दमयंती दए निकारि।
उग्रसेन सुत के हित रए। तिनके पहरैं सोवत भए ॥ ११ ॥
जनपद जन सब अपने भए। राजा वंदीखानैं दए।
राजा सुरथराज की गाथ। सौंपी सब मंत्रिन के हाथ।
संतत मृगयारसिक विचारि। मंत्रिन राजा दए निकारि ॥ १२ ॥
दिल्ली को नृप पृथ्वीराज। ताके सबही बल को साज।
तिहिं नृप मित्र कर्यौ कैमास। सौंप्यौ राजकाज रनिवास ॥ १३ ॥

---

[६] बुरे–उरे (सभा)। आलापु–भूपाल (सभा, भारत)।

तासु भरोसे बन मे बसै । मृगयाबस काहू नहिँ त्रसै ।
तिहिँ पापिष्टन कर्यौ बिचार । राज लोक के रच्यौ बिगार ॥ १४ ॥
और भले सब राजचरित्र । मूरख भले न मंत्री मित्र ॥ १५ ॥

(दोहा)

सोदर मंत्री मित्र सुत ये नरपति के संग ।
राज करै इनही लियेँ राखै सब दिन संग ॥ १६ ॥

(चौपही)

राजश्री अति चंचल तात । ताहू की सब सुनिजै बात ।
धन संपति अरु जोबन गर्ब । आनि मिलै अबिबेक अखर्ब ॥ १७ ॥
राजसिरी सौँ होत प्रसंग । कौन न भ्रष्ट होय यहि संग ॥ १८ ॥

(श्लोक)

यौवनं धनसंपत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥ १९ ॥

सास्त्र सुजल धोवतहू जात । मलिन होत सब ताके गात ।
जद्यपि अति उज्जल है दृष्टि । तौऊ स्रजति राज की सृष्टि ॥ २० ॥
पुरुष प्रकृति कोँ जाकी प्रीति । हरति सुबचन चित्त की रीति ।
बिषय-मरीचिकानि की जोति । इंद्रिय-हरिनि हारिनी होति ॥ २१ ॥
गुर के बचन अमल अनुकूल । सुनत होत स्रवनन को सूल ।
मैनबलित तन बसन सुबेस । भिदत नही ज्यौँ जल उपदेस ॥ २२ ॥
मंत्रिन के उपदेस न लेत । प्रतिसबदक ज्यौँ उतरु न देत ।
पहिलैँ सुनति न जोर सुनंति । माती करिनी ज्यौँ न गनंति ॥ २३ ॥

(दोहा)

धर्मधीरता विनयता सत्यसील आचार ।
राजसिरी न गनै कछू वेद पुरान बिचार ॥ २४ ॥

(चौपही)

सागर मेँ वहु काल जु रही । सीत बक्रता ससि तेँ लही ।
सुरतुरंग-चरनन तेँ तात । सीखी चंचलता की वात ॥ २५ ॥
कालकूट तेँ मोहन रीति । मनिगन तेँ अति निष्ठुर नीति ।
मदिरा तेँ मादकता लई । मंदर ऊपर भय-भ्रम-मई ॥ २६ ॥

(दोहा)

सेष दई वहुजिह्वता वहुलोचनता चारु ।
अप्सरान तेँ सीखियौ अपरपुरुष-संचारु ॥ २७ ॥

(चौपही)

छद्‌-गुन-चोंधेहू वहु भाँति । को जानै किहि भाँति विलाति ।
गज घोटक भट कोटिनि अरैं । खंगलता खंजरहूँ परै ॥ २८ ॥

अपन्याइति कीने बहु भाँति । को जानै कित ह्वै भजि जाति ।
धर्म कोस पंडित सुभ देस । तजत भौंर ज्यौं कमल नरेस ॥ २६ ॥
जद्यपि होय सुद्धतर सत्त । करै पिसाची ज्यौं उनमत्त ।
गुनवंतनि आलिंगति नहीं । अपवित्रनि ज्यौं छाड़ति तहीं ॥ ३० ॥
अहि ज्यौं नाखति सूरत देखि । कंटक ज्यौं बहु साधुनि लेखि ।
सुधा सुंदरी ज़द्यपि आप । सबही तें अति कटुक प्रताप ॥ ३१ ॥
जद्यपि पुरुषोत्तम की नारि । तदपि खलनि की तनमनहारि ।
हितकारिन की अति द्वेषिनी । अहित जनन की अन्वेषिनी ॥ ३२ ॥
मनमृग कौं सु बधिक की गीति । बिपबल्लिन की वारिद-रीति ।
मदपिसाचिका कैसी अली । मोह नींद की सज्या भली ॥ ३३ ॥
आसीबिष-दोपनि की दरी । गुन सतपुरुषनि कारन छरी ।
कलहंसन कौं मेघावली । कपट-नृत्यसाला सी भली ॥ ३४ ॥

(दोहा)

कामबाम-कर की किधौं कोमल कदलि सुवेष ।
धर्मधीर द्विजराज की मनौ राहु की रेख ॥ ३५ ॥

(चौपही)

मुखरोगिनि ज्यौं मौनै रहै । बात बरथाय एक द्वै कहै ।
बंधुबर्ग पहिचानति नहीं । मानौ संनिपात है गही ॥ ३६ ॥
महामंत्रहू होत न बोध । डसी काल-अहि जनु करि क्रोध ।
पानबिलास-उदधि आसुरी । परदारा-गमनै चातुरी ॥ ३७ ॥
मृगया यहै सूरता बढ़ी । वंदी-मुखनि चाय सों चढ़ी ।
जौ क्यौंहूँ चितवै यह दया । बात कहै तौ बढ़िये मया ॥ ३८ ॥
दरसन दीबोई अतिदान । हँसि हेरै तौ बड़ सनमान ॥ ३९ ॥

(दोहा)

जोई जन हित की कहै सोई परम अमित्र ।
सुखवक्ताई मानियै संतत मंत्री मित्र ॥ ४० ॥

(चौपही)

कहौं कहाँ लगि ताकी सेव । तुम सब जानत बिरसिंघदेव ।
जैसी सिवमूरति मानियै । तैसी राजसिरी जानियै ॥ ४१ ॥
सावधान ह्वै सेवै याहि । सोंचौ देहि परमपद ताहि ।
जितने नृप याके बस भए । स्वर्ग पेलि पग नरकहिं गए ॥ ४२ ॥
जैसें कैसें यह बस होय । मन क्रम वचन करौ नृप सोय ॥ ४३ ॥

इति श्रीमत्सकलभूमडलाखडलेश्वरमहाराजाधिराजराजाश्रीवीरसिंहदेवचरित्रे राज्यश्री-वर्णनं नाम नवविंशतितमः प्रकाशः ॥ २६ ॥

---

[३६] बरथाय—बनाय (सभा) ।

३०

(चौपही)

ऐसो भूप जु भूतल कोय । ताके यह कबहुँ न बस होय ।
मंत्री मित्र दोष उर धरै । मंत्री मित्र जु मूरख करै ॥ १ ॥
मंत्री मित्र सभासद सुनौ । प्रोहित बैद जोतिषी गुनौ ।
लेखक दूत स्वार प्रतिहार । सौंपै सुकृत जाहि भंडार ॥ २ ॥
इतने लोगनि मूरख करै । सो राजा चिरु राज न करै ।
जाको मतो दुर्यौ नहिँ रहै । खलप्रिय सुरापान संग्रहै ॥ ३ ॥

(कबित्त)

कामी बामी मूढ़ कोढ़ी क्रोधी कुलदोषी खल कातर कृतघ्नी मित्रद्रोही द्विजदोहियै ।
कुपुरुष किंपुरुष कलही काहली कूर कुबुधी कुमंत्री कुलहीन कैसे टोहियै ।
पापी लोभी झूठो अंध बावरो बधिर गुंग बौना अबिबेकी हठी छली निरमोहियै ।
सूम सर्बभच्छी देवबादी जु कुबादी जड़ अपजसी ऐसो भूमि भूपति न सोहियै ॥४॥

(श्लोक)

सारासारपरीक्षकः स्वामी भृत्यश्च दुर्लभः ।
अनुकूलशुचिर्दक्षः प्रभुर्भृत्योऽपि दुर्लभः ॥ ५ ॥

श्रीराजोवाच (चौपही)

कहिजै दान कृपा करि चित्त । राजधर्म मो सौँ जगमित्त ।

दान उवाच

सुनियै महाराज नृपधर्म । बाढ़ै जिहिँ संपति अरु सर्म ॥ ६ ॥
राज चाहियै साँचो सूर । सत्य सु सकल धर्म को मूर ।
जौं सूरो तौ सबै डरायँ । साँचे कोँ सब जग पतियायँ ॥ ७ ॥
साँचो सूरो दाता होय । जग मेँ सुजस जपै सब कोय ।
संतत करै प्रजाप्रतिपाल । यहै धर्म नृप को सब काल ॥ ८ ॥
जोई जन अनधर्महि करै । तबही नृपति दंड संचरै ।
सबके राजा निग्रह करै । मात पिता बिप्रनि परिहरै ॥ ९ ॥
जौं परिजा कोँ दंडहि करै । तौ बहु पाप राजसिर परै ।
जथापराध दंड कोँ देय । लै धन बंस बिदा करि देय ॥ १० ॥

(श्लोक)

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः ।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥ ११ ॥

(चौपही)

कृतजुग हतौ ज्ञान यह धर्म। त्रेता हतौ तपोमय कर्म।
द्वापर पूजें सुरपुर लेइ। केवल कलि भूदानहि देइ ॥ १२ ॥
दोई दान बड़े जग जान। अभैदान कै पृथ्वीदान।
जाही धर्महिं राजा करै। ताही धर्म सबै अनुसरै ॥ १३ ॥
सुत सोदरहु न छोड़ै राज। ये जौ संतत करैं अकाज।
जौ जिय जानौ अति हित साज। औरहु जातिहि पोखै राज ॥ १४ ॥
मंत्री मित्र जोतिषी राज। कहैं सुहाती बिनसै काज ॥ १५ ॥

(श्लोक)

सुलभाः पुरुषाः राजन्सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ १६ ॥

(दोहा)

राज राजप्रिय मंत्रि सुत मित्र मुख्य करि होय।
राजा के सम देखियै तौ संतत सुख जोय ॥ १७ ॥

(चौपही)

राजधर्म अति परम प्रमान। स्वर्ग नर्क भय राजा जान।
सावधान ह्वै कीजै राज। लहियै सुख ही स्वर्ग-समाज ॥ १८ ॥
जौ जग राज बिकल ह्वै करै। जीवत मरत जु नर्कहिं परै ॥ १९ ॥

(दोहा)

राजधर्म उपदेसियैं जौ नृप होय अजान।
आदिराज तुम राज को जानत सबै बिधान ॥ २० ॥

इति श्रीमत्सकलभूमण्डलाखण्डलेश्वरमहाराजाधिराजराजाश्रीवीरसिंहदेवचरित्रे दानलोभ-समानवर्णनं नाम दशविंशतितमः प्रकाशः ॥ ३० ॥

३१

अथ राजकर्म (चौपही)

उपजावै धन धर्मप्रकार। ताकी रच्छा करै अपार।
धन बहु भाँति बढ़ावै राज। धन बाढ़े सबही के काज।
ताकौं खरचै धर्मनिमित्त। प्रतिदिन दीजै बिप्रनि मित्त ॥ १ ॥

---

[१५] सुहाती–प्रिहूनति (भारत)।

(श्लोक)

अलब्धं चैव लिप्स्येत लब्धं धर्मेण पालयेत् ।
पालितं वर्धयेन्नित्यं वृद्धं पात्रे विनिक्षिपेत् ॥ २ ॥

अथ लेखक (चौपही)

परम साधु कायथ जानियै । निर्लोभी साँचो मानियै ।
जानै धर्माधर्म-बिचार । जानै इंगित नृप-ब्यौहार ॥ ३ ॥
सत्रु मित्र जाके सम चित्त । साँचो कहै सुलेखकु मित्त ।
पसु पंछी धन जन सॉगने । अतिथि पाहुने जोधा घने ॥ ४ ॥
देस नगर पुर घर जो होय । लेहिँ सु आगम निर्गम दोय ।
पट पर लिखै कि तामैं पत्र । इतनी बात लिखै एकत्र ॥ ५ ॥
दुहूँ ओर के कुल के धर्म । अपने देवा लेवा कर्म ।
अपनो मात पिता को नाम । जिहिँ संबंध जहाँ को धाम ॥ ६ ॥
मोल दोगुनो वर्नबिधान । क्रय बिक्रय ताके परिमान ।
नृपमुद्रा कै मुद्रित करै । सभा-सदन की मुद्रा धरै ॥ ७ ॥

(श्लोक)

देवतानृपदेवस्य स्वामिनः परिचिह्नितान् ।
अभिलेख्यात्मनो वंश्यानात्मानं च महीपतेः ॥ ८ ॥

(चौपही)

सावकास जहँ सोहै लोग । जहँ जो जैसो पावै जोग ।
राजलोक रच्छा को काम । सुभ बाटिका जलासय धाम ॥ ९ ॥

(श्लोक)

रम्यं प्रशस्तमाजीव्यं जांगल्यं देशमाविशेत् ।
तत्र दुर्गाणि कुर्वीत जनकानात्मगुप्तये ॥ १० ॥

(चौपही)

अस्त्र सस्त्र बहु जंत्र विधान । अन्न पान रस पट तनत्रान ।
कंद मूल दल ओषद जाल । सहित दान तृन बाँधी ताल ॥ ११ ॥
ठौर ठौर अधिकारी लोग । राखै नरपति जाके जोग ।
सूरे सुचि अरु होय अनन्य । प्रभु की भक्ति गहौ मन मन्य ॥ १२ ॥

(श्लोक)

प्राज्ञत्वमुपधासुधीरप्रमादोभियुक्तता ।
कार्यव्यसनता विप्र स्वामिभक्तश्च योग्यता ॥ १३ ॥

[३] इंगित—अगनित (भारत) । [९] जहँ जो०—दुर्ग स्वॅवारो राजा लोग (सभा) ।
[१२] सूचि—हित (सभा) । प्रभु०—प्रीति परस्पर भेद अनन्य (वही) ।

(चौपही)

तहाँ बैठि बहु साधै देस। जीति करै बस विविधि नरेस।
देस देस के राजनि जीति। हय गय धन लै आवहि कीर्ति ॥ १४ ॥
कीरति पठवै सागर-पार। धन संतोषै बिप्र अपार।
बिप्रन दै उबरै जो नित्त। सोदर सुत पावै अरु मित्त ॥ १५ ॥

(श्लोक)

नातः परतरो धर्मो नृपाणां यद्रणार्जितम्।
विप्रेभ्यो दीयते द्रव्यं दीनेभ्यश्चाभयन्तथा ॥ १५ अ ॥

(चौपही)

जे भट जूझत हैं रनरुद्र। पार होत संसार-समुद्र।
मरत आपने सस्त्रनि छेदि। जात ति सूरजमंडल भेदि ॥ १६ ॥

(श्लोक)

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूरमंडलभेदिनौ।
परिव्राड्योगयुक्तश्च रणे योभिमुखो हतः ॥ १७ ॥

(चौपही)

जे जूझत रन भट सुख पाय। अपने राजा कों पहुँचाय।
पद पद जग्यनि को फल होय। लोक सुद्ध सुनि तिनके दोय ॥ १८ ॥

(श्लोक)

यदा निक्रतुतुल्यानि भग्नेष्वपि निवर्त्तिनी।
राजसु क्रतुमादत्ते हतानां विजयैषिणाम्॥
या संख्या रोमकूपानां वाहकस्य हयस्य च।
तावद्वर्षं वसेत्स्वर्गे गृहपृष्ठे हतो नरः ॥ १९ ॥

(चौपही)

भजे जात तिनकों नहिं हनै। डारि हथ्यार जे हाहा भनै।
छूटे बार जे काँपत गात। पाय पयादे त्रिननि चबात ॥ २० ॥

(श्लोक)

तवाहं वादिनं क्लीबं निर्हेतु च प्रसंगतम्।
न हन्याद्विनिवर्त्तं च युद्धप्रेक्षणकादिकम्।
अवध्या ब्राह्मणा बालाः स्त्री तपस्वी च रोगिणः।
दूतं हत्वा तु नरकेषु मा विशेत्सचिवैः सह ॥ २१ ॥

---

[१७] यह श्लोक 'भारत' में नहीं है।

(चौपही)

चार दूत पठवै दस दिसा। आए दूतनि पूछै निसा।
चार गूढ़गति है बहुरूप। दूत सु तीन भाँति के भूप॥ २२॥

(दोहा)

स्वानिष्टित एकै कहैं परनिष्टित हैं और।
सँदिष्टार्थ हैं तीसरे, सुनौ राजसिरमौर॥ २३॥

(चौपही)

राजन पै जे आवत जात। दूत प्रगट कहिबे की बात।
पत्री कर पटु परम प्रसस्त। तिनसों कहिजत सासन अस्त॥ २४॥
राजकाज अरु जनपदकाज। घटी बढ़ी जिनकौं सब लाज।
देसकाल कौं उचित जु होय। तैसी कहैं ते बिरले कोय॥ २५॥
हारत हरत न संका गहैं। निष्टितार्थ सब तिनसों कहैं।
केवल बात जु कोई कहै। संदिष्टारथ को पद लहै॥ २६॥

(दोहा)

राजा तिनकी बात सब सुनै अकेलो जाय।
आपु हथ्यारी निरहथो एकै दूत बुलाय॥ २७॥

(श्लोक)

सद्यो व्याख्यानश्रवणमन्तर्वेश्मनि शस्त्रभृत्।
रहस्यख्यापनं चैव प्रणधीनां च चेष्टितम्॥ २८॥

(चौपही)

थोरी बड़ी बात जो होय। देखे बिन नृप करै न कोय।
उपजि न कबहूँ पावै व्याधि। फलित गनित गुनि बाधै आधि॥ २९॥
ऐसे वैद जोतिषी राज। राखहु निकट आपने काज।
हितकारिन कौं कपट न करै। अरिकुल प्रति जु क्रोध संचरै।
भली बुरी विप्रन की सहै। सुत ज्यौं प्रजा पालि सुख लहै॥ ३०॥

(श्लोक)

ब्राह्मणेषु क्षमी स्निग्धेष्वजिह्मः क्रोधनोऽरिपु।
स्याद्राजा भृत्यवर्गे वै प्रजासु च पिता यथा॥ ३१॥

(चौपही)

साहसीन तें रक्षा करै। चोर यार बटपारनि हरै।
अन्याई ठगनिकर निवारि। सबतें राखहि प्रजा विचारि॥ ३२॥

(श्लोक)

चारतस्करदुर्वृत्तैस्तथैव सचिवादिभिः।
पीड्यमानाः प्रजा रक्षेत् कायस्थैश्च विशेषतः॥ ३३॥

(चौपही)

जौ न प्रजा की रक्षा होय । तौ जनपद में बसै न कोय ।
ऊजर भए कोष घटि जाय । बाढ़ै पाप धर्म मिटि जाय ॥ ३४ ॥

(श्लोक)

अरक्षमाणाः कुर्वन्ति यत्किंचित् किल्विषं प्रजाः ।
तस्मान्नृपतयोऽधर्मं समागृह्णन्ति सत्वरम् ॥ ३५ ॥

(चौपही)

अपने अधिकारिन कों राज । चारन तें समुझै सब काज ।
साधु होय तौ पदवी देय । जानि असाधु दंड को देय ॥ ३६ ॥

(श्लोक)

चारैर्ज्ञात्वा विचेष्टित्वं साधून्संमानयेद्विभुः ।
सज्जनान् रक्षयित्वा वै विपरीतांश्च घातयेत् ॥ ३७ ॥

(चौपही)

प्रजा-पाप तें राजा जाय । राज जाय तौ प्रजा नसाय ।
दुहूँ बात राजहि घटि परै । तातें धर्मदंड कों धरै ॥ ३८ ॥

(श्लोक)

प्रजापीडनसंतापसमुद्भूतो हुताशनः ।
राज्यं श्रियं कुलं प्राणानदग्ध्वा न निवर्त्तते ॥ ३९ ॥

(चौपही)

तातें राजा धर्महिं करै । बिन डर प्रजा धर्म नहिं धरै ।
जौ राजा अति साँचो होय । ताकें बस्य होय सब कोय ॥ ४० ॥
जिहिं पुर नगर देस व्यौहार । राखै तहँ ते ही आचार ।
परजोधा परजन परदेस । होय बस्य बिन कियैं कलेस ॥ ४१ ॥

(श्लोक)

यस्मिन् देशे य आचारो व्यवहारः कुलस्थितः ।
तथैव परिपाल्योऽसौ राज्ञा स्वहितमिच्छता ॥ ४२ ॥

(चौपही)

मंत्रमूल कहिजैं नरनाथ । जैसी है राजनि की गाथ ।
मंत्रहिं राखें रहै अभेद । कर्म फलोदय होय अखेद ॥ ४३ ॥

(श्लोक)

मन्त्रमूलो यतो राजा ततो मन्त्रः सुरक्षितः ।
कुर्याद्यत्नेन तद्विद्वान् कर्मनामाफलोदयात ॥ ४४ ॥

(चौपही)

जाकेँ दलबल बहुत प्रकार। दुर्ग कोस बल धर्म अपार।
मित्र मंत्र मंत्री वल होय। बाहु दंड बल राजा सोय॥ ४५॥

(श्लोक)

स्वाम्यमात्यो जनो दुर्गः कोशो दण्डस्तथैव च।
मित्राण्येताः प्रकृतयो राज्यं सप्ताङ्गमुच्यते॥ ४६॥

(चौपही)

दंडमान जौ जानै राज। तौ सब होयँ राज के काज।
धूत ढीठ सब प्रिय परदार। परहिंसा परद्रब्यकहार।
झूठे ठग बटवार अनेक। तिनकौं दंड देइ सब सेक॥ ४७॥

(श्लोक)

तद्विद्वांश्च नृपो दण्डं दुर्वृत्तेषु निपातयेत्।
धर्मो हि दण्डरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा॥ ४८॥

(चौपही)

जथापराध दंड कों धरै। बेद पुरान मंत्र उद्धरै।
धर्मदंड गनि दिब्यसँपर्क। होय बहुत अधरम तेँ नर्क॥ ४९॥

(श्लोक)

अधर्मदण्डो ह्यस्वर्ग्यो लोककीर्त्तिविनाशकः।
सम्यक् दण्डश्च राज्ञां वै स्वर्गकीर्त्तिजयावहः॥ ५०॥

(चौपही)

राजा सबकों दंडहि करै। जो जन पाय कुपैंडे धरै।
नातो गोतो कछु नहिँ गनै। प्रीतम सगो न छोड़त बनै॥ ५१॥

(श्लोक)

अपि भ्राता सुतो वापि श्वशुरो मातुलोपि वा।
धर्मात्प्रचलितः कोपि राज्ञा दण्ड्यो न संशयः॥ ५२॥

(चौपही)

ब्राह्मन मात पिता परिहरै। गुरुजन को नृप दंड न धरै।
रोगी दीन अनाथ जु होय। अतिथिहिँ राजा हनै न कोय।
इतने जानि परै अपराधु। बृत्तिन हरै निकारै साधु॥ ५३॥

(श्लोक)

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते॥ ५४॥

(चौपही)

दंड करै दू विधि नृप धीर। कै धन हरै कि दंड सरीर।
चारि भाँति रिपि एकनि कह्यो। सो जग में राजनि संग्रह्यो॥ ५५॥

(श्लोक)

धिग्दण्डः स्त्ववाग्दण्डो धनदण्डो वधस्तथा।
क्रमशो व्यवहर्त्तव्यो ह्यपराधानुसारतः॥ ५६॥

(दोहा)

धन के दंडऽपराध विधि रिपिन कहे मुनि भूप।
सबकों 'केसवदास' वध दंड कहै दसरूप॥ ५७॥

(चौपही)

धिग्दंड वचनदंड संवेध। राजलोक आगमनि निषेध।
चौथे काढ़ि लेय अधिकार। पाँचे दीजै देस निकार॥ ५८॥
छठे रोकि राखे अवलोकि। सातौं वेरि देय नहिँ मोकि।
आठौं ताड़ नवम तनुभंग। दसें जीव कों करै अनंग।
दसौ दंड वध के सुविवेक। जानहु धन के दंड अनेक॥ ५९॥

(श्लोक)

यो न दण्डयते दण्ड्यान् सान्यानथ न पूजयेत्।
अशुभं जायते तस्य पातकैः स तु लिप्यते॥ ६०॥

(चौपही)

मचला दगाबाज वहु भाँति। चेरे चेरी सेवक जाति।
भिक्षुक रिनियाँ थातीदार। अपराधी अधिकारी ज्वार॥ ६१॥
जे सुख सोदर सिष्य अपार। प्रजा चोर अरु रत परदार।
ये सिख देत मरैं जो लाज। हत्या तिनकी नाहिन राज॥ ६२॥

(श्लोक)

शिष्यं भार्य्यां सुतं स्त्रीं च योगिनं ग्रामकूटकम्।
ऋणयुक्तं सप्तमं च न हन्यादात्मघातिनम्॥ ६३॥

(चौपही)

इहिँ विधि रच्छै राजा देस। अपने मेड़ैं है जु नरेस।
वैरी करि मानै वह देस। मानौ ताकहँ सत्रु नरेस॥ ६४॥
ताके पैले कुधा जु भूप। मानै ताहि मित्र को रूप।
ताकें परे जू भूपति आहि। उदासीन कै मानै ताहि॥ ६५॥

---

[५९] वेरि०—व्यग्र करै जुत सोक (सभा)।

(श्लोक)

अरिमित्रमुदासीनोनन्तरस्ततपरों परः ।
क्रमशो मण्डलं भेद्यं सामादिभिरुपक्रमैः ॥ ६६ ॥

(चौपही)

वहुरें सत्रु त्रिविधि जानियैं । पीड़ित कर्सनी सु मानियैं ।
छेदत बय तीसरो बखान । सबही कौं समुझौ परवान ॥ ६७ ॥
मंत्रहीन बलहीनहि मान । अति पीड़ित संतत जिय जान ।
प्रबल मंत्र बहु सेना साथ । ताको कर्सन कीजै हाथ ॥ ६८ ॥
लघु सेना बहु बिसनी भूप । दुर्गहीन बहु होय बिरूप ।
मंत्री विरत मंत्र बल हीन । गज बाजी अति दुर्बल हीन ॥ ६९ ॥
कोंसहीन जाको कुलभेव । ताको होंय बेगि कुलछेव ।
मित्रहिं बहुत भाँति दू जान । बर्ध अबर्धनीय मन मान ।
वर्धनीय धन बल बिन होय । कर्सनीय धन बल जुत लोय ॥ ७० ॥

(श्लोक)

तुल्याचारं धने तुल्यं मर्मज्ञं च प्रतारकम् ।
अर्द्धराज्यहरं भृत्यं यो न हन्यात् स हन्यते ॥ ७१ ॥

(चौपही)

चौंहूँ दिसि के गुननि गनाय । तेरह नृपमंडल महि पाय ।
जुक्त जु करै समादि उपाय । ताके निकट दुख्ख नहिँ जाय ॥ ७२ ॥
करै मित्र सौं समसंजोग । उदासीन सों दानप्रयोग ।
सत्रुसैन में प्रगटै भेव । करै दंड कै अरिकुलछेव ॥ ७३ ॥

(श्लोक)

संधि च विग्रहँ यानमाश्रयं संश्रयं तथा ।
द्वैधीभावो गुणानेतान्यथावत्तानुपाश्रयेत् ॥ ७४ ॥

(चौपही)

मित्र भूप सों संधिहि सचै । उदासीन सों आसन रचै ।
आपुन सवही भायन वढ़ै । दलवल सत्रु भूप पर चढ़ै ॥ ७५ ॥
रिपु की भूमि न अनभय मानि । कोसहीन बाहन कृस जानि ।
निज जनपद की रच्छा करै । दिसाविहीन संधि संचरै ।
सुखही आवै लै हित साथ । परपुरगमन करै तब नाथ ॥ ७६ ॥

(श्लोक)

यदा सत्वगुणं चित्तं परराष्ट्रं तदा व्रजेत् ।
परस्वहीन आत्मा च हृष्टवाहनपूरुषः ॥ ७७ ॥

[६८] हाय–नाथ (सभा) । [६९] बिसनी–बिलसिन (भारत) ।
[७३] छेव–देव (भारत) ।

(चौपही)

अपनी फौज करै दू भेव। जुद्ध रचत है नर नरदेव।
एक कहत ऐसो रिषिराज। द्वैधिकारि इहि सिगरै साज॥ ७८॥
होय जु बड़ो एक उमराव। ताकौं बिसरु करावै राव।
करि बहु बिसरु सत्रु कै जाय। जुद्धकाल भागे महराय॥ ७९॥
कीने सब अदृष्टि के होय। यह गुन आरस करौ न कोय।
जद्यपि रामचंद्र जगनाथ। तिनहूँ उद्यम कीनो हाथ॥ ८०॥
लै हरि संग सुरासुर रुद्र। लक्ष्मी पाई मथें समुद्र।
तातें राजा उद्यम करै। उद्यम कियें कर्मतरु फरै॥ ८१॥

(श्लोक)

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीर्दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः॥ ८२॥

(चौपही)

सत्रुहि जीते जग जस कहै। भूमि हिरन्य मित्र कों लहै।
मित्रहि लहै और भू लहै। तातें साँचहि कों संग्रहै॥ ८३॥
इहिं बिधि चारयौ दिसि कों लहै। तासों जगत बड़ो नृप कहै।
जौ अतिसत्रु करै अतिसेव। ताकी सेव तजै नरदेव।
ताकी प्रीति बुराई होय। मारें भलो कहैं सब कोय॥ ८४॥

(श्लोक)

शत्रोरत्यन्तमैत्रीं च स्तोकमैत्रीं विवर्जयेत्।
अर्जयेत्तद्विरोधेन प्रतिष्ठा तस्य घातने॥ ८५॥

(चौपही)

अबिचारी दंड न संचरै। मंत्र न कहूँ प्रकासित करै।
लोभिन धन न सौंपिये जीति। अपकारिन सों करै न प्रीति।
लोभ मोह मद तें जो करै। जब तब कर्ता कों घटि परै॥ ८६॥

(श्लोक)

नोपेक्षेत क्वचिद्दंडं न च मंत्रं प्रकाशयेत्।
विश्वसेन्न तु लुब्धेभ्यो विश्वसेन्नापकारिषु॥ ८७॥

(चौपही)

ऐसें नरपति होत सुजान। गुर लघु मध्यम गुनहु विधान।
अपने पुरुषागत की रीति। असुभ छोंडि सुभ प्रगटति प्रीति॥ ८८॥

---

[८०] तिनहूँ०—जतन किये मारौ दसमाथ (सभा)। [८१] कर्म—काम (भारत)।

राखै तिनकी धरनि असेष। लेहि और बहु बिक्रम बेष।
तिनकी देनी प्रतिदिन देइ। औरहि देइ जीति रन लेइ॥ ८९॥
कुल पालहि सुनि हरखै गाथ। ऐसे नरपति गुरमन नाथ।
होहिँ जे अपने पिता समान। मध्यम तिनसोँ कहत सुजान॥ ९०॥
तिनपर राखी जाइ न प्रजा। दई न जाइ दुष्ट कोँ सजा।
नाहिन कहूँ धर्म की सुद्धि। ऐसेँ लघु नृप होयँ कुबुद्धि॥ ९१॥
स्वारथ परमारथ को साज। इहिँ बिधि राजा कीजै राज।
मारहु सत्रुनि मित्रनि राखि। बस्य करहु जग साँचो भाखि॥ ९२॥
जीति भूमि राजा की लेहु। बिस्नुप्रीति राजा कोँ देहु।
जितने देन कहे हैं दान। ते सब दीजहिँ बुद्धिनिधान॥ ९३॥

(दोहा)

एक एक देत न बनै तातेँ नृपति उदार।
ग्रामदान सँग देत सब दान एक ही बार॥ ९४॥

(चौपही)

राजधर्म बहु भाँतिनि जान। बुधिबल लीजत है पहिचान।
कहौँ कहाँ लगि बुद्धिनिधान। तुम सुसील सर्बज्ञ सुजान।
तुमसे राजन कोँ उपदेस। ज्योँ छीरोदय जोन्ह प्रबेस॥ ९५॥

(दोहा)

तिनसोँ कहत न बूझियै हमैँ राज के कर्म।
जिनके जानत जगत जन पुरुषागत के धर्म॥ ९६॥

इति श्रीमत्सकलभूमंडलाखंडलेश्वरमहाराजाधिराजराजाश्रीवीरसिंहदेवचरित्रे राजधर्मवर्णनं नाम विंशतिएकादशमः प्रकाशः॥ ३१॥

३२

श्रीवीरसिंह उवाच (चौपही)

दान कहत तुम अति सुख पाय। सासन हम पै मेटि न जाय।
अपनो कुल सब बोलहु आज। देन कह्यौ तौ दीजहि राज॥ १॥
नृपति काज कहिजे गुनि दान। उत्तम मध्यम अधम बिधान।

[९१] होयँ०—परैँ क्रुद्ध (भारत)। [९३] जीति—जिती (भारत)।

दान उवाच (चौपही)

देव देवरिषि सहित बिबेक। ब्रह्म ब्रह्मरिषि जि हैं अनेक॥ २ ॥
सब जब मृत्तिकानि कों आनि। सब ओषधी मंत्र सब जानि।
करत सीस अभिषेक उदोत। ते नरपति अति उत्तम होत॥ ३ ॥

(श्लोक)

देवैश्च देवर्षिभिश्च यश्च ब्रह्मर्षिभिस्तथा।
मूर्द्धाभिषिक्तो विधिना स राजा राजसत्तमः॥ ४॥

(चौपही)

बेदवेत्ता बिप्र अनेक। जिनके सीस करैं अभिषेक।
महा नृपति सों मिलि नरनाथ। तिनकी जानहु मध्यम गाथ॥ ५ ॥

(श्लोक)

मूर्द्धाभिषिक्तो विधिना ब्राह्मणैर्वेदपारगैः।
उत्तमैर्नरदेवैश्च स राजा मध्यमो मतः॥ ६॥

(चौपही)

कालदेस बिन बिना विधान। जैसे तैसे बिप्र अजान।
जिहिँ तिहिँ जल अभिषेकहि करै। ताकों साधु असाधु उच्चरै॥ ७॥

(श्लोक)

अकुलीनैः कुलीनैर्वा ब्राह्मणैर्योऽभिषेकवान्।
पूतापूतजलैर्यश्च स वै राजाधमो मतः॥ ८॥

(चौपही)

राजा यह कुलक्रम को राज। अरु याको है उत्तम साज।
ताकों श्रद्धा सों संग्रहै। फल अनेक जस आपुन लहै॥ ९ ॥
हमैं देव जानै सब कोय। तिनको दरसन अफल न होय।
तुम पै हम प्रसन्न हैं चित्त। अभिमत बर माँगहु नृप मित्त॥ १०॥

वीरसिंह उवाच

सुनिजै दान देवमति मित्त। जौ प्रसन्न तुम हमकौं चित्त।
सागरतीर जु सरित असेष। सप्तदीप मृत्तिका सुवेष॥ ११॥
सब ओषधी सकल फल रत्न। सकल वेद के मंत्र सयत्न।
इनहि आदि अपने परिवार। वोलौं दान सबै व्योहार॥ १२॥

---

[७] असाधु—अधम (सभा)। [९] फल०—आगम निगम रीति यह कहै (सभा)।

बिधि सों हमकों दीजै राज। हम पर कृपा भई जौ आज।
या सुनि दान कह्यौ सुख पाय। करिजै नृप-अभिषेक-उपाय।
आए धर्म सहित परिवार। बाजि उठे दुंदुभि दरबार॥ १३॥

(कबित्त)

सोहत परमहंस जात मुनि सुख पाय इति सु संगीत मीत बिबुध बखानियै।
सुखद सकति सम समर सनेही बहु बदन बिदित जस 'केसौदास' गानियै।
राजै द्विजराजपद भूपन बिमल कमलासन प्रकास परदारप्रिय मानियै।
ऐसे लोकनाथ कि त्रिलोकनाथ नाथ कैधों कासीनाथ बीरसिंघ जगनाथ जानियै॥१४॥

(दोहा)

बीरसिंघ यौं देखियौ सकल धर्मपरिवार।
अपने अपने चित्त में बाढ़े तर्क अपार॥ १५॥

(चौपही)

तब कीने आतिथ्य अनेक। स्रद्धासहित धर्म सबिबेक।
पूजा करी आठहू अंग। मन क्रम बचन मुदित अँगअंग॥ १६॥
ज्ञानसहित पूजे बिज्ञान। पूजे देव सबै सबिधान।
पूजि पाय परि ठाढ़े भए। अंजुलि जोरि बिनय बहु ठए॥ १७॥
सुनहु जगतप्रतिपालक धर्म। आजु सफल भए मेरे कर्म।
मोपै कियौ इतौ अनुराग। मेरे पुरुषनि को बड़भाग॥ १८॥

(दोहा)

पूजा करि बहु बिनय करि बीरसिंघ नरदेव।
बैठारे सिंहासननि सोभन देवी देव॥ १९॥

(चौपही)

तब तिहि समय विजय सुख पाय। कही बात नरपतिहि सुनाय॥ २०॥

विजय उवाच

महाराज के गुन अवदात। हमकों मिले दिगंतनि जात।
तिनि उराहनो दीनो हमैं। जौ सुनिजै तु कहौं इहिं समैं।
राजा सुनि सिर नीचो कियौ। तिनकों कह्यौ कहन तिनि लियो॥ २१॥

(कबित्त)

हमहीं सिखाए देन मान भोग बन इन हमही सों प्रबल प्रताप नर हारे हैं।
'केसौदास' हमहीं बढ़ायकै बड़ाई दई राजन के राजा आनि पायँ सब पारे हैं।
ताकों तौ हमारी बात अबहीं लजात सुनि आगे कहा करिहो बिचार यौं बिचारे हैं।
राजा बीरसिंघदेव रावरे सकल गुन ऐसो कहि दसहू दिसानि पाउँ धारे हैं॥ २२॥

[१४] जगनाथ—जगजित (भारत)।

उत्साह-उवाच (चौपही)

नृपतिमुकुटमनि बिरसिंघदेव। दारिद डरपै तुम्हरे भेव।
बिधि सों बिनय कर्‌यौ तजि लाज। हम सब सुनी सु सुनिजै राज॥ २३॥

(सवैया)

छोड़हु जू करतारपन्यौ तुम कासीनरेस बृथा करि डारे।
आपने हाथनि नाथहु तौ जिनके सिर राज के आँक सुधारे।
ऐसे सुरेसनहू के मिटै नहिं जो जन तीरथजाल पखारे।
ह्वै गए राज तहीं तें जहीं नर बीर नरप्पति नैक निहारे॥ २४॥

वैराग्य उवाच (चौपही)

नृपति तुम्हारे सत्रु अनंत। इहि बिधि देखे भूमि भवंत॥ २५॥

(कवित्त)

हंसन के अवतंस रचे कीच रुचि करि सुधा सों सुधारे मठ काँच के कलस सों।
गंगाजू के अंग संग जमुना तरंग बलदेव को बदन रच्यौ बारुनी के रस सों।
'केसव' कपाली-कंठ-कूल कालकूट जैसे अमल कमल अलि सोहैं निसि सस सों।
राजा बीरसिंघजू के त्रास बस भारे भूप भागे फिरैं भूमि छाड़े ऐसें अपजस सों॥२६॥

जय उवाच (चौपही)

सुख दुख सहित सकल परिवार। हमहि मिले इहि भाँति अपार।
बहुधा बिपति संपतिनि सने। राजा तुम्हरे अरि माँगने॥ २७॥

(सवैया)

चामीकर मनिमय पाटसूत संकलित 'केसव' सहित सुख दुखनि अपार के।
भूषननि दूषननि भूषित दूषित भूप भूत ज्यौं भँवत फिरैं दीह देस पार के।
बाजि गज बाहिनी चलत जिन पाइ बीर सुंदरीनि लीन करै कर करतार के।
बीरसिंघ जाचक तिहारे बटुआनि बाँधि पूरित कपूर चूर बाँधे बैरी छार के॥ २८॥

धैर्य उवाच (चौपही)

महाराज सुनिजै रनरुद्र। प्रगट करे तुम दान-समुद्र।
अति दीरघ अति सोभा सनै। कहि न जाय देखत ही बनै॥ २९॥

(कवित्त)

'केसौदास' सुबरनमय मनि जलजात तुंगनि तरंगनि तरंगित बिभाति है।
जाचक जहाज लाख लाख लाख अभिलाख जात भरि भरि लै सिहात दिन राति है।
उड़िउड़ि जाति जित देखै ही सु तित तित पचिपचि पैरिपैरि अति अकुलाति है।
कीरति-मराली राजसिंघनि की बीरसिंघ तेरे दान सागर में बूड़ि बूड़ि जाति है॥३०॥

---

[३०] मनि०—मनिमय जलजात संग तुंग तरल तरंगनि निहात है (सभा)।
ही सु—ताही। (वही)

आनंद उवाच (चौपही)

महाराज तव दुख्ख दुरंत। पाप पुकारत आरतवंत।
बिधि सों कहत भूमि हम तजी। अब हम बसे निकट की सजी ॥ ३१ ॥

(कबित्त)

कह्यौ करतार हम कहा कहैं बीरसिंघ कलिजुग ही में कृतजुग अवतार्यौ है।
बिक्रम बितप भट भोगभाग अग्रेसर सेनापति तेज प्रेम ही सों अति पार्यौ है।
'केसौदास' गुन ग्यान सकल सयान साँच दान के समुद्र में दरिद्र बोरि मार्यौ है।
राज की धुरा लै धीर धरी धाम ही के बंध भूमिलोक ही में सत्यलोक कों सुधार्यौ है ॥ ३२ ॥

भाग्य उवाच (चौपही)

जहाँ जहाँ हम गए नरेस। तहाँ तहाँ तो सुजस सुबेस।
जल थल पुर पट्टन बन बाग। सुनियत तेरे बहु अनुराग ॥ ३३ ॥

(कबित्त)

'केसौदास' सावकास तारिकानि सों अकासतारनि में चंद सो प्रकास ही करतु है।
बसुधा के आसपास सागर उजागर सो सागर में गंगा कैसो जल पसरतु है।
नागलोक सेषजू सो देखियतु सुख पाय सेषजू में सत्य कैसो बेषहि धरतु है।
बीरसिंघ थारो जस लोक लोक पूजियत नारद सो सारद वै राम सो ररतु है ॥३४॥

(चौपही)

बात सुनी जब सुखकारिका। बूझति है सुक सों सारिका।

पराक्रम उवाच

सुनिये बीरसिंघ गुनग्राम। मारे सुभट जु तुम संग्राम।
निसिबासर आनंदनिधान। देखे हम दिवि देवसमान ॥ ३५ ॥

(सवैया)

केलि करैं कलपद्रुम के बन में तिनके सँग देवकुमारी।
अंचित हास करै जनु देहलता हरिचंदन चित्त सुधारी।
लोक बिलोकन को सुख ओकन मानु दिये सुरलोक बिहारी।
बीर नरप्पतिजू जिनके सिर तोरत वै तरवारि तिहारी ॥ ३६ ॥

प्रेम उवाच (चौपही)

देव राजपुर द्वार पुकार। दारिद की त्रिय सुनी अपार ॥ ३७ ॥

---

[३३] बन-बर (भारत)। सुनियत०-पूरि रहे करि अति (सभा)।

(सवैया)

कोपि उठी बिधिहू तें सुबीर नरप्पति दान कृपान की तारा।
कंत हमारो किये बहु खंड बहाय दिये तिनकी जलधारा।
कैसी करैं हम कासों कहैं जु बचैं करि 'केसव' कौन की सारा।
यौं बहु बार पुरंदर के दरबार पुकारति दारिद-दारा॥ ३८॥

सारिका उवाच (चौपही)

कह्यो सोभन सुक अवदात। मोसों बीरसिंघ की बात।
आयौ सभा धर्मपरिवार। जिनको वेदन माँझ विचार॥ ३९॥
बाढ्यौ मेरे चित्त बिचार। बीरसिंघ काको अवतार॥ ४०॥

(कवित्त)

किधौं मुनि तपबृद्ध 'केसौदास' कै ऊ सिद्ध देवता प्रसिद्ध भूमि भूपति कहाए हैं।
गुनगनजुत सोहैं मेरे तन मन मोहैं बीरसिंघ को हैं सुक तेरे मन आए हैं।
जिन लगि दीजै दान तीरथनि कीजै न्हान सुनिजै पुरान बहु वेदनि जु गाए हैं।
आवत न मन कहि आवै न बचन कहि आवत न तन ति तौ नैनन में आए हैं॥४१॥

(चौपही)

सुनि सुक कीनौ चित्त विचार। अपने उर कीनौ निर्धार।

शुक उवाच

भली कही तैं बुद्धिनिधान। मोपै सुनि सारिका सुजान॥ ४२॥

(कवित्त)

याके उर अकबर साह मेरे 'केसौदास' जाके नाहीं रुचि परतिय परधन की।
सोधिसोधि तंत्रजंत्र जपिजपि मूलमंत्र ज्यौं ज्यौं लीनौ मार त्यौं त्यौं बाढ़ी ज्योति तन की
लहुरे तें सबही को जेठो भयो साहि कै सु अजहू न जान्यौ तैं तु ऐसी मूढ़ मन की।
धर्मपरिवार सब जाके दैन आयौ राज बीरसिंघ नररूप कला नारायन की॥४३॥

(दोहा)

सुनि सुक सारो के बचन सोभन सुखद अपार।
सुख पायौ मन क्रम बचन सकल धर्मपरिवार॥ ४४॥

(चौपही)

एही समय बिप्र इक रंक। आयौ सभामध्य निरसंक।
फटे बसन दुर्बलता मढ्यौ। नृप के दोइ सवैया पढ्यौ॥ ४५॥

---

[३८] की तारा—किनारा (भारत)। के दरवार०—द्वार पुकारति दारिद दुःख की दारा (वही)। [४१] ति तौ—नितै (भारत)।

(सवैया)

आगेहूँ दीजतु पाछेहूँ दीजतु दीबोई ओर दुहूँ ब्रत धाख्यौ ।
दीजतु है अध ऊरधहू बर बैठेहू देत दिसान निहाख्यौ ।
लै बहु दीजतु दै बहु दीजतु 'केसव' दीबोई दीबो बिचाख्यौ ।
एकही बीर नरप्पति एक जिनै बड़ो दीबे को हाथ पसाख्यौ ॥ ४६ ॥

(कवित्त)

देस परदेस के कहत सब जनपद किधौं 'केसौदास' कौन तंत्र नयो नय को ।
महाराज मधुकरसाहि-सुत बीरसिंघ किधौं जग जंत्र है दरिद्र छुद्र छय को ।
सोकगत सरनागत बिलोकिजात किधौं किधौं लोक तीन मॉझ लोक है अभय को ।
सुनतही भागि जात बैरी सब सॉची कहौं नाम यह रावरो कि मत्र है बिजय को ॥४७॥

(चौपही)

यह सुनि रीझि रही सब सभा । प्रगटी उरझि दान की प्रभा ।
महाराज सुख पाइ समोद । चितए कृपाराम की कोद ।
कृपाराम अति हरषित गात । कही प्रगट द्विज कौं यह बात ॥ ४८ ॥

(दोहा)

जा कारन आए इहाँ मॉगहु बिप्र सभाग ।
हय गय हाटक हीर पट धाम ग्राम बहु बाग ॥ ४६ ॥

विप्र उवाच (सवैया)

औरन मारिवे कौं कोऊ 'केसव' वाही कौं तातें निरुद्यम मारौं ।
कै अब मारिबो छॉडियै वाकों कै वा पहँ मारत मोहिं उबारौं ।
वीर नरप्पति देव उतै वह हौं इत मानस बिप्र बिचारौं ।
मारत हौं प्रभु दारिद कौं वह मारत मोकहँ जानि तुमारौं ॥ ५० ॥

(दोहा)

ग्राम चारि गंधर्ब दस हाथी बीस मँगाय ।
कृपाराम दीन्हे द्विजहि औरै पट पहिराय ॥ ५१ ॥

शुक उवाच (कवित्त)

दैन कहि आए दीनौ हरिचंद लीनौ रिपि सरनागत के सु साटै सिबि दान कीनौ है ।
'केसौदास' रोसवस दीनौ है परसुराम वलिहू पै वावन त्यौं छल करि लीनौ है ।
वाप कौ विदायौ धन दीनौ भोज पडितनि तुमहीं चलायो कछू मारग नवीनो है ।
रंकहू कौं राजहू कौं गुनी अनगुनी हूँ कौं वीरसिंघ ऐसो दान काहू ने न दीनौ है ॥५२॥

---

[४७] सब–बहु (सभा) । [४६] मॉगहु०–कहौ विप्र बड़भाग (भारत) । [५०] निरुद्यम–निरत्तय (भारत) ; बिना दय (सभा) । [५१] औरै०–और सुपट (सभा) ।

सारिका उवाच

कारेकारे तम कैसे प्रीतम सँवारे बिधि वारिवारि डारौं गिरि 'केसौदास' भाखे हैं।
थोरे थोरे मदन कपोल फूले थूले थूले सोहै जल थल बल थानसुत नाखे हैं।
घंटा ठननात नाद घनै घूँघरानि भौंर भननात भुवपति अति अभिलाखे हैं।
दुरजन मारिबे कौं दारिद बिदारिबे कौं बीरसिंघ हाथियै हथ्यार करि राखे हैं ।।५३।।

(चौपही)

यह सुनि कह्यौ पाय सुख दान । दोऊ सुक सारिका सुजान ।
कीनौ बहुत असुभ को भोग । ताहि भोगियै नक्र ससोग ।। ५४ ।।

सारिका उवाच (सवैया)

कामगवी कलपत्तरु कामना पाइयै दान जु दान दिये को ।
साधन साधत होय जो है मनोकाम को पारस पुंज छिये को ।
जारत जौ जरि जाय जरा गुन 'केसव' कौन पियूष पिये को ।
भागही भौ भगिहै भव तौ परिनाम कहा हरिनाम लिये को ।। ५५ ।।

(चौपही)

यह सुनि बोल्यौ धर्म प्रधान । साधु साधु सारिके सुजान ।
हरि की नगरी अपबल लई । इतनो कहत संखधुनि भई ।
आई राज लैन की घरी । आय गनक यह बिनती करी ।। ५६ ।।

इति श्रीमत्सकलभूमडलाखंडलेश्वरमहाराजाधिराजराजाश्रीवीरसिंहदेवचरित्रे धर्मसमागम-वर्णनं नाम विंशद्वादशतमः प्रकाशः ।। ३२ ।।

३३

(चौपही)

झालरि भेरि रुजावरि बजैं । जहँ तहँ दीरघ दुंदुभि सजैं ।
जहँ तहँ प्रमुदित लोग अभीत । जहँ तहँ सुनियत मंगलगीत ।। १ ।।
जहँ तहँ वेद पढ़ै द्विजजाति । जहँ तहँ होम होत बहु भाँति ।
लीपी धर चंदन जल चारु । उपरि वितानन को परिवार ।। २ ।।
हेमदलनि मरकत मनि खची । तिनके बदन माँझ है सची ।
बिच बिच हीरा मानिक लरी । बिच बिच मुक्तन की झालरी ।। ३ ।।
कंचन कलस जरायनि जरे । उज्जल झलक दिव्य जल भरे ।

---

[५४] कह्यौ०—कहि सुख पायौ (भारत) । भोगियै०—रोग ये जनक सँजोग (वही) ।
[५५] कौन०—कौ जनु एक पिये को (भारत) । परिनाम—परिमान (सभा, भारत) ।

सिंघासनदुति मन मोहियौ। सोभन सभामध्य सोहियौ ॥ ४ ॥
स्नान दान कीने सुभकर्म। तापर नृप बैठारे धर्म।
छत्र सीस पर धीरज धर्यौ। ससि सो अमृतमयूखनि भर्यौ ॥ ५ ॥
रूप प्रेम कर दरपन लिये। मानौं निर्मलता के हिये।
बलि बिक्रम कर लिये हथ्यार। बानै आनँद के परिवार ॥ ६ ॥
रानी पारबती तिहिँ काल। बोली सुमति सत्ति तिहिँ बाल।
जोरी गाँठि बिबेक बिचारि। बाम अंस सोभी सुखकारि ॥ ७ ॥
अति उतसाह तेज कर धरी। जयहू बिजय छबीली छरी।
भोग भाग करि सुमनबिधान। अति आचार खवावत पान। ८ ॥
विद्या अरु श्री ढारत चौंर। बीरसिंघ नृपतिन सिरमौर।
छमा दया सजनी सुख सिद्धि। स्रद्धा मेधा सुचि रुचि बृद्धि ॥ ९ ॥
रानिहि देखि सकल सुख बढ़ी। सारो सुखद सारिका पढ़ी ॥ १० ॥

(सवैया)

भोजन भूषित भूषन भूषित दुक्ख दसा सबही की हती सी।
प्रात तेँ दीजत है अधिराति लौँ कोटि करी जिन एक रती सी।
देव सराहत देवी सबै नरदेवी सराहति इंदुमती सी।
होय न ऐसी जौ फेरि रचै बिधि पारबती सिव-पारबती सी ॥ ११ ॥

(दोहा)

धर्म सकल परिवार सोँ संजुत ज्ञान बिबेक।
अपने अपने अंस दै किये तिलक अभिषेक ॥ १२ ॥

(चौपही)

जय अभिषेक धर्म करि लयौ। जय जय सब्द सकल जग भयौ।
प्रथमहि पहिराए द्विजराज। छीतर मिश्र अमित कबिराज ॥ १३ ॥
स्रुति सुधर्मतरु विप्र बुलाय। जुक्ति उक्ति जोगी सुखदाय।
पहिराए गनि परम पवित्र। जानि मानि सब गुननि विचित्र ॥ १४ ॥
सिगरे प्रोहित गुरु कविराज। देत असीस चिरंजिय राज।
पहिरे मानसाहि बुधिवंत। पहिराए भैया भगवंत ॥ १५ ॥
दै दै वर अंबर कविराज। पुरी परगनै भूषन साज।
वोलि जुझारराय सुखसाज। पहिराए कीन्हे जुवराज ॥ १६ ॥
पहिराए हरधौर कुमार। प्रवल पहारखान वलसार।
वोले वाघराज रनधीर। चारु चंद्रमनि वुधि गंभीर ॥ १७ ॥

---

[७] सत्ति०—मत्त भूपाल (सभा)। [११] भूषित भूषन०—भूषित भूषित दीरघ (सभा)। सिव-सान (भारत); सकर (सभा)। [१४] स्रुति०—स्रुतिधरु भीतर मिश्र (सभा)। [१५] देत०—भूषन दिये अमोलिक साज (सभा)। मान०—मान सहित (वही)।

अरु भगवानदास सुख पाय। पहिराए बहुतै सुखदाय।
पुनि पहिराए नरहरिदास। कृष्नदास अरु माधौदास ॥ १८ ॥
हँसि पहिराए बेनीदास। अति हुलास सों तुलसीदास।
बहुरि बसंतराय पहिराय। पुनि पहिराए खाँडेराय ॥ १९ ॥
बोले कृपाराम सुखकारि। पहिराए पट भूपन धारि।
कटि बाँधी अपनी तरवारि। पहिरायौ तिहिँ कौ परिवार ॥ २० ॥
करि अपने मन प्रेम प्रकास। पहिराए द्विज कन्हरदास।
जैन खान पहिरायौ गौर। बोलि बसंतराय तिहिँ ठौर ॥ २१ ॥
पहिराए बड़गूजर सूर। चंपति केसवराय समूर।
आदि प्रधान अलोभ अभूत। पहिराए सुंदर के पूत ॥ २२ ॥
ईसुर रावत सुतनि समेत। पहिराए सब कारज हेत।
सुबुधि दसौंधी साहिबराय। पहिराए बहु भाँति बनाय ॥ २३ ॥
कायथ पहिराए बुधिबास। कमलपानि नारायनदास।
पहिराए सब सजन समाज। सिगरे देस देस के राज ॥ २४ ॥
नेगीदल परिगहु उमराउ। पहिराए अति उपज्यौ चाउ।
पहिराए मरहरिया झारि। महते बहु माँगनै बिचारि ॥ २५ ॥
एक द्विजनि पादारघ दए। एकनि बृत्ति दान रुचि रए।
जब सब लोग लए पहिराय। बोले कृपाराम सुख पाय ॥ २६ ॥
जाके मन जैसी रुचि होय। लोग असीस देहु सब कोय ॥ २७ ॥

सदाचार उवाच (सवैया)

राम के नामनि प्रात उठौ पढ़ि ह्वै सुचि संततई जु अन्हैजै।
पूजि जथाबिधि केसव कोँ पुनि दान दै राज सभा महँ जैजै।
भोग लगै भगवतहि भूपति भोजन कै निज मंदिर ऐजै।
राज करौ चिर बीर नरेस नरेसनि लै जगती जस वैजै ॥ २८ ॥

सत्य उवाच (दोहा)

सत्य सबै हरिचंद ज्यौँ बीरसिंघ नरनाथ।
प्रतिपाल्यौ पालहु जगत ज्यौँ राजा रघुनाथ ॥ २९ ॥

ज्ञान उवाच (कवित्त)

भव को उतारयौ भार उतरयौ ज्यौँ निजभार धरयौ भूमिभार फनपति के फनक ज्यौँ।
साधि जय समै साधु साधत ज्यौँ सत्रु सब सोधि सोधि सिद्धि बस करहु गनक ज्यौँ।
ग्रंथ छोरि तौलि तापि ताड़िजै तरुन मन छेदि छेदि 'केसौदास' कसिजै कनक ज्यौँ।
महाराज मधुकरसाहि-सुत बीरसिंघ चिरु चिरु राज करौ राजा जू जनक ज्यौँ ॥३०॥

[२०] पहिराए पट०—सौंप्यौ राजकाज को भार (सभा)। [२२] केसवराय—केसवदास (सभा)। [२५] नेगी०—नेगी दंपति वह (सभा)।

लोभ उवाच (दोहा)

पृथु ज्यौं पृथ्वी पालिजै सबै रतन दुहि लेहु।
लोभ बढ़ै हरिभक्ति को जस सौं करौ सनेहु ॥ ३१ ॥

पराक्रम उवाच (कवित्त)

काल कैसो दंड असिदंड भुजदंड गहि बिक्रम अखंड नवखंड महि मंडियै।
मत्तगजझुंडन के वलिबंड सुंडादंड कुंडली समान खड खंड नव खंडियै।
तरल तुरंग तुंग कवच निखंग संग चमू चतुरंग भट भंग करि छंडियै।
राज करौ चिरु चिरु बीरसिंघ नरसिघ जीति जीति दीह देस सत्रुन कौं दंडियै ॥३२॥

आनंद उवाच (दोहा)

राज करौ आनंदमय बीरसिंघ सब काल।
कहि 'केसव' संकलित कुल भूतल के सुरपाल ॥ ३३ ॥

उद्यम उवाच (सवैया)

तेरह मंडल मंडित है भुवमंडल को सुख साधन कीजै।
राज बढ़ौ धन धर्म बढ़ौ दिनही जिहिं बैरिन को कुल छीजै।
मित्रन सों मिलि मंत्रिनि सों मिलि 'केसव' उद्यम कों मन दीजै।
बीर नरप्पति श्रीपति ज्यों जयश्री रनसागर तें मथि लीजै ॥ ३४ ॥

विजय उवाच (दोहा)

राजा बिरसिंघ देव चिरु राज करौ भुवओक।
कुस लव ज्यों जहँ जाउ तहँ बिजय होय सब लोक ॥ ३५ ॥

प्रेम उवाच (सवैया)

देवन की भुवदेवन की दिन सेवन की रुचि चित्त बढ़ौ जू।
हय की गय की जय की जस की सिगरौ जग जोति-समूह मढ़ौ जू।
धर्मविधाननि श्रीहरिगाननि वेदपुराननि जीभ पढ़ौ जू।
तीरथन्हान सों सुद्ध सयान सों जुद्धविधान सों प्रेम बढ़ौ जू ॥३६॥

भोग उवाच (दोहा)

आखंडल ज्यौं भोगिवो भूसंडल के भोग।
वलि ल्यौं वावन वाँधि कै दूरि करौगे रोग ॥ ३७ ॥

---

[३२] दीह देस०—दुर्जननि दीह दंड (सभा)। [३५] भुव०—भूपाल (सभा)। लोक—काल (वही)। [३६] वेद०—दानप्रमाननि (सभा)। सुद्ध—सत्य (वही)।

दान उवाच (कबित्त)

ऐसें दीजै दासनि अभयदान बीरसिंघ जैसे नरसिंघ प्रह्लाद राखि लीने हैं।
ऐसें दीजै भूखन कौं भोजन भवन हरि जैसें दिये हरखि सुदामा कौं नवीने हैं।
ऐसें सरनागतन दीजै जू बड़ाई बहु जैसे रामदेव बड़े बिभीखन कीने हैं।
ऐसें दीजै नाँगनि बसनदान 'केसौदास' जैसें मेरे दीनानाथ द्रौपदी कौं दीने हैं॥३८॥

उदय उवाच (दोहा)

राज तुम्हारे राज को उदय होय सब काल।
प्रभु पियूषनिधि को प्रगट ज्यौं प्रभाव भुवभाल॥ ३९ ॥

विवेक उवाच (कबित्त)

तुमकौं जू देय मन ताकौं तुम देव धन चाहै तुम्हैं चित्त मे सु चौंहूँ ओर चाहियै।
तुमकौं बड़ो कै जानै ताकहँ बड़ाई देउ सपनेही देहि दुख दुखही सु दाहियै।
जोई जोई जैसें भजै ताही ताही तैसें भजौ 'केसौदास' सबही की मति अवगाहियै।
बीरसिंघ जुग जुग राज करौ इहि बिधि थिर चर जीवन की जीविका निबाहियै॥४०॥

भाग उवाच (दोहा)

राज तुम्हारे भाग को भव में बढ़ै प्रताप।
सब कोई बंदन करै गंगा के सम आप॥ ४१ ॥

(कबित्त)

बैठे एक छत्रतर छाँह सब छिति पर सूरज कुलकलस राह हित मति हौ।
तिक्तवामलोचन कहत गुन 'केसौदास' बिद्यमान लोचननि देखिजत अति हौ।
अकर कहावत धनुष धरें केसौदास परम कृपाल पै कृपान कर पति हौ।
चिरु चिरु राज करौ राजा बीरसिंघ तुम लोग कहैं नरदेव देव कैसी गति हौ॥४२॥

चित्रही में मित्र बर्नसंकर बिलोकियत ब्याह ही में नारिनि के गारिनि को काज है।
ध्वजै कंप-जोगी निसि चक्र है बियोगी कहैं 'केसौदास' मित्रसोगी कुमुद-समाज है।
मेघै तौ धरनि पर गाजत नगर घेरि अपजस डर जस ही को लोभ आज है।
राजा मधुकरसाहिसुत राजा बीरसिंघ चिरु-चिरु राज करौ जाको ऐसो राज है॥४३॥

कन्हरदास उवाच

अमलचरित्र तुम बैरिन मलिन करौ साधु कहैं साधु परदारप्रिय अति हौं।
एकथलथित पै बसत जगजनजिय द्विपद बिलोकियत बहुपदगति हौं।
भूषन बसनजुत सीस धरें भूमिभार भूपर फिरत सु अभूत भुवपति हौं।
राजसिंघ लीन्हें साथ राखौ गाय बाम्हननि चिरजीवौ बीरसिंघ अदभुतगति हौ।४४।

---

[३९] भुव–सो (सभा) । [४२] कुल०–कमल कुल हरि (भारत) ।

छीतर मिश्र उवाच

जीवै चिर बीरसिंघ जाको जस 'केसौदास' भूतल है आसपास सागर को बास सो।
सागर को बड़भाग बेष सेषनागनि को सेषजू में सुखदानि बिस्नु को निवास सो।
बिस्नुजू में भूरिभाव भव को प्रभाव जैसो भवजू के भाल में बिभूति के बिलास सो।
भूतिमाह चंद्रमा सो चंद्र में सुधाको अंस अंसन में सोहै चारुचंद्र को प्रकास सो ॥४५॥

राजा बीरसिंघ नरसिंघ जीति राजसिंघ दीरघ दुसह दुख दारुन बिदारियै।
'केसौदास' मंत्रदोष मित्रदोष ब्रह्मदोष देवदोष दीनदोष देस तें निकारियै।
कलही कृतघ्नी क्रूर सारे महिमंडल के बलिबंड खंड खंड खंड करि डारियै।
वंचक कठोर ठेलि कीजै बाँट आठ आठ झूठपाठ कठपाठ करी काठ मारियै ॥४६॥

साहिबराय उवाच

वैरी गाय बाँभन को कालै सब काल जहाँ कबिकुल ही के सुबरनहर काज है।
गुरुसेजगामी एक बालकै बिलोकियत मातंगनि ही के मतवारे कैसो साज है।
अरिनगरीनि प्रति करत अगम्यागौन दुर्गनिही 'केसौदास' दुर्गति सी आजु है।
राजा मधुकरसाहिसुत राजा बीरसिंघ चिरु चिरु राज करौ जाके ऐसो राजु है ॥४७॥

उदयमणि मिश्र उवाच

सब सुखदायक हौ सब गुन लायक हौ सब जगनायक हौ अरिकुल-बलहर।
आखर दुहू के रीझि पाखर बनाय बाजि बाखर बनाय गजराज देत राजबर।
चिरु चिरु जीवौ जग राजा बीरसिंघ तुम 'केसौदास' दीबो करैं आसिखा असेष नर।
हयपर गयपर पलिग सुपीठिपर अरिउरहू पै अवनीसन के सीसपर ॥ ४८ ॥

दुर्जन कमल कुम्हलानेई रहत मित्र फूलेई रहत कुबलय सुखबास जू।
बिछुरेई रहैं चक्र चक्रई ज्यौं आठौ जाम चौंकि चौंकि परैं चित्त चौहूँ कोद त्रास जू।
बीरसिंघ राजचंद तेरे मुखचंद्रमा की चंद्रिका को चारु निसिबासर प्रकास जू।
सोई कीजै साहिबसमुद्र मधुसाहिसुत देखिबोई करै जू चकोर 'केसौदास' जू ॥४९॥

धर्म उवाच (सवैया)

राज करौ चिरु बीर नरप्पति बामन के पद सो पद बाढ़ौ।
दुक्ख हरौ नित दीनन के नृप बिक्रम ज्यौं करि बिक्रम गाढ़ौ।

---

[४५] सागर०—गंगा के सलिल पुंडरीकनि की पाँति पुंडरीकन की पाँति हंसकाँति को उजास सो (सभा)। [४८] सब जग०—अरिकुल धाइक हौ तीछन प्रतापकर (सभा)। आखर०—बैरीगन भाजि गए छोड़ि छोड़ि मंदिरन पाखर बनाइ बाजिराज (वही)। [४९] रहैं०—रहत प्रताप चक्र चकई ज्यौं (सभा)। कोद—कोष (भारत)।

भूतल तें कहि 'केसव' वेगि दै दारिद दुष्टन कों गहि काढ़ौ।
ऐसिहि भाँति सदा तुमसों हर सों हरि सों गुरु सों रति बाढ़ौ ॥५०॥

(दोहा)

सब के लै सब आसिषनि सब सुख दै सुख पाय।
सिंघासन तें उतरि प्रभु गहे धर्म के पाय ॥ ५१ ॥
धर्म कह्यौ सुख पायकै माँगौ बर बर मित्त।
देहु मया कै तीनि बर जौं प्रसन्न हौ चित्त ॥ ५२ ॥
बीरचरित संतत सुनत दुख को बंस नसाय।
मो उर बसहु बढ़ाइजौं जहाँगीर कों आय ॥ ५३ ॥
आसिष दै बर तीन दै दै सिप परम प्रवान।
धर्म भए सुख पायकै 'केसव' अंतरध्यान ॥ ५४ ॥

इति श्रीमत्सकलभूमंडलाखंडलेश्वरमहाराजाधिराजराजाश्रीवीरसिंहदेवचरित्रे त्रिंशत्रिदशमः प्रकाशः ॥ ३३ ॥

इति श्रीवीरसिंहचरित्रसमाप्तम् ।

---

[५०] दुख०—दीनन के दुख दंद दहौ नृप विक्रम ज्यौं वलि (सभा)। भूतल०—पूषन तेज प्रमान तपौ परताप प्रतीपन को उर दाढ़ौ (वही)। ऐसिहि०—केसवदास प्रकास करौ जसु ज्यौं विधु छीरधि तै मथि काढ़ौ (वही)।

जहाँगीर-जस-चंद्रिका

(छप्पय)

गुनहु गनेस दिनेस देस परदेस छेमकर।
अंबरेस प्रानेस सेस नखतेस बेस बर।
पन्नगेस प्रेतेस सुद्ध सिद्धेस देखि अब।
बिहंगेस स्वाहेस देव देवेस सेस सब।
प्रभु पर्वतेस लोकेस मिलि कलि-कलेस 'केसव' हरहु।
जग जहाँगीर सकसाहि कौं पलु पलु हीं रच्छा करहु॥ १॥

(दोहा)

सोरह सै उनहत्तराँ, माधव मास बिचारु।
जहाँगीर सकसाहि की, करी चंद्रिका चारु॥ २॥

(कवित्त)

बैरम खाँ बच्छ साह हमाँऊ को साहिबर साती सिंधु पार कीनी किंत्ति करबर की।
सील को सुमेरु सुद्ध सोंच को समुद्र रन-रुद्र गति 'केसौराय' पाई हरिहर की।
पावक प्रताप जिहि जारि डारी प्रगट पठानन की साहिबी समूल मूरिगर की।
प्रेम परिपूरन पियूष सींचि कल्पबेलि पालि लीनी पातसाही साहि अकबर की॥ ३॥

(दोहा)

ताको पुत्र प्रसिद्ध महि सब खानिनि को खान।
भयौ खानखाना प्रगट जहाँगीर-तनु-त्रान॥ ४॥

(कवित्त)

साहिजू की साहिबी को रच्छक अनंतगति कीनौ एक भगवंत हनवंत बीर सो।
जाको जसु 'केसौदास' भूतल के आसपास सोहत छबीलो छीरसागर के छीर सो।
अमित उदार अति पावन बिचार चारु जहाँ तहाँ आदरियै गंगाजू के नीर सो।
खलनि के घालिबे कौं खलक के पालिबे कौं खानखाना एक रामचंद्रजू के तीर सो॥५॥

---

[१] गुनहु—सुनहु (राम, सभा)। सेस सब—बेस सब (राम)। जग...पलु—जहाँगीर...पलु पलु (सभा)। [२] सकसाहि—जसचद्र (उदय)। [३] साहिबर—साहिसिंधु (उदय) सिंधु०—सपूत जाने मानो (राम)। केसौराय—केसौदास (सभा)। [४] तनु—तन (राम)। [५] खलनि—लखनि (राम, सभा)। एक—ऐस (राम)।

(दोहा)

ताके कुल को कलसु अब सूरन को सिरताजु।
एक बहादुर बिस्व मैं एलच साहि निवाजु ॥ ६ ॥

(कवित्त)

'केसौराय' रज्यौ रज अंगनि बिलास रंग प्रतिभट अंकनि तें अंक पसरतु है।
सेना सुंदरीनि के बिलोकि मुख भूपननि किलकि किलकि जाहि ताहि कों धरतु है।
गाढ़े गढ़ खेलहीं खिलौननि ज्यों तोरि डारै जग जयजसचंद चारु कौं अरतु है।
एलच बहादुर नवाब-खानखाना सुत जाको करवाल बाललीला सी करतु है ॥ ७ ॥

(सवैया)

जाके भरोसे बिराम करैं ससि सूरज से पुन देखियै तैसौ।
जानि यहै हरपुत्रनि 'केसव' व्याहै तजे सहि काम-कलैसौ।
सुपूत के होत सुपूत बिरयौं इमि होइ सुपूत सपूत के ऐसौ।
बैरमखान के खानखानाजु हैं खानखानाजू के एलच जैसो ॥ ८ ॥

(दोहा)

कौनहु पूरब पुन्य तें उदय-भाग बल पाय।
एलच साहि निवाज कों मिलयौ 'केसौराय' ॥ ९ ॥
एक काल तिहि बूझियौ पाइ सबनि को मर्म।
कहिजै केसौरायजू उद्दिम बड़ो कि कर्म ॥ १० ॥

केशवोवाच

रनरूरे रनसूर सुनि हारक विषम विषादु।
भयौ जु उद्दिम कर्म प्रति उदय-भाग सों वादु ॥ ११ ॥
एक काल बैठे हुते गंगाजू के तीर।
उदय भाग दोऊ जने सुंदर धरे सरीर ॥ १२ ॥
तिनहिं देखि बूझन गयौ तहाँ एक द्विज दीन।
हौं दरिद्र तें क्यौं छुटौं कहिजै मत्र प्रवीन ॥ १३ ॥

(छप्पय)

पाइ पाइ कर पाइ पाइ रसना अरु आनन।
नैन पाइ पुनि बैन पाइ तनु पाइ पाइ मन।
कर्म पाइ धीरजहि पाइ साहस विक्रम वल।
जन्म पाइ जग जोति पाइ यह कर्मभूमिथल।
वहु बुद्धि पाइ जामैं वसतु सव उपाइ उद्दिम करहु।
आपनी कथा कहि कह सुमति औरन के दारिद हरहु ॥ १४ ॥

---

[७] केसौराय–केसौदास (सभा)। [८] से पुन–सेपु ना (राम)। बिरयौं०–बिरवा इक (राम)। [१०] केसौराय–केसौदास (राम)। [११] हारक–हीरक (राम); हर के (सभा)।

भाग्य

मोहमई जड़ता सु अग्नि पैं जाति न खोई।
ईस-सीस ससि सोभ सूर पैं मंद न होई।
सैल-सिलातल-सिल्प मेहु क्यौं मेटन पावै।
कहि 'केसौ' अति प्यास ताहि क्यौं ओस नसावै।
ब्रह्मघात के पातकहि तीरथ-दान सकै न हरि।
अव कर्म लिखे दारिद्र कहुँ (सु) उद्दिम सकै न दूरि करि ॥ १५ ॥

उदय

बिप्र पढ़त, नरपाल प्रजनि पालत बल खल हति।
बनिजनि बिबिध जघन्य सूद कृपि गोकुल सों रति।
संकर भाजन भवन भूरि भूपननि बनावत।
नाचत गावत एक एक बाजैनि बजावत।
कहि 'केसौ' लालच मदन बस कोह मोह मय मानियै।
[अरु] अहंकार आकार तैं उद्दिमपर जग जानियै ॥ १६ ॥

भाग्य

पसुनि सु 'केसौराय' बिबिध तरुगन बन उपवन।
जथालाभ संतुष्ट पुष्ट सोभिजै जती-मन।
अजगरादि अँगलोभ भच्छ कौं कब उठि धावत।
देव-वेप पापान प्रगट पूजा पति पावत।
गंगोदकजुत एक घट मदिरासंजुत देखियै।
केवल कर्म-अधीन सब उद्दिमपर क्यौं लेखियै ॥ १७ ॥

उदय

करमन पाय उपाय अमर भो ऋपि मृकंड-सुत।
लघु ही तें ध्रुव धीर भयौ पद परम उच्च जुत।
तेल तिलनि मैं ऊखमध्य रसु जद्यपि हैयै।
करम भरोसें कहाँ बिना उद्दिम को पैयै।
ज्यौं दीप-दसा तकि तेलमय तेज बिना तमहिं न हरै।
कहि 'केसव' त्यौं जड़ कर्मतरु उद्दिम ऋतु पाएँ फरै ॥ १८ ॥

भाग्य

दैन लियें विप विपम सुखद सुख विपया पाई।
चंद्रहास की मृत्यु गयौ मरि मदन सहाई।
खनि खनि मरत गँवार कूपजल पियत पथिक पुनि।
पचि पचि मरत सुआर भूप भोजननि करत सुनि।

---

[१६] बाजैनि—बाजननि (सभा, उदय)।

कहि 'केसव' लिखि लेखक मरत पंडित पढ़त पुरानगन।
जग जानहु कर्मप्रधान अब उद्दिम बृथा बखानि मन ॥ १९ ॥

उदय

उद्दिम छीरसमुद्र मथ्यौ सब रतन जु लीने।
उद्दिम खार समुद्र बाँधि रावन सिर छीने।
उद्दिम बसुधा गाइ दुही सब बीजनि काजैं।
उद्दिम सब कौं रच्छपाल संहरत न लाजैं।
सब बिधि समत्थ उद्दिम सदा 'केसव' जस जंपै घनै।
उद्दिम केवल ईसु है कर्म बापुरो को गनै ॥ २० ॥

भाग्य

साधन साध अगाध सिद्ध सेवहिं रन जुज्झहि।
बिद्या बिबिध बिनोद बेद चारयौं बिधि बुज्झहि।
सोधहिं सातौ सिंधु सातहू जाहिं रसातल।
सात दीप अवलोकि लोक अवलोकि सात बल।
पुनि चिंतामनि सुरबृच्छतल 'केसवदास' बसाइयै।
अब उद्दिम कोटि कलानि करि (पै) कर्म लिख्यौई पाइयै ॥ २१ ॥

उदय

होत रंक तें राज राज तें राजराज सुनि।
राजराज तें देव देव तें देवदेव पुनि।
देवदेव तें ईस ईस तें पंकज जानहु।
पंकज ह्वै बसि सत्यलोक संतत सुख मानहु।
अब को जानै किहि नरक मैं कर्म परयौ पछितातु है।
कहि 'केसव' उद्दिम के कियें जीव बिष्नु ह्वै जातु है ॥ २२ ॥

भाग्य

कबहूँ वाहन वेपुहोत कबहूँ नर बाहक।
कबहूँ मंगन दानि भच्छ्य भच्छक गुनगाहक।
कबहूँ सूकर स्वान सर्प कबहूँ हरिवाहन।
कबहूँ पर्वत सघन होत कबहूँ घनवाहन।
कबहूँ उपजत पापकुल कबहूँ 'केसव' धर्म के।
इहि बिधि अनेक जोनिनि जगत भ्रमत भ्रमाए कर्म के ॥ २३ ॥

---

[२०] बीजनि–सृस्टिन (राम)। [२१] सभा०–फुनि सबहीं सुरलोक-लोक सब सोधि आप बल (उदय)। सातबल–चलाचल (राम)। तल–तट (उदय)। कलानि०–कला करै (उदय)। [२२] कियें–करें (राम)। [२३] कबहूं सूकर०–कबहुक चाहत चाह कबहुँ चाही के चाहन (राम)। सघन–घनै (उदय)।

उदय

देखि एक गति कर्म धर्म जग है प्रवृत्ति रति।
सदा प्रवृत्ति निवृत्ति जुक्त उद्दिम अनंत गति।
प्रगट सुभासुभ कर्म स्वर्ग कै नरक बसावै।
उद्दिम कर्म समेत सबै संसार नसावै।
पानिनि मुनि जानैं किये कर्म द्वितीया आनियै।
अति उद्दिम तें अद्वैतता भाग बिभागनि भानियै॥ २४॥

(दोहा)

बहु बिधि भाग्य रु उदय सों बढ़्यौ बिबाद-प्रकासु।
तब अकासबानी भई तिनकौं 'केसौदासु'॥ २५॥
रच्छत है मथुरापुरी महादेव भूतेस।
जाहु तहाँ सो मानियौ करैं जु कछु उपदेस॥ २६॥
यह सुनि दोऊ देवता मथुरा नगरी जाइ।
देवदेव भूतेस के देखे पावन पाइ॥ २७॥

(सवैया)

कामकुमार से नंदकुमार की केलिकथा यह नित्य नई है।
'केसव' थावरहीं चरहीं बरहीं रति की गति जीति लई है।
पानुसी पावनता तन लागत पापनिहूँ कहँ मुक्ति दई है।
पुष्प सरासन श्रीमथुराभव भानुभवागुन भौरमई है॥ २८॥

(दोहा)

पाइन परि भूतेस के भाग्य उदय उदारु।
पूछैं उद्दिम कर्म तें कवनु बड़ो संसारु॥ २९॥

(कवित्त)

एकनि के पातक पहार से बिलावत हौ एकनि के पुन्यपुंज कुंज हरि लेत हौ।
एकनि के बज्रलेप करत हौ एकनि कौं दिव्यलोक दै करि असोक रूप देत हौ।
इहि बिधि चारिहूँ बरन चहूँ आश्रम कौं 'केसौराय' कोप-ओप करुनानिकेत हौ।
भूरि भाय भूतनाथ परम प्रभावजुत मथुरा अभूत भाँति प्रभुता समेत हौ॥३०॥

भूतेश (दोहा)

जहाँगीर दुहूँ दीन कौं साहिब प्रगट प्रमान।
छाजति जाके छत्र की छाया सकल जहान॥ ३१॥

---

[२४] सुभासुभ कर्म—सुभासुभ वेष (गम, उदय)। [३०] ओप—दर (गया)।

(कवित्त)

जाके घोर दुदुंभी घनाघननि घूमतही उजबक उलुक जवासे ज्यौं जरत हैं।
जाके बंदी मोरनि मैं बिक्रम को सोर सुनि ब्यालनि ज्यौं दिकपाल धीर न धरत हैं।
'केसौदास' जाके मुखचंद के प्रकास सब चक्रवर्ति चक्रवाक चँपेई मरत हैं।
जालिम जलालदीन-सुत जहाँगीर साहि जाकी संक लंकनाथ संकियो करत हैं ॥३२॥

एक थल थित पैं बसत जगजन जीय द्विकर पैं देसदेस कर कों धरनु है।
त्रिगुन बलित बहु बलित ललित गुन गुनिन के गुन-तरु फलित करनु है।
चारिही पदारथ को लोभ 'केसौदास' जिहि दीबेकौं पदारथ समूह को परनु है।
साहिनि कौं साहि जहाँगीर साहि आहि पंचभूत की प्रभूति भवभूतिकौं सरनु है ॥३३॥

दरसे सुरेस से नरेस सिर नावैं नित षट दरसन ही कों सिर नाइयतु है।
'केसौदास' पुरी पुर पुंजनि को पालक पैं सात ही पुरी सों पूरो प्रेम पाइयतु है।
नाइका अनेकनि को नायक नगर नित अष्टनाइकानिहीं सों मनु लाइयतु है।
परम अखंड तेज पूरि रह्यौ नव खंड दसहू दिसानि जहाँगीर गाइयतु है ॥ ३४ ॥

नगरनगर पर घनई तौ गाजैं घोरि ईति की न भीति भीति अधन अधीर की।
अरिनगरीनि प्रति करत अगम्यागौन भावै बिभिचारी जहाँ चोरी परपीर की।
भूमिया के नाते भूमिधर ही तौ लेखियतु दुर्गनि ही 'केसौदास' दुर्गति सरीर की।
गढ़नि गढ़ोई एक देवता ही देखियतु ऐसी रीति राजनीति राजै जहाँगीर की ॥३५॥

साहिनि को साहि जहाँगीर साहिजू को जस भूतल के आसपास सागर-हुलासु सो।
सागर मैं बड़भाग वेप सेप नाग को सो सेपजू मैं सुखदानि बिस्नु को निवासु सो।
बिस्नुजू मैं भूरि भाव भव को प्रभाव जैसौ भवजू के भाल मैं त्रिभूति को विलासु सो।
भूति माँझ चंद्रमा सो चंद्र मैं सुधा को अंसु अंसुनि मैं सोहै चारु चंद्रिकाप्रकासु सो ३६

(छप्पय)

समसदीन अल्लावदीन सुरतान सिकंदरु।
कुतुबदीन गोरी गयासु अल्लाहदीन अरु।
महमद साहि पिरोजसाहि सो कुतुबसाहि गनि।
रुकनदीन जल्लालदीन साहावदीन भनि।
कहि 'केसव' सकल प्रभावजुत बिक्रमकित्ति प्रकास जिहि।
तपतेज साहि जहाँगीर के तम जिमि होत अलोप तिहि ॥ ३७ ॥

मोजदीन बहलोल साहि वाजीद बखानौं।
तुगलक आदम साहि आदि जुलकरनहि जानौं।
प्रबल बहादुर साहि वराहम साहि बहादुर।
बब्बर तबर हमाँउ सेख असलेम भनो उर।

---

[३३] दीबे०—सबकों पदारथ समूह को भरनु है (राम), दीबे...भरनु (उदय)। [३५] भूमि०—भूमि भूधर तौ (राम, उदय)। एक—आज (राम)। राजनीति०—राजै पातिसाही (सभा); राजरीति० (उदय)। [३७] महमद.. अलोप तिहि—'उदय' में नहीं है।

जग जहाँगीर आलम पनाह सबल साहि अकबरसुतन।
को गनै राव राजा जिते जीति लिये सबके वतन ॥ ३८ ॥

(दोहा)

ताकौं दोऊ देवता बूझहु जाइ सुजान।
जाहि बड़ाई देत वै सोई बड़ो जहान ॥ ३९ ॥

(कवित्त)

उदित सभाग अनुरागनि सों चहूँ भाग साहिवी को आगरो विलोक्यौ आनि आगरो।
आठहू दिसान कैसो आँगन अमित अति झार जैसे बारिबाह सातौं सुख सागरो।
चिंतामनिगिरि कैसो भूतल अमोल किधौं कल्पबृच्छ को सो थलु अद्भुत उजागरो।
वात नरदेवन की देवन की कौन गनै जा कहँ बिमोहै देखि देवदेव नागरो ॥४०॥

(दोहा)

देखि नगर नागर हुऔ गए साहिदरबार।
द्विपद चतुष्पद की जहाँ सोभित भीर अपार ॥ ४१ ॥

(कवित्त)

भैरो केसे भारी भूत गनपति केसे दूत सजल जीमूत ऐसे स्यामल सरीर के।
विंध्य केसे वंधु मदअंध अति वंधन कों करत कराल गंध मद सिंधु तीर के।
कलि केसे छौंवा कालजोनि केसे दौवा महि मीच केसे धौंवा हौवा रिपु भयभीर के।
जटितजँजीर जोर छोर चहूँ ओर फिरैं काल केसे साथी हाथी साहि जहाँगीर के ॥४२॥
जल के पगार निज दल के सिंगार परदल के बिगारकर परपुर पारैं गौरि।
ढाहैं गढ़ जैसे घन भट ज्यौं भिरत रन देति देखि आसिप गनेसजू के भोरैं गौरि।
विंध्य केसे वांधव कलिदनंद से अमंद वंदन की भूँड भरै चंदन की चारु खौरि।
सूर के उदोत उदैगिरि से उदित अति ऐसे गजराज राजैं साहि जहाँगीर-पौरि ॥४३॥
वामनहि दुपद जु नाख्यौ नभ ताहि कहा, नाखैं पद चारि थिर होत इहि हेत हैं।
छेकी छिति छीरनिधि छोंडि धाप छत्रतर कुंडली करत लोल चित मोल लेत हैं।
मन केसे मीत वीर वाहन समीर केसे नैननि ज्यौं नौनि नौनि नेह के निकेत हैं।
गुनगनवलित ललितगति 'केसौराय' ऐसे वाजि दीनन कौं जहाँगीर देत हैं ॥४४॥
दुहूँ रुख मुख मानौं पलट न जानी जाति देखि कै अलातजाति ज्योति होति मंद लाजि।
'केसौदास' कुसल कुलालचक्र-चक्रमनु-चातुरी चितै कै चारु आतुरी चलत भाजि।
चंदजू के चहूँ कोद वेप परिवेप को सो देखत ही रहियै न कहियै वचन साजि।
धाप छोडि आपनिधि जानौं दसौं दिसा जहाँगीरजू के छत्रतर भ्रमत भ्रमनि वाजि ॥४५॥

---

[३८] अजीट-जल्लाल (उदय)। इसकी तीसरी पंक्ति, चौथी का उत्तरार्ध और पाँचवीं का पूर्वार्ध 'उदय' में नहीं है। [३९] देत वै-देहवो (राम)। [४०] उदित०-उदित सभाग...मन विधि आगरो (उदय)। देखि देव-देखि देखि (राम)। [४१] हुऔ-दोऊ (उदय)। [४२] गंध-काल (राम)। [४३] विंध्य-विधु (सभा, उदय); विधि (राम)। भूँड-मूँड (राम)। [४४] 'सभा' में केवल 'कविप्रिया' का संकेत है। मिलाइए कविप्रिया ८।२६। [४५] 'सभा' में आरंभिक कुछ अंश नहीं है।

(अमल मालती)

तहँ दरबारी। सब सुखकारी।
कृतयुग कैसे। जनु जस ऐसे ॥ ४६ ॥

(दोहा)

महिष मेप मृग बृपभ अज भिरत मल्ल गजराज।
लरत कहूँ पाइक नटत कहुँ नर्तक नटराज ॥ ४७ ॥

(भुजगप्रयात)

कहूँ सोभना दुंदुभी दीह बाजैं। कहूँ भीम भंकार कर्नाल साजैं।
कहूँ सुंदरी वेनु बीना बजावैं। कहूँ किन्नरी किन्नरी लै सु गावैं ॥ ४८ ॥
कहूँ नृत्यकारी नचैं सोभ साजैं। कहूँ भाँड़ बोलैं कहूँ मल्ल गाजैं।
कहूँ भाट भाटो करैं मान पावैं। कहूँ वेड़िनी लोलिनी गीत गावैं ॥ ४९ ॥
कहूँ बैल भैंसा भिरैं भीम भारी। कहूँ एन एनीनि के जूथ भारी।
कहूँ बोक बाँके कहूँ मेप सूरे। कहूँ मत्त दंती लरैं लोहपूरे ॥ ५० ॥

(समानिका)

देखि देखिकै सभा। चित्त मोहियै प्रभा।
राजमंडली लसैं। देवलोक कों हँसैं ॥ ५१ ॥

(मालिक)

देस देस के नरेस। सोभिजै सबै सुवेस।
जानिजै न आदि अंत। कौन दास कौन कंत ॥ ५२ ॥

(दोहा)

मुसलमान इक दिसि असुर एक देव नरदेव।
आम खास जहाँगीर को सागरु को सो भेव ॥ ५३ ॥

उदय

जगपति के कर-कमल की छाया जाकैं सीस।
फूलत हैं हिय कमल जिमि देखत कों यह ईस ॥ ५४ ॥

भाग्य (कवित्त)

दीनजन पालिबे कौं कलिकाल घालिबे कौं कविकुल लालिबे कौं सब रस भीनों है।
देस देस लीबे कहँ सब सुख दीबे कहँ जगजय कीबे कहँ जिहिं ऋतु लीनों है।
राजनि बढ़ाइबे कौं बैरिन दढ़ाइबे कौं खलक की खूबी को खजानो जाहि दीनों है।
गाइविप्र राखिबे कौं देखियत 'केसौराय' सुलतान खुसरू खुदाई आपु कीनों है ॥५५॥

(दोहा)

मोतिन की माला लसै जाके सीस सभाग।
मनो जसावलि जगतु है को यह कहिजै भाग ॥ ५६ ॥

---

[५३] नरदेव–इह देस (उदय)। भेव–वेस (वही)। [५४] जिमि–जिहि (राम, उदय)।
[५५] देस०–दिसि दिसि (राम, सभा)।

भाग्य (सवैया)

जागतहीं जिन केहरिदान दुनी के दरिद्रदुरद्द मरे हैं।
खग्गखगेस वली जिनके जु पठानन के बलव्याल हरे हैं।
'केसव' जाके प्रताप की आगि दिगंतन के तरुभूप जरे हैं।
सोपक सागरसत्रु सबै बिधि ये परबेज परेस करे हैं ॥ ५७ ॥

उदय (दोहा)

जाकी अंग सुबास तें बासित होत दिगंत।
को यह सोभित है सभा जागति जोति अनंत ॥ ५८ ॥

भाग्य (कबित्त)

उलक मुलक तजि भाजि गए जाके डरु उड़ि गई रजनि बिराजति पठान मैं।
जाकी सुनि सुनि बात सीरे रहि जात गात पातनि ज्यों पियराब खंधारी जहान में।
उजबक अकुलाइ उठत अकबकाइ 'केसौराय' काँपै दिल चलदल-पान मैं।
खुरम सभा में सोहै देखहु उदय जाकी खरकति खरीयै खरक खुरासान मैं ॥५९॥

उदय (दोहा)

सबके लोचन हरतु है को यह भाग सभाग।
रँगि राखी सगरी सभा याही के अनुराग ॥ ६० ॥

भाग्य

जहाँगीर को लाड़िलो आसिष देत जहान।
देखिय पूरन बखत सो सदा तखत-सुरतान ॥ ६१ ॥

उदय

वार वार जासों कहै बात कछू सुरतान।
भाग कहौ यह कौनु है ताको करहु बखान ॥ ६२ ॥

भाग्य (सवैया)

साहि अकब्बर को पन पूरन लै अपने जिय माँझ बसावै।
दीव लई गुजरात लई गुजरातिन जीति अजीत कहावै।
खान जहान जहान में खान सबै मिलि आजम कों सिर नावै।
न्यायहि 'केसवदास' प्रकास जहाँगिर आलमसाहि कों भावै ॥ ६३ ॥

उदय (दोहा)

सभा-सरोवर हंस से सोभित देव-समान।
वे दोऊ नृप कौन हैं कहिजे भाग प्रमान ॥ ६४ ॥

[५७] बल-कुल (सभा)। [५९] रहि-हैहै (राम)। देखहु०-देखतहू दुति (राम)। [६०] भाग०-कहिये भाग (सभा)। [६१] सो-को (राम, उदय)। [६३] पन-कुल (राम); बल (उदय)। लै-जे (राम, उदय)।

भाग्य (कवित्त)

जीते जिन गख्खरी भिखारी कीने भख्खरी जे खान खुरासानी बंधि खंधारकी खरके।
चोर मारे गौरिया बराह बोरि बारिधि मैं मृग से बिडारे गुजराती लीने डर के।
दच्छिन के दच्छ दीह दंती ज्यौं बिडारे डारे 'केसौदास' अनयास कीने घर-घर के।
साहिबी के रखवार सोभिजै सभा मैं दोऊ खानखाना मानसिंघ सिंघ अकबर के॥६५॥

उदय (दोहा)

सोभित-आनन अरुनता अति गंभीर प्रभाउ।
सभा-गगन मैं सूर सो भाग कौन उमराउ॥ ६६॥

भाग्य (सवैया)

'केसो' सदा जिहि त्रास भए नृप भूतल भूत समान बखानो।
जहाँगिर भे सकसाहि के काज भिरे रन मैं उपमा उर आनो।
घोरे चढ़्यौ सिसु-पंडु सो सोभित हाथी चढ़्यौ भगवंत सो मानो।
देखहु भाग खाँ आजम को सुत संमनदी मिरजा मरदानो॥ ६७॥

उदय (दोहा)

सभा-सरोवर कमल सो प्रगट्यौ परम प्रकास।
भाग कहो यह कौन है दस दिसि सुजस-सुबास॥ ६८॥

भाग्य (कवित्त)

जाको सुनि नाउँ भजि जाउँ कहाँ उड़ि जाउँ चौंकि चित्त भूप बहु रूपनि सजत हैं
'केसौराय' अकुलाय बाल बालिकानि आनि देत तिहिँ हेत गढ़ गाढ़े ही तजत हैं।
एलच बहादुर नवाब खानखानाजू को एई जाहि देखि देखि देवता लजत हैं।
प्राचीहूँ प्रतीचीहूँ उदीचीहूँ उसार होति देखि जाकी अच्छनीनि च्छनी भजत हैं।६६।

उदय (दोहा)

राजसभा महि सिंघ सो सुद्ध भाव जनु देव।
भाग सभाग सँभारिकै कहौ कौन नरदेव॥ ७०॥

---

[६५] खरके—घरके (राम)। बोरि—बारु (राम, उदय)। डारे—बीर (राम, सभा)
[६६] अरुनता—अरुनतर (राम); अरुन तनु (उदय)। गगन—गहन (राम); गनन (सभा, उदय)। [६७] सदा—दास (सभा, उदय)। भिरे—फिरे (उदय)। सिसु०—ससि-पिंड (उदय)। सुत०—मिरजा समसदीन (सभा); समदीन···मिरजा सुरतानु (उदय)। [६८] प्रगट्यौ—फूल्यौ (राम)। [६६] गाढे ही—गाढ़ेनि (राम)। 'उदय' में चौथी पंक्ति नहीं है।

भाग्य (कबित्त)

दारिद-दुरद मत्तनि को सिंघ 'केसौराय' दिन दिन दूनो दान-सिंधु अवरेखियै।
ठौर ठौर बरनत कबिसिंघ भटसिंघ सिंघनि को रनसिंघ सूरति बिसेखियै।
आलमपनाह जहाँगीरसाहि सिंघजू की, जदपि सभा मैं सब राजसिंघ लेखियै।
राजराज महाराज मानसिंघ कुलसिंघ महासिंघ देव देवसिंघ दुति देखियै ॥ ७१ ॥

उदय (दोहा)

राजनि मैं जनु राजऋषि सोभत है अति आजु।
पूरो छत्रिय-धरम सों कहौ कौन यह राजु ॥ ७२ ॥

भाग्य (सवैया)

बीर सिँगारनि को गुरु 'केसव' दान कृपान के खेल को खेला।
सूरनि को सिरताज बिराजत सुद्ध अकब्बर साहि को चेला।
साह जलालदीं को गजराज हुकम्म की हाक दुनी चलबेला।
भूपति लाखनि की पति लेखहु देखहु दूलहराम बुँदेला ॥ ७३ ॥

उदय (दोहा)

सभा अलिक को तिलक सो सोभत अति गंभीर।
भाग कहौ यह कौन नृप जाको तन मन धीर ॥ ७४ ॥

भाग्य (कबित्त)

अमलचरित्र चित्रचित्रित सकल दिसि 'केसौराय' मोहै मन जानहू अजान को।
दिनदान जल के समुद्र मैं दरिद्र रुद्र बोरे आसमुद्र के सु नाहि परिमान को।
जाकी तरवार साँची मानी अकबरसाहि गाजि गाजि गंज्यौ गर्ब मुगल पठान को।
चंद्रावत-सिरताज सोहै साहि रायराजा राउ चंद्रसेन बेटा राउ दुर्गभान को ॥ ७५ ॥

उदय (दोहा)

सभा भाल को रत्न सो कहौ कौन नृप-रत्न।
भाग सभाग सु बरनिये अपने मन करि यत्न ॥ ७६ ॥

भाग्य (कबित्त)

नीरनि मैं रतन बतावैं सब तीरथनि तीरथनि गंगाजलु रतन सुभाइ को।
सुरनि मैं रतन बखाने हर हरनि मैं हरिजू हैं रतन सकल सुखदाइको।
रसनि मैं रतन रच्यौ है छीर 'केसौराय' छीरनि मैं रतन छबीलो छीर गाइ को।
नरनि मैं रतन कहत सब राजनि सों राजनि मैं रतन रतन भोजराइ को ॥७७॥

---

[७३] दुनी–दुती (उदय); दुती (राम)। [७४] जाको–कीजै (राम); धीर (उदय)। [७५] सोहै०–मोहै जाहि (राम)।

उदय (दोहा)

नखत सोम-तट नखत सो बखत बिलंद बिसेखि।
भाग बिराजत कौन यह कहिजै नखसिख देखि ॥ ७८ ॥

भाग्य (सवैया)

नाम सुने जिनको अरि मत्तगयंद दिगंत अनंतनि नाके।
बर्नत बिक्रम को क्रम 'केसव' सेष असेष मुखावलि थाके।
सो यहि बीर नरेसहि जानहु स्वर्ग को फूल लसै सिर जाके।
राजनि माँझ बिराजतु है समसेर-गहे सम सेर न ताके ॥ ७९ ॥

उदय (दोहा)

सभा सु नंदन-बाटिका अद्भुत सोभति आजु।
कल्पबृच्छ सो देखियै कहौ कौन यह राजु ॥ ८० ॥

भाग्य (सवैया)

माया सों बाँधि दियौ बिधि कों हरि ता दिन तें जगदीस कहायौ।
सोई जहाँन जहाँगिर कों बिधि कर्म सु बाँधि दियौ छबि छायौ।
साहि सऊद के पूतहि सौंपि प्रताप सों बाँधि दुनी जस ठायौ।
सो इहि राम भली बिधि सों बरखासन दाननि सों अटकायौ ॥ ८१ ॥

उदय (दोहा)

एलच साहि निवाज के ठाढ़ो सुमति समीप।
कहौ कौन उमराउ यह भाग दिपै अवनीप ॥ ८२ ॥

भाग्य (सवैया)

आपने दान कृपान की धारनि दारिद दुष्ट अनेक बहावै।
सत्रुनि के सक-संगर सागर बागर भाँति अनेक थहावै।
बीस बिसे बल बिक्रम साधि गढ़ेसनि सों गढ़ गाढ़े ढहावै।
दौलतिखान को नंदन 'केसव' खान जहाँन पठान कहावै ॥ ८३ ॥

उदय (दोहा)

पीरी पाग सभाग सिर सोहति 'केसवदास'।
सभा प्रकासित सी करै अपनी प्रभा प्रकास ॥ ८४ ॥

---

[७८] नखत सोम—रखत सोम (राम, उदय)। [७९] को क्रम—विक्रम (उदय)। [८१] सु बाँधि०—सुबाद सों ज्यौं (उदय)। ठायौ—गायौ (सभा)। [८४] सी—हीं (उदय)।

भाग्य (कवित्त)

साहिजू के काम रन पाइ न पिछौंड़े देइ कौन जाके आगे रहै गहें करबर कर।
सूरता लता को बन जादव-तिलक गनि सत्रुनि कों हिम्मत न जाते काँपैं थरथर।
दान वीर रस धीर सोभित सदा सरीर दीनो करि कृपा जाके माथे हाथ हरिहर।
तुलसी बहादुर गोपाल सुवपाल-सुत 'केसौराय' आपुनि निवाज्यौ साहि अकबर ॥८५॥

उदय (दोहा)

देवसभा सी सुभ सभा तामैं जनु द्विजराज।
देखहु भाग बिभाग सों कहौ कौन यह राज ॥ ८६ ॥

भाग्य (कवित्त)

भूमिदेव नरदेव देवदेव आदि कौन कौन कौन दीनो दान ऊँचो करि करु है।
कोरि विधि करि करि मरे करतार करि आवत न तैसो करतूतिन को घरु है।
पर-दुख-दारिदनि कोऊ न सकत हरि 'केसौराय' जदपि जगत हरि हरु हैं।
जा बिन कवि अभूत भूत से भँवत ताहि राजा बीरबरजू को वेटा धीरधरु है ॥८७॥

उदय (दोहा)

नवरसमय यह देखियै सबल साहि दरबार।
तामैं को यह सौभिजै नृपति बीर-अवतार ॥ ८८ ॥

भाग्य (सवैया)

'केसव' भेट भए रन मैं सब सूरज सूरजमंडल नाके।
जाके दियें वसुधा के गुनी बसुधारक होत कहौ बुधि काके।
जाके सबै गुन के गन बर्नत सेप असेप मुखावलि थाके।
बिक्रमाजीत भदौरिआ है यह बिक्रमाजीत को विक्रम जाके ॥ ८९ ॥

उदय (दोहा)

पाग रु पटुका जरकसी वागो सुभ सुकुमार।
जानत हौं इतवार खाँ साहि करत इतबार ॥ ९० ॥

भाग्य

ऊँचो चित नीचे नयन हसनबेग यह जानि।
दीनो आलमनाथ कुलि आलम जाके पानि ॥ ९१ ॥

उदय (दोहा)

उर विसाल आजानु भुज मुद्रनि मुद्रित भाल।
समसदीन मिरजा निकट कहौ कौन नरपाल ॥ ९२ ॥

---

[८५] बन–बस (उदय)। को हिम्मत न–के मन तनु (राम); को हिमतनु (सभा), की हिम्मत०–(उदय)। थरथर–थरथर (उदय)। तुलसी–तुलछी (वही)। [८६ सुभ–सब (सभा)। [९१] आलम–अमल (सभा)। [९२] भुज०–बाहु हरि] (राम, उदय)।

भाग्य (कबित्त)

तोंवर तमाम को तिलकु मानसिंघजू के कुल को कलसु बंसु पंडव प्रबल को।
जूझ मैं न बूझि परै सूझतियौ देवन कों किधौं हलधर कौ धरन हलाहल को।
जालिम जुझार जहाँगीरजू को सावंतु कहावतु है 'केसौराय' स्वामी हिंदूदल को।
राजनि की मंडली को रंजनु बिराजमान जानियत स्यामसिंघ सिंघ गोपाचल
को ॥ ६३ ॥

उदय (दोहा)

मानसिंघ की बाम दिसि सोहत सुंदर रूप।
बात कहत परवेज सों कहौ कौन यह भूप ॥ ६४ ॥

भाग्य (सवैया)

धाम मैं काम सँग्राम मैं काल सो सत्य-लता कौं तमाल बखानौं।
जाचक भेकनि केकिन कौं कहि 'केसव' पावस सो उर आनौं।
सोखि लई मरुदेस की पानिप आनन मैं न हथ्यारनि मानौं।
देखत ही दुख-तालनि तूरति मूरति सूरतिसिंघ की जानौं ॥ ६५ ॥

उदय (दोहा)

पुष्प-मालिका-सी सभा वह बरनौं अनुकूल।
तामैं को यह सोभिजै चंपे को सो फूल ॥ ६६ ॥

भाग्य (सवैया)

साहि जलाल जहाँगिर जालिम दीनी बड़ाइ बड़ेनिहू मोहै।
दान कृपान बिधान प्रमान समान न आन न दीन को टोहै।
'केसव' स्वारथहू परमारथ पूरन भारथ पारथ को है।
वासुकि सो वहु बैरिनि कौं रनधर्म कौं वासुकि बासुकि सोहै ॥ ६७ ॥

उदय (दोहा)

खान जिते सुलतान हैं देसदेस के राय।
सेप न बरने वेस यौं बरने 'केसवराय' ॥ ६८ ॥

भाग्य (कबित्त)

गौर गुजरात गया गोड़वाने गोपाचल गंधार गक्खर गूढ़ गायक गनेस के।
अरब अैराक आबू आसेर अवध अंग आसापुरी आदि गौंव अर्गल सुवेस के।

---

[६३] वसु—वंस (सभा)। जालिम—जब लौं जालिम (राम, उदय)। [६६] वह—वहु (उदय)। अनुकूल—अब कूल (राम)। [६८] सेप न—सेपक (सभा)। वेस०—देस यों (राम), वेस क्यों (उदय)। बरने—बरनौं (राम, सभा)।

संभल सिंघल सिंधु सोरठ सौबीर सूर खंधार खुरेस खुरासान खान खेस के।
साहिन के साहि जहाँगीरसाहिजू की सभा 'केसौराय' राजत हैं राजा देस
देस के ॥ ९९ ॥

रोहि रोहितास राठ रूम सामराज भूरि भख्खर भरोंच भूरि भावते भूतेस के।
चीन चोल चित्रकूट चेद चंपानेर चारु पानीपथ पारसीक पर्बत प्रवेस के।
हैहय हरेवे हिंगुलाज हुर्मज हजारा दिली दीपघोखि गिरिनार द्रबिड़ेस के।
साहिन के साहि जहाँगीरजू की सभा मध्य राजत हैं 'केसौराय' राजा देस
देस के ॥ १०० ॥

कॉमरू कनौज कच्छ कर्नाट कैकेय कुरु कासमीर कोसल कुँमाऊँ कुंतलेस के।
कामबोज कुंकन कुनिंद अरु कुंतीभोज किरकीची कुल कोल केरल सुदेस के।
कुंडिन कुमार सोम सरमक सूरसेन बाह्लीक साकल सकल निषधेस के।
तेलिंग तिलक विद्यानगर फिरंग सब साहिजू की सभा राजैं राजा देस
देस के ॥ १०१ ॥

मालव मेवार मुलतान मारू मल्लिभार माथुर मगध मच्छ मेवात महेस के।
बलक बलोच वंग बंगाल बरार बिंध्य बालुका बिहार धार बर्बर कुबेस के।
पंचश्राल पामर पुलिंद पुंड्र लाट हून हाटक नेपाल कालकेय कालकेस के।
साहिन के साहि जहाँगीर साहिजू की सभा 'केसौराय' राजत हैं राजा देस
देस के ॥ १०२ ॥

(दोहा)

सुंदर सूर सुलच्छने संत असंत सभोग।
आठौं पहर बिलोकिये आठौ दिसि के लोग ॥ १०३ ॥
जहाँगीर आए सभा ज्यौं परिपूरन चंद।
बाढ़े सभा समुद्र के सोभा सुख आनंद ॥ १०४ ॥
कुम्हिलाने खल-कमल-मुख आनंदे चहुँ ओर।
सुरतनादि दै खानगन राजा राव चकोर ॥ १०५ ॥

उदय (कवित्त)

बाढ़त प्रताप जात झंझावात झकझोर थके 'केसौराय' कुल कलि-अवनीप के।
उजबक उलक पठान घने हरबरे हरपि बरपि हारे राखे बल श्रीप के।

---

[९९] गया—गढ (राम)। गाँव—मारू (उदय)। [१००] सामराज—रामराज (उदय)। चेद—चेल (सभा)। घोखि—घोगि (राम), घोखा (सभा)। [१०१] कुंती—कुम (उदय)। कीचीं०—चीन महाचीन (सभा)। तिलक—तिलंग (उदय)। [१०२] मच्छ—मत्स्य (सभा); मध्य (उदय)। वंग— × (उदय)। बर्बर—बब्बर (उदय)। पुंड्र—पुर (सभा): पुन्न: (राम)। लाट—लाघ (राम); लाढ पर (उदय)। केय०—पीयकाल (सभा)। केस—देस (राम)। [१०३] बिलोकियै—बिलोकिजे (उदय); बिलोकियतु (राम) [१०५]। सुरतनादि—सुरतान आदि दै (उदय)।

जामैं परि परि जरि मरत पतंग अरि सुहृद पावत सुख दूरिहूँ सुमीप के।
जाके जस-पुंज के उजारे जग जागे देखौ सोई साहि जहाँगीर दीप कुलदीप
के ॥ १०६ ॥

दीरघ दसा सुदेस पूरन सनेह सुबरनमय तेज तमलोपकर लेखियै।
वासरहू रजनि बिराजमान जोति जगजीवन जगत प्रानपोषक बिसेखियै।
तापित प्रताप प्रतिपच्छी अवलोकियत 'केसौराय' दिव्य देहरूप अवरेखियै।
सोभित है साहिन को साहि जहाँगीरसाहि देख्यौ दिन जंबूदीप दीपक सो
देखियै ॥ १०७ ॥

(दोहा)

मुक्तावलिजुत सोभिजै छत्र सीस पर सेतु।
सुधाबिंदु बरपै मनौ सोम कढ्यो हिम-हेतु ॥ १०८ ॥
चौंर ढरत चहुँ ओर अति उज्जल परम प्रकास।
कीरति मानौ रिपुन की वारत 'केसौदास' ॥ १०९ ॥

(कवित्त)

बिधि के समान है बिमानीकृत राजहंस बिबिध बिबुधजुत मेरु सो अचलु है।
दीपति दिपति अति सातौ दीप दीपयतु दूसरो दिलीप सो सुदच्छिना को बलु है।
सागरु उजागरु सो बहु बाहिनी को पति छनदानप्रिय किधौं सूरज अमलु है।
सब बिधि रनधीर सोहै साहि जहाँगीर तिहूँ पुर जाको जसु गंगा को सो जलु है ॥११०॥

(दोहा)

सोभित कबहूँ संभु सो बासुकि सहित कुमार।
गंगाजल सिर पर लसै चंदन चंद लिलार ॥ १११ ॥
कबहूँ देखिय बरुन सो सागर सोभ समाज।
कृपादृष्टि जिनकी सदा कामधेनु सी राज ॥ ११२ ॥
राजराज सेवा करैं कहुँ कुबेर की रीति।
नौऊँ निधि जामैं बसैं ऐसी जिनकी प्रीति ॥ ११३ ॥

(छप्पय)

कबि सेनापति कुसल कलानिधि गुनी गीरपति।
सूर गनेस महेस सेष बहु विबुध महामति।
चतुरानन सोभानिवास श्रीधर विद्याधर।
विद्याधरी अनेक मंजुघोषादि चित्तहर।

---

[१०७] प्रतिपच्छी—प्रतिपच्छि (सभा)। [११०] सोहै—गाजै (गम, उदय)। तिहूँ पुर—जागै (उदय), निर्मल सो (सभा)। [१११] बासुकि—बालक (उदय)। [११३] कहुँ—बहु (सभा), कहीं (उदय)।

दृष्टि अनुग्रह-निग्रहनि जुत (कहि) 'केसव' सब भाँति छम।
इमि जहाँगीर सुरतान अब देखहु अद्भुत इंद्र सम॥ ११४॥

(दोहा)

अरिगन ईंधन जरि गए जद्यपि 'केसौदास'।
तदपि प्रतापानलनि को पलपल बढ़त प्रकास॥ ११५॥
गुनगन कौं आदरस सो कमल मित्र कौं सूर।
सरनागत कौं सिंधु सो अघ कौं गंगा-पूर॥ ११६॥
सत्य-लता कौं बृच्छ सो छमा दया को गेहु।
दान-मीन-मानस सबै जाचक-चातक-मेहु॥ ११७॥

(कबित्त)

नल सो जगत दानी साँचो हरिचंदजू सो पृथु सो परम पुरुषारथनि लेखियै।
वलि सो बिवेकी जु दधीच ऐसो धीरधरु साधु अंबरीषजू सो उर अवरेखियै।
भृगुपति जू सो सूर हनुमंत जू सो जसी 'केसौराय' बिक्रम तें साहसी बिसेखियै।
साहिन को साहि जहाँगीरसाहि धर-धाता दाता कीनो दूसरो बिधाता ऐसो देखियै॥ ११८॥

(दोहा)

बंदीसुत तेही समै आयौ 'केसव' एक।
ठेगा कर कौपीन कटि उर अति अमित बिवेक॥ ११९॥
जहाँ तहाँ जहँगीरजू दारिद मेरो इष्ट।
कीनो तुम अपराध बिनु कारन कौन बिनष्ट॥ १२०॥

साहिजू (सोरठा)

सुनि सुनि राजा भाट काहे कों हठ करत है।
लागहु अपनी बाट दारिद कैसें मरत है॥ १२१॥

बन्दी (कबित्त)

'केसव' अदृष्ट दुष्ट दूतिका अदृष्ट की अनिष्ट इष्ट देवता कि सृष्टि मोहमाल की।
भाग की विनष्टता अभाग संबिसिष्टता कि दृष्ट नष्ट जाग की कि पुष्ट सूल साल की।
कष्ट की त्रिसिष्टता कि वृष्टि कालकूट की कि मीच की प्रकृष्ट जोति तुष्टि भीति जाल की।
साहिन के दूलह श्रीजहाँगीरसाहि कहाँ रावरी कुदृष्टि है कि दृष्टि कोटिकाल की॥ १२२॥

[११७] मीन-मान (उदय)। [११८] दाता-धाता (उदय, राम)। [११९] उर०-और अमित (उदय); उर अभीत (राम)। [१२१] साहिजू-साहिजू बारत (उदय)। लागहु०-गहौ० (उदय); गहं तु० (सभा)। [१२२] दूलह०-दुल्लह सुनहु० (राम); दूलह जहाँगीर साहि साहिनि को (उदय)।

(सोरठा)

जहाँगीर जगनाथ, रीझें गज मंगन दियो।
मेटि रंक की गाथ, राजभाट बिदा कियो ॥ १२३ ॥

(कबित्त)

देखियै अनंत दुति जरित जराय दंत चमकत चौर चारु सेत पीत गात के।
सोने की सिंदूख साजि सोने की जलाजले जु सोने ही की घाँट घन मानहु बिभात के।
'केसौराय' पीलवान राजत हैं राजनि से आसन बसन आछे आछे गुजरात के।
जहाँगीर जगनाथ देत हैं अनाथनि कौं हेम हय साथ हाथी हाथ सात सात के ॥१२४॥

(दोहा)

भाग्य उदय देखी सभा देखे साहि उदार।
मूरति धरि ठाढ़े भए जाइ दीह दरबार ॥ १२५ ॥
तिनहिं देखि ठाढ़े तहाँ गुदरन गे प्रतिहार।
द्वै द्विज अद्भुत साहिजू ठाढ़े हैं दरबार ॥ १२६ ॥
रामदास को हुकम भो लै आवहु बड़भाग।
तिनको मिलवन लै चले जुत आदर अनुराग ॥ १२७ ॥
तिन अवलोके दूर तें कर कृपान लिये साहि।
बरनत एक कबित्त में 'केसव' दोऊ ताहि ॥ १२८ ॥

(कबित्त)

सजल सहित अंग 'केसव' धरम संग कोस तें प्रकासमान धीरजनिधानु है।
प्रथम प्रयोगियत राज द्विजराज प्रति सुबरन सहित न बिहित प्रमानु है।
दीन कों दयाल प्रनिभटनि कों साल करै कीरति को प्रतिपाल जानत जहानु है।
जात हैं बिलीन ह्वै दुनी के दान देखि साहि जहाँगीरजू के कर दानु कि कृपानु है।१२९।

(दोहा)

मिले साहिजू उठि तिन्हैं सिंघासन बैठारि।
बिबिधि भाँति पूजा करी करी बहुत मनुहारि ॥ १३० ॥
जहाँगीर पूजा करी तिनकी तब सुख पाइ।
तिन बिसेष आसिष दई तिनकौं बिबिधि बनाइ ॥ १३१ ॥

---

[१२३] रीझें०–रीझि रीझि गजदान दियो (राम); रीझि रग जग जनु दियो (उदय)। राजभाट०–राजा कीत विदा (उदय)। [१२४] घाँट–घंटा (सभा)। [१२५] उदय–उदै (राम, सभा, उदय)। मूरति–भूपति (राम)। [१२६] केशव०–विक्रम असंगरंग (सभा)। राज द्विज–बाजि द्विज (सभा)। कर०–दान किधौं (सभा)। [१३१] तब–जब (राम, सभा)।

भाग्य (नाराच)

चतु:समुद्र मुद्रिकाभिमुद्रिता बिछेदिनी।
बिपक्ष पक्ष मारि मारि रक्षियै सु मेदिनी।
महेस से गनेस से सुरेस से रिझाइ कै।
चरित्र चित्र चित्रियै दिसा दिसा बजाइ कै॥ १३२॥

उदय (कबित्त)

सब सुखदायक हौ सब गुनलायक हौ सब जगनायक हौ अरिकुल-बलहर।
आखर दुही के रीझि पाखर बनाइ गज बाखरनि साजि बाजि-राजि राज देत बर।
जुग जुग राज करौ जहाँगीर साहि तुम 'केसौराय' दीबो करैं आसिष असेष नर।
हय पर गय पर पालिकनि पीठ पर राजनि के उरपर साहिनि के सीस पर॥१३३॥

(दोहा)

आइ गए तेही समय बाभन भाट अजीत।
परम भाव सौं आनि कै पढ़े साहि के गीत॥ १३४।

भाट (कबित्त)

देस परदेस के कहत जनपद सब किधौं 'केसौराय' कौन तंत्र नयो नय को।
साहि अकबरसुत बीर जहाँगीर जग जातु है दरिद्र छुद्रई अभद्र छय को।
सोकहत सब सरनागत बिलोकियत किधौं लोक तीन माँझ लोक है अभय को।
सुनत ही भागि जात बैरी सब साँच कहौं नाम यहै रावरो कि मंत्र है बिजय को
॥ १३५॥

ब्राह्मण

'केसौराय' गनपति-वाहन बिलोकियत चहूँ भाग बड़भाग नागनि के थान हैं।
भाँति भाँति कीने बहु स्थानुमय सोभियतु जहाँ तहाँ मंडे खंड खंड परिधान हैं।
कनक तमाल माल श्रीफल बिसाल जाल अंगननि अंगननि अंबर बितान हैं।
भूपन चर संजुत नित नित परिजन रावरे हमारे राजमंदिर समान हैं॥ १३६॥

(दोहा)

सुनि सुनि रीझे साहिजू उमगे उरसि समोद।
चितै उठे मुसिक्याइ कै रामदास की कोद॥ १३७॥
रामदास तब यौं कह्यौ सुनि द्विज जग के तात।
मनसा वाचा करमना माँगि चित्त की बात॥ १३८॥

---

[१३५] भाट—भाट वाक्यं (उदय)।

विप्र (सवैया)

मारत हौ प्रभु दारिद कों वह मारत मो कहँ मानि तुम्हारौ।
और न मारिबे कों कोउ 'केसव' वाहि कों वेगि बिनोदनि मारौ।
आलम के पतिदेव उतै वह हौं इत मानस बिप्र बिचारौ।
कै अब मारिबो छंडियै वाहि कों वा पहँ मारत मोहि उबारौ ॥ १३९ ॥

(दोहा)

बात साहि के चित्त की रामदास तब जानि।
महा माँगने तें दोऊ वै डारे कै दानि ॥ १४० ॥

साहिजू भाग्योदयं प्रति (चामर)

सुद्ध देस परावरेषु सबै भए इहि बार।
ईस आगम संगमादि कही अनेक प्रकार ॥ १४१ ॥
धाम पावन ह्वै रहे पदपद्म के पय पाइ।
जन्म सुद्ध भए दए कुल इष्ट ही सुरराइ ॥ १४२ ॥

भाग्यं प्रति

पाद-पद्म-प्रनाम ही भए सुद्ध सीरष हाथ।
सुद्ध लोचन रूप देखतही भए मुनिनाथ ॥ १४३ ॥
नासिका रसना विसुद्ध भई सुगंध सुनाम।
कर्न कीजहि सुद्ध सब्द सुनाइ पीयुषधाम ॥ १४४ ॥

(कवित्त)

कहावत दोऊ देवराय 'केसौराय' दिन बढ़ावत दोऊ द्विजराजनि को वाहुवर।
पूरन प्रताप दोऊ पालत प्रजानि कहुँ दारिद के दोऊ अरि जपै जगु घरघर।
भान के समान सब मानत जहाँन साहि एकै भेदु कीनो है प्रमानु मानि हरिहर।
द्वै कर अनेक आसा पूरतु है जहाँगीर पूरतु वै आसा दस जदपि सहसकर ॥१४५॥

भाग्योदयं प्रति

बरखत जीवन वै जगत मैं सोखि सोखि वरखत ये तौ अनसोखे ही वखानियै।
देत वै न दीने बिनु अनही दियें ये देत सोखत वै मित्रपद पोखत ये मानियै।
उनके हने न सकैं इनको मँडल भेदि इनके तौ उनकौ निभेदत ही जानियै।
'केसौराय' जहाँगीरसाहिजू सों सूरज सों एकभेद नाहिंनै अनेकभेद मानियै ॥१४६॥

उदय (दोहा)

साहि तुम्हारे गुन मिले हय सों जात दिगंत।
दीनौ हमैं उराहनो इहि विधि सुनि जगकंत ॥ १४७ ॥

---

[१४७] कंत–जंत (सभा)।

(कबित्त)

हम ही सिखाए देन भोग भोगवंत ऐन हम ही सों प्रबल प्रताप रन हारे हैं।
'केसौराय' हम ही बढ़ाइ कै बड़ाई दीनी राजनि के राजा आनि आनि पाइ पारे हैं।
ताकौं तौ हमारी बात अतिहो लजात सुनि आगे कहा करिहैं बिचार यौं बिचारे हैं।
जहाँगीर साहसिंघ रावरे सकल गुन ऐसे कहि दसहूँ दिसानि पाउ धारे हैं ॥१४८॥

(दोहा)

साहि तुम्हारे सत्रु सब अरु माँगने अनंत।
हमैं मिले इहि भाँति सों दिसा दिसानि भवंत ॥ १४९ ॥

(कबित्त)

चामीकर चीरमय पाट सूत संकलित 'केसव' सहित सुख-दुखनि अपार के।
भूषन बिदूषननि भूषित भूतल भूप भूत से भँवत दीह देस पारावार के।
वाजि गजबाहिनी चलत चढ़ि पाइ पाइ सुंदरी दरीनि लीन कीने करवार के।
साहिजू ये जाचक तिहारे बटुआनि बाँधि पूरित कपूर पूर बाँधे बैरी छार के ॥१५०॥

(दोहा)

बिधि सों बरनन रावरे बरनत दुख ह्वै दीन।
अद्भुत भूतल-इंद्र सुनि जहाँगीर परबीन ॥ १५१ ॥

(सवैया)

छोड़हु जू करतारपनो बिधि ढिल्ली-नरेस बृथा करि डारे।
आपने हाथनि नाथ हतैं जिनके सिर राँक के आँक सुधारे।
सेए सुरेसन के हू मिटै न जऊ जल-तीरथ-जाल-पखारे।
ह्वै गए राज तहीं ते जहाँ जग नैक जहाँगिर साहि निहारे ॥ १५२ ॥

(दोहा)

सुनौ साहि संग्राम भट मारे अपने हाथ।
देवरूप देखे सबै विलसत देवनि साथ ॥ १५३ ॥

(सवैया)

केलि करैं कलपद्रुम के वन मैं तिनके सँग देवकुमारी।
चर्चित हासनि ही जनु देह-लता हरिचंदन चित्र सुधारी।
लोकन के अवलोकन कों जु विमान दए सुरलोकबिहारी।
साहि जहाँगिरजू जिनके सिर तोरे तवै तरवार तिहारी ॥ १५४ ॥

---

[१४८] ताकौं-तोकों (राम, सभा)। अतिहो-अवही (राम, उदय)। [१५१] बरनन-बरनत (राम, उदय)। भूतल०-सकल नरेंद्र (सभा)। [१५४] कलपद्रुम-कलपतरु (उदय)।

उदय (दोहा)

दारा दौरि दरिद्र की देवदेव दरबार।
बार बार सक साहि की बहु बिधि करत पुकार ॥ १५५ ॥

(सवैया)

साहि जहाँगिर की उठी कोपि चहूँ दिसि दान कृपान की धारा।
कंत कियौ सतखंड हमारो बहाइ दियौ बरही बहु बारा।
कैसी करैं अब कासों कहैं उबरैं हम कैसे कै कौन की सारा।
यौं बहु बार पुरंदर के दरबार पुकारति दारिद-दारा ॥ १५६ ॥

(दोहा)

साहिसिंघ जहँगीर सुनि आलमपति सुरतान।
तुव दानन की जल-नदी दिस दिस बहति समान ॥ १५७ ॥

(कवित्त)

मेचक सुगंध पंक सैबाल दुकूल जाल 'केसव' कपूरमय बालुकाबिभंगिनी।
मनिगन उपल सकल हेम हय गय धाम ग्राम ग्राम मंजु कंज अंग अंगिनी।
साहि अकबरसुत जहाँगीर साहि सुनि इहि बिधि तेरे दान जल की तरंगिनी।
दुखतरु तोरि तोरि फोरि फोरि रोरि गिरि जाइ भई राम-जस-सागर की संगिनी ॥ १५८ ॥

(दोहा)

तुव अरिदारनि संग लै दारिद-दारा बीर।
गिरिदरीनि मैं रमति है दारा होति अधीर ॥ १५९ ॥

(कवित्त)

दारिद की दारनि सों अरिराज-दारा दौरि मिलि मिलि सुंदरी दरीनि मैं अटति हैं।
घटित करत निज घटनि सों दुखघट 'केसौराय' जुग सम घटिका घटति हैं।
जिनके पुरुष तुम मारे हैं पुरुष रुख पल पल तेई पुरुषारथ रटति हैं।
साहिसिंघ जहाँगीर गुनसिंघ रावरेनि सुनि बनसिंघनि की छतियों फटति हैं ॥१६०॥

साहिजू (दोहा)

ऋषि हौं कै ऋषिराज तुम देवदेव कै सिद्ध।
नाम सुनाइ दिखाइजै अपने रूप प्रसिद्ध ॥ १६१ ॥
उद्यम भाग तव आपने रूप धरे अति चारु।
मोहि रही सिगरी सभा मोहे जिय करतारु ॥ १६२ ॥

---

[१५६] चहूँ–दसौ (राम)। [१५८] सुनि–साहि (राम)। तेरे०–प्यारे पूरी (सभा); प्यारे...(उदय)। [१५९] अरि०–अरि निज दारानि लै (राम)। रमति–मरति (वही) [१६०] दारनि०–दारनि सों हेरे अरिराजदारा दौरि दौरि (राम)।

(रूपमाला)

देवरूप धरे हरे मन सुद्ध भाव असेष।
साहि भूपन भूषि अंगन कीन पूषन बेष।
अर्घ्य पाद्य अनर्घ्य दै अरु धूप दीप प्रकार।
भूरि भोजन दै करी पुनि आरती तिहि बार ॥ १६३ ॥

साहिजू (दोहा)

अपने, नाम सुनाइजै ह्वै कृपालु सुरराज।
भाग हमारे आगमनु भयौ कहाँ किहि काज ॥ १६४ ॥
नाम परस्पर तिन कहे सुनौ साहि सुरतान।
हम पठए तुम पै सुमति महादेव भगवान ॥ १६५ ॥
कहिजै उद्यम कर्म मैं कौन बड़ो संसार।
अपने चित्त बिचारि कै हति संदेह अपार ॥ १६६ ॥

उदय (कवित्त)

विषम विषादजुत घात चाहैं 'केसौराय' भाग तिन भूप किये बनिजनि पोतु है।
देव नरदेव सेव संजमादि जोग जाग जप तप तीरथनि हूँ को सब सोतु है।
जालिम जलालदीनसुत जहाँगीर साहि तो सों और ह्वै गयौ न है न अब होतु है।
आलमपनाह कुल्लि आलम के आदमी कों तेरे ही दरस कियें उद्यम उदोतु है ॥१६७॥

भाग्य-

पीरन के धरम सरम सब सिद्धनि की औलियान की अकल ठाढ़ी दरबारहीं।
साहिन के साहि जहाँगीरसाहि 'केसौराय' चिरुचिरु जीवौ ऐसौ चित्त मैं बिचारहीं।
तोहि छोंडि जपैं जाहि ऐसो को दयालु दुहूँ दीनन को देवता तूँ सिंधु वारपारहीं।
आलमपनाह कुल्लि आलम के आदमी कों तेरे कर करम दियौ है करतारहीं ॥१६८॥

साहिजू (निशिपालिका)

देव महिदेव इहि बात परि जानियै।
चित्त जगमित्त अपमानु नहि मानियै।
ईस सोइ भार निज सीस कह ढोहियै।
जाहि मग दोइ पग तें चलत सोहियै ॥ १६९ ॥
मित्त यह वात सुनि चित्त नहिं छोभियै।
वीर धरि धीर हरि पीर जिहिँ सोभियै।
राखि निज आन परमान सब भाखियै।
काहु सह कोप मह कूर नहिँ भाखियै ॥ १७० ॥

---

[१६३] पूषन–भूषन (राम, सभा)। [१६७] घात०—साधुवाद (राम); घातु-पाद (उदय)।

साहिजू (दोधक)

देव सदा नरलोक के जेता। देवनि के नर नाहि नियेता।
रावरो न्याव करै अब सोई। ब्रह्म कै बिष्नु कै रुद्र जु होई ॥ १७१ ॥

भाग्य (रूपमाला)

देवदेवनि के सबै सुभ अंस लै बहु बार।
सुद्ध बुद्धि बिबेक एकनि के करै करतार।
भूमिदेवनि बेदमंत्रनि सीस के अभिषेक।
भूमि मैं इहि भाँति भूपति भूप होत अनेक ॥ १७२ ॥

(दोहा)

साधारन नृप बिष्नु सब पुनि तुम से नृपनाथ।
ऊतरु देहु निसंक ह्वै जागै उत्तम गाथ ॥ १७३ ॥
उदय भाग दोऊ बड़े उत्तम बड़ो सुनाउँ।
देव बड़े पठए इहाँ कौनहिं बूझन जाउँ ॥ १७४ ॥

साहिजू (दोहा)

बिबुध मित्र मंत्री सबै राजराज कबिराज।
कौन भाँति पूरन करैं उदय भाग के काज ॥ १७५ ॥

मानसिंह

बड़े देखि पठए इहाँ बड़े जानि सुभ बेस।
सुख पावैं दोऊ जने सोऊ करौ नरेस ॥ १७६ ॥

साहिजू

उदय भाग अति उदित मति सुनि सर्वज्ञ प्रमान।
जग मैं उद्दिम कर्म ये मेरे जान समान ॥ १७७ ॥
करम फलै उद्दिम करें उद्दिम करमहिं पाइ।
एकै धरम दुहून को कीनौ बिधिना दाइ ॥ १७८ ॥
दुहुँ बिधि उद्दिम करम है सुभ अरु असुभ अपार।
कारन या संसार को समुझौ बुद्धि उदार ॥ १७९ ॥
जौ लौं या संसार मैं तौ लौं यह संसार।
इन्हैं नसे तें नसत है यह सिगरो भ्रमभार ॥ १८० ॥

---

[१७३] नृपनाथ—नरनाथ (राम)। जागै—जाके (सभा)। [१७४] सुनाउँ—सुनाबु (राम)। [१७५] पूरन—निस्चय (सभा)। [१७६] सुभ—सुख (राम)। पावैं०—पावैं इह दो (राम); पाइ जाइ है (उदय)। [१७८] करैं—किये (उदय)। बिधिना०—बिधि सुख पाइ (राम); बिधि सुखदाइ (सभा)।

'केसव' आलमसाहि के ऐसे उत्तरु देत।
सुख पायौ सगरी सभा भागनि उदय समेत ॥ १८१ ॥
भूतलहू दिवि बजि उठे दुंदुभि एकहि बार।
देव बिजय जय सब्द कै बरखे फूल अपार ॥ १८२ ॥
जहाँगीर सकसाहि की पूजा करि सबिसेष।
भाग उदय कह्यौ सबनि सों आसिष देहु असेष ॥ १८३ ॥
राज करौ आनंदमय जहाँगीर सब काल।
पृथु ज्यौं पृथिवी पालियै भूतल के सुरपाल ॥ १८४ ॥

काजी

जहाँगीर सकसाहिजू राज करौ भुवलोक।
कुसलव ज्यौं जहँ जाउ तहँ ह्वैहै बिजय असोक ॥ १८५ ॥

शेख

आखंडल ज्यौं भोगवे भू-मंडल के भोग।
काली ज्यौं अरिकुल सबै काटहु जगत असोग ॥ १८६ ॥

पुत्र (कबित्त)

काल कैसो दंड असिदंड भुजदंड गहि बिक्रम अखंड नव खंड महि मंडियै।
मत्त गजझुंडनि के बलिबंड सुंडादंड कुंडली समान खंड खंड नव खंडियै।
तरल तुरंग तुंग कवच निखंग संग चमू चतुरंग भट भंग करि छंडियै।
राजु करौ चिरु चिरु जहाँगीर साहिसिंघ नृपसिंघ जीति जीति दीह दंड दंडियै ॥१८७॥

राजा (सवैया)

तेरह मंडल मंडित है भुवमंडल को सुखसाधन कीजै।
राज बढ़ौ धन धर्म बढ़ौ दिन ही दिन बैरिन को बल छीजै।
मित्रन सों अरु मंत्रिन सों मिलि 'केसव' उद्दिम कों मनु दीजै।
साहि जहाँगिर श्रीपति ज्यौं जयश्री रनसागर तें मथि लीजै ॥ १८८ ॥

उमराव (कबित्त)

साहिन के साहि जहाँगीर साहि जीतौ जग दीरघ दुसह दुख दीनन के दारियै।
'केसौराय' मंत्रदोष मंत्रीदोष ग्रहदोष देवदोष राजदोष देस तें निकारियै।
कलह कृतघ्न महिमंडल के बलिबंड पाखंड अखंड खंड खंड करि डारियै।
थंचक कठोर ठेलि कीजै बाट आठ आठ मूठपाठ कठपाठ करिकाठ मारियै ॥१८९॥

---

[१८१] भागनि०—भाग्य उदै समयेतु (उदय)। [१८२] बिजय०—देव कै (सभा)। [१८५] कुस०—अकबर (राम)। [१८७] सोदंड—कोदंड (राम)। [१८९] आठ०—आठ बाट (राम)। काठ—काढ़ि (उदय)।

ब्राह्मणाः

साहि तुम्हारे भाग को दिन दिन बढ़ै प्रतापु।
सब कोऊ बंदन करै गंगा को सो आपु॥ १६०।

कवयः (कवित्त)

बैठे एकछत्रतर छाँह सब छिति पर सूरजभगत अति राहहित मति हौ।
सिंघासन बैठे राज राखत हौ गाइ द्विज देखत हौ गजराज देखियत अति हौं।
अकर कहावत धनुष धरें 'केसौराय' परम कृपाल पै कृपानकर पति हौ।
चिरु चिरु राज करौ जहाँगीर साहिपति लोक कहैं नरदेव देवनि की गति हौ॥१६१॥

मंत्रिणः

बैरी गाइ बाँभन को काल सब काल जहाँ कबिकुल ही को सुबरनहर काजु है।
गुरुसेजगामी एक बालकै बिलोकियत मातंगनि ही के मतवारे को सो साजु है।
अरिनगरीन प्रति करत अगम्यागौन दुर्गन ही 'केसौदास' दुर्गति सी आजु है।
साहिनि के साहि जहाँगीर साहि साहिसिंघ चिरुचिरु राज करौ जाको ऐसो राजु है १६२

केशवराय (सवैया)

जाय नहीं करतूति कही सब श्रीसबिता कबिता करि हारौ।
याहि तें 'केसवराय' असीस पढ़ै अपनो करि नेकु निहारौ।
कीरति भूपनि की दुलही जस दूलह श्रीजहँगीर तिहारौ।
सातहु लोकनि सातहु दीपनि सातहु सागर पार बिहारौ॥ १६३॥

उदय

राज करौ जयश्री जगतीपति बामन के पद ज्यों पद बाढ़ौ।
दूरि करौ दुख दीननि के नृप बिक्रम ज्यों करि बिक्रम गाढ़ौ।
भूतल तें कहि 'केसवदास' परिच्छित ज्यों कलि को कुल काढ़ौ।
पंडु के पूतनि ज्यों परमेसुर राखिबे कौं रहौ द्वारहि ठाढ़ौ॥ १६४॥

भाग्य (कवित्त)

भोग-भार भाग-भार 'केसव' बिभूति-भार भूमि-भार भूरि अभिषेक के से जल से।
दान-भार मान-भार सकल सयान-भार धन-भार धर्म-भार अच्छत अमल से।
जय-भार जस-भार सोहै जहाँगीर सिर राज-भार आसिष असेष मंत्र बल से।
देखि देखि ठौर ठौर देस देस तिहिँ दुख फाटत हैं सत्रुन के सीस दारयोफल से॥ १६५॥

भाग्य उदय साहिजू प्रति—(दोहा)

आलमपति जहँगीर बरु माँगहु चित्त बिचारि।
मन क्रम बचन प्रसन्न हम हैं तुम कौं सुखकारि॥ १६६॥

---

[१६३] सबिता—कबिता (उदय)।

साहिजू

बरु दीजै मेरे राज मैं बसिजै सह परिवार।

भाग्योदय

भली बात बसिहैं सदा दै दुंदुभी अपार ॥ १६७ ॥

साहिजू

अपने जी की बात तुम माँगहु 'केसवराय'।
रीझे मन क्रम बचन हम तुव कबिता सुख पाय ॥ १६८ ॥

केशव

जद्यपि हरिजू माँगिबो दियौ हमैं उपजाइ।
हौं माँगौं जगदीस पै सुनौ साहि सुखदाइ ॥ १६९ ॥

(सवैया)

भागीरथी तट सों कुल 'केसव' दान दै दीह दरिद्रनि दाहौं।
वेद पुराननि सोधि पुरान प्रमाननि के गुन पूरन गाहौं।
निर्गुन नित्य निरीह निरंजन आनौं हियैं जग जानि बृथा हौं।
मेरे गुलामनि के हैं सलाम सलामति साहि सलेमहि चाहौं ॥ २०० ॥

(दोहा)

जहाँगीरजू जगतपति दै सिगरो सुख साज।
'केसवराय' जहाँन मैं कियौ राय तें राज ॥ २०१ ॥

इति श्रीसकलभूमंडलाखंडलेश्वरसकलसाहिशिरोमणिश्रीजहाँगीरसाहियशश्चन्द्रिका मिश्र केशवदासविरचिता समाप्ता ॥

---

[१६७] भाग्योदय–प्रतिवचन (राम)। [१६८] पाइ–दाइ (राम)। [१६९] केसव–कविवचन (राम)। दाइ–पाइ (राम, सभा)। [२००] दीह–देह (सभा)। मेरे०–ज्यों नहीं होत कवै चह फेरि सरीर को संग अनंग कथा है (सभा)।

[पुष्पिका] श्रीकवीश्वरअवनीश्वरअवनीशब्रह्मर्षिकविराजश्रीकेशवदासनिर्मिता जहाँगीर-यशचंद्रिका समाप्ता।

विज्ञानगीता

१

मंगलाचरण (छप्पय)

जोति अनादि अनंत अमित अद्भुत अरूप गुनि।
परमानंद पुहुमि प्रसिद्ध पूरन प्रकास पुनि।
निर्गुन नित्य निरीह निपट निर्बान निरंजन।
सम सर्बग सर्बज्ञ सर्ब चित चितत चिद्घन।
बरनी न जाय देखो सुनो नेति नेति भापत निगम।
ताकों प्रनाम 'केसौ' करत अनुदिन करि संयम नियम॥ १॥

(सवैया)

सँग सोहति हैं कमला बिमला अमला मति हेतु तिहूँ पुर कों।
भवभूप दुरंत अनंत हते दुख मोह मनोज महाजुर कों।
कहि 'केसव' केहूँ बनै न निवारत जारत जोरनहीं उनकों।
अति प्रेम सों नित्य प्रनाम करै परमेसुर कों हरि कों गुर कों॥ २॥

कविवंशवर्णन (दोहा)

'केसव' तुंगारन्य में नदी वेतवै तीर।
जहाँगीरपुर बहु वस्यौ पंडित-मंडित-भीर॥ ३॥

---

[१] अरूप—अनूप (खोज २—३, काशि०)। पुहुमि—पावन (वेंकट, काशि०)। निर्गुन०—नित्यनवीन (वेंकट, काशि०)। सर्बज्ञ—सर्वेश (काशि०)। सर्ब—सकल (काशि०)। सर्बचित०—चिंत चितत विद्वज्जन (वेंकट); संत सों चित्त सों चितघन (खोज० ३)। बरनी न—वरणि (काशि०)। देखो०—देखी सुनी (काशि०)। चिद्घन—सिद्धन (खोज० १)। बरनी०—बरनी न जाइ देखी सुनी (वेंकट, खोज ३)। तकों—ताकहुँ (काशि०)। [२] सवैया—चंद्रकला (खोज २, काशि०)। हेतु—होतु (खोज ३) ; हेति (खोज २)। भवभूप—भवभूप (वेंकट, काशि०)। अनत—रनंत (वेंकट)। केहूँ—क्यौहुँ (वेंकट, काशि०)। बनै न—बने (काशि०)। जोरनहीं—जोरनिहूं (वेंकट, काशि०)। हरि—हर (वेंकट, काशि०)। अति०—परिपूरन ब्रह्म सदा इहिं रूप सहाइ सबै जग ज्यौं सुर कौं (खोज ३)। [३] जहाँगीरपुर—नगर ओड़छो (खोज २, सर०)। बस्यौ—बसै (काशि०)। भीर—भौर (वेंकट, काशि०); धीर (खोज २)

(सवैया)

ओड़छे तीर तरंगिनि बेतवै ताहि तरै रिपु 'केसव' को है।
अर्जुनबाहु-प्रबाह-प्रबोधित रेवा ज्यौँ राजन की रज मोहै।
जोति जगै जमुना सी लगै जगलोचन लालित पाप बिपोहै।
सूरसुता सुभ संगम तुंग तरंग-तरंगित गंग सी सोहै॥ ४॥

(नराच)

तहाँ प्रबास सो निवास मिस्र क्रस्नदत्त को।
असेस पंडिता गुनी सुदास बिस्नुभक्त को।
सुकासिनाथ तस्य पुत्र बिज्ञ क्रस्नदास को।
सनाढ्य कुंभवार अंस बंस बेदव्यास को॥ ५॥

(दोहा)

तिनके केसवराय सुत भाषाकबि मतिमंद।
करी ज्ञानगीता प्रगट श्रीपरमानँदकंद॥ ६॥
देव देवभाषा करै नाग नागभाषानि।
नर होइ नरभाषा करी गीता ज्ञान प्रमानि॥ ७॥
मूढ़ लहै ज्यौं गूढ़ मति अमित अनंत अगाध।
भाषा करि तातें कहौं छमियौ बुध अपराध॥ ८॥

(दंडक)

काम क्रोध लोभ मोह दंभादिक 'केसौराय' पाखंड अखंड झूठ जीतिबे की रुचि जाहि।
पाप के प्रताप ताके भोग रोग सोग जाके सोध्यौ चाहै आधि व्याधि भावना असेष दाहि।
जीत्यौ चाहै इंद्रीगन भाँति भाँति माया मनु लोपिकै अनेक भाव देख्यौ चाहै एकताहि।
जीत्यौ चाहै काल यह देह चाहै रह्यौ गेह सोई तौ सुनावै सुनै गुनै ज्ञानगीतिकाहि॥ ९॥

---

[४] रिपु—नर (वेंकट, काशि०)। रज—मन (सर०)। लगै—लसै (वही)। जगलोचन—जगलाल विलोचन (वेंकट)। विपोहै—विमाहै (खोज २); निपोहै (सर०)। [५] नराच—भुजंगप्रयात (काशि०)। प्रवास—प्रकास (वेंकट, काशि०)। असेस—अमोघ (खोज २)। बिस्नु—विप्र (वेंकट, काशि०)। क्रस्नदास—कासिनाथ (वही)। अंस०—बंस अंस (काशि०)। [६] केसवराय—केसवदास (वेंकट, काशि०)। श्री०—सुख श्रीपरमानंद (सर०)। कंद—सुकंद (काशि०)। [७] होइ—हो (वेंकट); हौं (काशि०)। 'खोज' में नहीं है। [८] ज्यौं—जो (वेंकट)। मति—मतु (वेंकट, काशि०)। कहौं—कही (खोज १); कह्यो (काशि०)। बुध—कवि (काशि०)। [९] दंडक—सवैया (काशि०)। दंभादिक—दंभ आदि (वही)। ताके—जाके (वही)। सोध्यौ—साँध्यो (सर०)। असेष—अनेक (काशि०)। जीत्यौ—देख्यौ (सर०)। देख्यौ०—देख्यो एक ताही (काशि०)। चाहै०—रह्यो चाहै (वही)। सुनै०—सुनि गुनि गीतिकाही (वही)। गुनै०—ज्ञान सुन (सर०)।

(दोहा)

परमारथ स्वारथ दुवौ साधन की आसक्ति।
पढ़ौ ज्ञानगीताहि तौ जौं चाहौ हरिभक्ति॥ १० ॥

सुनौ ज्ञानगीता विमल छोड़ि देहु सब जुक्ति।
रत्नाकर विज्ञान यह मुक्तामनि की सुक्ति॥ ११ ॥

वेद देखि ज्यौं सुमृति भइ सुमृतिनि देखि पुरान।
देखि पुराननि त्यौं करी गीताज्ञान प्रमान॥ १२ ॥

सोरह सौ बीते बरष बिमल सतसठा पाय।
भई ज्ञानगीता प्रगट सबही कौं सुखदाय॥ १३ ॥

'केसव' ज्ञानसमुद्र की मुनिजन लही न थाह।
मैं तामैं पैरन लग्यौ छमियो कविजन-नाह॥ १४ ॥

राजवंशवर्णन

विदित ओड़छे नगर को राजा मधुकरसाहि।
गहिरवार कासीस रवि कुलभूपन जस जाहि॥ १५ ॥

(विजय)

देव कुदेवनि के चरनोदक बोरयौ सबै कलि को कुल मानी।
दारिद दुक्ख बहाय दिये दिन दीरघ दान कृपान के पानी।
लोकहि में परलोक रच्यौ धरि देह विदेहन की रजधानी।
राजा मधूकरसाहि से और न रानी न और गनेस दे रानी॥ १६ ॥

पापी बघेले को राज सुखाय गौ तोंवर छुद्र पठानी नठानी।
'केसव' ताल तरंगनि सों सब सूखि गई सिगरी चहुवानी।
साहि अकव्वर अंक उदै मिटि मेघ महीपति की रजधानी।
उजागर सागर ज्यौं मधुसाहि की तेग बढ़्यौ दिनही दिन पानी॥ १७ ॥

---

[१०] दुवौ–दोऊ (सर०) । पढ़ौ–सुनौ (वही) । [११] विमल–विमति (वेंकट, काशि०) । यह–या (वेंकट); पुनि (काशि०) । [१२] देखि०–देपि स्मृति भई (काशि०) । भइ–भव (वेंकट, सर०) । सुमृतिनि–स्मृति (काशि०) । [१३] सतसठा–(खोज १); सतसठ (काशि०) । [१४] जन–गन (सर०) । कवि–बुध (वही) । [१५] जस–नृप (काशि०) । [१६] दुक्ख–दुष्ट (सर०) । रच्यौ–रिंकै (काशि०) । राजा०–मधुक्करसाहि सो और न दूसरो (सर०) । [१७] पापी–बापी (वेंकट, काशि०) । तोंवर–तोमर (काशि०) । पठानी न–पठननि (वही) । ताल०–तौर तरगिनि पोखरि (वेंकट); तोर तरगिनि पोपरि (काशि०) । अक उदै०–दै मिलिबो मिटि बोघ महीपति की (सर०) । बढ़्यौ–बढ़े (काशि०) । पानी–दानो (सर०) ।

(दोहा)

दोऊ दीन पुकारहीँ जग में जय कीरत्ति।
क्रुस्नदास मिश्रहि दई जिन पुरान की बृत्ति ॥ १८ ॥

तिनके बिरसिंघदेव सुत प्रगट भयो रनरुद्र।
राजश्री जिन मथि लई समर अनेक समुद्र ॥ १९ ॥

(विजय)

पौन ज्यौँ पुंज पँवार पुवार से तोंवर तूल के तूल उड़ाए।
सिंघ ज्यौँ बाघ ज्यौँ कच्छप बाहु हते गज ज्यौँ जुवराज ढहाए।
'केसवदास' प्रकास अगस्त्य ज्यौं सोक-अलोक-समुद्र सुखाए।
बीर नरेस के खग्ग खगेस खुमान के बिक्रम ब्याल बिलाए ॥ २० ॥

(दोहा)

बीरसिघ नृप की भुजा 'केसव' जद्यपि तूल।
एक साहि कौँ सूल सी एक साहि कौँ फूल ॥ २१ ॥

(दंडक)

लूटिवे के नातेँ परपट्टनै तौ लूटियत तोरिबे के नातेँ गढ़ तोरि डारियत हैँ।
घालिवे के नाते गर्ब घालियत राजन के जारिबे के नातेँ अघओघ जारियत हैँ।
बाँधिवे के नाते ताल बाँधियत 'केसौराय' मारिबे के नातेँ तौ दरिद्र मारियत है।
राजा वीरसिघजू के राज जग जीतियत [हारिबे के नातेँ आन जन्म] हारियत हैँ ।२२।

दानिन में बलि से बिराजमान जिहिँ पाँहि माँगिबे कोँ ह्वै गए त्रिबिक्रम तनक से।
पूजत जगत प्रभु द्विजन की मंडली मेँ देखियत 'केसौदास' सौनक सनक से।
जोधन मेँ भरथ भगीरथ सुरथ पृथु दसरथ पारथ सु बिक्रम बनक से।
राजा मधुकरसाहसुत राजा बीरसिंघ राजन की मंडली मैं राजत जनक से ॥ २३ ॥

---

[१८] पुकारहीं—बखानहीं (सर०)। जग०—जय को जग मैँ (काशि०)। क्रुस्नदास—क्रुम्नदत्त (वही)। दई०—जिनि कहि (वही)। जिन—जिहिँ (सर०)। [१९] राज०—राजाश्री मथिकै लई (काशि०)। समर०—सेष असेष (सर०)। [२०] पुवार से—उड़ाय के (सर०)। तोंवर—तोमर (काशि०)। बाहु—बाघ (सर०, काशि०)। गज—जग (काशि०)। सोक०—सेप असेष (सर०)। खग्ग०—खग खुमान के विक्रम व्याल अनेक (वैंकट); पगा धुमान तें विक्रम व्याल अनेक (काशि०)। [२२] लूटिवे......हारियत हैं ('वेंकट, काशि०' में नहीं है)। [२३] दंडक—सवैया (काशि०)। जिहि—जिनि (वेंकट, काशि०)। माँगिवे०—भागिवे को है गतित विक्रम (वेंकट)। ह्वै०—है त्रिविक्रम (काशि०)। पूजत—सेवन (वेंकट); केशव (काशि०)। प्रभु०—प्रमुदितनि (वेंकट); प्रमुदिजनि (काशि०)। की मंडली......पृथु—(काशि०)। दसरथ०—विक्रम में विक्रम नरेस के (वेंकट); विराजनि विराजमान विक्रम (काशि०)।

(दोहा)

द्विजन दिये सुखदान बिनु दान सबै निहकाम।
अभयदान देत न खलन परत्रिय दृस्टि सकाम ॥ २४ ॥
कुल बल बिक्रम दान बस जस गुन गनत अलेख।
चतुर पंच षट सहस मुख कही न जाय बिसेख ॥ २५ ॥
भूपन सूरजबंस को दूषन कलि को मानि।
दास एक द्विजजाति को सब ही को प्रभु जानि ॥ २६ ॥

(दंडक)

'केसौराय' राजाबीरसिंघ ही के नाम ही तें अरिगजराजन के मद मुरझात हैं।
सजल जलद ऐसे दूरि तें बिलोकियत होत परदल चलदल के से पात हैं।
भैरो के से भूत भट भेंटत ही दृग घट प्रतिभट घट घट बिक्रम बिलात हैं।
पीरी पीरी पेखत पताका पीरे होत मुख कारी कारी ढालैं देखि कारेई ह्वै जात हैं ॥ २७ ॥

ग्रंथनिर्माणहेतु-वर्णन (सोरठा)

एक समै नृपनाथ, सभामध्य बैठे सुमति।
बूझी उत्तमगाथ, कबि नृप केसवराय सों ॥ २८ ॥

नृप वीरसिंह उवाच (कुंडलिया)

गंगादिक तीरथ जिते गोदानादिक दान।
सुनी सिवादिक देव की महिमा बेद पुरान।
महिमा बेद पुरान सबै बहु भाँति बखानत।
जथासक्ति सब करत सहित स्रद्धा गुन गानत।
जथासक्ति सब करत भक्ति मन बच करि अंगा।
चित्त न तजत बिकार न्हात नर जद्यपि गंगा ॥ २९ ॥

केशव (दोहा)

बीर नरेस धनेस तुम मोहिं जु बूझी गाथ।
सोई श्रीसिव कों सिवा बूझी ही नृपनाथ ॥ ३० ॥

शिव (तारक)

सुनि सैलसुता सब धर्म तैं सोंचे। बहु बेद पुराननि के रस रोंचे।
मद मोह मनोज महातम छंडे। जबही करियै तबही फल मंडे ॥ ३१ ॥

---

[२४] दान—दाह (काशि०)। सबै—बेस (वेंकट, काशि०)। परत्रिय०—निपरत्रिया रसकाम (वेंकट); निपरत्रिय रसकाम (काशि०)। [२५] बिसेख—सविसेष (वेंकट, काशि०)। [२७] दंडक—सवैया (काशि०)। होत०—परदल दिलमल (वेंकट); परदिल (काशि०)। भेंटत०—जगघट प्रतिभट घटघट देखे बल (वेंकट, काशि०)। [२८] सुमति—हुते (सर०)। कबि—कहि (वही)। [२९] सिवादिक—यथामति (वेंकट, काशि०)। मन०—हरि मन बच (वही)। [३०] केशव—केशव मिश्र उवाच (काशि०)। [३१] शिव०—श्रीशिव उवाच तारक छंद (वेंकट, काशि०)। रस—रंग (सर०)। मोह—क्रोध (वेंकट, काशि०)।

शिवा

सुनियै सुरनायक नायकभर्ता। तुमही कर्ता प्रतिपालक हर्ता।
कहियै किहि भाँति बिकार नसावै। अरु जीवत ही परमानँद पावै॥ ३२॥

शिव (दोहा)

जब बिवेक हति मोह कोँ, होय प्रबोध सँजुक्त।
तब ही जानौ जीव कोँ, जग मैँ जीवनमुक्त॥ ३३॥

शिवा (तोमर)

तुम सर्बदा सर्बज्ञ। नर कहा जानहिँ अज्ञ।
कहँ होत प्रगट प्रबोध। प्रभु देहु जीवन सोध॥ ३४॥

शिव

सुनि प्रिये प्रेमनिधान। तुम बिज्ञ बिबिधि बिधान।
बारानसी सुप्रमान। वह है प्रबोध-निधान॥ ३५॥

वीरसिंह (दोहा)

केसव हमहिँ बिबेक को, महामोह को जुद्ध।
बरनि सुनावहु होय ज्योँ जीव हमारो सुद्ध॥ ३६॥

इति श्रीचिदानंदमग्नायां विज्ञानगीतायां श्रीशिवपार्वतीप्रश्नवर्णनं नाम प्रथमः प्रभावः॥१॥

२

(दोहा)

बिसद द्वितीय प्रभाव मैँ, यह बर्निबो प्रकास।
कलह काम-रति को रुचिर, मंत्र बिनोद बिलास॥ १॥

---

[३२] शिवा—श्रीपार्वत्युवाच (वेंकट, काशि०)। प्रतिपालक—परिपालक (वेंकट, काशि०)। नसावै—गमावै (काशि०)। [३३] शिव—श्रीशिव उवाच (काशि०)। हति—होत (वही)। कोँ—को (वेंकट, काशि०)। होय—होइ (वेंकट); होहिँ (काशि०)। [३४] शिवा—श्री पार्वत्युवाच (वेंकट, काशि०)। [३५] शिव—श्रीशिव (वेंकट); श्रीशिव उवाच तोमर छंद (काशि०)। तुम—यह (काशि०)। बारानसी—बनारसी (सर०)। वह है—रहहिं (वही)। निधान—निदान (वही)। [३६] वीरसिंह—श्रीपार्वत्योवाच (काशि०)। महामोह०—बरनि सुनावहु (सर०)। बरनि०—जाहि सुने तेँ होयगो (वही)।

इति श्री०—इति श्रीमिश्रकेशवरायविरचितायां (सर०, काशि०)। श्रीशिव०—वीरसिंहदेवप्रश्न (सर०); श्रीनृपवीरसिंहकारितायां प्रश्न (काशि०)।

महादेव की बात जब, सुनी सबै कलिकाल।
'केसवदास' प्रकास उर, उपजे सूल बिसाल॥ २॥
बात कही कलि कलह सों, कलह चल्यौ उठि धाम।
महामोह पै बीच ही, आवत देख्यौ काम॥ ३॥

(सवैया)

भूषन फूलन के अँग अंग सरासन फूलन के अँग सोहै।
पंकज चारु बिलोचन घूमत मोहमयी मदिरा रुचि रोहै।
बाहुलता रतिकंठ बिराजति 'केसव' रूप को रूपक जोहै।
सुंदर स्याम स्वरूप सने जगमोहन ज्यों जग के मन मोहै॥ ४॥

केशवराय (दोहा)

कलह कह्यौ कलि को कह्यौ, करि प्रनाम अवदात।
कासी उदौ प्रबोध को, सुनियत है मन-तात॥ ५॥

काम (हरि)

देव दनुज सिद्ध मनुज संजम व्रत धारहीं।
वेदबिहित धर्म सकल करि करि मनुहारहीं।
मोहिं निकट तोहिं प्रगट बंधु अरु विरोध को।
सुद्ध सदय उदय हृदय होय क्यौं प्रबोध को॥ ६॥

रति (दोहा)

प्राननाथ सुनि प्रेम सों, जगजन कहत अनेक।
महामोह नृपनाथ कों, सुनियत बड़ो बिवेक॥ ७॥

काम (भुजंगप्रयात)

जऊ फूल के हैं धनुर्बान मेरे।
करौं सोधि कै जीव संसार चेरे।
गनै को बली बीर बज्रो विकारी।
भए बस्य सूली हली चक्रधारी॥ ८॥

---

[२] जब–सब (वेंकट, काशि०)। सुनी०–कही सुनी (वही)। उर–बस (वही)। [३] कलह सों–काल सब (वेंकट, काशि०)। [४] सवैया–कामरूप सवैया (काशि०)। घूमत–चूमत (वेंकट)। [५] केसवराय दोहा–दोहा (वेंकट, काशि०)। [६] काम०–काम उवाच हीरक छंद (काशि०)। बिहित–विहित सब (काशि०)। सुद्ध–जुद्ध (सर०)। उदय०–हृदय उदय (काशि०)। [७] रति०–रति उवाच दोहा (काशि०)। प्रेम सों–प्रेम को (वेंकट); प्रेम सी (काशि०)। कों–सो (काशि०)। [८] काम०–काम उवाच भुजंगम छंद (काशि०)। जऊ–सजौं (वेंकट); जो (काशि०)। करौं०–करै सो सवारे तऊ ईस (सर०)। कै जीव०–संसार के जीव (काशि०)। भए–करे (सर०)।

रति (दोहा)

सब बिधि जद्यपि सर्बदा, सुनियत पिय यह गाथ ।
बहु सहायसंपन्न अरि, संकनीय है नाथ ॥ ६ ॥

काम (विजय)

सील बिलात सबै सुमिरैं अवलोकत छूटत धीरज भारौ ।
हासहि 'केसवदास' उदास सबै ब्रत संजम नेम निहारौ ।
भाषन ज्ञान बिज्ञान छिपै छिति को बपुरा सो बिबेक बिचारौ ।
या सिगरे जग जीतन को जुवतीमय अद्भुत अस्त्र हमारौ ॥ १० ॥

रति (दोहा)

संतत मोह बिबेक को, सुनियत एकै बंस ।

काम

बंस कहा गजगामिनी, एकै पिता प्रसंस ॥ ११ ॥

(रूपमाला)

ईस माय बिलोकि कै उपजाइयौ मन पूत ।
सुंदरी तिहि द्वै करी तिहि तें त्रिलोक अभूत ।
एक नाम निबृत्ति है जग एक प्रबृति सुजान ।
बंस द्वै ताते भयौ यह लोक मानि प्रमान ॥ १२ ॥

योगवाशिष्ठे (श्लोक)

चित्तं चेतो मनो माया प्राकृतश्चेतनामपि ।
परस्मात्कारणादेव मनः प्रथममुच्यते ॥ १३ ॥

(दोहा)

महामोह दै आदि हम, जाए जगत प्रबृत्ति ।
सुमुखि बिबेकहि आदि दै, प्रगटत भई निबृत्ति ॥ १४ ॥

रति (दोधक)

तो कुल एक बिबेक पिता यौ । तो अति प्रीतम प्रेम नसायौ ।
आपुस मॉझ सहोदर सॉचे । क्यौं तुम बीर बिरोधनि रॉचे ॥ १५ ॥

---

[६] रति–रति उवाच (काशि०)। सर्बदा–समर्थ पिय (सर०) । पिय–है (वही) । [१०] काम०–काम उवाच विजय छंद (काशि०) । भाषन०–भूषन ज्ञान विना न (सर०)। छिपै–छिजे छिजै (काशि०) । जीतन०–को जुवतीमय देखहु मोहन (सर०) । जीतन फो–के नय (काशि०) । [११] रति–रतिरुवाच (काशि०) । [१२] रूपमाला–दोहा (सर०); काम उवाच माला छंद (काशि०) तिहि–त्रिय (सर०); तेहि (काशि०) । एक नाम०–एकहि सुनाम प्रवृत्ति (काशि०) । प्रवृत्ति–निवृत्ति (वही) । लोक–बात (सर०) । [१३] प्राकृत०–प्रवृत्तिर्नामरेव च (सर०) । 'काशि०' में यह दोहा नहीं है । [१५] तो–जौं (वेंकट); जो (काशि०) । बिबेक–रु एक (वेंकट, काशि०) । यौ–ज्यौं (वही) । तो अति–जानियै (सर०) ।

काम

बैर बिमातनि में चलि आयौ। आजु नयौ हमहीं न उपायौ।
देव अदेव बड़े अरु बारे। जूझत पन्नग पच्छि बिचारे॥ १६॥
मातु पितै सब ही हम भावैं। वै कलि मध्य प्रवेस न पावैं।
है उनसों जग काज न काहू। तातें वै चाहत मार्‌यौ पिताहू॥१७॥

रति (दोहा)

ऐसें ही पिय कहत हौ, कै पायौ कछु भेद।
करिहै कौन उपाय करि, तव कुल को उच्छेद॥ १८॥
(*काम*—) एक मंत्र अति गूढ़ है, (*रति*—) मो सों कहियै कंत।
(*काम*—) कहियै कैसें, त्रियनि सों, दारुन कर्म दुरंत॥ १६॥

रति (सोरठा)

जद्यपि ऐसी बात, तदपि कहौ पिय करि कृपा।
महाराज मनजात, तुम सर्बंग सर्बज्ञ हौ॥ २०॥

काम (रूपमाला)

भामिनी भय भावना तिहिं भूलि चित्त न राँचु।
किंबदंतिनि को गनै वह झूठ होय कि साँचु।
(*रति*—)कीदृसी वह किंबदंती कहौ एकहि अंस।
(*काम*—)मृत्युमूरति राच्छसी इक होयगी मम बंस॥ २१॥

रति (नगस्वरूपिणी)

प्रसिद्ध पापचारिनी। असेष बंसहारिनी।
बिबेक संमता भई। किधौं असंमतामई॥ २२॥

---

[१६] काम—काम उवाच यथा छंद (काशि०)। हमहीं०—हम ना उपजायौ (सर०)। [१७] भावैं—गावै (काशि०)। वै०—वै न कछू हम कामहिं आवैं (सर०)। काज—काम (वही) तातें०—वै मार्‌यौ चाहत मात (वही)। [१८] भेद—भेव (सर०)। तुव—तुय (काशि०)। उच्छेद—उच्छेव (सर०)। [१६] अति—महि (सर०)। कहियै०—कैसे कहिए (काशि०)। [२०] मनजात—मनतात (सर०)। 'काशि०' में यह दोहा नहीं है। [२१] काम—रति उवाच (काशि०)। किंवदंतिनि—किं प्रवृत्तिनि (वेंकट)। एकहि—जु भोएहि (काशि०)। मूरति—नूरति (वही)।

इसके अनतर 'सर०' में ये छंद अधिक हैं—

रति—कौन तें किहि कोखि होय कहौ सु कौन प्रकासु।
काम—वेद सिद्ध विवेक तें जानिहै सुबिधहि श्रासु।
रति—कौन कर्म करै कहौ पचि छाँडि कोविद संस।
काम—तात मात समेत सोदर भच्छिहै सब वंस॥

काम (दोहा)

करै बिनास जु और को, ताको निस्चय नास।
'केसवदास' प्रकास जग, ज्यौं जदुबंसबिनास ॥ २३ ॥

केशव

काम कह्यौ तब कलह सों दिल्ली नगरी जाय।
दंभहि दै उपदेस तब देखहि प्रभु के पाय ॥ २४ ॥

इति श्रीचिदानंदमग्नायां विज्ञानगीतायां कलहरतिकामसंवादवर्णनं नाम द्वितीयः प्रभावः ॥ २ ॥

३

(दोहा)

या तीसरे प्रकास में, दीह दंभ आकार।
अहंकार अरु दंभ को, कहिबो मिलन विचार ॥ १ ॥

केशवराय

दंभ बिलोक्यौ कलह यों, दिल्ली नगरी जाय।
बंचत जग जैसे फिरत मोपै बर्नि न जाय ॥ २ ॥

दंभ (मरहट्ठा)

काम कुतूहल में बिलसै निसि बारबधूमन-मान हरै।
प्रात अन्हाय बनाय दै टीकनि उज्जल अंबर अंग धरै।
ऐसो तपौ तप ऐसो जपौ जप ऐसो पढ़ौ श्रुतिसार सरै।
ऐसो जोग जयौ ऐसो जज्ञ भयौ बहु लोगन को उपदेस करै ॥ ३ ॥

(दोहा)

कलह कह्यौ कलि को कह्यौ, सबै दंभ सों जाय।
दंभ तबहि नृपनाथ सों, जाय कह्यौ अकुलाय ॥ ४ ॥

---

[२३] निस्चय–नित्य (वेंकट, काशि०); यतन (सर०)। [२४] केशव–श्री महादेव उवाच (काशि०)। तब–पुनि (सर०)। इति श्री–इति श्रीमिश्रकेसवराय विरंचितायां (सर०, काशि०)। संवाद–स्वाद (काशि०)।

[२] यों–जो (वेंकट); को (काशि०)। जैसे०–जिहिं भाँति तिहिं मो पै कह्यौ (सर०)। [३] दंभ०–मदिरा छंद (सर०, काशि०); मरहट्ठा (वेंकट)। कुतूहल०–की लीफ तर्फी (सर०); कलह कौतुकी बिहरै (काशि०)। बारबधू०–बासर घूमत (सर०); बागर बारबधू (काशि०)। जयौ०–जागे बिस्तु भवैं सब (सर०)। [४] कलह०–कबि गए ते बागरीं (सर०)। तबहि–कह्यौ (सर०)। नृपनाथ–निज नाथ (काशि०)।

कलह गए तब बेग ही, बासर के आरंभ।
कालिंदी सरिताहि को, उतरत देख्यौ दंभ ॥ ५ ॥
जरत मनौ अभिमान तें, ग्रसत मनौ संसार।
निंदत है त्रैलोक कों, हँसत बिबुध-परिवार ॥ ६ ॥

अहंकार (रूपमाला)

कबहूँ न सुन्यौ कहूँ गुरु को कह्यौ उपदेस।
अज्ञ जज्ञ न भेद जानत धर्म कर्म न लेस।
स्नान दान सयान संजम जोग जाग सँजोग।
ईसतत्व न गूढ़ जानत मूढ़ माथुर लोग ॥ ७ ॥

बेदभेद कछू न जानत घोष करत कराल।
अर्थ कों न समर्थ पाठ पढ़ै मनौ सुकबाल।
भीख काज जती भए तजि लाज मुंडे मुंड।
सास्त्र कों अति करत ब्याकुल बादि पंडित कुंड ॥ ८ ॥

मेखला मृगचर्म संजुत अच्छमाल बिसाल।
भस्म भाल दियें त्रिपुंडक मुष्टिके कुसजाल।
ठौर ठौर बिराजहीं मठपाल जुक्त कुतर्क।
घोष एक कही रह्यो इन संग तें बहु नर्क ॥ ९ ॥

(दोहा)

मुद्रन सों मुद्रित कियें, उर उदार भुजदंड।
सीस कर्न कटि पानि कुस, दंभादिक पाखंड ॥ १० ॥

केशवराय (दोधक)

दंभहि देखि गयौ जब नीरे। हुंकृति सों बरज्यो मतिधीरे।

---

[५] सरिताहि०—सरिता तहाँ (सर०) [६] बिबुध०—बिबिध परदार (सर०)। [७] अहंकार—काम (वेंकट, काशि०) । कबहूँ—कानहूँ (काशि०) । कह्यौ—बिना (वही) । ईस०—ईसतातनु (वेंकट); ईसतात न (काशि०) । [८] पाठ०—मानत पाठ पढ़ै सुबाल (सर०)। इसका उत्तरार्द्ध 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [९] भस्म०—सीस पै बहुबार धारन भस्म अंगन डाल (वेंकट), एक धूसर धूरि ते तन नग्न परम बिहाल (काशि०)। कही—तहा (काशि०)। इन—जा (वेंकट), या (काशि०)। [१०] मुद्रन—शूद्रनि (वेंकट)। सीस—सोस (काशि०)। दंभादिक०—दंभ परयोव प्रचड (वेंकट, काशि०)। 'सर०' में इसके आगे यह छंद अधिक है—

भाल तिलक माला धरें दंभादिक पाखंड।
तिलक मृत्तिका के दिए भाल भुजा उर दृष्टि ॥

शिष्य

दूरि रहौ द्विज धीरज धारौ। पायँ पखारि इहाँ पगु धारौ ॥ ११ ॥

अहंकार उवाच (दोहा)

जानत हौं दिल्ली पुरी, तुरुक बसत सब ठाँउ।
अतिथिनि को दीजत न जहँ, आसन अर्घ सुभाउ ॥ १२ ॥

शिष्य (तारक)

कुल सील न जानियै कोविद जाको। कहि क्यौं करि आवत अर्चन ताको।

अहंकार

सुनि मूढ़ सयान सुन्यौ सब तेरयौ। तुम काननहूँ न सुन्यौ जस मेरयौ ॥१३॥

(सरस्वती)

मायापुरी इक पावनी जग गौड़ देस समृद्ध।
माता पिता मम धर्मसंजुत लोकलोक प्रसिद्ध।
जाए सुपुत्र अनेक मैं तिनमें सुविद्यहि जुक्त।
विस्वंभरापर देस दच्छिन जानि जीवनमुक्त ॥ १४ ॥

(दोहा)

पायँ पखारि जहीं भयौ, अहंकार अनुकूल।

शिष्य

बैठि दूरि द्विज जनि छुवौ, गुरु को आसन-मूल ॥ १५ ॥

(सोरठा)

परसि तुम्हारो वात, पथिक प्रगट प्रस्वेदकन।
जगस्वामी को गात, ज्यौं न छुवै त्यौं बैठियै ॥ १६ ॥

(दोहा)

प्रभु को करत प्रनाम जब, देवदेव मुनि भाल।
छ्वै न सकत आसन छिती, मुकुट-मनिन की माल ॥ १७ ॥

---

[११] राय—मिश्र (काशि०)। गयौ—चल्यौ (सर०)। [१२] जहँ—यह (वेंकट)। सुभाउ—सुभाइ (वेंकट); सुनाम (काशि०)। [१३] सब—श्रव (सर०)। [१४] इक०—एक देस पावन सनो देस (सर०)। समृद्ध—प्रसिद्ध (वेंकट, काशि०)। लोक०—देस देस (सर०)। मैं—है (सर०)। पर—पल देव (वेंकट, काशि०) [१६] वात—गात (वेंकट, सर०, काशि०)। प्रगट—विलोकि (वेंकट, काशि०)। गात—तात (सर०); जात (काशि०)। [१७] जब—जग (सर०)। देवदेव—राजराज (सर०)। मुनि—नुनि (वेंकट, काशि०)। मुकुट—मुक्ता (सर०)।

दंभ उवाच (सवैया)

एक समै हम सत्यपुरीहि गए अवलोकन पापप्रनासन।
ब्रह्मसभा भहराय उठी कहि 'केसव' केवल प्रेमप्रकासन।
देवसहायक लोकबिनायक बैठिबे कौं हम ल्याय कै आसन।
पावन बावन के पग को थल मोहिँ बताय दयौ कमलासन॥ १८॥

अहंकार (विजय)

काम न काम की सुंदरताई पुरंदर की प्रभुता कहि को है।
बुद्धि को गंध गनेस मेँ नाहिनै को कुरुखेत की बृद्धिहि टोहै।
पावक के तन तेज रतीक न बात मेँ पात कैसो बल सोहै।
केतिक सुद्धि है गंग मेँ 'केसव' सिद्धि महेस की मोहि न मोहै॥ १९॥

(दोहा)

दंभ लोभ-सुत हँसि गहे, अहंकार के पायँ।
अहंकार आसिप दई, सोभन सुखद सुभायँ॥ २०॥

अहंकार

पुत्र अनृत-जुत कुसल हौ, बीत्यौ काल अपार।

दंभ

प्रभु-प्रसाद तेँ कुसल है, सब मेरो परिवार॥ २१॥

(दोधक)

कारज कौन इहाँ प्रभु आए। (*अहंकार*–) पुत्र सुनौ हम काम पठाए।
(*दंभ*–) घोसक ह्याँ रहियै अब तातेँ। आवत हैँ प्रभु देवसभा तेँ॥ २२॥

अहंकार (तारक)

किहि कारन आवत हैँ सुधि पाई। (*दंभ*–) सुविवेक कथा न सुनौ दुखदाई।
(*अहंकार*–) कहि पुत्र बिवेककथा वह कैसी। (*दंभ*–) कहिवे कि नहीँ (*अहंकार*–) कहि मेरी सौँ तैसी॥ २३॥

दंभ (सरस्वती)

बारानसी सुनियै बढ़्यो बहुधा विवेक बिचार।
बिज्ञान को तिनतेँ कहैँ सब होइगो अवतार।

---

[१८] भहराय–महँराइ (वेंकट, काशि०); अकुलाइ (सर०)। प्रेमप्रकासन–पापबिनासन (वेंकट, काशि०)। सहायक०–सभा महँ पूछे (सर०)। [१९] गंध–गेह (सर०)। तन–कन (वही) पात०–ज्ञातक (वही)। बल–अरु (वेंकट, काशि०) मोहि न–मोहित (वेंकट)। [२०] सुत–हँसि (वेंकट, काशि०)। सोभन०–दभहि अति सुख पाइ (सर०)। [२१] प्रसाद–प्रताप (सर०, काशि०)। सब–अब (वेंकट); सम (काशि०)। [२२] कारज–कारन (सर०)। सुनौ–मोहन (वही)। [२३] सुविवेक०–विवेक कथा ति सुनी सुधि आई (सर०)। कहि पुत्र–पुत्र (काशि०)। वह–अब (सर०)। कहि मेरी–मेरी (काशि०)।

सोई प्रबृत्ति असेष बंसबिनासहेत सुभाउ।
ताके बिसेष बिलोप कारज आइहै इहि गोंउ ॥ २४ ॥

अहंकार (सवैया)

भागीरथी जहँ कासी है 'केसव' साधुन को जहँ पुंज लसै रे।
संतत एक बिबेक सों बेदबिचारन सों जहँ जीउ कसै रे।
तारक मंत्र के दायक लायक आपु जहाँ जगदीस बसै रे।
साधन सुद्ध समाधि जहाँ तहाँ कैसें प्रबोध-उदोत नसै रे ॥ २५ ॥

दंभ

सोक गरावत जारत क्रोध गुमान गहें कहि आवै न हाँ जू।
लोभ लए दसहूँ दिसि डोलत है अपमान प्रहार जहाँ जू।
झूठ की ईठई नर्क के नीरधि बूड़त ना अवलंब जहाँ जू।
काम करें बहु भाँति फदीहति सोधन को अवकास कहाँ जू ॥ २६ ॥

(दोहा)

को बरजै प्रभु कों प्रगट, बरजें होय अनर्थ।
बोध-उदै के लोप कों, एकै पेट समर्थ ॥ २७ ॥

(सवैया)

'केसव' क्योंहूँ भरयौ न परै अरु जौ रे भरै भय की अधिकाई।
रीतत तौ रितयौ न घरी कहुँ रीति गएँ अति आरतताई।
रीतो भलो न भरो भलो कैसेहुँ रीते भरे बिनु कैसे रहाई।
जानि परै परमेसुर की गति पेटन की गति जानि न जाई ॥ २८ ॥

पेटनि पेटनि हीं भटक्यौ बहु पेटनि की पदवी न नक्यौ जू।
पेट तें पेट लयौ निकस्यौ फिरिकै पुनि पेटही सों अटक्यौ जू।

---

[२४] सुनियै–बहुधा (काशि०)। बहुधा–सुनियै (वही)। को०–ते तिनके अब (सर०)। असेप–अनेक (वेंकट, काशि०)। विसेष–असेष (वही)। बिलोप०–बिलोकि के प्रभु (सर०); बिलोप कौ प्रभु (काशि०)। [२५] जहँ–तहँ (काशि०)। कासी–ऐसी (वेंकट, काशि०)। साधुन–दासन (सर०)। पुंज–संग (वही)। दायक०–देइ कपालिक (वही)। प्रबोध–विवेक (काशि०)। [२६] जारत–है अति (वेंकट, काशि०)। फदीहति–फजीहति (वेंकट)। [२८] जौ रे०–जौ भरयौ तौ नास (सर०)। रितयौ०–रतियौहू रतीक न (वही)। कैसेहुँ–केशव (वही)। रीते०–रायो भरे रिन क्यों न (वही)। जानि परै–गाइयै क्यों (वेंकट)। यह छंद 'काशि०' में नहीं है।

पेट को चेरो सबै जग काहू के पेट न पेट समात तक्यौ जू।
पेट के पंथ न पावहु 'केसव' पेटहि पोषत पेट पक्यौ जू॥ २६॥

(दोहा)

तृषा बड़ी बड़वानली छुधा, तिमिंगिल छुद्र।
ऐसो को निकसै जु परि, उत्तर उदर समुद्र॥ ३०॥

मन बच कर्म जु कपट तजि, सेइ रहै नर कोय।
'केसव' तीरथबास को, ताही कों फल होय॥ ३१॥

अगस्त्यसंहितायां यथा (श्लोक)

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥ ३२॥

इति श्रीकेशवरायविरचितायाचिदानंदमग्नाया विज्ञानगीताया अहंकारदंभसंवादवर्णनं नाम तृतीयः प्रभावः॥ ३॥

४

(दोहा)

महामोह को बर्निबो, चौथे माँझ प्रयान।
सागर सरिता बर्ष सुर, सातौ द्वीप प्रमान॥ १॥

महामोह बिहरत हुते, पर्वत लोकालोक।
कलह बिलोके जाय तहँ, ब्रह्मदोषजुत सोक॥ २॥

---

[२६] पदवीन०—पदवी मन क्यौ जू (सर०)। फिरि—उठि (वही)। सबै०—भय सबै जग (वही)। काहू के—केशव (काशि०)। तक्यौ—थक्यौ (सर०)। पावहु—डारत (सर०); पावत (काशि०)। [३०] बड़वानली—बड़वाकिनी (सर०)। इसके अनतर 'सर०' में यह श्लोक है—

आदौ रूपविनाशिनी कृशकरी कामस्य विध्वंसनी।
ज्ञानं मन्दकरी तपक्षयकरी धर्मार्थनिर्मूलनी।
पुत्रभ्रातृकलत्रभेदनकरी लज्जाकुलच्छेदनी।
सा मा पीडतु सर्वदोषजननी प्राणप्रहारी क्षुधा॥

[३१] कर्म—काय (सर०)।

(तोमर)

कलहै कही सुनि बात। उठि चले मन के तात।
बहु उठी दुंदुभि बाजि। तहँ बिबिधि सेना साजि॥ ३॥

(चर्चरी)

धर्म कर्म सर्म के समस्त जज्ञदोषवंत।
तात-मात-भ्रातदोष दीनदोष जे अनंत।
मित्रदोष मंत्रिदोष मंत्रदोष के जु नाथ।
देवदोष ब्रह्मदोष लै चलै अनेक साथ॥ ४॥

(दोहा)

महामोह अति कोह कै, दोषन के अवनीप।
कीनौ प्रथम मिलान महि, मोहन पुष्कर द्वीप॥ ५॥

(चामर)

साठि लाख चारि जोजनै प्रमान लेखियै।
सुद्ध नीर को तहाँ प्रसिद्ध सिंधु भाखियै।
ब्रह्मरूप कों असेष जंतु सेव साजहीं।
मान सात लौं गिरीस खंड द्वै बिराजहीं॥ ६॥

(दोहा)

रमनक भारत खंड द्वै, सुंदर 'केसवराय'।
साकल दीप मिलान पुनि, कीनौ मोद बनाय॥ ७॥

(मल्लिका)

जोजनै प्रमान दीस। द्वीप लक्ष है बतीस।
सात खंड हैं सुदेस। सातई नदी सुबेस॥ ८॥

(दोहा)

एक सु धुम्रानीक सुनि, और *मनोजव* जान।
चित्ररेफ है तीसरो, चौथो गनि *पवमान*॥ ९॥
पंचम जानि पुरोजवहि, छठो बिमल बहुरूप।
बिस्वधार है सातयों, यह खंडनि को रूप॥ १०॥

---

[३] कलहै०—यों कलह के (काशि०)। तहँ—अरु (सर०); लै (काशि०)। [४] समस्त—सुसर्म (वेंकट); सुसम्म (काशि०)। मंत्र—जत (सर०)। [५] कै—सों (सर०)। [६] साठि०—चारि लाप योजन (वेंकट, काशि०)। दीप०—भान नाखियो (वही)। तहाँ—जहाँ (वही)। मान०—भान तत्त्व को (काशि०)। सात०—तत्त्व को (वेंकट)। [७] 'वेंकट' और 'काशि०' में नहीं है। [९] सु०—धुम्रानी सब कहै (काशि०)। सुनि—है (वेंकट)। पवमान—पवखानु (काशि०)। [१०] धार—धातु (वेंकट, काशि०)।

उभयसृष्टि अपराजिता, आयुर्दी अनघा सु।
निजधृति नदी सहस्रस्तुति, पंचपदी सु प्रकासु ॥ ११ ॥

सब जन साकद्वीप को प्रानायामनि साधि।
बायुरूप जगदीस कोँ, सेवत सहित समाधि ॥ १२ ॥

'केसव' साकद्वीप कोँ, समुझैँ सकल सुजान।
सागर छीर समुद्र तहँ, श्रीपति को सुखदान ॥ १३ ॥

उचक्यौ साकद्वीप तेँ महामोह अकुलाय।
मेल्यौ क्रौंचद्वीप जहँ दधिसागर सुखदाय ॥ १४ ॥

जलरूपी जगदीस कोँ सेवत सकल सुजान।
'केसव' जोजन जानियै, सोरह लाख प्रमान ॥ १५ ॥

मेघपृष्ठ आजिष्ठ पुनि, *मधुरुह आम सुधाम।*
लोहितार्न तहँ सोभियै, खंड *वनस्पति* नाम ॥ १६ ॥

सुक्ला, अभया, आर्यका, अरु *पवित्रवति* नाम।
तीर्थवती वृति *रूपवति, अमृतौघा* सुखधाम ॥ १७ ॥

(तोमर)

कुस द्वीप मेलिय जाय। घृत के समुद्रहि पाय।
तहँ अग्निरूप असोक। जगदीस पूजत लोक ॥ १८ ॥

(दोहा)

स्तुत्यव्रत सु *बिबिक्त दृढ़रुचि बसु* सो *बसुदान।*
नाभिगुप्त बामदेव तहँ, सातौ खंड प्रमान ॥ १९ ॥
रसकुल्या मंत्रावली, मधुकुल्या श्रुतविंद।
घृतच्युता सुरगर्भिनी, नदी सहित *मित्रबिंद* ॥ २० ॥
आठ लाख जोजन सबै, कुसद्वीप सुखदाय।
सो तजि साल्मलि द्वीप मेँ, मेल्यौ जग दुखदाय ॥ २१ ॥

---

[११] उभय–उप (वेंकट, काशि०)। [१२] सब जन–सज्जन (काशि०)। सेवत–पूजत (सर०)। [१३] सकल–सबै (सर०)। [१४] मेल्यौ–देख्यौ (सर०)। [१५] सेवत–पूजत (सर०)। जानियै–जानि सो (वेंकट, काशि०)। [१६] मेघ०–मेघवृष्टि प्रावृषि (काशि०)। आजिष्ठ–प्राविष्ट्य (वेंकट)। मधु०–प्राणायाम (वेंकट, काशि०)। [१७] वृति–अरु (वेंकट, काशि०)। सुखधाम–सुरधाम (काशि०)। [१९] दृढ़–भट (वेंकट, काशि०)। वसु०–व केसव (वेंकट); ग्रस है वर (काशि०)। बामदेव–ममदेव (वेंकट, काशि०)। तहँ–ता (सर०)। खंड–होत (वेंकट)। [२०] मन्त्रावली–मारावली (काशि०)। सुरगर्भिनी–सुचिगामिनी (वेंकट, काशि०)।

(चामर)

चारि लाख जोजनै प्रमान द्वीप जानियै।
मधु को समुद्र देखि देखि सुक्ख मानियै।
सात खंड सातहीँ तरंगिनी बहैँ जहीँ।
सोमरूप ईस को असेष जंतु सेवहीँ ॥ २२ ॥

(दोहा)

पारिभाद्र सौमनस अरु, *अविज्ञात सुरबर्ष*।
रमनक आप्यायन सहित, देत *सुरोचन* हर्ष ॥ २३ ॥
सिनिवाली रजनी कुहू, नंदा *राका* जानि।
सरस्वती अरु *अनुमती,* सातौ नदी बखानि ॥ २४ ॥

(नराच)

सुलक्ष दोइ जोजनै पलक्ष दीप जानियै।
तरंगिनी समेत सात सात खंड मानियै।
दिनेस रूप देव कोँ असेष जंतु सेवहीँ।
नृदेव देवसत्रु मोह आनि मेलियौ तहीँ ॥ २५ ॥

(दोहा)

सांत रु क्षेम सुभद्र सिव, यवस बरनि परमान।
अमृत अभय इहि नाम जुत, सातौ खंड प्रमान ॥ २६ ॥
अरुना नृमना सतभरा, ऋतंभरा अवदात।
सावित्री अरु *सुप्रभा, सुरसा* सरिता सात ॥ २७ ॥
रससागर अवलोकियौ, महामोह तिहि ठौर।
'केसवदास' बिलास जहँ, करत देव-सिरमौर ॥ २८ ॥
आयौ जंबूद्वीप मेँ, महामोह रनरुद्र।
जोजन लक्ष प्रमान तहँ, देख्यौ क्षार-समुद्र ॥ २९ ॥

(दोधक)

हैँ नवखंड बिराजत जाके। मानहुँ सुंदर रूपक ताके।
एक इलावृत खंड कहावै। मंदर तेँ अति सोभहि पावै ॥ ३० ॥

---

[२२] सेवहीँ—पूजहीँ (सर०)। [२३] आप्यायन—अध्यापन (काशि०)। देत—देउ (वेंकट, काशि०)। सुरोचन—सुरोवन (वेंकट); सुरोमन (काशि०) [२४] नंदा—मंदा (वेंकट, सर०, काशि०)। राका—रका (काशि०)। बखानि—सुभानु (सर०)। [२५] नराच—चामर (सर०)। सु०—लक्ष दोइ (वेंकट, काशि०)। लक्ष०—लाख लाख जोजनै प्रमान (सर०)। सात०—सात खंड खंड (वही)। मानियै—जानियै (काशि०)। रूप देव—रूप ईस (सर०)। सेवहीँ—पूजहीँ (वही)। तहीँ—वहीँ (वेंकट)। [२६] यवस—जय यस (वेंकट, काशि०)। [२७] नृमना०—नमना संभवा बत्सरता (वेंकट, काशि०)। [२९] तहँ—तब (काशि०)। [३०] सुंदर—रूपक (सर०)।

तातेँ चली सरिता बहुमोदा । नाम कहावति है अरुनोदा ।
चारि तहाँ सुभ बाग बिराजैँ । नित्य नए फल फूलनि साजैँ ॥ ३१ ॥

(दोहा)

चैत्ररथ अति चारु तहँ, बैभ्राजक इहि नाम ।
और सर्बतोभद्र पुनि, नंदन सब सुखधाम ॥ ३२ ॥

(सुंदरी)

भूत लहैँ सिव के बन को जहँ । पारबतीपति केलि करैँ तहँ ।
भूलि जो कोउ तहाँ जन आवइ । सो तबहीँ तरुनीपद पावइ ॥ ३३ ॥

(दोहा)

नामभद्रश्रव धर्मसुत, सो भद्रास्वक खंड ।
हयग्रीव जगदीस कोँ, सेवत जीव अखंड ॥ ३४ ॥

(हरिगीतिका)

हरि बर्ष खंड नृसिह कोँ प्रहलाद सेवत साधु ।
सुभ केतुमाल रमारमेसहिँ काम कर्म कराधु ।
सुभता हिरन्मय खंड मंडित यत्र कूरम वेष ।
पितृनाथ सेवत अर्जमा, मन काय बाक बिसेष ॥ ३५ ॥

(दोहा)

मत्स्यरूप भगवंत कोँ, सेवत बुद्धि अखंड ।
मनसा वाचा कर्मना, मनु नृप रम्यक खंड ॥ ३६ ॥
सेवत श्रीबाराह कोँ, बसुधा प्रेम अखंड ।
महामोह अवलोकि तब, उत्तम उत्तरखंड ॥ ३७ ॥
महामोह किंपुरुष लखि, भाग्यौ सेन सँजुक्त ।
'केसवदास' प्रकास मुख, हँसे सिद्ध मुनि मुक्त ॥ ३८ ॥

(रूपमाला)

आदि ब्रह्म अनंत नित्य अमेय श्रीरघुबीर ।
सावधान असेष भावनि संग लछमन धीर ।
सुद्धबुद्धि प्रबोधजुक्त विदेहजा अति साधु ।
सर्वदा हनुमंत सेवत नित्य प्रेम अगाधु ॥ ३९ ॥

---

[३१] बहु—एक (काशि०) । साजैँ—छाजै (वही) । [३३] सिव०—सब कंचन (सर०) । सो०—पारवती (वही) । [३४] हरिगीतिका—झूलना (सर०, काशि०) । [३५] कराधु—करालु (वेंकट); कबाधु (काशि०) । [३६] सेवत०—पूजत जीव (सर०) । [३७] 'वेंकट' और 'काशि०' में नहीँ है । [३८] सिद्ध—देव (वेंकट, काशि०) ।

(दोहा)

भरतखंड में आनि कै कीनौ मोह मिलान।
नारायन कों भजत तहँ नारद बुद्धिनिधान ॥ ४० ॥
आयौ तब पाषंडपुर देस असेषनि जीति।
कीनौ तहाँ मिलान कछु बासर, बाढ़ी प्रीति ॥ ४१ ॥

(सवैया)

कामकुमार से नंदकुमार की केलि-थली जहँ नित्य नई है।
बात की पावनता तन लागत पापिनिहूँ कहँ मुक्तिमई है।
पुष्प सरासन हा घरही बरही रति- कीरति जीति लई है।
पुष्पसरासन श्रीमथुराभव भानभवा गुन भोर भई है ॥ ४२ ॥

इति श्रीकेशवरायविरचितायां चिदानंदमग्नायां विज्ञानगीतायां सप्तद्वीपवर्णनं नाम चतुर्थः प्रभावः ॥ ४ ॥

५

(दोहा)

पाँचैं प्रगट प्रभाव में, कहिबो मिथ्या-मंत्र।
संतत मिथ्यादृष्टि सों, महामोह को तंत्र ॥ १ ॥

महामोह उवाच (कुंडलिया)

देही न्यारो देह तें कहत अयाने लोग।
दुःसह दुख ह्यॉ देखि परलोक करहिंगे भोग।
लोक करहिंगे भोग जोग-संयम व्रत साधें।
भूले जहँ तहँ भ्रमत सकल सोभा सुख बाँधें।
भूले जहँ तहँ भ्रमत होत तन सों न सनेही।
जो झूठो है देह ततो अतिझूठो देही ॥ २ ॥

(दोधक)

तीरथवासी यहै सब जानै। देह तें देही कों भिन्न बखानै।
देह कों देखत ज्यों सब कोऊ। त्यौं किन देही को देखत सोऊ ॥ ३ ॥

---

[४०] तहँ—जन (सर०); जहँ (काशि०)। [४२] बात की—बान सी (काशि०)।

[२] अयाने—सयाने (वेंकट, काशि०)। लोक—परलोक (काशि०)। भ्रमत सकल०—भ्रमत मृषा देखन आगावें (सर०)। अति०—झूठो यह (काशि०)। [३] सब—जग (सर०)। ज्यों—ई (काशि०)। त्यौं—तो (वही)। किन०—कित देखत हैं सब (सर०)।

साँचो जो जीव सदा अविकारी। क्यौं वह होत पुमान ते नारी।
जौं नर नारी समान कै जानौ। तौ परनारि को दोष न मानौ ॥ ४ ॥
जौं तुम देही अवर्न कै लेखौ। देह धरे बहु वर्ननि देखौ।
देही को मानत हौ अविनासी। पातकी होत क्यौं देहविनासी ॥ ५ ॥
जौं तुम देह अनित्य बखानौ। नित्य निरंजन देही को मानौ।
आपनी बात जनावहु काहू। काहे कौं गंगहि हाड़ लै जाहू ॥ ६ ॥

(भुजंगप्रयात)

वहै सास्त्र तातें सदा सत्य लेख्यौ। प्रमासिद्धि ता मध्य प्रत्यक्ष देख्यौ।
धरा तेज वातांबु है तत्त्व चारयौ। सदा इष्ट तौ अर्थ कामै विचारयौ ॥ ७ ॥
यहै लोक स्वर्लोक है मुक्ति मीचै। सदा चारु चार्वाक तें और नीचै।
त्रिलोकौ जहाँ धर्म-धर्माधिकारी। विलोपौ सदा वेद-विद्या-विचारी ॥ ८ ॥

(दोहा)

देखि सबै पाषंडपुर, अपनी सिगरी सृष्टि।
रावर माँझ गए जहाँ, रानी मिथ्यादृष्टि ॥ ९ ॥

(भुजंगप्रयात)

दुरासा जहाँ तृष्निका देह धारैं। दुहूँ ओर दोऊ भलें चौंर ढारैं।
बड़ी आरसी चारु चिंता दिखावै। गुमानी धरै पान निंदा खवावै ॥ १० ॥
पिपासा छुधा छुद्र वीना बजावैं। अलच्छी अलज्जी दुआ गीत गावैं।
लिये छत्र संका असोभानि राचैं। नए नृत्य नाना असंतुष्ट नाचैं ॥ ११ ॥

(दोहा)

अँचवावति मदिरा अरुचि, कुमतिन कथा-विधान।
हिंसा सो हँसि जाति सुनि, रति के वचन पिछान ॥ १२ ॥

राजा (अनुकूल)

आज कछू देखत दुचिताई। लोकन में जद्यपि प्रभुताई।
सासन मेरो सब जग पालै। एक विवेकै मम मन सालै ॥ १३ ॥

---

[४] पुमान०—न मन तें न्यारी (सर०)। [५] मानत०—माता है (काशि०)। [७] चारयौ—चारी (काशि०)। विचारयौ—विचारी (वही)। [८] स्वर्लोक—वो लोक (वेंकट, काशि०)। मीचै—मिंचै (वेंकट)। चारु—चार्य (वेंकट, काशि०)। और—औरु (वेंकट); वोरु (काशि०)। नीचै—निचे (वेंकट)। त्रिलोकौ—त्रिलोपौ (वेंकट); त्रिलोक (सर०), त्रिलोप (काशि०)। विलोपौ०—विलोपो सबै (काशि०)। [११] पिपासा—पियासा (काशि०)। छत्र—अत्र (वेंकट)। नृत्य—नित्य (सर०)। [१२] हँसि—इति (काशि०)। पिछान—प्रमान (सर०); पिखान (काशि०)। [१३] राजा—रानी (काशि०)। प्रभुताई—ठकुराई (सर०)। पालै—धारै (वेंकट, काशि०)। मन-उर (सर०)। सालै—सारै (वेंकट); हारै (काशि०)।

(स्वागता)

कौन भाँति वह जीतन पाऊँ। मंत्र देहि चित ताहि लगाऊँ।
बूझि बूझि हम देखियै मंत्री। पुत्र मित्रजन सोदर तंत्री ॥ १४ ॥

रानी (तोमर)

सुनि राजराज बिचारु। वह सत्रु दीह निहारु।
सहसा न दीजै दाँउ। यह राजनीति सुभाउ ॥ १५ ॥

(भुजगप्रयात)

जु बारानसी में जिते जीव देखौ। सु काहू न संकौ महा साधु लेखौ।
जु ताकों तजौ नाम जो मोहि लाजा। सु बंदै सबै लोक लोकेस राजा ॥१६॥

(दोहा)

गंगा अरु बारानसी, महादेव जिहि ठौर।
पाँउ न धरियै पथ तिहि, सुनौ रसिकसिरमौर ॥ १७ ॥

राजोवाच (भुजंगप्रयात)

कहा कामिनी तैं कही बात मोसों। छमी प्रेम-नातैं कहौं बात तोसों।
वहे ग्राम हौं तौ सु लै ही रह्यौ हौं। सदा सर्बदा लोक लोकेस ह्यौ हौं ॥ १८ ॥
तहाँ लोग मेरे रहैं बेषधारी। जटी दंड मुंडी जती ब्रह्मचारी।
पढ़ैं सास्त्र कों बेद बिद्या बिरोधी। महाचंड पाखंड धर्मी प्रबोधी ॥ १९ ॥

(विजय)

मारत राह उछाहन सों पुर दाहत माह अन्हात उघारैं।
बार-बिलासिनि सों मिलि पीवत मद्य, अनोदक के व्रत पारैं।
चोरी करैं बिभिचार करैं पुनि 'केसव' बस्तुबिचार बिचारैं।
जो निसिवासर कासीपुरी महँ मेरेई लोग अनेक बिहारैं ॥ २० ॥

(तोटक)

यह बात सुनी तरुनी जब ही। हँसि बोलि उठी सु सुनी सब ही।
जिनि भूलहु भर्म मृपानि अबै। हम पै सुनियै पुरधर्म सबै ॥ २१ ॥

---

[१४] स्वागता—राजा तोटक (काशि०)। जन—अत्र (सर०); हम (काशि०)। [१५] राजराज—राजाराज (काशि०) । यह—वह (वही) । सुभाउ—प्रभाउ (वेंकट, काशि०)। [१६] भुजगप्रयात—सुवर्णप्रयात (सर०)। जु बारानसी—बानारसी (सर०, काशि०)। महा—सदा (सर०) । जु ताकों—ताको (सर०, काशि०) । सु बंदै—बंदै (काशि०)। [१७] जिहि—तिहि (वेंकट, काशि०) । रसिक—काम (सर०)। [१८] वहे० —वहै नाम मैं तौ हिये में गह्यौ है वहै गाँउ हो तो सु लेही रह्यौ है (सर०)। [१९] रहैं—रमैं (सर०)। प्रबोधी—परोधी (वेंकट, काशि०) [२०] उघारैं—उचारैं (वेंकट, काशि०)। व्रत—प्रति (वही)। [२१] तरुनी०—जबहीं तब ही (वेंकट); सबही (काशि०)। सु०—सबहीं तबहीं (काशि०)। पै—सैं (वही)। सुनियै०—कहियै प्रभु (सर०)।

इक जज्ञ जजैं तपसानि करैं। इक श्रीहरि श्रीहरि नाम ररैं।
इक वेद-बिचारनि चित्त धरैं। इक न्हान-बिधाननि पाप तरैं ॥ २२ ॥
इक नीर-अहारनि वायु धरैं। इक साधि समाधिन आधि हरैं।
इक सुद्ध सदा भगवंत भजैं। जग जीवनमुक्त सरीर सजैं ॥ २३ ॥

(सुंदरी)

सुंदरि की यह बात सुनी जब। रोष कर्‌यौ कलिनाथ कछू तब।
जानत नाहिन मो बल तू सठ। मैं जग बस्य करौं हठ ही हठ ॥ २४ ॥

इति श्रीमिश्रकेशवरायविरचितायां विज्ञानगीतायां चिदानंदमग्नायां मिथ्यादृष्टि-महामोहमन्त्रवर्णनं नाम पंचमः प्रभावः ॥ ५ ॥

६

(दोहा)

छठैं माँझ तीरथ नदी, महामोह दल भाउ।
गंगा सिव बारानसी, मनिकर्निका प्रभाउ ॥ १ ॥

राजोवाच (दोहा)

मैं जितने तीरथ लए, तितने कहौं बखानि।
त्यौं लैहौं बारानसी, सुनि सुंदरि सुखदानि ॥ २ ॥
मातापुर मायापुरी, महाकाल अघहर्नि।
मलिका अर्जुन मैं लयौ, मिश्रकुमहि गोकर्नि ॥ ३ ॥
महिटंतरु महिकेसरी, चंडीसुर केदार।
फारि कुनख बस कर्‌यौ कुरुखेत कपर्द अपार ॥ ४ ॥
काहिल कोलापुर लयौ, कालिंजर पलु एक।
काँवरु कन्यनि की पुरी, कार्तिक पुष्कर टेक ॥ ५ ॥
गया गयापुर गोमती, गोदावरी बिसेषि।
बिस्वनाथ अरु बिस्वजित, ब्रह्मावर्तहि लेखि ॥ ६ ॥
बिरूपाक्ष त्र्यंबक लयौ, कुसावर्त्त अनयास।
जैनि नृसिंहपुरी लई, नागेस्वरी प्रकास ॥ ७ ॥

---

[२२] धरैं—हरैं (वेंकट, काशि०)। न्हान०—स्नाननि दान तिताप हरैं (सर०); स्नान० (काशि०)। [२३] अहारनि०—पियै भखि वायु रहै (सर०)। आधि—व्याधि (वही)। [२४] नाथ—मोह (सर०)।

[५] काहिल—फैल्यौ (सर०)। पुष्कर०—पुष्पकर (वही)। [७] त्र्यंबक—अकंप (काशि०)।

अवधपुरी पुर जोगिनी, जालंधर सुनि बाल ।
मानसरोबर मानिनी, जगन्नाथ सुबिसाल ॥ ८ ॥
बद्रीवन द्वारावती, अमरावती प्रमान ।
जंबूकाश्रम मैं लयौ, तो बल सुनहि सुजान ॥ ९ ॥
सोमनाथ त्रिपुरंत ह्वै, आलनाथ एकंग ।
हरिक्षेत्र नैमिष सदा, अंसतीर्थ चित्रंग ॥ १० ॥
प्रगट प्रभाव सुरेनुका, हर्नपाप उज्जैनि ।
सूकरपूरनि पुष्करु, अरु प्रयाग मृगनैनि ॥ ११ ॥
वृंदाबन मथुरा लई, कांतिकार कहँ जीति ।
को बपुरी बारानसी, जाकी मानति भीति ॥ १२ ॥
करतोया चर्मानला, चर्मवती सुनि चारु ।
दृषद्वती मंदाकिनी, बिदिसा कृष्ना चारु ॥ १३ ॥
वेदस्मृति ब्रह्मावती, बेनी रंचु बिसेषि ।
सरजू क्षिप्रासेन सुभ, हेमवती जू लेखि ॥ १४ ॥
चित्रोत्पला पिसाचिका, बृषभा बिंध्या जानि ।
तमसा स्रेनी मंजुला, सुक्तिमती उर आनि ॥ १५ ॥
लूनी तापी अंगुली, अभया हिरन दसान ।
निषधावती सुवाहिनी, बिमला बेना जान ॥ १६ ॥
उत्पलावती इच्छुका, भैमरथी सुभकारि ।
वैतरनी अरु सुक्तिमा, बैलासिनी निहारि ॥ १७ ॥
मंदवाहिनी मंदगा, कावेरीहि बखानि ।
त्रिदिवा ताम्रीपन्निका, कुमुद्वतीहि सु मानि ॥ १८ ॥
कृतमालाका लांगली, बंसकरा रिषिका हि ।
माहेंद्री तपती सिवा, पुन्या कौं चित चाहि ॥ १९ ॥

---

[८] यह दोहा 'काशि०' में नहीं है । [९] तो०—तव कु (वेंकट); तव कुल (काशि०) । [१०] त्रिपुरंत—त्रिरंत (वेंकट, काशि०) । अंसतीर्थ—अंसतीसु (वही) । चित्रंग—सचिह्लंग (सर०) । [११] प्रभाव—प्रभासु (वेंकट, काशि०) । हर्नपाप—हर्म्यनापु (वेंकट); हर्म्मजयुघा (काशि०) । सूकर—सकर (वेकंट, काशि०) । [१२] कांतिकार—कातिका (वेंकट, काशि०) । मानति—वर्नति (सर०) । [१३] चर्मानला०—नर्मन्यती चर्मत्वची (सर०); अरु चर्मिका नदी नली (काशि०) । [१४] यह 'वेंकट' और 'काशि०' में नहीं है । [१५] वृषभा—वपचा (वेंकट, काशि०) । सुक्ति—सुक्तिक (काशि०) । [१६] लूनी०—लुपिना पीता (काशि०) । दसान—सान (काशि०); दुमान (सर०) । [१७] सुभकारि—सुभ चारु (वेंकट, काशि०) । बैलासिनी—विमलासिनी (सर०) । [१८] सु मानि—उर आनि (सर०) । [१९] कृतमाला०—कृत्तमालिका लांगुली (सर०) । माहेंद्री०—महेंद्राल तपती सवंसा (वेंकट, काशि०) ।

(भुजंगप्रयात)

सिवा धूतपापा सतद्रू बिपासा। बितस्ता पयस्वी सदा कर्मनासा।
गनौ गंडकी कौसिकी चंद्रभाता। बड़ी सिंधु ऐरावती पारिजाता॥ २० ॥
महासिंधु गोदावरी गोमती सी। इलाबाहु दामाननी देवकी सी।
कुमारी कृपा पापपुंजै नसावै। कलौ बेत्रवंती सु गंगा कहावै॥ २१ ॥

(नाराच)

असेष सर्मदा बिसेष जीति नर्मदा लई।
जगत्प्रकास की सुता कृतांतसोदरी जई।
सरस्वती पतिव्रता चिन्हाउ जोर आपने।
लई जु जन्हु एकही चुरू अँचै सु को गनै॥ २२ ॥

(दोहा)

पावन सरिता सब लई, भरतखंड की बाम।
औरौ नदी अपार को, बरनै तिनके नाम॥ २३ ॥

(तोटक)

बहु दान अनाथनि दै जु डरै। द्विज गाइनि के दिन पायँ परै।
परनारि बिलोकि हिये हहरै। कहि मोसों क्यों दीन बिवेक लरै॥ २४ ॥

(दोहा)

मेरे कुल के सर्बदा, प्रोहित हैं पाखंड।
जाकों चाहत चित्त में, यह सिगरौ ब्रह्मंड॥ २५ ॥

(दोधक)

नित्य तपीनि जपीनि जु भावै। जापक पूजक सों मन लावै।,
तंत्रनि मंत्रनि के उर सोहै। जोधनि बोधनि के मन मोहै॥ २६ ॥
स्नातनि रातनि लै उर धारै। भागि चलै हरिभक्ति बिचारै।
जाहि डरैं सदभाव सयानो। को यह एक बिबेक अयानो॥ २७ ॥
है दुख रोग बड़ो सुत जाके। बंदि परे सिगरे जग ताके।
आनँद रूप बिरूप करे हैं। चित्त अनेक बिबेक टरे हैं॥ २८ ॥

---

[२०] पयस्वी०—प्रयोत्सा (सर०); पयस्वनीवृदा (काशि०)। [२१] दामाननी—दपामनी (वेंकट); दयामनि (काशि०)। [२२] सर्मदा—सर्वदा (सर०)। जगत्प्रकास—जगप्रभास (वेंकट, काशि०)। सुता—सुना (वही)। लई०—लई जु लाइए जु जन्हु एकही (सर०)। [२३] लई—कही (सर०)। अपार—अनेक (वही)। [२४] बहु०—अतिदान अनर्थनि तें (सर०)। दिन—नित (वही)। नारि—दार (वही)। मोसों०—मोकों सु क्यों (वही)। [२५] सर्वदा—सदा (काशि०)। चित्त में—सर्वदा (वेंकट, काशि०)। यह—इहि (वेंकट) [२६] दोधक—मधु (वेंकट); तोटक (काशि०)। [२७] स्नातनि—सांतनि (वेंकट)। भागि चलै—भाँति भए (सर०)। सयानो—समानो (वेंकट, काशि०)। [२८] है—दे (वेंकट)। दुख—दुघ (काशि०)। सिगरे०—जग के नर (सर०)। टरे—डरे (वही)।

वंधु विरोधु वड़ो मम मंत्री। बस्य करै सिगरे जन जंत्री।
वानर बालि वली जिहिँ मार्यौ। रावन को सिगरो कुल जार्यौ॥ २९ ॥
प्रेम डरै हिय मेँ सुनि जाको। एक बिबेक कहा रिपु ताको।
बर्तत झूठ प्रधान हमारे। लोक चतुर्दस जा सहँ हारे॥ ३० ॥
जाय जहाँ तहँ देस नसावै। नित्य नरेसनि भीख मगावै।
सत्य डरात हियैँ अति भारो। को बपुरा सु बिबेक बिचारो॥ ३१ ॥
क्रोध वड़ो दलपत्ति है मेरे। जो जिय माँझ बसै सब केरे।
अस्त्र धरेँ अपमान हमारैँ। देवन के पति रंक कै डारैँ॥ ३२ ॥

(दोहा)

अग्रेसर कुलि कहत हैँ, अपने चित्त बिचार।
दुरद बिनोदन को जहाँ, है केहरि अनुहार॥ ३३ ॥

(दोधक)

राखत लोभ भँडार भरेई। जौ लगि काज कहा न करेई।
मात पिता सुत सोदर छोड़ै। कौन पै सत्रु न अंचल ओड़ै॥ ३४ ॥
सोक दरिद्र अहंकृत देखौ। आलस रोष भले भट लेखौ।
है भ्रम भेद वसीठ सयाने। प्राकृत काम न भेद वखाने॥ ३५ ॥
काम सहायक सोदर मेरो। जीति कर्यौ सिगरो जग चेरो।
या जग मेँ जन रंगन राँचे। गोबिंद गोपिन के सँग नाँचे॥ ३६ ॥
है व्यभिचार वड़ो सुत जाके। इंद्र भयौ भगवंत सु ताके।
पुत्र कलंक भलो तिहि जायौ। सोम को सीस सिंघासन पायौ॥ ३७ ॥
नाम कृतघ्न पिता त्रिय तेरो। ता कहँ जानि सदा गुरु मेरो।
हारि रही वसुधा सब जेती। एक बिबेक कथा कहि केती॥ ३८ ॥

(रूपमाला)

स्वामिघात बिस्वासघातनि मित्रदोषनि देखि।
राजदोष कृतघ्न को सुत मंत्र-दोष बिसेषि।

---

[२९] जन–जग (सर०); जव (काशि०) । जन–जग (सर०)। जंत्री–तंत्री (काशि०)। [३१] नसावैं–बसावै (काशि०) । अति–दुख (सर०)। बपुरा०–को भट एक (वही) [३३] अग्रेसर–अग्यस्वर (काशि०) । कुलि–कलि (वेंकट, काशि०) । जहाँ–महा (सर०) । अनुहार–अनुसार (वही)। [३४] दोधक–मधु (वेंकट); तोटक (काशि०)। सोदर–सुंदरि (सर०)। [३५] रोष–रोग (वेंकट, काशि०)। प्राकृत०–होत भये मुनि बात अयाने (सर०); नाकृत० (काशि०)। [३६] सहा–महा (वेंकट, काशि०)। जीति०–जुवतीनि व जीति कर्यौ (वेंकट); जुवतीनि जाति कर्यौ (काशि०)। इन०–जिहि के संग (सर०)। [३७] भयौ–करयौ (सर०)। सु०–सो आगे (वेंकट, काशि०)। तिहि–जिनि (सर०)।

आसपास सदा रहैं मम सुंदरी सुनि धीर।
को बिबेक अनेकधा करि डारिहैं तब बीर॥ ३६ ॥
ब्रह्मदोष महाबली सुत तें जन्यौ बलिबंड।
छत्रहीन बसुंधरा बहु बार कीन्ह अखंड।
संहर्यौ जदुबंस सो जिहिं बाँधियौ सुरनाथ।
रुद्र जानत हैं प्रतापहि को बिबेक अनाथ॥ ४० ॥

(दोहा)

एक एक जग संहर्यौ, पुनि सिगरे एकत्र।
मो सों प्रभुता को करै, संकर सहित कलत्र॥ ४१ ॥

(तारक)

जब नृप मंत्र कर्यौ रस भीनौ। सुनि त्रिय मौन गही दुख दीनौ।

राजोवाच

अबही नहिँ मौन गहौ तुम रानी। सुख में नहिँ दुक्खनि देहु सयानी॥ ४२ ॥

रानी

हम जाति नारि मति मूढ़ सही। हरुवाय सु बात बनाय कही।
पिय मंत्रनि मंत्रिनि सों कहियै। सुख में दुख देहनि क्यौं दहियै॥ ४३ ॥

राजोवाच

कछु मोसहँ तोसहँ अंतर नाहीं। कहि मंत्र दुर्यौ किहि बूझन जाहीं।

रानी

हित की हित सों दुख दैन कहै जो। जस सों मिलि कै सब काज नसै तो॥ ४४ ॥

राजा

करिबो बहु मंतु तुमैं जोइ भावै।
हित सों हित बात कहें कहि आवै॥ ४५ ॥

---

[३६] स्वामि—विस्वास (काशि०)। विस्वास—स्वामि (वही)। घातनि—घातक (वेंकट, काशि०)। सुत—सुनि (वही)। सुनि—सब (सर०)। [४०] महाबली०—सुपुत्र सुंदरि (सर०)। बहु०—बाधा करी नघ (वेंकट); सो बाधाकरी नख (काशि०)। संहर्यो—सवरौ (काशि०)। जिहिँ—रन (सर०)। [४१] सों—सम (काशि०)। (४२) तारक—तोमर (सर०)। कर्यौ०—सबै करि लीनौ (वही)। त्रिय—ति (काशि०)। तुम—सुनि (सर०); तब (काशि०)। [४३] नारि०—तिया मन (काशि०)। बनाय—दुख पाय (सर०)। पिय०—यह मंत्र मित्र तिन (वही); पिय मंत्र सुमंत्रिन (काशि०)। सुख०—सुख महिँ दुक्ख उर (सर०) [४४] मोसहँ०—मोमन तोसन (काशि०)। तोसहँ—तो त्रिय (सर०)। सों—के (काशि०)। जो—जू (वही)। जस-जिन (सर०)। नसै—बहै (वही)। [४५] 'वेंकट' और 'काशि०' में नहीं है।

रानी (सरस्वती)

गंगाहि नाहिँ नदी कहैं निज आदिब्रह्म अरूप।
संसार-तारन कौं रच्यौ अवतार ह्वै द्रवरूप।
विद्या बिना तपसा बिना बिनु बिस्नु-भक्ति बिधान।
ब्रह्मांड भेदत ब्रह्मघातक पातकी इक न्हान ॥ ४६ ॥

राजा (मधु)

वामन को चरनोदक गंगा। निर्गुन होत क्यौं सागर-संगा।
चित्त विचारि सुलोचनि भाखौ। ह्वै गजगामिनि पर्वत नाखौ ॥ ४७ ॥

रानी (दोहा)

जन्हु अँचै करि काढ़ियौ, बाहिर जंघा फारि।
क्यौं अपवित्र न मानियौ, मुनिगन जौ पै बारि ॥ ४८ ॥

राजा (दोधक)

वामन के पद को प्रिय पानी। जो तुम भागीरथी भव मानी।
पायँ जहाँ बलिराज पखारे। ते जल क्यौं न त्रिलोक सिधारे ॥ ४९ ॥

रानी

वामन को चरनोदकै ऐसो। माधो उमाधव बंदित कैसो।

राजा

तातें सबै जग झूठहि जानौ। साँचि सदा सिव गंगहि मानौ ॥ ५० ॥

बृहन्नारदीय पुराणे—यथा श्लोक

तस्माच्छृणुध्वं विप्रेन्द्रा गंगाया महिमोत्तमा।
ब्रह्मविष्णुशिवैश्चापि पारं गन्तुं न शक्यते ॥ ५१ ॥

रानी (दोहा)

इक विवेक सतसंग जहँ, अरु गंगातटवास।
सपनेहूँ पिय होय नहिँ, तुम पै ताको नास ॥ ५२ ॥

(दोधक)

रुद्र समुद्र सदा तपसा के। देव अदेव सबै जन जाके।
इंद्रहु की प्रभुता हरि लेहीं। चौदह लोक घरीक में देहीं ॥ ५३ ॥

---

[४६] निज—जिनि (सर०); जिति (काशि०)। अरूप—सरूप (वही); अनूप (वही)। ह्वै—पै (काशि०)। द्रव०— भवभूप (सर०)। बिनु—अरु (वही)। इक—जिहि (वही)। [४७] मधु—दोधक (काशि०)। [४९] राजा०—तोटक छंद (काशि०)। दोधक—मधु (बेंकट)। भव०—अज्ञानी (सर०)। [५०] माधो०—माधव माधव वर्तंतु कैसो (बेंकट, काशि०)। बंदित—वर्तंतु (वही)। साँच०—साँचियै एकहि (सर०)। [५१] गंगाया—गंगा (काशि०)। [५२] जहँ—पुनि (सर०)। नहिँ—नगहि (काशि०)। [५३] दोधक—मधु (बेंकट), तोटक (काशि०)। सबै—सदा (काशि०)।

(रूपमाला)

बहु सिद्धि सिद्ध समेत सेवत रोम रोम प्रबोध।
पल मध्य अंड अनेक 'केसव' फोरि डारत क्रोध।
छन की समाधि बिकल्प कल्प अनल्प होत बितीत।
इहि भाँति सों बहुधा पितामह बिस्नु गावत गीत॥ ५४॥

(दोहा)

तिनके सरन बिबेक हैं, कैसें जीतहु कंत।
जब जरि जैहौ काम ज्यौं, तब समुझौगे अंत॥ ५५॥
सिगरे तीरथ सब पुरी, जितने मुनिगन देव।
सब सेवत बारानसी, अपने अपने भेव॥ ५६॥

(सरस्वती)

बारानसी अरु बिंदुमाधव बिस्वनाथ बखानि।
भागीरथी मनिकर्निका यह दिब्यपंचक जानि।
बैकुंठ भूतल मध्य अद्भुत भाँति नित्य प्रकास।
संसार नासहि करत हैं तिनको न कबहूँ नास॥ ५७॥

राजा (दोहा)

कहि देवी मनिकर्निका, नाम भयौ केहि भेव।
कासी में केहि भाँति यह, प्रगट करी केहि देव॥ ५८॥

रानी (रूपमाला)

बारानसी महिँ बिस्नु एक समै कर्‌यौ तप आनि।
जैसो कियौ अति उग्र सो हम पै न जात बखानि।
ताके तपोबल संभु को सिर कंपियौ भुवपाल।
भू में गिरी त्रियकर्न तें मनिकर्निका तिहि काल॥ ५९॥

शंभु (चामर)

माँगियै महानुभाव चित्तवृत्ति मैं लही।
संभु जू प्रसन्न ह्वै सुबात बिस्नु सों कही।

विष्णु

राज देहु जू सु मोहिँ लोकलोक को अबै।
कै अजेय मोहिँ सर्व भाँति सक्ति दै सबै॥ ६०॥

---

[५४] रूपमाला—झूलना (सर०, काशि०)। पल०—पल एक मध्य अनंत (वेंकट, काशि०) केसव—सेवत (सर०)। छन—पल (सर०); जिन्ह (काशि०)। बितीत—अतीत (सर०) [५८] भाँति०—देवता (वेंकट, काशि०)। [५९] रूपमाला—झूलना (काशि०)। जैसो०—भुवलोक में मन कामदा अति पावना पहिचानि (सर०); शिवराधना बहु प्रेम सों श्रमयुक्त तत्पर जानि (काशि०)। ताके—तिनके (वेंकट, काशि०)। त्रिय—प्रिय (वेंकट)। [६०] देहु०—मोहिं देहु जू असेष जंतु के (सर०)। कै—करौ (वेंकट, काशि०); होउँ ज्यौं अजेय सर्व (सर०)। कार—घोर (वेंकट); घार (काशि०)। अघ०—दुखभार (काशि०)।

शंभु (दोहा)

अंतरजामी होइहौ, लच्मी के पति आसु।
एवमस्तु हर हँसि कह्यौ, पूरन होय प्रकासु॥ ६१॥
खोदि लई मनिकर्निका, भूमि चक्र की कोर।
सो थल भरयौ प्रस्वेद-जल भयौ हरन-अघ-घोर॥ ६२॥
तीरथ मे तीरथ भयौ ता दिन ते तेहि ठौर।
नाम भयौ मनिकर्निका देइ सबै सुखभौर॥ ६३॥

(तारक)

वरने अपने सिगरे तुम जोधा। उनके हम पै सुनियै बुधि बोधा।
जबही पिय वस्तु बिचारहि देखो। सिगरो दल राज को होय अलेखो॥ ६४॥
तुम भूले अजौं द्विजदोष भरोसै। जननी न कहूँ सुत को बल कोसै।
द्विजदोष जहीं सु समूल नसै जू। द्विजदोष बिना न कहूँ बिनसै जू॥ ६५॥
अपनो थल ज्यौं प्रभु पावक दाहै। अरु संगतिकारक को गहि चाहै।
द्विजदोष भएँ पिय वंस तिहारे। बल कौन बिबेक-चमूहि बिदारै॥ ६६॥

(दोहा)

यौं ही सोक बिरोध सब, कलह कलुष उर आनि।
स्वामिदोष दै आदि सब, दोष एकही बानि॥ ६७॥

राजा (हरिलीला)

नारिन कों यह बूझत बात जाय। सोइ अयानफलमूल अघाय खाय।
घात सुनें मरन की अति ही डेराय। सब साँचे मरे मरि करि स्वर्ग जाय॥ ६८॥

(सवैया)

लोक बिलोक में राग बिराग में पाठ में आलस वास बसाऊँ।
एक बिवेक कहा बपुरो गुन ज्ञान गुरून के गर्व घटाऊँ।
हौं अपने बिभिचार विचार अचार-विचार अपार बहाऊँ।
धीरज धूर मिलै कहि 'केसव' धर्म के धामनि धूरि जमाऊँ॥ ६९॥

---

[६३] तेहि०—मुनि राज (सर०)। भयो—धर्यौ (वही)। सुख—मनु काज (वही); सुखभौर (वेंकट, काशि०)। [६४] हम पै०—सुनियै बहुधा (सर०)। दल—कुल (वही)। [६५] भूले०—भूलनहूँ (काशि०)) को बल—के बल (वेंकट, काशि०)। दोष—श्राप (काशि०)। [६६] अरु—अनु (वेंकट)। को०—हो हठि (वेंकट); को हठि (काशि०)। वंस०—[illegible] हेत (सर०)। बिदारै—निहारै (वही)। [६७] यौं—जो (वेंकट)। कल—[illegible] (सर०)। उर आनि—अपमान (वही)। [६८] यह—कछु (सर०)। [illegible] (वही)। सब०—साँचेहि मागहि मिलि कै मारि (वही)। [६९] सवैया—[illegible] (सर०); [illegible] (काशि०)। लोक०—जोग में भोग (सर०)। राग—जाग (वेंकट, काशि०)। गर्व०—गर्भ दहाऊँ (सर०)। धूरि—दूध (वही)।

(दोहा)

करी प्रतिज्ञा राज जब, मन क्रम बचन प्रमान।
मंत्र बतावति तरुनि तब, दुख सुख जानि समान॥ ७०॥

रानी (तारक)

सुनियै त्रिय कोँ पिय के दुख तेँ दुख। सब जानत हैँ पिय के सुख तेँ सुख।
तिहि तेँ हित बात कहौँ सु करौ अब। हठ छाड़हु जू मन के मन तेँ सब॥७१॥

(दोहा)

ज्यौँ तुमही सालत सबै त्यौँ वै श्रद्धहि लीन।
जौ उनकोँ श्रद्धा तजै तौ 'केसव' बलहीन॥ ७२॥
श्रद्धा छल बल राज तुम धरि पाखंडहि देहु।
तौ उनको साधन बिटप, फलन फलहि करि तेहु॥ ७३॥

राजा (गीतिका)

त्रिय साधु साधु भली कही यह बात मोसन आजु।
तब तात मोहिँ दियौ हुतौ तिहुँ लोक को जब राजु।
तब ठौर ठौर करी सबै बहु भाँति दासनि भक्ति।
सुनि दैन मैँ तिनकोँ कही जगदीस की सब सक्ति॥ ७४॥
सुचि दंभ कोँ लखि लोभ कोँ निधि रोग कोँ गनि बृद्धि।
गुन गर्व कोँ गरिमा दई कलहैँ दई सब सिद्धि।
बिभिचार कोँ रुचि नित्य ही अपलोक कोँ दइ प्रीति।
महिमा दई महामोह कोँ सब ब्रह्मदोपनि जीति॥ ७५॥

(दोहा)

सुनि सुंदरि पाषंड कोँ, श्रद्धा दैहौँ आजु।
तब बिबेक कोँ जीति कै, कासी करिहौँ राजु॥ ७६॥

इति श्रीमिश्रकेशवरायविरचितायां विज्ञानगीतायां चिदानंदमग्नाया महामोहमिथ्यादृष्टि-संवादवर्णनं नाम षष्ठः प्रभावः॥ ६॥

---

[७०] यह दोहा 'काशि०' मेँ नहीँ है। [७१] तारक—मनोरमा (सर०)। हित०—यह बात सुनौ (वही)। तेँ सब—केसव (वही)। [७२] सालत—सारत (वेंकट, काशि०) केसव—वे सब (सर०, काशि०)। [७३] 'सर०' मेँ नहीँ है। फलन०—फलहि करि अति नेहु (काशि०)। [७४] गीतिका—झूलना (सर०, काशि०)। जब—नव (सर०)। भाँति०—दासनि जो भक्ति (काशि०)। [७५] कोँ गनि०—सोग निबृत्ति (सर०)। दइ—करि (वही)। [७६] कै—करि (काशि०)।

७

(दोहा)

चार्वाक अरु सिष्य को, सातैँ मेँ संबाद।
विनती सब कलिकाल की, उपजै सुनत बिषाद ॥ १ ॥
चार्वाक महामोह कलि काम लोभ को मंत्र।
या सातमेँ प्रभाव मेँ बरनहिँगे सब तंत्र ॥ २ ॥
कह्यौ भैरवी बोलि कै, महामोह सुख पाय।
श्रद्धा गहि पाखंड कोँ, छलबल दीजै आय ॥ ३ ॥

केशवराय

महामोह आए सभा, असतसंग के साथ।
चार्वाक बैठे जहाँ, कहत सिष्य सोँ गाथ ॥ ४ ॥

चार्वाक (दोधक)

देखत है कछु सिष्य सयाने। भूलत हैँ सुनि बेद अयाने।
लाज वई जग खेत जमै जौं। होम करै परलोक फलै तौ ॥ ५ ॥

शिष्य

साँचो जो है जग खैबो रु पीवो। तौ यह झूठ तपोबल पैबो।

चार्वाक

मूढ़ दुरासा के मोदक खाहीँ। तपसा मिस देखत नर्कहि जाहीँ ॥ ६ ॥

(सवैया)

हास विलास विलासनि सोँ मिलि लोचन लोल विलोकन रूरे।
भाँतिनि भाँतिनि के परिरंभन निर्भय राग बिरागनि पूरे।
नागलता-दल-रँग-रँगे अधरामृत-पान कहावत सूरे।
'केसवदास' कहा ब्रत संजम संपति माँझ विपत्तिन कूरे ॥ ७ ॥

शिष्य (दोहा)

तीरथवासी यह कहत, तजत त्रियन के साथ।
कलुपनि मिश्रित विपय-सुख, त्याजनीय है नाथ ॥ ८ ॥

---

[२] 'वेंकट' और 'काशि०' मेँ नहीँ है। [३] सुख पाय—अकुलाइ (काशि०)। [५] बेद—लोग (सर०)। अयाने—पयाने (वेंकट); पुराने (काशि०)। [६] पैबो—लैबो (सर०); दीबो (काशि०)। [७] सवैया—विजय (सर०, काशि०)। सोँ—के कह (सर०)। निर्भय—विभ्रम (वही)। पूरे—भूरे (वही)। कहावत—कहा सुख (वेंकट, काशि०)। कूरे—भूरे (सर०)। [८] सुख—सब (सर०)।

चार्वाक (दोहा)

वै सिगरे मतिमूढ़ हैं अमल जलज मनि डारि।
सीपिन के संग्रह करत 'केसवराय' निहारि ॥ ९ ॥

(दंडक)

माता जिमि पोषति पिता ज्यौं प्रतिपाल करै प्रभु सम सासन करत हेरि हिय सों।
भैया ज्यौं करै सहाय देत है सखा ज्यौं सुख गुरु ह्वै सिखावै सिख हेत जोरि जिय सों।
दासी ज्यौं टहल करै देवी ज्यौं प्रसन्न ह्वै सुधारे परलोक नातो नाहीं काहू बिय सों।
छके हैं अयान-मद छिति के छनक छुद्र और सों सनेह करैं छाँडि ऐसी तिय सों ।१०।

केसवराय (दोहा)

महामोह तव हँसि गहे, चार्वाक के पाय।
चार्वाक आसिष दई, सोभन सुखद सुभाय ॥ ११ ॥

चार्वाक

कलिजुग करत प्रनाम प्रभु, अवलोकौ विषहर्न।
धन्य ति जन सब काल करि, देखत प्रभु के चर्न ॥ १२ ॥

कलियुग (रूपमाला)

सूद्र ज्यौं सब रहत हैं द्विज धर्म कर्म कराल।
नारि जारनि लीन भर्तनि छाँडि कै यहि काल।
दंभ सों नर करत पूजन-न्हान-दान-विधान।
बिस्नु छाँडत सक्ति भूषन पूजनीय प्रमान ॥ १३ ॥

(सवैया)

ब्राह्मन बेचत बेदन कों सु मलेच्छ महीप की सेव करैं जू।
छत्रिय दंडत हैं परजा अपराध बिना द्विजवृत्ति हरैं जू।
छाँडि दयौ क्रय-बिक्रय वैस्यनि छत्रिन ज्यौं हथियार धरैं जू।
पूजत सूद्र सिला धनु चोरत चित्त में राजन कों न डरैं जू ॥ १४ ॥

---

[९] जलज—जमल (सर०)। केसव०—सब राजन के हार (वही)। [१०] दंडक—सवैया (काशि०)। सब—जिमि (वेंकट, काशि०)। भैया—मैश्रा (काशि०)। ह्वै—ज्यौं (वही)। नातो०—सब नातो नाहीं बिय (सर०)। अयान—अथान (काशि०)। छनक०—जु जन कछू (सर०)। [११] गहे—परे (सर०)। सोभन—सोहन (काशि०)। चार्वाक०—आसिष दीने त्रिबिधि त्रिधि (सर०)। [१२] त्रिपहर्न—वृकहर्न (सर०)। [१३] रूपमाला—नाराच (काशि०)। रहत—करत (सर०)। लीन—नील (काशि०)। न्हान—स्नान (वही)। [१४] सवैया—विजय (सर०)। दंडत—छाँड़त (वेंकट, काशि०) पूजत—सेवत (सर०)। चोरत—जोरत (काशि०)। कों न—सो मं (वही)।

(दोहा)

विस्नुभक्ति जग में करी, जद्यपि बिरल प्रचार।
तदपि सांति श्रद्धा सखी, तजति न प्रेम-प्रकार॥ १५॥

राजा

श्रद्धा हम पाषंड कों, दई कलह के तात।
सांति बापुरी मरैगी, श्रवन सुनत ही बात॥ १६॥

काम (रूपमाला)

वाजि बारन बाहने सुत सुंदरी सुखदाय।
क्षेत्र ग्राम पुरी सु पट्टन देस द्वीप बसाय।
भूमिलोक विलोकि पावन ब्रह्मलोकहि पाय।
लोभ होत नए नए नित सांति होति न राय॥ १७॥

मोह (सवैया)

कौन गनै इनि लोकतरीनि बिलोकि बिलोकि जहाजनि बोरे।
लाज विसाल लता लिपटी तन-धीरज-सत्य-तमालनि तोरे।
वंचकता अपमान अयान अलाभ भुजंग भयानक कूरना।
पाट बढ़ौ कहुँ घाट न 'केसव' क्यौं तरि जाय तरंगिनि तृस्ना॥ १८॥

लोभ

भूलत है कुलधर्म सबै तवही जबही वह आनि ग्रसै जू।
'केसव' वेद पुराननि कौन सुनै समुझै न त्रसै न हँसै जू।
देवन तें नरदेवन तें सुत्रिया बर बारन ज्यौं बिलसै जू।
जंत्रन मंत्रन मूरि गनै जग जोवन काम पिसाच बसै जू॥ १९॥

(दोहा)

तातें सांती की कथा, कहै सुकिन्नर-लोक।
जोर मूढ़ कह गूढ़ है, मरिहै श्रद्धा सोक॥ २०॥

इति श्रीकेशवरायविरचितायां विज्ञानगीतायां चिदानंदमग्नायां चार्वाकमहामोहकलिकामलोभमंत्रवर्णन नाम सप्तमः प्रभावः॥ ७॥

---

[१५] प्रकार—पगार (काशि०)। [१६] राजा—मोह (वेंकट)। कलह—कृष्ण (भर०)। मरैगी—मरि गई (वही)। [१७] काम—कलि (वेंकट); रूपमाला (काशि०)। बाहने—मानिका (काशि०)। पट्टन—पघन (वेंकट); पमुघन (काशि०)। लोक—ग्राम (काशि०)। नए०—नए निरनूर (वेंकट); नए नितहिं त्यों (काशि०)। [१८] मोह—विजय (भर०)। [१९] भूलत—भूतल (काशि०)। जबहीं—ग्रबहीं (वही)। हँसै जू—हसै जू (वही)। सुत्रिया—नर तें (वही)। [२०] सुकिन्नरलोक—करै नर लोग (काशि०)। मूढ़—मूक (भर०)।

[इति०] कलिकामलोभ—कलिदंभ (वेंकट, काशि०)।



(दोहा)

सांती करुना कों कह्यौ, आठैं माँझ बिषाद।
पाषंडिन्ह को बर्निबो, श्रद्धारहित बिबाद॥ १॥

केशवराय

परंपरा सिगरी पुरी, पूरि रही दुखदात।
सांती के श्रवननि परी, कैसेहूँ यह बात॥ २॥

शांति

गंगा-काछनि चरति ही, पूजत साधु अपार।
पाई कपिला गाय सी, पट्ठु पाषंड चँडार॥ ३॥

(रूपमाला)

मो बिना न अन्हाति जेंवति करति नाहिँन पान।
नैकु के बिछुरे भटू घट में न राखति प्रान।
चेतिका करुना रची सब छाँडि और उपाय।
क्यौं जियौं जननी बिना मरिहूँ मिलै जौ आय॥ ४॥
नैन नीरनि भरि कही करुना सखी यह बात।

करुणा

मोहिँ जीवत क्यौं मरै सुनि मंत्र अब अवदात।
जोग जाग बिराग के थल सूर-नंदिनि-तीर।
पुन्य आश्रम ठौर ठौर बिलोकियै धरि धीर॥ ५॥

शांति (दोहा)

धाम धाम करि लेखियौ, जल थल सुखद सुभाउ।
कोऊ लेत न भूलिहू, सखि श्रद्धा को नाउ॥ ६॥

करुणा (दोहा)

सपनेहूँ पाषंड के, श्रद्धा परै न हाथ।

---

[१] रहित—सहित (सर०); हेत (काशि०)। [३] गंगा—जमुना (सर०)। [४] रूपमाला—झूलना (सर०)। मो—शांति (काशि०)। चेतिका—चेटिका (वही)। रची०—सखी सजि (सर०)। [५] नीरनि०—भरि करुना कही सुनहू (काशि०)। मंत्र०—मंत्री अवदात (वही)। जाग—राग (वेंकट, काशि०)। पुन्य—मुनिन (वही) [६] 'वेंकट' में नहीं है। 'काशि०' में निम्नलिखित छंद है—

बरनादिक आश्रम धर्म कर्मनि सर्ब थल सुविचारि।
षट अष्टदस चारिऔ सठि चारु चारि निहारि॥

[७] विधि—शाति विधि (वेंकट, काशि०)। मए०—मे कहा (वही)।

शांति

बिधि प्रतिकूल भए सखी, कही न सुनियै गाथ ॥ ७ ॥

(रूपमाला)

रघुनाथ की तरुनी हरी दसकंध अंध लबार।
अरु ज्यौं दई दुरजोधनैं गहि द्रौपदी करतार।
निज ज्ञाति ज्यौं कपटीन कर त्यौं श्रद्धऊ परि जाय।
सुनियै न कहा विलोकियै बहु काल जीवन पाय ॥ ८ ॥

(दोहा)

तातें पुनिहूँ देखियै, नीकें कै अब जाय।
जहाँ वसत कलिकाल अब, पाषंडन को राय ॥ ९ ॥

करुणा (रूपमाला)

यह कौन आवत है सखी मल-पंक-अंकित अंग।
सिर-केस लुंचित नग्न हाथ सिखी-सिखंड सुरंग।
यह नर्क को कोउ जीव है जिनि याहि देखि डेराहि।
निज जानियै यह श्रावका अति दूरि तें तजि ताहि ॥ १० ॥

श्रावक (दोहा)

देह गेह नवद्वार में, दीप-समान लसंत।
मुक्तिहु तें अति देत सुख, सेवहु श्रीअरहंत ॥ ११ ॥

(रूपमाला)

मिष्ट भोजन बीटिका मृगनाभिमै घनसार।
अंग सुभ्र सुगंध संजुत सेव श्रीसुकुमार।
कन्यका भगिनी वधू मिलि हौं रमौं दिन राति।
चित्त म्लान न कीजिये गुरु पूजियै इहि भाँति ॥ १२ ॥

करुणा (नगस्वरूपिणी)

तमाल तूल तुंग है। पिसंग चीर अंग है।
सचूड़ मुंड मुंडियै। सखी सु को विलोकियै ॥ १३ ॥

शांति (दोहा)

बुद्धागम यह जानियै, सजनी भिक्षुक-रूप।
सुनि लीजैं कछु कहत है, पुस्तक-हस्त विरूप ॥ १४ ॥

---

[८] रूपमाला—झूलना (सर०, काशि०)। ज्ञात—ज्ञासि (वेंकट); दासि (काशि०) [illegible]—योग (सर०)। [९] यह 'काशि०' में नहीं है। [१०] रूपमाला—झूलना (सर०, काशि०)। राय—राम (काशि०)। अति—अब (सर०)। [११] मुक्ति०—मुक्ति [illegible] देत नित सेवन (सर०)। [१२] रूपमाला—झूलना (काशि०)। सेव—सेज (सर०)। हौं—मौ (वेंकट, काशि०)।

भिक्षुक (रूपमाला)

हम दिव्य दृष्टि बिलोकहीं सुख भुक्ति मुक्ति समान।
जग मध्य है यति-सिद्धि सुद्ध सुनौ सुसिष्य प्रमान।
कबहूँ न रोकहु भिक्षुकै रमनीन सों रममान।
निज चित्त कोमल ईरषा तजि दूरि ताहि सुजान ॥ १५ ॥
कहि कौन को उपदेस है सर्बज्ञ सिद्धिहि जानि।
सरबज्ञ बुद्ध कहा कहै बहु ग्रंथ ग्रंथनि मानि ॥ १६ ॥

श्रावक

अब तोहि है सर्वज्ञता कछु बात ही महँ मूढ़।
हमहूँ जु है सर्वज्ञता मम दास तो कुल गूढ़ ॥ १७ ॥

(दोहा)

छाँडि सासना बौध की, अरहंतन की मानि।
सुरता छाँडि पिसाचता, काहे कों करि बानि ॥ १८ ॥

भिक्षुक

तन मन जीवन जाहि लौं, लोक बिलोक बिलास।
ज्यौं बाहर के दीप पै, सदन न होत प्रकास ॥ १९ ॥

(नलिनी)

लिये नृकपाल नृदेह कराल। करे नरमुंडनि की उर माल।
पिये नरश्रोन मिल्यौ मदिरा सों। कपालिक देखियै भीम प्रभा सों ॥ २० ॥

श्रावक (दोहा)

कापालिक बीभत्स बपु कैसे तेरे धर्म।
पूजत हौ किहि देव कों करि करि कैसे कर्म ॥ २१ ॥

कापालिक (सोरठा)

केवल अंजन-जोग, देखौं हौं जगदीस कों।
सुनौ सयाने लोग, जग तें भिन्न अभिन्न है ॥ २२ ॥

---

[१५] रूपमाला—झूलना (सर०, काशि०)। दृष्टि—चक्षु (सर०)। यति०—यहि सिद्धि सम्र (सर०); यह० (काशि०)। तजि०—करि जाहि दूर प्रमान (सर०)। [१६] 'सर०' में नहीं है। [१७] मम—मद (वेंकट, काशि०)। 'सर०' में नहीं है। [१८] बौध की—बोध की करु (काशि०)। काहे०—कहि को करै प्रमान (सर०)। [१९] जाहि लौं०—जाइ यों ज्यौं कवि लोग (काशि०)। बाहर—घट में (सर०)। पै—सों (काशि०)। [२०] उर०—बनमाला (सर०)। देखियै—आइयो (वही)। [२२] अंजन—अंगनि (वेंकट, काशि०)। जग—जिय (सर)।

(चर्चरी)

मेदमिश्रित मांस होमत अग्नि में बहु भाँति सों।
सुद्ध ब्रह्मकपाल सोनित कों पियौं दिन राति सों।
विप्रबालकजाल लै बलि देत हौं न हियैं लजौं।
देव सिद्ध प्रसिद्ध कन्यनि सों रमौं भव कों भजौं ॥ २३ ॥

केशवराय (दोहा)

सांती करुना भजि चलीं, कान मूँदि कै हाथ।
संन्यासी इक देखियौ, सिष्यनि लीने साथ ॥ २४ ॥

(रूपमाला)

कौपीनमंडित दंड स्यों नख काँख दीरघ बार।
मालाक्ष सोभित हस्त पुस्तक करत बस्तु-बिचार।
संसार को बहुधा बिरोध कुचित्त सोधक जानि।
ठाढ़ी भई तहँ सांति स्यों करुना सखी सुख मानि ॥ २५ ॥

शिष्य (दोहा)

सब विधि संजम नियम सों, धोए प्रभु के पाय।
हमहूँ दीजै सिद्धि कछु, सोभन सुखद सुभाय ॥ २६ ॥

संन्यासी (रूपमाला)

सीखौ सबै मिलि धातुकर्मनि द्रव्य बाढ़त जाय।
आकर्षनादि उचाट मारन बसीकर्न उपाय।
देहौं अदृष्टनि नैन अंजन अग्नि-बंधन नीर।
सिच्छा कहौं परकायमध्यप्रवेस की धरि धीर ॥ २७ ॥

(दोहा)

कान मूँदि वे भजि गईं, जी धरि दीह विषाद।
सूद्र जहाँ त्रिय-वेष धरि, ताको सुनौ विवाद ॥ २८ ॥

ऋषि (हीर)

कौन करम कौन धरम कौन सजत काम।

[२३] चर्चरी—नाराच (काशि०)। कपाल—खवाल (सर०)। देव—जच्छ (वही) [२४] केशवराय—श्रीशिव उवाच (काशि०)। कान०—नैनन दै कै (सर०)। [२५] रूपमाला—[illegible] (सर०); चर्चरी (काशि०)। सांति०—देखिकै (वही)। [२६] सब—[illegible] (वेंकट, काशि०)। हमहूँ०—हमको सब बिधि दीजियै सिद्धि सघन सुखदाइ (सर०)। [२७] संन्यासी—मारकंड (काशि०)। उपाय—[illegible] (वही)। देहौं—हौ (वही)। नीर—[illegible] (सर०)। [२८] भजि—तजि (वेंकट, काशि०)। ताको०—तासों करत (सर०)।

शूद्र

राध [बरन] झूठ भषत नित्य ररत नाम।

नारी

ज्ञासि तिथिहि छाँडि करत भोजन न अचेत।

शूद्र

ज्ञासिन परसाद-कननि पूजत हरि हेत ॥ २९ ॥

नारीवेष (दोहा)

ज्ञासि तजें पइहै नरक, पावत कहा प्रसाद।

शूद्र

स्यामवदनी-भाग हौं लावत छाँडि विषाद ॥ ३० ॥

नारीवेष (चामर)

कौन बेद मध्य देव स्यामवंदनी कही।

शूद्र

बेद को पुरानपुंज हौं न मानिहौं सही।
राधिका-कुमारिकाहि नित्य स्याम वंदही।
तत्र कुंडमृत्तिका सु स्यामवंदनी कही ॥ ३१ ॥

नारीवेष (दोहा)

जौ तू राधाकुंड की माटी मानत इष्ट।
तौ तू मेरो सिष्य ह्वै देखै बस्तु अदृष्ट ॥ ३२ ॥

शूद्र (दोहा)

पीछे ह्वैहौं सिष्य हौं, पहिलें सुनौं विचार।
कौन हेतु तें तूँ करयौ नारी को सिंगार ॥ ३३ ॥

नारीवेष (तोमर)

तप जाप मंत्र सजज्ञ। मन में तजै गुनि अज्ञ।
बहु पाइजै जिहि सर्म। यह मैं धरयौ सखि धर्म ॥ ३४ ॥

शूद्र (तारक)

पतिनी प्रिय तोहि किधौं पति भावै।

---

[३०] पइहै०—परिहरै नर (वेंकट, काशि०)। [३१] पुरान—प्रमान (वेंकट, काशि०)। तत्र—चित्र (काशि०)। कही—सही (वेंकट, काशि०)। [३३] तें तूँ—नर को (सर०)। [३४] यह 'काशि०' में नहीं है।

नारीवेष

यहई व्रत तौ पति कों उपजावै।

शूद्र

नरदेह तजें मरि होय सु नारी।
तब होय भलैं पति कौं अधिकारी ॥ ३५ ॥

नारीवेष (दोहा)

ह्वैहौं याही देह तें, नर तें सुंदरि नारि।
राधाजू की ह्वै सखी, मिलिहौं स्याम निहारि ॥ ३६ ॥

शूद्र (तारक)

यह जानत हौं जड़ ही बहकायौ। कहि जीवत को नर नारि कहायौ।
वह साधना कौन मिलै जिहि राधा। हमहूँ उपजी जिय साध अगाधा ॥ ३७ ॥

नारीवेष

अब तो सों कहौं जिनि काहु सुनावै। सुनि जाहि सुनें उर और न आवै।
तीरथ दान सबै व्रत छाँडै। सो इहि साधन सों हित माँडै ॥ ३८ ॥

शूद्र

वेद को भेद सु व्यासहि पायौ। याहि तें नाहिँ पुराननि गायौ।
कौनहिँ भाँतिनि सों तुम जान्यौ। जानि कै अद्भुत मंत्र बखान्यौ ॥ ३९ ॥

(सरस्वती)

एक अद्भुत मंत्र तामहिँ ताहि साधत कोय।

नारीवेष

जो त्रिकोटि जपै सुमंत्रहि नारियै तब होय।
नारि ह्वै तब राधिकाकृत कुंड माहिँ अन्हाय।
राधिका सखि ह्वै मिलै तब स्यामसुंदर पाय ॥ ४० ॥

---

[३५] उपजावै–पहुँचावै (सर०)। नरदेह–देह (काशि०)। अधिकारी–हितकारी (वही)। [३६] देही तें–देहही (वेंकट, काशि०)। [३७] जड़–भ्रात (वेंकट)। बहकायो–दहकायो (वही)। को–क्यों (सर०)। [३८] सुनि–तव (सर०)। हित–रति (सर०)। [३९] भाँतिनि–भागनि (वेंकट, काशि०)। सों–तें (काशि०)। [४०] जो–जारै (वेंकट, काशि०)। सु मंत्रहि०–नवहि वह नारि निस्चै होइ (काशि०)। [illegible]–[illegible] (वही)। माहिँ–माँझ (वेंकट, काशि०)।

(दोहा)

कान मूँदि यह सुनतहीँ, भागी कहि कहि त्राहि।
श्रद्धा की आसा बँधी, देखति ही उर दाहि ॥ ४१ ॥

करुणा (विजय)

चंदमुखीन मेँ चारु चकोर कि चंद चकोरन मेँ रुचि रोहै।
लोचन लोल कपोलनि मध्य बिलोकत यौँ उपमा कहँ टोहै।
सुंदरता सरसीन मेँ मानहु मीन मनोजन के मन मोहै।
मानिक सोँ मनिमंडल मेँ कहि को यह बालबधून मेँ सोहै ॥ ४२ ॥

शांति (दोहा)

नित्यबिहारनि की मढ़ी, त्रियगन देखि सिहाति।
एक पियति चरनोदकनि, एक उगारनि खाति ॥ ४३ ॥

पुत्री दच्छिनराज की, आई तजि कुल-तंत्र।
देउ कृपा करि याहि प्रभु नित्यबिहारी-मंत्र ॥ ४४ ॥

सेवैगी तुमकोँ सदन, छोड़ि जु सबै बिकल्प।
तन धन मन को प्रथम ही, करवाए संकल्प ॥ ४५ ॥

सिखए मदिर माँझ लै, मोहन मंत्र-बिधान।
उन दीनी गुरुदच्छिना, सधर अधर मधुपान ॥ ४६ ॥

शांति (तारक)

इनको कबहूँ न बिलोकन कीजै। अरु यौँ करियै तौ निरै पग दीजै।
बिपदा महँ आनि भजौ दुख कीजै। बरु बूड़ि नदी मरियै बिष पीजै ॥४७॥

(दोहा)

इहि बिधि पाखंडीन के, थलनि बिलोकि प्रकास।
बृंदा देवी पहँ गई, बूझन 'केसवदास' ॥ ४८ ॥

जब लागी देहै तजन, बानी भई अकास।
सुख सोँ श्रद्धा मिलन अब, ह्वैहै 'केसवदास' ॥ ४९ ॥

---

[४१] कहि०—करि करि (सर०)। [४२] उपमा०—उपमानि कोँ (सर०)। [४३] नित्य०—राधावल्लभ कोठढी (सर०)। मढ़ी—थली (काशि०)। उगारनि—उसारनि (वेंकट)। [४४] याहि—चाहि (काशि०)। [४५] तुमकोँ०—गोविंद सम (सर०, काशि०)। [४७] शाति—श्री शिव (काशि०)। कीजै—पैयै (सर०)। बरु बूड़ि—बलु (काशि०)। पीजै—खैयै (सर०)।

पूजा सालग्राम की करि षोडस उपचार।
वंदन आठों अंग तें, करति हुती तिहि बार॥ ५०॥

इति श्रीमिश्रकेशवरायावरचितायां श्रीचिदानंदमग्नायां विज्ञानगीतायां पाषंडधर्मवर्णनं नाम अष्टमः प्रभावः॥ ८॥

९

(दोहा)

नवें मॉझ श्रद्धा मिलन हिय-बिवेक बैराग।
राजधर्मबर्नन सबै उद्यम कथा सभाग॥ १॥
वृंदा देवी हँसि मिली श्रद्धहि कंठ लगाय।
कुसल प्रस्न बूझी सबै कहि, केसव' सुख पाय॥ २॥
मथुरा वृंदावन सबै ढूँढ्यौ देवि असेषु।
कबहुँ न श्रद्धा देखियै चित बिचार करि देखु॥ ३॥

श्रद्धा (सरस्वती)

ग्रसी हुती हौं भैरवी लइ बिस्नुभक्ति छुड़ाय।
ताकों मिलौं तुम जाय जी सुख पाय दुक्ख नसाय।
दौरि दुर्बल मात गातनि की भली कुसलात।
श्रद्धा विलोकी दूरि तें तिन पंथ में अवदात॥ ४॥

(तारक)

निज आजु जियै कुल 'केसव' कोऊ।
अति कोंपति गातनि रोवति दोऊ।
अकुलाय मिली अति आतुर भारी।
चितवै चहुँधा बिन जीव निहारी॥ ५॥

श्रद्धा (दोहा)

महा भयानक भैरवी देखी सुनी न जाति।
देखति हौं दसहूँ दिसा मेरो चित्त चवाति॥ ६॥

[५०] बार—काल (वेंकट, सर०, काशि०)।
[१] नवें—नयें (काशि०)। मधें—प्रगट (सर०)। [२] श्रद्धहि०—नीके हाट (काशि०)। [४] नसाय—गमाय (सर०)। दुर्बल—दुःखी मुनि (वेंकट, काशि०)। श्रद्धा—सु (वही)। तिन०—पथ में आवत दर (वेंकट); पंथ में अति स्रवत उर (काशि०)। [५] [illegible] (काशि०)। दोऊ—कोऊ (वही)। निहारी—बिहारी (वेंकट, काशि०)। [६] महा—कहना मांने (सर०)। चवाति—चलति (वही)।

शांति

महापापिनी तें बची, माता कौन उपाय ।

श्रद्धा

बिस्नुभक्ति भ्रूभंगही, तातें लई छुड़ाय ॥ ७ ॥

शांति

बिस्नुभक्ति को संग पल, तजै न नेहन मात ।

श्रद्धा

पठई हुती बिबेक सों, कहन गूढ़ की बात ॥ ८ ॥
सांती श्रीहरिभक्ति पै, गई सुनतहीं बात ।
करुना जुत श्रद्धा गई, जहँ बिबेक नर-तात ॥ ९ ॥

(रूपमाला)

बाग राउर में बिराजत जहँ नंदिनिकूल ।
जत्र तत्र अनेक रंगनि सोभियै फल फूल ॥
बुद्धि के सँग सोभियै तहँ राजराज बिबेक ।
रेनुकामय सुद्ध आसन चितवै प्रभु एक ॥ १० ॥

(गीतिका)

गुनगान मानबिधान सों कल्यान दान सयान सों ।
अनुराग जाग बिराग भाग सँजोग भोग प्रमान सों ।
सुख सील सत्य सँतोष सुद्धस्वरूप आनँद हास सों ।
तप तेज जाप प्रताप संयम नेम प्रेम हुलास सों ॥ ११ ॥

(दोहा)

धीर धारिनी ज्ञान सम-दम सुभाव आचार ।
बल-बिक्रम सुभ आदि दै सकल धर्म-परिवार ॥ १२ ॥

(रूपमाला)

बुद्धि की सजनी छमा सुचि सिद्धि कीरति प्रीति ।
बृद्धि सुंदरता सदा रुचि माधुरीजुत जीति ।
धीरता अवधारना तपसा प्रभा अति उक्ति ।
बर्नता अवधानता सुसमाधि संतत जुक्ति ॥ १३ ॥

---

[७] 'वेंकट' और 'काशि०' में नहीं है। [८] पल—तोहि (काशि०)। तजै०—तजत नेह तो (वेंकट); तजवेहु तौ नहिं (काशि०)। हुती—कहन (सर०)। चहन—परम (वही)। [९] नर०—नृपनाथ (सर०)। मन तात (काशि०)। [१०] रूपमाला—भूलना (सर०), सरस्वती (काशि०)। राउर०—राग रमें (वेंकट, काशि०)। चितवै—चित्त में (वेंकट)। [११] भोग—जोग (सर०)। [१२] ज्ञान०—ध्यान सब सम (सर०)। बल—बलि बिक्रम रूप (वही)। [१३] प्रीति—राति (सर०)।

(दोहा)

राजधर्म सतसंगजुत सोभत है सुखदाय ।
श्रद्धा करुनाजुत गई दई आसिषा जाय ॥ १४ ॥

(स्वागता)

राजराज उठि पायनि लागे । राजधर्म सतसंग सभागे ।
राजपत्नि उठि कंठ लगाई । सिद्धि बृद्धि पग धोवन धाई ॥ १५ ॥

(दोहा)

प्रथम प्रस्न कुसलात कहि तब बूझी नृपनाथ ।
करुनाजुत श्रद्धा गई कहन आपनी गाथ ॥ १६ ॥

श्रद्धा

ग्रसी हुती हौं भैरवी महामोह के हेतु ।
बिस्नुभक्ति हौं छीनि कै पठई राजनिकेत ॥ १७ ॥
सासन श्रीहरिभक्तिजू दई कृपा करि एह ।
लीजै जू सिर मानि कै कीजै निहसंदेह ॥ १८ ॥

(विजय)

काम के काम अकाम करौ अब बेगि अकामनि आनि अरौ जू ।
मोह के मोह कोँ लोभ के लोभ कोँ क्रोध के क्रोध कोँ नास करौ जू ।
कीजै प्रवृत्ति निवृत्ति प्रवृत्ति के पंथ निवृत्ति के पायँ धरौ जू ।
आपने वाप कोँ आपने हाथ कै जीवहि जीवनमुक्त करौ जू ॥ १९ ॥

राजा (दोहा)

सासन श्रीहरिभक्ति को सबकोँ सदा प्रमान ।
सुनि श्रद्धा इहि भाँति कै हम कोँ कठिन विधान ॥ २० ॥

(रूपमाला)

तात मात त्रिमात सोदर बंधुवर्ग असेष ।
कौन भाँतिनि हौं हतौं सतसंत संग सुवेष ।
पाप कै अपलोक कै त्रनितानि दै बहु सोक ।
कोप दै बहु भाँति सोकनि घालि लोक बिलोक ॥ २१ ॥

---

[१४] 'काशि०' मेँ केवल 'ई दई आसिष जाइ' ही है, शेष नहीँ है। [१५] बृद्धि—ऋद्धि (सर०)। [१६] प्रथम०—कुसल प्रस्न सब बूझि कै (सर०)। [१८] लीजै जू—लीजै प्रभु (सर०)। निहसंदेह—नहिँ सँदेह (वेंकट); कछु न संदेह (काशि०)। [१९] करौ०—कै बेगि अकामनि कामनि (सर०) निवृत्ति प्रवृत्ति—प्रवृत्तिन के पुनि (वही)। कै—सोँ (सर०, काशि०)। [२०] इहि—सब (सर०)। [२१] कोप—सुखेप (सर०)। संग सुवेष—सुविसेष (वेंकट, काशि०)। कै—सोँ (सर०); सौं (काशि०)। सोकनि—तर्कनि (सर०)।

सतसंग

राजराज भली कही यह बात नित्य प्रमान।
मित्र कौन जु सत्रु को जग आपु रूप समान।
सर्वदा सब भाँति सेवहु एक आनँदसक्ति।
और बात न मानियै मन छोड़ि श्रीहरिभक्ति ॥ २२ ॥

राजधर्म (दोहा)

राजा ह्वै प्रभु जिनि कहौ तपसी की सी बात।
सिंह जियत क्यौं मृगन सों नातो मानै तात ॥ २३ ॥
दान दया मति सूरता सत्य प्रजाप्रतिपाल।
दंडनीति ये धर्म हैं राजन के सब काल ॥ २४ ॥

(रूपमाला)

दान दीजत विज्ञ कों अति अज्ञ कों बस मीत।
दीन कों द्विजबर्न कों बहु भूख भूषित भीत।
दीन देखि दया करै अति बाल कों भुवपाल।
गाय कों त्रियजाति कों द्विजजाति कों सब काल ॥ २५ ॥

---

[२२] मित्र०—कौन सत्रु असत्रु को सब (सर०); कौन सत्रु को मित्र है (काशि०)। सेवहु—बहु करि (वेंकट, काशि०)। मानियै०—आनियै डर छोड़ि कै (सर०)।

इसके अनंतर 'काशि०' में ये दो सवैये हैं—

कबित्त—देह को जीवनवृति वहै प्रभु है सिगरे जग को जेहि दैयै।
आवत ज्यौं अनउद्यम तें दुप त्यों सुष पूरब के कृत पैयै।
राज औ रंकु सुराजु करौ सब काहे को केसव काहू डरैयै।
मारनहार उबारनहार सु तो सबके सिर ऊपर हैयै ॥

॥ यथा ॥ हाथि न साथि न घोरे न चेरे न गाँऊँ न ठाँऊँ को ठाट बिलैहै।
तात न मात न पुत्र न मित्र न बित्त न अंग न संग न रैहै।
केसव काम को राम बिसारत और निकाम है कामु न ऐहै।
चेतु रे चेतु अजो चित अंतर अंतक ओक अनेलोइ जैहै।

[२३] जिनि०—करत हौं (सर०)। [२४] दंडनीति०—राजधर्म मे दह (सर०)।

इसके अनंतर 'काशि०' में यह अधिक है—

प्रजा प्रतंग्या पुन्य पन परम प्रताप प्रसिद्ध।
सासन नासन सत्रु को बल बिबेक की बृद्धि।
दंड अनुग्रह धीरता सत्य सूरता दान।
कोस दोसयुत बर्नियै उद्यम छमानिधान ॥

[२५] बस—मस (काशि०)। बर्न—वर्ग (सर०)। भीत—रीत (वही)। बाल-अज्ञ (वेंकट, काशि०)।

(दोहा)

धरनी कों धन धर्म कों, सत्य सील संतान।
नृप अपने उद्धार कों, सदा रहत मतिमान ॥ २६ ॥

(रूपमाला)

सूरता रन सत्रु को मन इंद्रियादिक जानि।
सत्य काय मनो बचादिक संपदा बिपदानि।
चोर तें बटपार तें व्यभिचार तें सब काल।
ईति तें ठग लोग तें जु प्रजानि को प्रतिपाल ॥ २७ ॥

(दोहा)

सखा सहोदर सुत सजन गुरुहू को अपराधु।
छमै न राजा बिप्रहूँ बनिता बिहरत साधु ॥ २८ ॥

(दोधक)

संतत भोगनि में रस जाके। राज नसै अरु पाप प्रजा के।
तातें महीपति दंड सँचारैं। दंड विना नर धर्म न धारैं ॥ २९ ॥

(दोहा)

कै तुम तजौ कहायवो राजा आजु बिबेक।
महामोह कों दंड कै दीजै भाँति अनेक ॥ ३० ॥

राजा

जद्यपि ऐसोई सदा आदि अंत है राजु।
तदपि आपने बंस कों कैसे मारौं आजु ॥ ३१ ॥

गीतायां यथा श्रीकृष्ण अर्जुनं प्रति

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविंद किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ३२ ॥

राजधर्म (दोधक)

हो हठ ऐसो जुधिष्ठिर कीनौ। लोग रहे कहि क्यौं हू न दीनौ।
अंत खिजाय कै जुद्ध सँचारे। देस तें नारिसमेत निकारे ॥ ३३ ॥

---

[२६] उद्धार—उर आनि कै (सर०)। [२८] सुत०—पुत्र सम (वेंकट, काशि०)। बिहरत—सों फहि (सर०)। [२९] भोगनि०—सो छिन हीन स (सर०); सो नृप भोगनि (काशि०)। अरु—दुख (काशि०)। सँचारैं—प्रचारे (वही)। नर—द्विज (सर०)। [३०] दीजै—डारौ (काशि०)। [३१] राजा—विवेक (सर०, काशि०) तदपि—तदपी (काशि०)। बंस—बंधु (सर०) को—मन (काशि०)। [३२] 'वेंकट' और 'काशि०' में नहीं है। [३३] कीनौ—ठान्यौ (सर०)। दीनौ—मान्यौ (वही)। हैं०—विरोध प्रचारे (वही)। देस—घर मांझ (वेंकट, काशि०)। नारि०—नारिन जाय निकारे (सर०)।

राजा (दोहा)

बंधुनास अर्जुन कियौ श्रीहरि के उपदेस।
तिनहीं अघमोचन कह्यौ होइहि बारिप्रबेस ॥ ३४ ॥

राजधर्म (स्वागता)

धर्म छाँडि उनि जुद्ध प्रकासे। कर्न द्रोन छलि भीषम नासे।
पाप मारि प्रभु धर्म सँचारौ। लोकलोक जस क्यौं न पसारौ ॥ ३५ ॥

विवेक

बाप सों जुद्ध कहौ किनि कीनौ। आजु चल्यौ यह धर्म नवीनौ।
एक पुरातन बात सुनावौं। मोह के मोह तें मोहिं छुड़ावौं ॥ ३६ ॥

राजधर्म (दोहा)

रामचंद्र जगच्चंद्र सों कीन्हौ हो संग्राम।
रामचंद्र के सुतनि ही बाजि गह्यौ गुनग्राम ॥ ३७ ॥

(दंडक)

साथ न सयानो कोऊ हाथन न हथियार,
रघुनाथ जज्ञ को तुरंग गाहि राख्यौई।
काछन कछौटी सिर थोरे थोरे काकपच्छ,
पाँचही बरस किन जुद्ध अभिलाख्यौई।
नील नल अंगद सहित जामवंत हनुमंत,
से अनंत जिन नीरनिधि नाख्यौई।
'केसौराय' दीपदीप भूपनि सों रघुकुल,
कुसलव जीति कै बिजयरस चाख्यौई ॥ ३८ ॥

विवेक (तोटक)

अनजानतहीं उन रोष धरे। पहिचानि पिता तब पायँ परे।
हम जानि पिता रन क्यौं हनियै। यह धर्मकथा कहि क्यौं गुनियै ॥ ३९ ॥

राजधर्म (दोधक)

जद्यपि हैं अति धर्मप्रबीने। जुद्ध मरुत्त पिता सह कीने।
अर्जुन के सुत अर्जुन ही को। सीस हत्यौ रन में अति नीको ॥ ४० ॥

---

[३४] मोचन—नासन (सर०)। कह्यौ—कियो (काशि०)। बारि०—बारे देस (वेंकट, काशि०)। [३५] 'धर्म .... नासे' 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। पाप—बाप (काशि०)। सँचारौ—बढ़ायौ (सर०)। पसारौ—मढ़ायौ (वही)। [३६] विवेक—राजा (सर०)। [३७] ही—जब (वेंकट, काशि०)। [३८] 'वेंकट' और 'काशि०' में नहीं है। [३९] विवेक—राजा (सर०)। तब—पुनि (वही)। रन—नर (काशि०)। कहि—कहु (वेंकट, काशि०)। [४०] के—तें (काशि०)।

राजनि केवल राज के काजैं। मारत 'केसव' काहु न लाजैं।
कै अति प्रेम पिता समुझावौ। मोह के मोह तें मोहिँ छुड़ावौ॥ ४१॥

(दोहा)

ब्रह्मदोषजुत मारियै, कहा तात कहँ मात।
जौं न मारियै राज तौ, नर्क परहु सुनि तात॥ ४२॥
सिगरे जंबूद्वीप में, पूरि रह्यौ परिवार।
राजा सिगरे तंत्र को, राम नाम है सार॥ ४३॥

मिश्र केशव

बोलि लयौ उपकार कहँ, गहि उद्यम को हाथ।
राजसभा में आय कै, बैठे तव नरनाथ॥ ४४॥
जाचक पूजक जोगजुत, पंडित मंडितधर्म।
वरने आनि विवेक सों, महामोह के कर्म॥ ४५॥

राजधर्म (विजय)

भूलत जीव चिदानँद ब्रह्म समुद्र के स्वादहि सूँघत नाहीं।
पीवै न वेद पुरान पुकारि पुकारि पिवावत है बहुधाहीं।
झूठे विषै विषसागर तुंग तरंगनि पीवतहीं न अघाहीं।
मज्जत है उनमज्जत 'केसवदास' बिलास बिनोद वृथाहीं॥ ४६॥

(दंडक)

जैसें चढ़े बाल सब काठ के तुरंग पर तिनके सकल गुन आपुही में आनै हैं।
जैसें अति बालिका वै खेलति पुतरियन पुत्र पुत्रिकानि मिलि विषय बितानै हैं।
आपनो जौं भूलि जात लाज साज कुल कर्म जाति कर्मकादिकनहीं सो मनमानै हैं।
ऐसें जड़ जीव सब जानत है 'केसौदास' आपनी सचाई जग साँचोई कै जानै हैं॥ ४७॥

(सवैया)

अंध ज्यौं अंधनि साथ निरंध कुवाँ परिहूँ न हियै पछितानौ।
बंधु कै मानत बंधनहारिन दीनें विषै-विष खात मिठानौ।

[४१] मोह०—चंदि पर्यौ प्रभु ताहि (सर०)। [४२] दोष—द्रोही (सर०)। मारियै०—मारिहौ राति (काशि०)। सुनि—जग (सर०)। तात—ग्रात (काशि०)। [४३] राजा०—सची एक था नार मीना को कहु बिचार (सर०)। [४४] मिश्र केशव—उद्यम (वेंक्ट); गतोवाच (काशि०)। में—यहँ (वही)। आय—जाय (सर०)। नरनाथ—जगनाथ (सर०); नए नाग (काशि०)। [४५] 'काशि०' में नहीं है। जोग—धर्म (सर०)। [४७] चढ़े०—चढ़ि बालक पै काठनि के बाजिन पै (सर०)। गुन—बल (काशि०)। पुत्रिकानि—पौत्र आदि (वेंकट, काशि०)। भूलि—छूटि (सर०)। जानै—जानै (काशि०)।

'केसव' आपने दासन को फिरि दास भयौ भव जद्यपि रानौ।
भूलि गई प्रभुता लग्यौ जीवहि बंदि परे भले बंदियखानौ ॥ ४८ ॥

राजधर्म (मदिरा)

रूप रचे यहि लोकहि 'केसव' चेत को आपु प्रबेस करयौ।
चेतु भयौ गुन-हेतु भयौ सुख दुक्ख सु तौ फल दोइ फरयौ।
तिनके कहि केवल भोगनि को सुरलोक निरैपद पैंड धरयौ।
इहि भाँति रच्यौ जग झूठो महा सु कहा जगदीस के हाथ परयौ ॥ ४६ ॥

राजा (दोहा)

उद्यम कीजै आजु तें कह उद्यम अकुलाय।
जीति सत्रुजन कहँ मिलौ देखौ प्रभु के पाय ॥ ५० ॥

उद्यम

गज बाजी संबर घने ठाढ़े हैं दरबार।
जोधा बोधा जुद्ध के गहे हाथ हथियार ॥ ५१ ॥

राजा

उनके जोधा काम है, सब जोधनि को सार।

उद्यम

ताकों राज, प्रयोगियै एकै बस्तु-विचार ॥ ५२ ॥

वस्तु-विचार (सवैया)

बासरहूँ निसिऔ दरबार बहै मलधार रहै न घरीको।
सूरति सूकरि की सी सलोम कहा बरनौं थल कामथरी को।
सूकर सो बिपयी जन ताहि महा सुख पावत अंक धरी को।
मारौं कहा अपमार मरयौ कह ठाकुर काम निरै-नगरी को ॥ ५३ ॥

---

[४८] बंदिय०—बंदि अघानो (वेंकट, काशि०)। [४६] यहि०—पहिले जइ (सर०); पहिले कहि (काशि०)। फल०—सबही है कुर्‌यौ (वेंकट); सबही है फर्‌यौ (काशि०)। चल—सब (सर०); बल (काशि०)। लोक—नर्क (वेंकट, काशि०)। भाँति—रीति (सर०)। [५०] आजु—आपु (सर०)। कह—वह (वेंकट, काशि०)। कहँ—तिहि (सर०)। देखौ०—प्रभु को देउ छुड़ाइ (वही)। [५१] संबर०—रथ पत्ति जुत (सर०); समरनि—(काशि०)। बोधा०—रन बोधा सबै (वही)। [५२] जोधा—राजा (वेंकट, काशि०)। [५३] सवैया—विजय (सर०)। बहै—बसै (वेंकट)। सूरति—सूकर (काशि०)। थल—बपु (सर०)। धरी—भरी (वही)। अपमार—अबमार (वेंकट, काशि०)। काम—नारि (सर०, काशि०)।

राजा (दोहा)

को करियै कहि कुसलमति, क्रोध जीतिबे जोग।

उद्यम

ताकों राज प्रयोगियै सहनसील संजोग ॥ ५४ ॥

सहनशील संयोग (सवैया)

कोप किये हँसि बात कहै मुख गारि दियें कहि औरउ दीजै।
जौ कहै मारन मारौ नहीं सिख मानि सबै सिर ऊपर लीजै।
जौ कहै दूरि तौ ऐसें कहै हम जाहिं कहा पद देखत जीजै।
'केसव' जौ जिय में बुधिबोध तौ क्रोधबिनास घरीक में कीजै ॥ ५५ ॥

राजा (दोहा)

को करिहै संग्राम में लोभ मोह सारोप।

उद्यम

ताकों राज प्रयोगियै अब एकै संतोष ॥ ५६ ॥

संतोष (सवैया)

निर्मल नीर नदीन के पानि बनी फल मूल भखे तन पोख्यौ।
सेज सिलान, पलास के डासन डासि कै 'केसव' काज सँतोख्यौ।
यौं मिलि बुद्धि-विलासन सों निसिबासर राम के नामनि घोख्यौ।
राज तुम्हारे प्रताप-कृसानु दहूँ दिसि लोभ-समुद्रनि सोख्यौ ॥ ५७ ॥

(दोहा)

परत्रिय जननी जानियै परधन विषसमतूल।
लोभ कहा सब मोहदल मरि जैहैं यहि सूल ॥ ५८ ॥

उद्यम

अपने दल बल समुझियै रे भट आलस छाँडि।
प्रभु की तुम पापंड पुर फेरौ प्रतिदिन डौंडि ॥ ५९ ॥

इति श्रीमिश्रकेशवरायविरचितायां चिदानंदमग्नायां विज्ञानगीतायां विवेकराजधर्मउद्यम संवर्णनं नाम नवमः प्रभावः ॥ ९ ॥

---

[५४] राजा—संतोष (काशि०)। सहन०—अब एकै संतोष (वेंकट, काशि०)। [५५-५६] 'वेंकट' और 'काशि०' में नहीं हैं। [५७] मूल—फूल (सर०)। घोख्यौ—पोख्यौ (वही)। दहूँ०—दसा दहि (वेंकट, काशि०)। लोभ—लोक (वही)। [५८] विष०—नाग विषतूल (वेंकट, काशि०)। सब—अनु (काशि०)। मरि—जरि (वेंकट, (काशि०)।

[इति] मग्ना—मग्नांग (काशि०)।

१०

(दोहा)

'केसव' दसम प्रभाव में स्लेष कबित्त-बिलास ।
बरनन के मिस प्रगटहीं बरषा सरद प्रकास ॥ १ ॥

केशवराय (मालती)

ता पुर में यह बात । डोंडि बजी अधरात ।
आयसु देत बिबेक । ब्रह्म धरौ चित एक ॥ २ ॥

(सोरठा)

महामोह यहि बात, कीनौ कोप बिबेक पर ।
कूँच बड़े ही प्रात, करि कासी सनमुख चल्यौ ॥ ३ ॥

रानी (दोहा)

कूँच न कीजै राज अब, आयौ बरषा-काल ।
सरदहि आवतहीं बरद, करौ बिबेक बिहाल ॥ ४ ॥

केशव (विजय)

लोग लगे सिगरे अपमारग कौन भलो बुरो जानि न जाई ।
चंचल हस्तन कों सुखदा अचला चल दामिनि कों दुखदाई ।
हंस कलानिधि सूरप्रभा हत खंड सिखंडिन की अधिकाई ।
'केसव' पावस-काल किधौं अविवेक महीपति की ठकुराई ॥ ५ ॥
ज्वाल जगै कि चलै चपला नभ धूम घनो कि घनाघन घूरो ।
खेचर लोगन के अँसुवा जलबूँद किधौं बरनो मतिसूरो ।
केकी कहै इह कीकई 'केसव' गौ जरि जोर जवासो समूरो ।
भागहु रे बिरहीजन भागहु पावस काल कि पावक पूरो ॥ ६ ॥

(मदन मनोहर)

घनघोर किधौं भटपुंजन पै तरवार कढ़ी तड़िताद्युति भीनी ।
गहि सक्र-सरासन 'केसव' जोति-समूहनि की पदवी बहु लीनी ।

---

[१] दसम०—दसे प्रकास (काशि०) । [२] केसवराय०—तोटक (वेंकट); चौपही छंद (काशि०) । ता पुर०—किय मंत्र में अधरात (सर०) । बजी०—फिरी अवदात (वही) । ब्रह्म—ब्रह्मास्त्र (काशि०) । धरौ—वहै (सर०); धरि (काशि०) । [३] यहि—सुनि (सर०) । [४] राज—नाथ (सर०) । [५] केशव—बरषावर्नन (काशि०) । कौन—पोच (वेंकट), पौन (सर०) । चल—विप (वेंकट, काशि०) । कालानिधि—प्रभा विधि (सर०) । अधिकाई—सुख भाई (काशि०) । [६] धूरो—रूरो (सर०) । गौ०—ज्यौं जरि जाय (वही) ।

कमला तजि पद्मिनि बूड़ि मरी धरनी कहँ चंद्रबधू गहि दीनी।
बरषा हरषी कि बजाय निसान पुरंदर सूरज कौं रिस कीनी ॥ ७ ॥

(विजय)

मिलि मैलेहि गात सुग्रंबर नील रह्यौ लगि बात सुनौ गजगामिनि।
जलधार बहै बहु नैननि तें न रहै कहि 'केसव' बासर जामिनि।
कबहूँ कबहूँ कछु बात कहै दमकै दुति दंतन की जनु दामिनि।
पिउ पीउ रटै मिस चातक के बरषा हरषी कि बियोगिनि कामिनि ॥ ८ ॥

(कमल)

कोप करै द्विजराज सों 'केसव' कोबिद-चित्त-चरित्रनि लोपति।
साधुनहू अपमारग लावति दूर करै सतमारग की गति।
चोरन कों बिभिचारिन कों निसिचारिन कौं उपजावति है रति।
बातक चातक तें समुझै बरषा हरषी किधौं लोभिन की मति ॥ ९ ॥

(सवैया)

दूषति है पर पंकज-श्री गति हंसनि की न तऊ सुखदाई।
अंबर-ओट किये मुख चंदहि छूटि छपै छनभा न छपाई।
सोहति है जलजावलि 'केसव' पीन पयोधर में दुखदाई।
मारग भूलति देखतही अभिसारिनि सी बरषा बनि आई ॥ १० ॥

(मदनमनोहर)

भवकारन जीवन देति भली बिधि भूलिहु तौ न भई हित-हीनी।
द्विजराज की नेकहुँ कानि करी नहिं तीनिहुँ लोकन कीरति लीनी।
परिताप हरै सब भूतल के रवि के कुल कों पदवी बहु दीनी।
कहि 'केसव' चातक मोर ररैं बरषा हरषी कि सती रिस कीनी ॥ ११ ॥

(दंडक)

भौंहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूखन जराय जोति तड़ित रलाई है।
दूरि करी सुख मुख सुखमा ससी की नैन,
अमल कमलदल दलित निकाई है।
'केसौदास' प्रबल करेनुका गमनहर,
मुकुत सुहंसक सबद सुखदाई है।

---

[७] किधौं०—घटा भटसंगन में (सर०)। बहु—सब (वही)। गहि—धरि (सर०, काशि०)। कौं—गो (काशि०)। [८] तें—सों (काशि०)। रटै—टरै (वही)। [९] कमल—सवैया (वेंकट); × (काशि०)। किधौं०—कि बियोगिनि (वेंकट, न० कि०)। [१०] में दुखदाई—पीन सुहाई (सर०)। [११] रवि—[illegible] (सर०)।

अंबर बलित मति मोहै नीलकंठजू की,
कालिका कि बरषा हरषि हिय आई है ॥ १२ ॥

इति वर्षावर्णनम्

अथ शरदवर्णनम् (दोहा)

बीति गई बरषा सबै आई सरद सुजाति ।
'केसव' बासर-सोभ सी बीती कारी राति ॥ १३ ॥

(दंडक)

छूटि गयौ प्रजनि चलन अपमारग को आपने आपने सतमारग समीति है ।
सोहति परमहंस सूर सम कलानिधि गाय द्विज देवतानि पूजिबे की प्रीति है ।
पावै न प्रवेस बिभिचारी निसिचारी चोर धामनि धामनि रामदेवजू की गीति है ।
'केसौदास' सबही के हृदय-कमल फूले सोभित सरद किधौं आछी राजनीति
है ॥ १४ ॥

बंदैं नरदेव देव सेवत परमहंस राजैं द्विजराज वपु पावन प्रबल है ।
अवनि अकासहूँ प्रकासमान 'केसौराय' दिसि दिसि देस देस इच्छत सकल है ।
पितर प्रमान करैं दूषन सकल हरैं मन बच काय भव भूपन अमल है ।
ठौर ठौर बरनत कबि सिरमौर और सरदप्रकास किधौं गंगाजू को जल है
॥ १५ ॥

जहाँ तहाँ दुर्गापाठ पठत प्रबीन द्विज धाम धाम धूम धर मलिन अकास सो ।
राजै राजसिंघासन संजुत चँवर छत्र बाजत निसान गज गाजत हुलास सो ।
ठौर ठौर ज्वालामुखी दीसै दीपमालिका सी सोभित सिंगारहार कुसुम सुवास सो ।
'केसौदास' आसपास लसत परमहंस देवी को सदन किधौं सरद-प्रकास सो
॥ १६ ॥

'केसव' जगत ईस कमला समेत तहाँ जागे ज्योति जल थल बिमल बिलास सो ।
बंदत हैं भूतनाथ भाँति भाँति विधिजुत देखिजत देत दीप अघओघनास सो ।
दिसि दिसि सुमन सु फूले हैं प्रभाव जाके वरन वरन वहु विसद हुलास सो ।
जाहि जगलोचन बिलोकि सुख पावै छीरसागर उजागर की सरदप्रकास सो
॥ १७ ॥

चमकि चिकुर चारु चंद्रमुखी चंद्रिका सुचंदन चढ़ायौ साधु मन वच काय की ।
कृस कटि केहरि कमलदल पद कर खंजन नयन कुंद दंत सुखदाय की ।

---

[१२] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [१४] सम—कुल (सर०); सब (काशि०) । रामदेव—रामचंद्र (सर०) । सबही के—सब बिधि (वही) । [१५] देव—सब (सर०) । सेवत—केसव (वेंकट, काशि०) । सकल—अलेप (सर०) [१६] लसत—सोहत (सर०) । [१७] बिलास—हुलास (काशि०) ।

आछे तनु गंगाजल सहित सिँगारहार 'केसौदास' हंसगति सुंदर सुभाय की।
बीतें निसि बरषा के आई है जगावन कौं सरद की सोभा वृद्ध दासी रघुराय की ॥ १८ ॥

भूषन कुसुम वर अंवर अमल धर कोमल कमल कर ही सों हित मानियै।
'केसौदास' नारि नर पूजत हैं घर घर राजहंस हर हिय सब सुखदानियै।
जा बिनु जगत जीव काँपत है थरथर सूरहू के तेज घटि जात यह जानियै।
जाहि आएँ सब आवै वेद यह गीत गावै सागर की नंदिनी की सरद बखानियै ॥ १९ ॥

सकल विभूतिधर परम दिगंवर पै अंवर सुरंग सीस सोभा रजनीस की।
स्वेत द्युति सब अंग गिरिजा अनंग संग करत परमहंस प्रीति बिसैबीस की।
वंदित हैं भूमिदेव नरदेव देवदेव 'केसौदास' भामिनी है अति जगदीस की।
जीवजोति हरपति सब सुख वरपति सरद की सूरत कै मूरत है ईस की ॥ २० ॥
सोभा को सदन ससि वदन मदन कर यहै नरदेव कुवलय बरदाई है।
पावन उदार पद लसै हंससुकुमार दीपति जलज जहाँ दिसि दिसि धाई है।
तिलक चिलक चारु लोचन अमल रुचि चतुर चतुरमुख जगजिय भाई है।
अंवर अमल वर नील पीन पयोधर 'केसौदास' सारदा कि सरद सुहाई है ॥ २१ ॥

इति श्रीमिश्रकेशवरायविरचितायां चिदानंदमग्नायां वर्षाशरद्वर्णनं नाम दशमः प्रभावः ॥ १० ॥

११

(दोहा)

एकादसें बसीठई वानारसी प्रभाव।
बरनन के मिस कहत हैं वाहनी-समुदाव ॥ १ ॥

मिश्र केशव

महामोह नरनाथ तव, कूच कर्यौ अकुलाय।
सोभन सरदहि पाइ बहु दुंदुभि दीह बजाय ॥ २ ॥

(भुजंगप्रयात)

चले मत्त मातंग भृंगावली सों। चले बाजि कुद्दंत चितावली सों।
चले स्यंदनस्थाधिजोधा प्रवीने। चले पुंज प्यादे धनुर्बान लीने ॥ ३ ॥

(झूलना)

रथ राजि साजि बजाय दुंदुभि कोह सों करि साज।
बिंदुमाधव कों चल्यौ दल भूमि को अधिराज।
उठि धूरि भूरि चली अकासहिँ सोभिजै जु असेष।
जनु सोध देन चली पुरंदर कों धरा सुविसेष॥ ४॥

(सरस्वती)

बारानसी अति दूरि तें अवलोकियौ मन-पूत।
ऊँचे अवासनि उच्च सोहति हैं पताक विधूत।
सोभाविलास बिलोकि 'केसवराय' यौं मति होति।
बैकुंठमारग जात मुक्तन की नचै जनु जोति॥ ५॥

(मदिरा)

गंग अन्हाय कै ईसहि पूजत फूलन सों तन फूलि गनौं।
आनँद भूलि कै भौंरनि के मिस गावत हैं बड़भाग घनौं।
बाहुलतानि उठाय कै नाचत 'केसव' रोंचत चित्त भनौं।
बागनि सीतल मंद सुगंध समीर लसै हरिभक्त मनौं॥ ६॥

(दोहा)

पार देखि बारानसी डेरा कीनौ वार।
महामोह नरपाल तब दल रोकियौ अपार॥ ७॥

(भुजगप्रयात)

प्रबोधोदया एक बारानसी है। सखी सी सदा संग गंगा लसी है।
रुकै क्यों महामोह लै भूमि अच्छा। महादेव मानौ रची रामरच्छा॥ ८॥

(दोहा)

महामोह पठए तहाँ भ्रम अरु भेद बसीठ।
सोभित हुते बिवेक जहँ परम धर्म के ईठ॥ ९॥

(रूपमाला)

देखियौ सिव की पुरी सिवरूप ही सुखदानि।
सेष पै न असेष आनन जाइ वेष बखानि।
न्हात संत अनंत वेष तरंगिनीजुत तीर।
एक पूजत देवता इक ध्यानधारनधीर॥ १०॥

---

[४] अधिराज—बलिराज (सर०)। सोभिजै०—पूरि आस (वही)। [५] अति—तिन (सर०)। मन०—अति सूत (वही)। अवास—निवास (वही)। [६] घनौ—मनौ (वेंकट); भनो (काशि०)। चित्त—हीत (वेंकट, काशि०)। भनौ—घनो (वही)। [७] कीनौ—दीनौ (सर०)। नरपाल—नरनाथ (काशि०)। तब—सब (सर०)। [८] रुकै—रुचै (सर०)। क्यों—जो (वेंकट, काशि०)। [१०] रूपमाला—चंचला (काशि०)। आनन—भावन (सर०)। सत—देव (वही)। बेष—सेव (वही)।

एक मंडित मंडली महँ करत बेद-बिचार।
एक नाम रटैं पढ़ैं स्रुति सुद्ध सारत सार।
एक दंड धरे कमंडलु एक खंडित चीर।
एक संजम नियम आदिक एक साधि समीर॥ ११॥
एक हैं अनुरक्त कर्मनि एक नित्य बिरक्त।
बिंदुमाधव के उमाधव के कहावत भक्त।
एक भोगनि जुक्त एक सु जोग जागनि जुक्त।
एक साधन मुक्ति साधत एक जीवनमुक्त॥ १२॥

(तोटक)

भुव ब्रह्मपुरी सम मानि तबै। इन भाँतिन सों अवलोकि सबै।
नृपनायक के दरबार गए। गुदरे तब भीतर बोलि लए॥ १३॥

(दोहा)

उद्यमजुत सतसंगजुत, देखि विवेक अखेद।
करि प्रनाम अति दूरिहीं, बैठे भ्रम अरु भेद॥ १४॥

भ्रम (स्वागता)

महामोह महिमंडल लीनौं। तुम्हैं राज यह आयसु दीनौ।
तजौ आजु सिव की रजधानी। रहौ जाय जहँ श्री बिधि बानी॥ १५॥

भेद

हियैं होय जिय सों कछु नेहू। हमैं आजु गहि श्रद्धा देहू।
महाराज तुमकों पहिरावैं। गहौ पाय उठि जौ घर आवैं॥ १६॥

(सोरठा)

महाराज मन-तात, महामोह की बात सुनि।
धीरज उर अवदात, पठए उत्तर देन तब॥ १७॥

(दोहा)

धीरज गए जु तिहि सभा, जहाँ पाप की गाथ।
महामोह बैठे तहाँ, असतसंग के साथ॥ १८॥

धैर्य (चंचला)

वासना दई विवेक राजराज है कृपाल।
छोड़ि देहु जीव कों पिता करै महा विहाल।

दूरि कै सबै विचार भाजि जाहु सिंधुपार।
जौं न जाहु बिस्नुभक्ति अग्नितेज होउ छार॥ १६॥

(दोहा)

कोप कस्यौ यह बात सुनि, गह्यौ गह्यौ जिनि जाय।
बीर धीर धरि दीह दुख, गयौ गयंद ढहाय॥ २०॥
सोर भयौ दुहुँ ओर तब, उतरे गंगापार।
गए बिंदुमाधव निकट, श्रीविवेक तिहि बार॥ २१॥
सस्त्र छोरि कर जोरि तब, बिनती करी बिबेक।
मनसा बाचा कर्मना, 'केसव' भाँति अनेक॥ २२॥

विवेक (भुजंगप्रयात)

महा देव ह्वै जू महादेव धारै। महीदेव ह्वै कै महादेव पारै।
महामोह काटै लियें नाम आधो। प्रबोधोदयं देहि श्रीबिंदुमाधौ॥ २३॥
धराधारधारी निराधारधारी। सदा ब्रह्मचारी ब्रजस्त्री-बिहारी।
भजै सर्बबिद्या भजै नाम आधौ। प्रबोधोदयं देहि श्रीबिंदुमाधौ॥ २४॥
अरूपी चिदानंद जोतिप्रकासी। बिरूपी जगद्रूप चिद्रूपबासी।
कृपा कै करौ मुक्ति गीधौ बिराधौ। प्रबोधोदयं देहि श्रीबिंदुमाधौ॥ २५॥
अनंगा अनंगारि दुष्टप्रनासी। अनंताभिधेयं अनंताधिवासी।
महादेवहू की प्रबाधानि बाधौ। प्रबोधोदयं देहि श्रीबिंदुमाधौ॥ २६॥
अमेयं प्रब्रर्जी अनाद्यंतरंता। असेपप्रहारी दसग्रीवहंता।
अलच्छीनलच्छीनकी सिद्धि साधौ। प्रबोधोदयं देहि श्रीबिंदुमाधौ॥२७॥
त्रिदेव-त्रिकाल-त्रयीबेदकर्ता। त्रिस्रोताकृती सूत्रयी लोकभर्ता।
कृपा कै कृपापात्र कीने निषाधौ। प्रबोधोदयं देहि श्रीबिंदुमाधौ॥ २८॥
तपी तीव्रतापी तपस्याधिकारी। परब्रह्मजू ब्रह्मदोपप्रहारी।
किए पार ससार व्याधौ अगाधौ। प्रबोधोदयं देहि श्रीबिंदुमाधौ॥ २६॥
अधर्मी उधारौ तिहूँ लोक जानी। रची नित्य वारानसी राजधानी।
हरौ पीर मेरी रमाधौ उमाधौ। प्रबोधोदयं देहि श्रीबिंदुमाधौ॥ ३०॥

---

[२०] यह०—नृप धीरजहिं (सर०)। बीर०—महामोह गहि (काशि०)। [२१] तब—भरि (सर०)। गए—आए (काशि०)। [२२] सस्त्र—अस्त्र (काशि०)। तब—करि (वही)। [२३] ह्वैकै—ह्वैकै महादेव (सर०)। लियें—कहें (वही)। [२४] धारी—चारी (सर०, काशि०)। [२५] 'काशि०' में नहीं है। मुक्ति—मोच्छ (सर०)। बिराधौ—अगाधौ (वेंकट)। [२६] दुष्ट०—ज्योतिप्रकासी (वेंकट); ज्योतिप्रनासी (काशि०)। [२७] प्रब्रर्जी—प्रवृत्ति (सर०)। असेप०—असेपौघहंता (वही)। [२८] सूत्रयी—स्तापत्रै (सर०); स्त्रयी (काशि०)। भर्ता—हर्ता (सर०)। [२६] जू०—सांतिप्र (काशि०)। व्याधौ—गीधौ (सर०)। अगाधौ—निपाधौ (सर०, काशि०)। बिंदु—विष्नु (काशि०)। [३०] जानो—गामी (वेंकट, काशि०)।

बिवेकाग्र ह्वै बिप्र बिज्ञप्ति कीनी। सुनी बिंदुमाधौ सबै मानि लीनी।
कृपा कै कह्यौ माँगियै बिंदुमाधौ। *बिंदुमाधव*—महामोह मारौ सबै काम साधौ ॥३१॥

विवेक

सुनौ ईस या स्तोत्र कोँ जो गुनैगो। पढ़ावै पढ़ैगो सुनावै सुनैगो।
सबै संपदा सिद्धि ताकोँ करौ जू। सदा मित्र ज्यौँ सत्रु ताके हरौ जू ॥३२॥

श्रीविंदुमाधव (दोहा)

होय प्रबोधोदय हियेँ, तेरे 'केसवराय'।
याहि पढ़ै अति प्रीति सौँ, सो बैकुंठहि जाय ॥ ३३ ॥
बिदा बिंदुमाधव दई, तबहीँ बार बिचार।
गए बिवेक बिसेषमति बिस्वनाथ-दरबार ॥ ३४ ॥

(चामर)

पाप के कलाप मारि ताप के प्रताप तारि।
सोग रोग भोग को अजोग दुक्ख दोष दारि।
मान के बिमान भंजि गजि मूढ़ गूढ़ गाथ।
राखि लेहु राखि लेहु राखि लेहु बिस्वनाथ ॥ ३५ ॥
धर्म तेँ बिधर्म तेँ अधर्म धर्म तेँ बिचार।
भेद तेँ बिभेद तेँ अभेद तेँ प्रकासकारि।
काल तेँ अकाल तेँ बिकाल तेँ त्रिकालनाथ।
राखि लेहु राखि लेहु राखि लेहु बिस्वनाथ ॥ ३६ ॥
सर्म तेँ असर्म तेँ सुनौ असेष सर्मदानि।
भूख तेँ पियास तेँ सँताप तोष तेँ बखानि।
बृद्धि तेँ समृद्धि तेँ प्रसिद्धि तेँ प्रसिद्ध नाथ।
राखि लेहु राखि लेहु राखि लेहु बिस्वनाथ ॥ ३७ ॥
मन तेँ सुजन्म तेँ कुजन्म तेँ सदा सनेह।
तात मात मोह तेँ बिमोह तेँ महा बिदेह।
लोक तेँ अलोक तेँ त्रिलोक तेँ त्रिलोकनाथ।
राखि लेहु राखि लेहु राखि लेहु बिस्वनाथ ॥ ३८ ॥

---

[३१] महामोह०—प्रबोधो उदौ देहि श्रीबिंदुमाधौ (वेंकट); प्रबोधो उदं देहि श्रीबिंदुमाधौ (काशि०)। [३२] गुनैगो—सुनैगो (वेंकट, काशि०)। सबै—सदा (सर०)। [३३] होय०—[illegible] लोक को राय (सर०)। [३४] तबहीँ०—दै बर बिमल बिचार (सर०)। [३५] सोग रोग०—भोग दारि झूठई टई निवारि (सर०); दोष दारि [illegible] (काशि०)। मान—ज्ञान (वेंकट, काशि०)। [३६] अधर्म—बिकर्म कर्म (सर०)। त्रिकालनाथ—त्रिलोकनाथ (काशि०)। [३७] सँताप०—समस्त भास (सर०)।

क्षुद्र छिन्न भाव तें जु दुस्सुभाव भाव लेखि।
काम कामग्राम तें अबाम बाम तें बिसेखि।
मेटि डारियै अनेक दुष्ट रुष्ट पुष्ट साथ।
राखि लेहु राखि लेहु राखि लेहु बिस्वनाथ॥ ३९॥
क्रोध तें बिरोध तें कुबोध तें प्रबोधवंत।
रंक तें कलंक तें जु बक्र चक्र तें अनंत।
भूल तें कुभूल तें कुसूल तें कपालनाथ।
राखि लेहु राखि लेहु राखि लेहु बिस्वनाथ॥ ४०॥
लोभ तें कुलोभ तें बिलोभ तें अलोभमान।
क्षोभ तें कृतघ्न तें बिनास तें कृपानिधान।
स्वामिघात बिस्वघात तें अनाथनाथ साथ।
राखि लेहु राखि लेहु राखि लेहु बिस्वनाथ॥ ४१॥
मित्रदोष मंत्रदोष राजदोष तें कृपालु।
देवदोष बिस्नुदोष ब्रह्मदोष तें दयालु।
बेददोष तें अनाथदोष तें अदोषनाथ।
राखि लेहु राखि लेहु राखि लेहु बिस्वनाथ॥ ४२॥

बिस्वनाथ (दोहा)

राखि लेउँ तोकों सदा, सबतें 'केसवराय'।
याहि पढ़ै प्रतिबासरहि, सो सबही सुख पाय॥ ४३॥
पाय प्रबोधोदय हियें, बिस्वनाथ पै हर्षि।
गंगाजू कों जाय पुनि, करे प्रनाम महर्षि॥ ४४॥

(भुजंगप्रयात)

सिरस्चंद्र की चंद्रिका चारु हासे। महापातकध्वांत धाम प्रनासे।
फनी दुग्ध भावे अनगारि अंगे। नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे॥ ४५॥
धरामध्य ब्रह्मांड कों भेदि आई। जगज्जीव-उद्धार कों वेद-गाई।
महानिर्गुनै स्वप्रकासे विहंगे। नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे॥ ४६॥
तजैं देह देही पयो मध्य न्हाहीं। ततो भेदिकै न्याय ब्रह्मांड जाहीं।
भवच्छेदिके तीव्र तुंगे तरंगे। नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे॥ ४७॥
चले निस्चले निर्मले निर्विकारे। असंसारसंसारमध्यैकसारे।
अमेयप्रभावे अनंते अनंगे। नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे॥ ४८॥

[३९ से ४१] 'वेंकट, काशि०' में नहीं हैं। [४२] अनाथ–सुनाथ (काशि०)। [४३] सो०–ताकों सब सुखदाइ (सर०)। [४४] जाइ–पाय (सर०)। महर्षि–प्रहर्षि (सर०, काशि०)। [४६] स्वप्रकासे–चित्प्रकासे (सर०)। [४८] चले–जले (सर०) असंसार०–सदा सर्वदोषादिसंसोकहारे (काशि०)।

सदा सर्वदोषादिसंसोपकारे । महामोहमातंगअंगप्रहारे ।
चिदानंदभावाब्धि सांते सुरंगे । नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे ॥ ४९ ॥
धरा लोक पाताल स्वर्ग प्रकासे । मनो बाच कायाज कर्म प्रनासे ।
जगन्मातु भावे सदा सुद्ध अंगे । नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे ॥ ५० ॥
सुनें स्वप्नहू में बिलोकें स्मरेहूँ । छियें होत निष्काम नामैं ररेहूँ ।
करै अच्छ अस्नान प्रत्यच्छ अंगे । नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे ॥ ५१ ॥
गिराधौ रमाधौ उमाधौ अनंता । स्मरैं देवि तो नाम ब्रह्मांडरंता ।
कहै 'राय केसौ' बिवेकप्रसंगे । नमो देवि गंगे नमो देवि गंगे ॥ ५२ ॥

श्रीगंगोवाच (दोहा)

सर्वभाव तुम सर्बदा पावन 'केसवराय' ।
यह अष्टक नित प्रति पढ़ै सो नित गंगा न्हाय ॥ ५३ ॥
गंगाजू हि प्रनाम करि 'केसव' उतरे पार ।
जात बिबेकहि कटक में दुंदुभि बजे अपार ॥ ५४ ॥

इति श्रीमिश्रकेशवरायविरचितायां चिदानदमग्नायां श्रीबिंदुमाधवविश्वनाथगंगास्तुति-वर्णनं नाम एकादशमः प्रभावः ॥११॥

१२

(दोहा)

जुद्ध बर्निबो द्वादसें, महामोह की हारि ।
'केसवराय' बिवेक को, जय बर्निबो बिचारि ॥ १ ॥

(रूपमाला)

हय-हींस गर्ज-गयंद घोप रथीन के तेहि काल ।
बहु भेरि मुंज मृदंग तुंग बजी बड़ी करनाल ।
बहु ढोल दुंदुभि लोल गर्जत घोल बंदि प्रकास ।
नए भूरि भूरि उठी दसों दिसि पूरियों सु अकास ॥ २ ॥

(दोहा)

महामोह तब कोह करि, पठए दून प्रचंड।
धर्मकर्मजुत जुद्ध कों, पटु पाखंड अखंड ॥ ३ ॥
तब बिबेक प्रति जुद्ध कों, आगम निगम समेत।
पठई तहाँ सरस्वती, सन्मुख समर-निकेत ॥ ४ ॥

(रूपमाला)

सिर धर्म, सास्त्र मुखेंदु सुंदर, वेद लोचन तीन।
हरिभक्ति की महिमा हृदै कहि कैतवादिक वीन।
सांख्य बाहु कनाद-भाषित भाष्य न्याय सुपाद।
रन सोभमान सरस्वती जनु अंबिका अविपाद ॥ ५ ॥

(दोहा)

जुद्ध सुक्रुद्ध सरस्वती, देखतही पाखंड।
खंड खंड ह्वै दस दिसा भागे जदपि प्रचंड ॥ ६ ॥

(रूपमाला)

सौगतादिक भागि गे सब हून मागध अंग।
सिंधुपार गए ति एक अनेक वंग कलिंग।
पामरादि दिगंबरादि कपालकादि असेष।
मारए अरु मारवार गए ति नीचनि भेष ॥ ७ ॥

(दोहा)

निंदक एकादसिनि के मध्यदेस मेवार।
अरु पाखंडी धर्म सब गए सिंधु के पार ॥ ८ ॥
जब आयौ रनलोभ तब आयौ दीरघदान।
देखन लागे देवगन बल विक्रम परिमान ॥ ९ ॥

दान उवाच (कमला)

ज्यौं बसु देहु सबै पसु 'केसव' रोमन सूतन पाट जटे पट।
भोजन भाजन भूषन देहु रे काटहु कोटिन जाचक-संकट।
पुत्रनि देहु कलत्रनि देहु रे प्राननि देहु रे देहु लगी रट।
लोभिन के भए लोप बिलोकियै दीह दाररनि दारिद के घट ॥ १० ॥

---

[३] कोह—कोय (सर०, काशि०)। दूत—सुभट (सर०)। [४] निगम०—सुनत न सेत (वेंकट, काशि०)। समर—ससर (वेंकट)। [५] रूपमाला—भूलना (काशि०)। मुखेंदु—सुवेख (काशि०)। की०—कों तह हृदै जानौ (सर०)। कहि—हनि (वेंकट, काशि०)। पाद—नाद (वेंकट, काशि०)। अविपाद—उविपाद (काशि०)। [६] 'वेंकट', 'काशि०' में नहीं है। [८] अरु०—नारिवेप अरु मठपती स्यामच्छंदनी पार (सर०)। [१०] ज्यों०—दाननि ज्यौं वसु देहु सबै पसु के सत्र सूतन (सर०)। प्राननि—आरतनि (वही)। लोभिन—लोकनि (वेंकट, काशि०)। भए—किये (सर०)।

(दोहा)

आए क्रोध विरोध सब, कीने क्रोध अपार।
सहनसील संजुक्त तहँ, आए बस्तु-विचार॥ ११॥

वस्तुविचार (सवैया)

मारियै काहे कौं क्यों मरै 'केसव' ऐसो उपाय न जी जनियै रे।
एक तें रूप अनेक भए सब वेद पुराननि में सुनियै रे।
थावरहूँ चरहूँ जलहूँ थल देखियै सूरति आपनियै रे।
क्रोध विरोध भजे भ्रम भेद सों काम कहा बपुरा गुनियै रे॥ १२॥

(दोहा)

पुन्य पाप सुख दुख जुरे आलस उद्यम तत्र।
गर्व प्रनयनय मान मद कलह काम एकत्र॥ १३॥
जोग वियोग सुजोग सों बहु बियोग अरु भोग।
राग-विराग विभाग सों कोटिन रोग अरोग॥ १४॥
अनाचार आचार अरु सदाचार बिभिचार।
सत्य असत्यनि आदि दै नित्यानित्य प्रहार॥ १५॥
महामोह तब झुकि उठे लखि सतसंग विवेक।
भरहराइ भट भगि चले कहुँ अनेक कहुँ एक॥ १६॥
तुमुल सब्द दुहुँ दिस भयौ भूतल हल्यौ अकास।
देव अदेवनि जानियौ भयौ विवेकबिनास॥ १७॥
ब्रह्मदोष तब आपने वंस हन्यौ करि कोह।
जाय पिता के पेट में भागि बच्यौ महमोह॥ १८॥

(रूपमाला)

भीम भाँति विलोकियै रनभूमि भूभटवंत।
स्रोन की सरिता दुरंत अनंत रूप सुनंत।
जत्र तत्र धुजा परे पर दीह देहनि भूप।
टूटि टूटि परे मनौ बहु वात वृक्ष अनूप॥ १९॥
पुंज कुंजर सुभ्रस्यंदन सोभियै अति सूर।
ठेलि ठेलि चले गिरीसनि पेलि सोनितपूर।

ग्राह तुंग तरंग कच्छप चारु चर्म बिसाल।
बक्र से रथ-चक्र पैरत गृद्ध बृद्ध मराल॥ २०॥
केकरे कर बाहु मीन गयंद-सुंड भुजंग।
भौंर चीर सुदेस 'केसव' खग समान तुरंग।
बालुका बहु भाँति हैयनि माल जाल बिलास।
पैरि पार भए बिबेक नृपाल 'केसबदास'॥ २१॥
रन जीति खेत बजाय दुंदुभि जीउ लै सुख पाय।
करि गंग कों हर कों रमापति कों प्रनाम बनाय।
बहु दै द्विजातिनि दान बंदिन सों पढ़ाय सुगीत।
तब राजराज बिवेक मंदिर में गए सँग मीत॥ २२॥

(दोहा)

जय को करि अबिबेक अरु दै सिर तिलक प्रभाउ।
कही बात सतसंग प्रभु अरि को करौ उपाउ॥ २३॥
राजराज बचौ बड़ो रिपु मोह जीवत आजु।
नास को उपचार कीजै भूलिहू नहिँ राजु॥ २४॥

रानी (रूपमाला)

सत्रु को अरु अग्नि को रिन को बचौ अवसेषु।
होय दीरघ दुःखदायक तुच्छ कै जिनि लेपु।
नीति भाषत बेद है नृप धर्मसास्त्र पुरान।
हौं निवेदन ताहि तें किय बिज्ञ जानि सुजान॥ २५॥

राजा (दोहा)

भली कही यह बात तैं अब मोसों समुझाय।
कहौ जाय हरिभक्ति सों, करै बिनास उपाय॥ २६॥
इहि बिधि मोह बिवेक को बरनि कह्यौं मैं जुद्ध।
जिहि जाने तें होयगो जीव तुम्हारो सुद्ध॥ २७॥

॥ इति श्रीमिश्रकेशवरायविरचितायां श्रीचिदानंदमग्नायां महामोहयुद्धविवेकजयवर्णनो नाम द्वादशः प्रभावः॥ १२॥

---

[२०] अति–सुनि (काशि०)। [२१] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [२२] दान०–द्रव्य बदिनि सों पै पढ़ो सुभगाथ (सर०)। मीत–मात (सर०); मीति (काशि०)। [२४] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [२५] रानी०–धर्म उवाच। झूलना-छंद (काशि०)। नीति०......... सुजान–'काशि०' में नहीं है। [२७] 'वेंकट' और 'काशि०' में नहीं है।

[इतिश्री] महामोह०–राजान्विवेक (काशि०)।

१३

(दोहा)

मनहिं आय समुझायहैं, गिरा गूढ़ मति साधि।
माया दरसन करहिंगे तेरह में ऋपि गाधि ॥ १ ॥

(हरिलीला)

हा काम हा तनय क्रोध बिरोध लोभ।
हा ब्रह्मदोष नृपदोप कृतघ्न छोभ।
मोकों परी विपति कौन छुड़ाय लेइ।
कासों कहौं वचन कौन बचाय देइ ॥ २ ॥

संकल्प (दोहा)

महाराज समुझौ हियें कछू न कीजै सोक।
चिरंजीव प्रभु चाहियै, काल्हि होइगो लोक ॥ ३ ॥

केशवराय

पठइ दई हरि भक्ति तहँ सरस्वती बड़भाग।
उपदेसन मन मूढ़ कौं उपजावन वैराग ॥ ४ ॥

(रूपमाला)

पुत्र मित्र कलत्र के तजि वत्स दुःसह सोग।
कौन के भट कौन की दुहिता मृषा सब लोग।
होत कल्प सतायु देव तऊ सबै नसि जात।
संसार की गति जानिकै अब कौन कों पछितात ॥ ५ ॥

(दोहा)

एक ब्रह्म सॉचो सदा झूठो यह संसार।
कौन लोभ मद काम को, को सुत मित्र विचार ॥ ६ ॥
तुम्हैं गए तजि बार बहु तुमहुँ तजे बहु बार।
तिन लगि सोच कहा करौ रे बावरे गँवार ॥ ७ ॥

मन

सोक बिदूषित उरसि अब नहिं विवेक अवकास।
केवल प्रेम प्रकास कों समुझत मोह-बिलास ॥ ८ ॥

सरस्वती (नाराच)

हिये बिना परेस के जु प्रेम-बृच्छ लाइयै।
मनोभिलाष लाख नीर सींचि कै बढ़ाइयै।
अकाल काल अग्नि दोष पाय कैसहूँ जरै।
त्रिलोक के असेप सोक फूल फूलिकै फरै ॥ ६ ॥

मन (दोहा)

यह इक बात भली भई, श्री भगवती कृपाल।
दीनौ दरसन आनि सब तुम मोकौं इहि काल ॥ १० ॥

सरस्वती (दोहा)

होनहार जग बात कछु ह्वै ही रहै निदान।
ब्रह्माहू मेटन लगै तऊ न मिटै प्रवान ॥ ११ ॥

मन (दोहा)

देवी कहियै कौन बिधि मेरो मरिबो होय।
जाय मिलौं लोभादिकनि इहाँ मरै को रोय ॥ १२ ॥

देवी

यह जग जैसे धूरिकन दीह बातवस होय।
को जानै उड़ि जाय कहँ मरे न मिलई कोय ॥ १३ ॥

मन

काहे तें प्रभुता बढ़ति दिन दिन होत प्रकास।
देवी कहियै करि कृपा किहि तें होत विनास ॥ १४ ॥

देवी

आयुर्बल कुलसोभ श्री प्रभुतादिक तरु जान।
ब्रह्मभक्ति जलसक्ति ते बाढ़त है दिनमान ॥ १५ ॥
नित्य वात तू सत्य यह जानत मन अवदात।
ब्रह्मदोप के अग्नि-कन सव समूल जरि जात ॥ १६ ॥

---

[१०] श्री—है (सर०)। आनि०—आय कै (वही)। मोकौं—इमको (वेंकट, काशि०)। [११] जग०—जो बात जब (सर०)। लगै०—कहैं तदपि न मिटै सुजान (वही)। प्रवान—प्रमान (काशि०)। [१२] कौन०—करि कृपा केहि विधि (काशि०)। [१३] देवी—देव्युवाच (वेंकट, काशि०)। दीह बात०—दीह वाच सब (वही)। [१५] देवी—देव्युवाच (वेंकट, काशि०)। सक्ति—सेक (सर०)। [१६] जानत—मानो (वेंकट, काशि०)।

(रूपमाला)

ब्रह्मदोष प्रवृत्ति के कुल आनि भो अवतार।
पत्र पुष्प समूल कानन बंस भो सब छार।
ब्रह्मभक्ति निवृत्ति के कुल कल्पबेलि समान।
ताप ताप प्रभाव के बल बढ़त है दिनमान ॥ १७ ॥

(दोहा)

ब्रह्मदोष जिनके हिये, उपजत क्यों हूँ आनि।
तिनके कुल के नास मन मन तें नियत बखानि ॥ १८ ॥
पातक कों नहिं जानहीं सपने हूँ सब साधु।
दोपन से संसर्ग के जिहि जाको आराधु ॥ १९ ॥

मन

देहु कृपा करि भगवती मोकहँ सो उपदेस।
जिहि ममता मिटि जाय सब उपजत जाते क्लेस ॥ २० ॥

सरस्वती (रूपमाला)

आपु तें उपजै कह्यौ मम गोत एक सुजान।
एक पुत्र बखानियै अरु एक जूक प्रमान।
पोखियै सुत क्यों तजौं सब जूक जाति अखेद।
सोचनीय असोचनीय न मूढ़ मानत भेद ॥ २१ ॥

मन (दोहा)

मन पुत्रादिक जो सबै, जद्यपि जगत अनित्त।
तिन बिन और कछू न अब आवै मेरे चित्त ॥ २२ ॥

सरस्वती (दोहा)

मोहमई माया बसी तेरे चित में आय।
ताके संभ्रम विभ्रमनि भ्रमै न महि अकुलाय ॥ २३ ॥
जे जग में जनमत्त हैं तिनके 'केसव' अंत।
सब ही मवको सर्वदा माया परम दुरंत ॥ २४ ॥

माया क संक्षेप सोँ कहियै कछू बिलास।
जानि जुक्ति क्रम छाड़ियै उपजै चित्त उदास॥ २५॥

सरस्वती (दोधक)

संसृति नाम कहावति माया। जानहु ताकहँ मोह की जाया।
संभ्रम बिभ्रम संतति जाकी। स्वप्न समान कथा सब ताकी॥ २६॥

(दोहा)

ताकी परम बिचित्रता जानि परै कछु तोहिँ।
सोइ कथा अब सब कहौँ जो बूझी है मोहिँ॥ २७॥

(दोधक)

भूतल मालव देश लसै जू। तामहँ ब्राह्मन गाधि बसै जू।
सोदर सुंदरि बंधु तजे जू। बोध कोँ कानन जाय सजे जू॥ २८॥
सुंदर स्वच्छ सरोवर देख्यौ। सीतल साधु तपोमय लेख्यौ।
तामहँ पैठि तपोव्रत लीनौ। सोरह पच्छ जलै घर कीनो॥ २९॥

(दोहा)

ताको धीरज देखिकै ह्वै कृपालु भगवंत।
देख्यौ गाधि अगाधि मति दरसन दयौ अनंत॥ ३०॥

श्रीभगवान् (सुंदरी)

बाहिर आवहु बिप्र तजौ जल। आनि तपोजल को गहिजै फल।
माँगहु जो जिय माँझ रह्यौ बसि। आनि लहौ भगवंत कह्यौ हँसि॥ ३१॥

गाधि (रूपमाला)

बिश्व के हिय पद्म के अलि सर्बदा सर्बज्ञ।
सर्बदा सबके हितू तुमकोँ न जानत अज्ञ।
दीन देखि दया करी प्रभु नित्य दीनदयाल।
देहु जू बर एक मोकहँ बिस्व के प्रतिपाल॥ ३२॥

(दोहा)

अद्भुत माया रावरी, महामोह तम मित्र।
देख्यौ चाहत हौँ कछू ताको जगत चरित्र॥ ३३॥

---

[२५] जुक्ति—जु क्रम (सर०); जो क्रम (काशि०)। उपजै—कीजै (सर०); जातेँ (काशि०)। [२७] कछु०—सब मोहि (काशि०)। अब०—कहौँ सु अब (वही)। [२८] लसै जू—बसै जू (वेंकट, काशि०)। बसै—रहै (काशि०)। सजे—भजे (सर०, काशि०)। [२९] सुंदर०—सरसजुक्त (सर०)। साधु०—स्वच्छ तपोबल पेख्यौ (वही)। पैठि—बैठि (काशि०)। [३१] सुंदरी—दोधक (काशि०)। गहिजै—लहियै (सर०)। माँझ—माह (काशि०)। [३२] रूपमाला—सरस्वती (काशि०)। अलि०—अलि साथ के (सर०)।

एवमेव हरि हँसि कह्यौ पीछे भए अदृष्ट ।
ता दिन तें ताकों भई हरिमाया अति इष्ट ॥ ३४ ॥

(सुंदरी)

एक घाँस जलमध्य रह्यौ जब । कै सिगरी बिधि ध्यान कर्‌यौ तब ।
आपुहि आपुन ही घर ही घर । डीठि गिर्‌यो गतप्रान पर्‌यौ धर ॥ ३५ ॥
रोवत बंधु असेष बढ्यौ दुख । चुंबति गोद लियैं जननी मुख ।
लै गए लोग सबै सरितातट । बारि दयौ लगि रोवन की रट ॥ ३६ ॥
जाय चँडाल को पुत्र भयौ मुनि । ब्याह कर्‌यौ पितु मातु बड़ो गुनि ।
क्रीड़त है वन बीथिनि में किल । ज्यौं सँग काक बिलोकिय कोकिल ॥ ३७ ॥
लै तरुनी तनु दै अनुरागनि । खेलत डोलत बाग तड़ागनि ।
फूलन में दोउ फूले फिरैं तन । ज्यौं अलिनी अलि साथ रमैं बन ॥ ३८ ॥

(दोहा)

एक दिना त्रिय पुत्र लै गई पिता के गेह ।
तब ता 'केसव' वंस की कालबस्य भइ देह ॥ ३९ ॥

(रूपमाला)

छोंडि गो जबहूँ न मंडल तात मात बियोग ।
कीरमंडल स्यौं चल्यौ मुनि पुन्य-काल-सँजोग ।
काल के बस राज भौ तिहि देस को तिहिं काल ।
लै गए गहि ताहि भूप भयौ सु बुद्धि बिसाल ॥ ४० ॥
छत्र चामर सीस दै भए मंत्रि मित्र सँजुक्त ।
पाय घोड़े मत्त दंती दुःख तें भए मुक्त ।
संग लै बहु सुंदरी वन बाग जाय तड़ाग ।
नृत्य गीत कवित्त नाटक रंग राग सभाग ॥ ४१ ॥

(सवैया)

जदुकुमार सो जनसुतानि में ऐनिनि में करसायल सो है ।
रागिनि में सनि सो सुभ लाल मुनैअन में कल कोकिल सो है ।

'केसवराय' तजे अलिनी मलिनी अलि सो नलिनीन कोँ मोहै।
कामकुमार सो कीर-महीपति राजकुमारिन के सँग सोहै॥ ४२॥

(दोहा)

संग चले ता नृपति भो कीर-देस कोँ जाय।
आठ बरस लगि राज किय सत्रु अनेक नसाय॥ ४३॥
एक दिवस ता स्वपच की तरुनी पुत्र समेत।
जाति हुती घर आपने उतरी बाग-निकेत॥ ४४॥

(सुंदरी)

भूप गयौ तरुनी सँग लै सब। भेंट भई तरुनी सुत सोँ तब।
पुत्र त्रिया पहिचानि लगे उर। रोय उठी तरुनी तव आतुर॥ ४५॥

(दोहा)

रानिन मंत्रिन मित्रजन जान्यौ जाति चँडारु।
सुंदरि सुत लै संग घर आयौ नृप मतिचारु॥ ४६॥
रानिन अपनी सुद्धि लगि कीनौ अग्निप्रवेस।
पाछेँ मंत्री मित्रजन दुखित भयौ सब देस॥ ४७॥
ताके पाछेँ स्वपचहू कीन्ही मन मेँ लाज।
जरयौ अग्नि मेँ आपहू छाँडि सबै सुख-साज॥ ४८॥

(तारक)

यहि बीच प्रबुद्ध सु गाधि भयौ जू। भ्रमभार बिचारनि चित्त छयौ जू।
अब जीवत हौँ किधौँ ईस मरयौ हौँ। गहि लेइ को मोहिँ प्रवाह परयौ हौँ॥४९॥

(दोहा)

जल तेँ निकरयौ आश्रमहिँ गाधि गयौ अकुलाय।
संभ्रम चित्त न छाँडई बहुत रह्यौ समुझाय॥ ५०॥
अतिथि एक दिन गाधि कैँ आयौ बुद्धि अगाधि।
विधि सोँ आसन अर्घ्य दै दूरि करी मग-आधि॥ ५१॥

(सुंदरी)

मूल नए फल फूल दए सब। भोजन कै द्विज तृप्त भए जब।
बूझत गाधि तिन्हैँ बुधिधारन। दुर्बल विप्र कहौ किहि कारन॥ ५२॥

---

[४२] सोहैँ—जैसो (सर०), सोभै (काशि०)। मुनैश्रन—लुनायन (सर०)। कोँ मोहै—मेँ सोहै (वेकट, काशि०)। सोहै—ऐसो (सर०)। [४३] संग०—सिंहबल नाम (सर०), संगबल नाम (काशि०)। जाय—राम (सर०)। [४५] सुंदरी—तोटक (काशि०)। भूप—इत भूप (सर०, काशि०)। त्रिया—ताहीँ (वही)। तव—अति (सर०)। [४९] ईस—हौँ ही (सर०)। [५१] आधि—व्याधि (सर०)। [५२] सुंदरी—दोधक (काशि०)। दए—धरे (वेंकट, काशि०)। बुधि—व्रत (सर०)।

विप्र (रूपमाला)

भूमिलोकन में भलो इक कीर-देस सुदेस।
भोग जोग समृद्धि लोगनि दुःख को नहिँ लेस।
मास एक बसे तहाँ हम पूज्यमान सुबुद्धि।
गूढ़ मूढ़ चँडार भो नृप वर्ष अष्ट कुबुद्धि ॥ ५३ ॥
जाति जानि परी खिस्याय तज्यौ सबै तिहिँ राज।
अग्निमध्य प्रविष्ट भो सँग मंत्रि मित्र समाज।
सुंदरी सिगरी तजी द्विज एक बुद्धि अगाधु।
देखिकै तिनकों भए सब दुःख दुःखित साधु ॥ ५४ ॥
संसर्ग दोष निवारिबे कहँ छिप्र जाय प्रयाग।
स्नान दान अनेकधा तप साधियौ बड़भाग।
भद्र ह्वाँ हम भद्रियौ मन इच्छि कै सुख पाय।
दुःख दुर्बल ह्वै गए यह बात बर्नि न जाय ॥ ५५ ॥

(तारक)

विप्र महामुनि की सुनि बानी। बात सबै तिन सत्य कै मानी।
अद्भुत भाँति भई दुचिताई। काहु पै क्यौं हूँ कही नहिँ जाई ॥ ५६ ॥

अपनी गति देखन कौं उठि धायौ। तब हून के मंडल बिप्र बुलायौ।
जाय चँडार के मंदिर देख्यौ। बिरतंत सुन्यौं सब सोँच कै लेख्यौ ॥ ५७ ॥

हून तें कीरक-देस गयौ जू। बात सुनें सब तुल्य भयौ जू।
देखि चल्यौ फिरि बिप्र ससोक्यौ। बीच चँडार के पुत्र बिलोक्यौ ॥ ५८ ॥

देखत दौरि सु कंठ लग्यौ जू। विप्र बरथाय छुड़ाय भग्यौ जू।
रोवत पाछें पुकारत आवै। तात तजौ जिनि टेरि सुनावै ॥ ५९ ॥

खेलत हो तहँ राज अहेरो। सो सुनि आरत सब्द घनेरो।
भाजन भागत जात बिलोक्यौ। दौरि कै राज के लोगनि रोक्यौ ॥ ६० ॥
एकहि ठौर करे जन दोऊ। पूछन बात लगे सब कोऊ।

राजा

ब्राह्मन तूँ कहि काहि तेँ भाग्यौ। पाछेँ तु बालक काहे ते लाग्यौ ॥ ६१ ॥

बालक

दीनदयालु पिता यह मेरौ। मो कहँ देहु कृपा करि हेरौ।

ब्राह्मण

हौँ द्विज मालव देस रहौँ जू। कानन मेँ व्रतजाल बहौँ जू ॥ ६२ ॥
को यह राज न हौँ पहिचानौँ। काहे ते बाप कहै सो न जानौँ।
जाति चँडार सु बिप्र न होई। हून कै जानत हैँ सब कोई ॥ ६३ ॥
बाँधि दुहून तहाँ पहुँचायो। कै दुहुँ देस के बोलि पठायौ ॥ ६४ ॥

सरस्वती (दोहा)

ब्राह्मन ब्राह्मन वे कहैँ जाति चँडार चँडार।
राजा वेगि बोलाइयौ दुहुँ जन को परिवार ॥ ६५ ॥
राजा दोऊ राखियौ न्यारे न्यारे ठौर।
भाँति भाँति करि बूझियौ एकै कहैँ न और ॥ ६६ ॥

(दोधक)

बंधु दुहूँ जन के जब आए। बोलि लिये तब दोउ दिखाए।
त्रिप्र बसिष्ठ ते बिप्र बखाने। बेष चँडार चँडारहि माने ॥ ६७ ॥

(दोहा)

मालववासी मुनि कहैँ कीर-देस चंडार।
राजा थाके न्याउ करि होय नही निरधार ॥ ६८ ॥
द्विज न गाधि को थापही थापहिँ जाति चँडार।
झूठो द्विज साँचो स्वपच राजा कर्यौ विचार ॥ ६९ ॥
डारौ याहि कराह मेँ तप्ततेल जब होय।
जौँ न जरै तौ बिप्र है जरै चँडार सु होय ॥ ७० ॥

कीरदेशीया

जरिहैँ नाहिँ कराह मैँ कीजै राज विचार।
याको कर्म दुरंत है अति चेटकी चँडार ॥ ७१ ॥

---

[६१] पूछन—बूझन (सर०)। पाछे०—कहि तैं बालकु पाछैं लाग्यो (वही)। [६२] कानन०—सत्य कहौँ मम बात सुनो (काशि०)। [६६] भाँति०—भिन्न भिन्न (सर०)। [६७] बसिष्ठ—के बंधु (सर०)। वेष—जाति (वही)। [६८] मुनि—सब (काशि०)। न्याउ—सबै (सर०)। [७०] डारौ—राजा (सर०)। चँडार—सुपच यह (वही)।

(रूपमाला)

कीर-देस नृपाल भो इहिँ भोग कीन अपार।
आय बालक बाग में पहिचानियौ तिहिँ बार।
सर्ब लोग जर्‌यौ सबै यह ऊजर्‌यो मतिचार।
आय भो द्विज चेटकी यह सुद्ध बुद्ध चँडार॥ ७२॥

गाधि

राजराजन हौँ जर्‌यौँ नहिँ मर्‌यौ हौँ तिहिँ काल।
हौँ चँडार न चेटकी सुनि भूप बुद्धिबिसाल।
लोक में अपलोक-भाजन हौँ भयौँ किहिँ पाप।
चित्त में यहऊ न जानत देउँ कौनहि साप॥ ७३॥

(दोहा)

पुरपारत को विप्र हौँ जानत नहीँ बिकार।
हून कीर के कहत हैँ नृप चेटकी चँडार॥ ७४॥
जौ तूँ ब्राह्मन है सदा दै धौँ हमको साप।
तेरे मारेँ पुन्य है अनमारेँ तेँ पाप॥ ७५॥

सरस्वती (रूपमाला)

हाथ पायनि एक काटन नाक काननि एक।
आँखि काढ़न एक बोलत प्रान लेन अनेक॥
वृद्ध बालक ज्वान जे जन जानियै नर नारि।
मारु मारु रटैँ पढ़ैँ सब भाँति भाँतिन गारि॥ ७६॥

राजा (दोधक)

मूड़ि सिखा उपवीत उतारौ। गर्दभ याहि चढ़ाय सँवारौ।
पायनि नील करौं मुख कारौं। पर्वत ऊपर तेँ धर डारौं॥ ७७॥

सरस्वती

मूड़तई जु सिखा जब जानी। आय अकास भई यह बानी।
भूतल भूप न भूलहु कोई। ब्राह्मन गाधि चँडार न होई॥ ७८॥

बानि अकास सुनें भ्रम भाग्यौ। राजहि कों ऋषि ब्राह्मन लाग्यौ।
आसिष दै बन गाधि गए जू। संभ्रम चित्त के दूरि भए जू॥ ७९॥

(दोहा)

गाधि कर्‍यौ तप जाय कै अवनि अनंत अगाधु।
प्रगट भए भगवंत तहँ सुंदर श्री सुख साधु॥ ८०॥

गाधि

कौन पुन्य प्रिय दरस दिय स्वपच कियौ किहिं पाप।
मो सों बेगि कहो मिटै जातें सब परिताप॥ ८१॥

श्रीभगवान

गाधि अगाधि पुनीत तुम चित्त करौ भ्रम नास।
माया-दरसन तुम कह्यौ ताके सबै बिलास॥ ८२॥
पुत्र कलत्रनि आदि है झूठो सब संसार।
जाको देखौ स्वप्न सो साँचो ब्रह्मबिचार॥ ८३॥
जन्म मरन तेरो मृषा स्वपच कीर नृप वेष।
झूठो सिगरो नाउँ है माया कर्म अलेख॥ ८४॥
तातें तुम भ्रम छाँडि कै होहु ब्रह्म सों लीन।
यह कहि अंतर्धान तब भए भगवंत प्रबीन॥ ८५॥
संभ्रम छाँडि असेष तब साधी सुद्ध समाधि।
जीवनमुक्त भयौ फिरै जग में ब्राह्मन गाधि॥ ८६॥
जैसो गाधि-चरित्र सब यह मन मया-बिलास।
तातें माया कों तजौ भजियै नित्य प्रकास॥ ८७॥

इति श्रीमिश्रकेशवरायविरचितायां चिदानंदमग्नाया विज्ञानगीतायां गाधिमायाविलोकनं नाम त्रयोदशमः प्रभावः॥ १३॥

१४

उपजैगो या चौदहें मन के अंग विराग।
व्यासपुत्र सुकदेव को सुनि चरित्र जग जाग॥ १॥

---

[७९] राजहि०—भूपति गाधि के पायँन (सर०)। कों—तो (काशि०)। ब्राह्मन—पायन (वही)। सं—सबै (वेंकट); सब (काशि०)। [८०] अवनि०—परम अगाध अनंत (सर०)। भगवत०—ताकी तहाँ सरस्वती भगवंत (वही)। 'काशि०' में नहीं है। [८२] तुम—तनु (काशि०)। [८३] जाको—यह सब (सर०)। सो—सब (काशि०)। [८४] मृषा—कथा (सर०), वृथा (काशि०)। अलेख—असेस (सर०)। [८५] तब०—प्रभु गए दयाल (सर०)। [८७] सब०—यह माया को सुर (सर०)।

[इति] मायाविलोकन—चरित्रवर्णनं (सर०)।

[१] अग—अति (सर०); अत (काशि०)।

माया को समुझौ सबै, देबी मृषा बिलास।
एकौ नहिँ चित लाइयै मन क्रम बचन प्रकास ॥ २ ॥

देवी (दडक)

सबको समान असमान मानियै प्रमान अति न प्रमान जग जा कहँ करत है।
स्वारथहू देइ परमारथहू देइ देइ स्वारथहू औगुननि गुननि हरत है।
साँचो भूठईठ कहूँ डीठ तहूँ डीठत न अजर जरनि जर्‍यौ अमर मरत है।
हरिसों लगाउ होय मानससो 'केसौराय' मानस सो लाए मन मानस जरत है ॥ ३ ॥

केशव (दोहा)

लागि गयौ यह बचन मन भूले कुल अनुराग।
कह्यौ गिरा को गूढ़ मत उपजि पर्‍यौ बैराग ॥ ४ ॥

वैराग्यलक्षण (कुंडलिया)

देही अबिनासी सदा देह बिनास-बिचार।
'केसवदास' प्रकास वस घटत बढ़त नहिँ बार।
घटत बढ़त नहिँ बार बार मति बूझि देखि सब।
वेद पुरान अनंत साधु भगवंत सिद्ध अब।
वेद पुरान अनंत कहत जो ब्रह्म सनेही।
यौं छाँडत नहिँ संत देह ज्यौं छाँडत देही ॥ ५ ॥

गीतायां श्रीकृष्ण अर्जुनप्रति

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ ६ ॥

(दंडक)

अनठी ठिक को ठग जानै न कुठौर ठौर ताही पै ठगावै ठेलि जाहि कौं ठगत है।
याहीं नो डरौ डर डगन डगत डरि डर के डरनि डरि डौंडी ज्यौं डगत है।
ऐसे बनवास तें उदास होहि 'केसौदास' केसौ न भजत कहि काहे कौं खगत है।
झूठो है रे झूठो जग राम की दोहाई काहू साँचे को बनायौ तातें साँचो सो लगत

(सवैया)

भूरिहुँ भूरि नदीन के पूरनि नावन में बहुतै बनि बैसे।
'केसवराय' अकास के मेह बड़े बवघूरन में तृन जैसे।
हाटनि बाटनि जात बरातनि लोग सबै बिछुरे मिलि ऐसे।
लोभ कहा अरु मोह कहा जग जोग बियोग कुटुंब के तैसे॥ ८॥

(दंडक)

दनुज मनुज जीव जल थल जनन कोँ परयौई रहत जहाँ काल सो समरु है।
अजर अनंत अज अमरौ मरत परि 'केसव' निकसि जानै सोई तौ अमरु है।
बाजत स्रवन सुनि समुझि सबद करि बेदन को नाद नाहिँ सिव को डमरु है।
भागहु रे भागौ भैया भागनि ज्यौँ भाग्यौ परै भव के भवन माँझ भय को भमरु है॥ ९॥

(सुंदरी)

काहूँ कह्यौ सब तेँ चल जोबन। छाड़न चाहत है यह तो तन।
जानि सबै गुन सील सुभाइनि। सज्जन कौँ अति दुर्जन गाइनि॥ १०॥

(दोहा)

पल सोनित पंचालिका मल-संकलित बिसेष।
जोबन मेँ ताखोँ रमत अमरलता उर लेखि॥ ११॥
देवी कहि बैराग यौँ साँची है यह बात।
तदपि तुम्हैँ आश्रम बिना रहनो नाहीँ तात॥ १२॥
घरनी बिन घर जो रहै छाँडै धर्म अधर्म।
बनिता तजि जो जाय बन बन के निष्फल कर्म॥ १३॥

(रूपमाला)

है निबृत्ति पतिव्रता नियमादि पुत्र समेत।
जोबराज बिवेक कौँ मिलि देहु देह-निकेत।
बेद सिद्धि सगर्भ हेतु पतिव्रता सुभ बाद।
जाइहै सु प्रबोध पुत्रहिं बिस्नुभक्तिप्रसाद॥ १४॥

मन (दोहा)

डर प्रबृत्ति की बासना सुनियै देवि सुभाउ।
अब न लेत सखि स्वप्नहूँ मुख निवृत्ति को नाँउ॥ १५॥

---

[८] लोभ०—भोग कहा अरु सोग (सर०) [९] 'वेंकट, काशि०' मेँ नहीँ है। [१०] सुंदरी—तोटक (काशि०)। तो तन—मो तन (काशि०)। [११] मल०—मन मेँ (सर०) [१२] नाहीँ—बनै न (काशि०)। [१३] छाँडै—घर के (सर०)। [१४] जोबराज—राजराज (सर०)। मिलि०—मल देहु राज (वही)। सिद्धि०—बधू बुलावहु छाँडियै सुख स्वाद (वही)। [१५] अब०—आवन देत न नेकहू (सर०)।

अहंकार की होति जब बारिद-अवलि प्रवृत्ति।
तामें तृस्ना मंजरी क्यौं सूखति भव चित्ति ॥ १६ ॥

(सुंदरी)

चंचलता सबको उठि धावति। आदरहीन नहीं फल पावति।
ज्यों कुलटा तिय वृद्ध बखानहु। लाजबिहीन त्यौं तृस्नहि जानहु ॥ १७ ॥

(समानिका)

लीन चित्तहू करै। फूल सों नहीं डरै।
सूर अंस ज्यौं सजै। प्रात फेरि पंकजै ॥ १८ ॥

मन

देवि हौं कहा करौं। चित्तमें महा डरौं।
जग में न सुक्ख है। यत्र तत्र दुक्ख है ॥ १६ ॥

(सवैया)

गर्भ मिलेई रहै मल में जग आवत कोटिक कष्ट सहै जू।
को कहै पीर न बोलि परै बहु रोग-निकेतन ताप रहै जू।
खेलत मात पितानि डरै गुरुगेहन में गुरु-दंड दहै जू।
दीरघलोचनि देवि सुनौ अब बाल-दसा दिन दुक्ख नहै जू ॥ २० ॥

(दोधक)

जोवन में मति की मलिनाई। होति हिये चित कौं चपलाई।
काहू गनै न सुगर्व भरो यों। आवति है बरषा-सरिता ज्यों ॥ २१ ॥

(सवैया)

काम प्रताप के ताप तपै तनु 'केसव' क्रोध बिरोध सनै जू।
जोर तचै दुचिताई विपत्ति में संपति गर्व न काहू गनै जू।
लोभ तें देस विदेस भ्रम्यौ भव संभ्रम विभ्रम कौन भनै जू।
मित्र अमित्र तें पुत्र कलत्र तें जोवन मेदिनि दुक्ख घनै जू ॥ २२ ॥

(दोहा)

जहाँ भामिनी भोग तहँ भामिनि विनु का भोग।
भामिनि छूटें जग छुटै जग छूटें सुख-जोग ॥ २३ ॥

या संसार समुद्र कों सबै तरै मतिनिष्ट।
बाँधी होय गरै न जौ जुवती सिला गरिष्ट ॥ २४ ॥

(मकर)

डगै बर बानी कँपै डर डीठ तुचा तुकुचै सकुचै मति बेली।
नवै नव ग्रीव थकै गति 'केसवदास' नसै रति रीति नवेली।
लिये सब ब्याधिन आधिन संग जरा जब आवै जुरा की सहेली।
भगै सब देह दसा जब साथ रहै दुरि दूरि दुरास अकेली ॥ २५ ॥

(दोहा)

जितने थिर चर जीव जग अध ऊरध के लोक।
अजर अमर अज अमित जन कवलित काल ससोक ॥ २६ ॥

(सवैया)

सेषमई कबरी रसनानल कुंडल सूरज-सोम सँचै जू।
मेखल ब्रह्म-कपालनि की पद नूपुर रुद्र-कपाल रचै जू।
पंकज-बिस्नु-कपालनि की बनमाल न 'केसव' काहू बचै जू।
हस्तक भेद दसौ दिसि दीसत ऊरधहूँ अध मीचु नचै जू ॥ २७ ॥

योगवासिष्ठे

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सर्वा या भूतजातयः।
नाशयेत् वायुधावृत्तिः सलिलनीव वाडवम् ॥ २८ ॥

मन (दोहा)

देवी सो उपदेस दै जनम मरन मिटि जाय।
कालहु को जो काल-कर ताहि रहौं मिलि जाय ॥ २९ ॥

देवी

ब्यासपुत्र सुकदेव सम सुखदा मति सु गँभीर।

मन

ब्यासपुत्र की यह दसा कहि माता मतिधीर ॥ ३० ॥

सरस्वती (दोधक)

एक समै सुक चित्त विचारे। बाढ़ौ बिराग बढ़ौ ज्यों तिहारे।
आपुनहीं अपनी मति जानौ। सत्य स्वरूप हिये महिं आनौ ॥ ३१ ॥

(दोहा)

तब ताके बिस्वास कों बूझे सुक पितु ब्यास।
उपजत है जग कौन तें कहा बिलात प्रकास ॥ ३२ ॥

[२४-२५] 'वेंकट, काशि०' में नहीं हैं। [२७] सवैया—विजय छंद (काशि०)। [२८] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [३०] सम०—की संमति भई (सर०)। [३२] पितु—मुनि (सर०)। प्रकास—बिकास (वही)।

(दोधक)

व्यास सबै सुक-आसय पायौ। भूपति साधु बिदेह बतायौ।
वै तुमको सुत उत्तरु दैहैं। पूछहु जाय महा सुख पैहैं॥ ३३॥

(तोटक)

तबही सु बिदेह के गेह गए। नृपद्वार तबै थिर होत भए।
तब द्वारपहीं नृप सों गुदरे। सुकदेव अबैं दरबार खरे॥ ३४॥

(सुंदरी)

उत्तर राज कछू न दयौ जब। ठाढ़ेहि बासर सात भए तब।
रावर में नृप बोलि लिये मुनि। ठाढ़े किये परदा तट लै मुनि॥ ३५॥
सात बितीत भए जब बासर। जाय किये तब आँगन में थर॥
बासर सात तहीं सु बिहाने। साधु बिदेह महीपति जाने॥ ३६॥
सुंदरि आय सुगंधनि लीने। जोबन जोर स्वरूप नवीने।
मज्जन कै तिन्ह न्हान कराए। अंग अनेक सुगंध चढ़ाए॥ ३७॥
भोजन तौ बहु भाँति जिवाए। दर्पन पान खबाय दिखाए।
वस्त्र नवीन सबै पहिराए। सुंदर साधु स्वरूप सुहाए॥ ३८॥

(रूपमाला)

नाचि गाय बजाय बीननि हाव भाव बताव।
मंद हास बिलास सों परिरंभनादि प्रभाव।
कै थकीं सब भाँति भाँति रहस्य लीनि बनाय।
लुब्ध होत न चित्त ज्यों बहु बल्लरी तरु पाय॥ ३९॥

(दोहा)

बहुतै निंदा कै थकीं चित्त एक ही रूप।
सुख दुख चित्त न पाइयै पायँ परे तब भूप॥ ४०॥

मन (तारक)

कहियै जु कछू मुनि जा लगि आए। अपने हम पूरवपुन्यनि पाए।

शुकदेव

किहि तें उपजै जग राज बखानौं। अरु क्यौं बिनसै किहि माँझ समानौ॥ ४१॥

(दोहा)

सो वह कैसे पाइयै बूझन आयौं तोहिं।
भूल्यौ जहँ तहँ भ्रमत हौं पार लगावहु मोहिं॥ ४२॥

विदेह (दोहा)

पायौ हुतौं जु पाइबे सुनियै श्रीसुकदेव।
यह सुनि मुनि मारग लगे सुख पायौ नरदेव ॥ ४३ ॥
जाय मेरु के सिखर पर पूरन साधि समाधि।
धरी धीर सब धर्म तजि परब्रह्म आराधि ॥ ४४ ॥
बरष अनेक सहस्र तहँ एकरूप भव भूप।
क्रम क्रम दीपक ज्योति ज्यौं मिलै आपने रूप ॥ ४५ ॥

योगवासिष्ठे

व्यापकगतकलहेनाकलंकशुद्धः स्वयमात्मनि पावने पदेऽसौ।
सलिलकण इवाम्बुधौ महात्मा विगलितवसनामेकतां जगाम ॥ ४६ ॥

देवी

तैसै तुमहूँ समुझि मन दुख सुख मानि समान।
तजि संकल्प बिकल्प सब पौरुष बात प्रमान ॥ ४७ ॥

मन

जित लै जैहै बासना तित तित ह्वैहैं लीन।
पौरुष बपुरा क्यौं करै जीव बापुरो दीन ॥ ४८ ॥

देवी

दुविध बासना होति है सुभ अरु असुभ प्रमान।
असुभै सुभ करि मानियै निराधार मन जान ॥ ४९ ॥
एक काल ब्रह्मा सभा बैठे हे मतिधीर।
मैं बूझी जग जीव की क्यौं हरिहौ प्रभु पीर ॥ ५० ॥
मुक्तिपुरी-दरबार के चारि चतुर प्रतिहार।
साधुन के सुभ संग अरु सम संतोष बिचार ॥ ५१ ॥

(वसुकला)

तिनमें जग एकहु जो अपनावै। सुखहीं प्रभुद्वार प्रवेसहि पावै ॥ ५२ ॥
तिनके तुमकों कहि रूप सुनाऊँ। पहिचानि परै तौ सो गुन गाऊँ ॥ ५३ ॥

सत्संगलक्षणं (सवैया)

'केसवदास' मनो बच काय सदा सबही को भलो मन भावै।
दूरि करै परदोषनि देखि तिन्हैं उपदेसि सुपंथ लगावै।

---

[४३] मारग–पैंडे (सर०)। [४४] साधि–सुद्ध (सर०)। [४५] रूप–भाँति (वेंकट, काशि०)। ज्योति–तेल (सर०)। [४६] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [४८] बपुरा० -पावै करन क्यौं (सर०)। [४९] होति–रहत (काशि०)। सुभ०–जा मन (वही)। मानियै०–मानि लै रे रे धीर सुजान (सर०)। [५१] साधुन०–प्रथम सुनौ सतसंग (सर०), सार सकल साधननि के सुभ (काशि०)। [५२] वसुकला–दोधक (काशि०)। [५३ से ५७] 'वेंकट, काशि०' में नहीं हैं।

सत्रुहु सों अरु मित्रहु सों सुत ज्यौं कहि साँचियै बात सुनावै।
काम न क्रोध विरोध न लोभ न दंभ न सो जग साधु कहावै ॥ ५४ ॥

समलक्षणं

रूप अरूपनि भोज अभोज पियूषहु कों बिष कों सम जानै।
लाभ अलाभनि पूजन ताड़न चित्त सबै सुख दुक्ख न मानै।
राग विराग न काम विरोध न क्रोध न लोभ न गर्बन आनै।
ब्रह्म तें कीट लौं देखै समानहि सो सम 'केसवदास' बखानै ॥ ५५ ॥

संतोषलक्षणं (दंडक)

मन वच काय करि भूलिहू न इच्छै कछु मानै जथालाभ सुख हरिगुन जानियै।
ढुंढुज असेप सहि लेइ सब बिपदादि संपदादि अभिमान जी के सन मानियै।
पुत्र सम देखै लघु जेठे जन बाप सम जननी सी जुवती सकल सनमानियै।
हाड़ से हाटक परविप से विषयरस 'केसौदास' ऐसें सब संतोष बखानियै ॥५६॥

विचारलक्षणं (सवैया)

कौन हौं आयौं कहा कहि 'केसव' को अपनो परिपूरन को है।
बंधु अबंधु हिये यहँ हेरि तो जातौ छुट्यौ तिहि साथ सु टोहै।
आयौ जहाँ तें हौं जाउँ तहाँ अब रोकि मनै जिनि काहू न मोहै।
नित्य अनित्य विचार करै चित सोई विचार विचार में सोहै ॥ ५७ ॥

(दोहा)

जो इनको संग्रह करै मन वच कर्मनि छंडि।
मिलै आपने रूप को सकल वासना खंडि ॥ ५८ ॥

मन

मेरे घर धन पुत्र त्रिय यह बंधन मन मान।

देवी

दृश्यादृश्य सु ब्रह्म है यहै मुक्ति जिय जान ॥ ५९ ।

योगवासिष्ठे

बन्धोऽयं दृश्यसद्भावादृश्याभावेन बन्धनम्।
न सम्भवति दृश्यं तु यथेदं शृणु कथ्यते ॥ ६० ॥
य इदं दृश्यते सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
तत्सुषुप्तिविनाशस्वप्नः कल्पान्तेऽपि विनश्यति ॥ ६१ ॥

भर्तृहरि

मनोज्ञा युवतयः स्वजनानुकूलाः
सद्बान्धवाः प्रणति नम्रवराश्च भृत्याः।

गर्जन्ति दन्तिनिवहाश्च चलास्तुरङ्गाः ।
सम्मीलने नयनयोर्नहि किञ्चिदस्ति ॥ ६२ ॥
जातें उपज्यौ ताहि मिलि अनलज्वाल-परिमान ।
यह कहि भई सरस्वती केवल अंतर्धान ॥ ६३ ॥

मिश्रकेशव

देवी के उपदेस यौं सुद्ध भयौ मननाथ ।
सुद्ध भए कैसी भई नृप विवेक की गाथ ॥ ६४ ॥

इतिश्री मिश्रकेशवरायविरचितायां श्रीविज्ञानगीतायां चिदानंदमग्नायां मनशांतिवर्णनो नाम चर्तुदश्मः प्रभावः ॥ १४ ॥

१५

पंचदसें मनसुद्धता जीव विवेक बिचार ।
परमदेव पूजा सबै कहियौ चार बिचार ॥ १ ॥
सुद्ध भयौ मन जानि जब देवी के उपदेस ।
महापुरुप की दृष्टि तब पर्‍यौ सुकास सुवेस ॥ २ ॥
पाँयनि लागे परन जब प्रभु के आप नरेस ।
प्रभु बरज्यौ हौं सिष्य तुम गुरु कीजै उपदेस ॥ ३ ॥

विवेक

बार बार जिहिं होत है जन्म मरन सो देहु ।
मनसा बाचा कर्मना तासों तजौं सनेहु ॥ ४ ॥

जीव

याही देह सुनौ सुमति ज्यौं पावै चिर सुख्ख ।
सो करियै उपदेस ज्यौं मृत्यु न परसै दुख्ख ॥ ५ ॥

---

[६३] केवल–देवी (सर०) । [६४] नृप–श्री (काशि०) ।

[इति] मनशांति–सात्विक (सर०), अनंत (काशि०) ।

[१] मन–महँ (काशि०) । चार०–गो उद्धार (सर०) । [२] सुकास–विवेक (सर०) । [४] होत–देत (सर०) । सो–जेहिं (काशि०) । तजौं–करैं (वेंकट, काशि०) । [५] जीव–पुरुप (सर०, काशि०) ।

विवेक—(दोहा)

हृदय-वृच्छ सों बासना-लता न लपटति जाहि ।
रागद्वेष फल ना फलै मृत्यु न मारै ताहि ॥ ६ ॥
उरसि विवेक-समुद्र को डसै न बाड़व-कोप ।
ताके तनु को मृत्यु पै होय न कबहूँ लोप ॥ ७ ॥
परमानंद-पियूष के कन को पावै स्वाद ।
ताके तनु को मृत्यु पै दयौ न जाय बिपाद ॥ ८ ॥
क्रम क्रम साधै देह इहि 'केसव' प्रानायाम ।
कुंभक पूरक रेचकनि तौ पूजै मनकाम ॥ ९ ॥

जीव

कहाँ सृष्टि यह कौन ते होत कौन में लीन ।
पुन्य पाप को फल कहाँ देत सु कौन प्रबीन ॥ १० ॥

विवेक—(रूपमाला)

तेज सत्व अनंत अव चाहंत है जु अमेय ।
सर्वसक्ति समेत अद्भुत है प्रमान अभेय ।
नित्य वस्तुविचार पूरन सर्वभाव अदृष्ट ।
पुंस नारि न जानियै सुनि सर्वभावनि इष्ट ॥ ११ ॥

(दोहा)

ताके अद्भुत भाव ते भए सरूप अपार ।
विस्नु आदि परमानु लौं उपजत लगी न बार ॥ १२ ॥
रच्छक कीने बिस्नु बिधि करता हर हरतारु ।
दंडधरन सबको रचे धर्मराज मतिचारु ॥ १३ ॥
अवलोकत रवि ससि फिरत निसिदिन धर्माधर्म ।
इहि विधि 'केसव' समुझिये सब लोकन के कर्म ॥ १४ ॥

जीव

सबही को जु समान है ताके जीव स्वरूप ।
घटि बढ़ि तेज बिलोकियत सबके 'केसव' भूप ॥ १५ ॥

विवेक

जिहि॑ जैसी जा देव की पूजा करी प्रमान।
ताके॑ तैसे तेज बल बिक्रम भए सुजान॥ १६॥

जीव

धरि धरि क्यौं॑ अवतार प्रभु मारत अपने रूप।
सिखवत सासन-भंग ते॑ ज्यौं॑ पितु सुत को भूप॥ १७॥

ब्रह्मपुराणे

अपि भ्राता सुतो बाला श्वसुरो मातुलोऽपि वा।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति धर्मात्प्रचलिता प्रजा॥ १८॥

विवेक

उपजत ज्यौं॑ चितरूप ते॑ जीवन तिहि॑ बिधि जात।
रबि ते॑ उपजत अंस ज्यौं॑ रबि ही माँझ समात॥ १६॥
उपजत माया संग ते॑ जीव होत बहुरूप।
उत्तम मध्यम अधम सब सुनि लीजै भवभूप॥ २०॥

(सुंदरी)

उत्तम ते प्रभु सासन-संमत। है जग सो॑ न कहूँ कबहूँ रत।
कौनहुँ एक प्रमाद ते॑ भूपति। होन है सासन-भंग महामति॥ २१॥
आपुहि आपुनि क्यौं॑ करि दंडहि। कारज साधत है॑ तिहि खंडहि।
औरहु आपने पंथ लगावत। ते सब मध्यम जीव कहावत॥ २२॥
होत जे जीव कछू मन के बस। भूलत है॑ अपने प्रभु के जस।
पीड़ित आधिनि व्याधिनि कै जब। बूझत बेद पुरानन को॑ तब॥ २३॥
दानन दै ब्रत संजम कै तप। संग तजे॑ बन साधत है॑ जप।
जन्म गएँ बहु ज्ञाननि पावत। ते जग जीवनमुक्त कहावत॥ २४॥
जिनको॑ न कछू अपने प्रभु की सुधि। बहु भाँति बढ़ावत है॑ मन की बुधि।
सुनिहूँ सुनि बेद पुराननि के मत। होत तऊ बहु पापनि सो॑ रत॥ २५॥

(दोहा)

ते अति अधम बखानियै जीव अनेक प्रकार।
सदा सुयोनि कुयोनि मे॑ भ्रमत रहत संसार॥ २६॥

---

[१८] 'वेंकट, काशि०' मे॑ नहीं॑ है। [२०] संग—अंस (सर०)। [२१] सुंदरी—दोधक (काशि०)। है जग०—सो॑ प्रभु है जग सो न कहूँ रत (काशि०)। सो॑०—मे॑ जग सो॑ न कहूँ रत (सर०)। प्रमाद—प्रसाद (वेंकट); प्रताप (काशि०)। [२२] तिहि—करि (सर०); जिय (काशि०)। [२४] जीवन०—जीव कनिष्ठ (सर०)।

उत्तम मध्यम अधम अति जीव ते 'केसवदास'।
अपने अपने औसरैं जैयै प्रभु के पास ॥ २७ ॥
ज्यों रस रूप सुगंधमय पुष्प सदा सुरराउ।
पुष्प न जानत जानियै ताको तनिक प्रभाउ ॥ २८ ॥
त्यों सब जीव चिदंसमय बनत जीवनमुक्त।
भूलि जात प्रभुता सबै महामोहसंजुक्त ॥ २९ ॥
महामोह सँग जीव यौं मोहहि माँझ समात।
लोहलिप्त ज्यों कनककन लोहोई ह्वै जात ॥ ३० ॥

वीरसिंह

जीव मोहमय लोभमय कनक तें कौन प्रकार।
मिलिहै कबहूँ आपने रूपहि तजि जंजार ॥ ३१ ॥

योगवासिष्ठे

यथा सत्त्वमुपेत्य स्वंशनैर्विप्रा दुराशयाः।
अङ्गीकरोति शूद्रत्वं तथा जीवत्वमीश्वरात् ॥ ३२ ॥

केशव

ज्यों क्यों हूँ चितसिंधु की उपजै कृपा-तरंग।
तिनहीं को तौ जानियौ पारस बोधप्रसंग ॥ ३३ ॥
और भाँति क्यों हूँ नहीं नरकन तें उद्धार।
राजनकन्तूइेस सुनि जानौ जग दुखभार ॥ ३४ ॥

जीव

सकल देवपूजा कहौ हमसों अवसि विसेष।
जाहि सुने तें चित्त में उपजै ज्ञान विसेष ॥ ३५ ॥

विवेक (रूपमाला)

एक काल गए तपस्यहि श्रीवसिष्ठ ऋषीस।
देवदेव जहाँ बसे हिमवंत आपुन ईस।

जाय कै तपसा रची तहँ बीति गौ बहु काल।
पार्वतीपति आपु आए ह्वै कृपाल दयाल ॥ ३६ ॥

श्रीशिव (दोहा)

साधु बसिष्ठ सुनिष्ठमति ब्रह्मासुत ऋषिराज।
माँगि महामति चेति चित तप कीनौ जिहि काज ॥ ३७ ॥

वसिष्ठ (भुजंगप्रयात)

सुनौ देवदेवेस देवादिभर्ता। प्रभापूर्ण संसार के दुख्खहर्ता।
कहौ देवपूजा करौं ईस कैसें। सिखावौ सु मोसों महादेव तैसें ॥ ३८ ॥

श्रीशिव (दोहा)

'केसव' छूटें जगत तें कीजै जाकी सेव।
सोई देव बताइयै महादेव जगदेव ॥ ३९ ॥

(दंडक)

ऋषि ऋषिराजबृद्ध 'केसव' प्रसिद्ध सिद्ध लोकलोकपाल सब कोऊ न प्रबल है।
बरुन कुबेर जम अनिल अनल जल रबि ससि सुरपति जाके दीने बल है।
कौन सों कहत देव कौन की सिखावौं सेव जारे को सो बास मूल मलिन धवल है।
सेषधर नागधर नागमुख ब्रह्म बिस्नु इनको कलेवर तौ काल को कवल है ॥ ४० ॥

(दोहा)

सिव सर्बग सर्बज्ञ हौ कहत सबै सर्बेस।
यह तौ औरै कहत हैं सुनि बीरेस नरेस ॥ ४१ ॥

पाराशरे यथा—

कल्पे कल्पे क्षयोत्पत्तिर्ब्रह्माविष्णुशिवस्य च।
श्रुतिस्मृतिसदाचारः तस्य चेत्प्रिय आत्मनः ॥ ४२ ॥

योगवासिष्ठे

न देवः पुण्डरीकाक्षो न देवस्तु त्रिलोचनः।
न देवः देहरूपो हि न देवश्चित्तरूपधृक् ॥ ४३ ॥

वसिष्ठ (भुजगप्रयात)

सुनौ ईस तावत कहौं देव को है। सदा सर्व संपूजिबे जोग जो है।
कृपा कै कहौ हौं कहा देव जानौं। महादेव जाकों महादेव मानौं ॥ ४४ ॥

---

[३६] विवेक–संयुता (काशि०)। जहाँ०–तहाँ सबै (सर०)। आए०–आइ धरे ति होइ–कृपाल (वही)। [३७] शिव–महादेव (सर०)। सुत–सुनु (वेंकट)। [३९] कीजै–सँतत (सर०); कीन्हे (काशि०)। [४०] दंडक–महादेव (सर०), विजय (काशि०)। जल०–रविससि सुरपति सूर सोंचोई अमल है (सर०)। [४१ से ४३] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [४४] ईस०–देवसेवा (सर०)। सदा०–श्रद्धा सन पूजियै नित्य (सर०)

श्रीशिव (नगस्वरूपिणी)

अजन्म है अमर्न है। असेष जंतु सर्न है।
अनादि अंतहीन है। जु नित्य ही नवीन है ॥ ४५ ॥
अरूप है अमेय है। अमाय है अजेय है।
निरीह निर्विकार है। समाधि आधिहार है ॥ ४६ ॥
अकृत्त मे अखंडि है। असेष जीव मंडि है।
समस्तसक्तिजुक्त है। सु देवदेव मुक्त है ॥ ४७ ॥

(दोहा)

ताकी पूजा करहु ऋषि कृत्रिम देवन छंडि।
मनसा वाचा कर्मना निपट कपट को खंडि ॥ ४८ ॥

वीरसिंह (दोहा)

देव अरूप अमेय हैं कहै निरीह प्रकास।
सर्व जीव मंडित कहौ कैसे 'केसवदास' ॥ ४९ ॥
अद्भुत देवन जानियै ताके अमित प्रकार।
सब ते न्यारो सबन मे इहिं विधि वेदबिचार ॥ ५० ॥

योगवासिष्ठे

अध ऊर्ध्वं चतुर्दिक्षु विदिक्षुश्च निरन्तरम्।
ब्रह्मेन्द्रहरिरुद्रेशप्रमुखा महिमण्डिताः।
इमां भूतप्रियां तस्य रोमावलीं प्रति चिन्तयेदिति ॥ ५१ ॥

(दोहा)

ज्यों अकास घट घटन मे पूरन लीन न होय।
यों पूरन संदेह मे रहै कहै मुनिलोय ॥ ५२ ॥

वसिष्ठ

कहि प्रभु पूरन देव को कैसे पूजन होय।
हमैं सुनावौ सुगम मग ज्यों पूजैं सब कोय ॥ ५३ ॥

शिव (दोधक)

आनहु ज्योति हिये अविनासी। अच्छ निरंजन दीपप्रकासी।
निस्चल कै मन साधि बिहारै। वासना अंग पतंगनि जारै ॥ ५४ ॥

सुद्ध स्वभाव के नीर नहावै। पूरन प्रेम सुगंधहि लावै ॥
मूल चिदानँद फूलनि पूजै। और न 'केसव' पूजन दूजै ॥ ५५ ॥

(दोहा)

इहिँ पूजन जो पूजई, 'केसव' अर्ध निमेष।
मनहु सदच्छिन बहु करै, राजसूय सबिसेष ॥ ५६ ॥
इहई साधन सुद्ध तप, यहई जोग बियोग।
यहै अनन्यन को मरम, जानत हैँ मुनि लोग ॥ ५७ ॥
इहि बिधि पूजा हम करत, अनुदिन सुनि ऋषिराज।
कर्तुमकर्तुम अन्यथा करन भए सुरराज ॥ ५८ ॥
अखिल बासना जाति जरि, अखिल जन्म की छिप्र।
पूजा सालग्राम की, पूजा क्रम क्रम बिप्र ॥ ५९ ॥
तीनि बर्न पूजै सिला, प्रतिमा सूद्र प्रमान।

विवेक

महादेव यह कहि भए, ऋषि कोँ अंतरधान ॥ ६० ॥

(हरिगीतिका)

तेहि दिवस तेँ इहि भाँति पूजन पूजिकै दिन राति जू।
सब बासना उर जारिकै अति बिज्ञ ह्वै बहु भाँति जू।
पुनि पाय ज्ञान त्रिकाल के जग योँ बसिष्ठ ऋषीस मै।
रमियै महाप्रभु पूजियै इन बिस्व मेँ तजिकै भ्रमै ॥ ६१ ॥

(दोहा)

इहि बिधि पूजा जो करै कहै सुनै दिन राति।
जोइ चहै सोई लहै कहि 'केसव' बहु भाँति ॥ ६२ ॥

इति श्रीमिश्रकेशवरायविरचितायां श्रीविज्ञानगीतायां चिदानंदमग्नाया विवेकजीवसंवादे देवपूजनवर्णनं नाम पंचदशमः प्रभावः ॥ १५ ॥

१६

(दोहा)

नृपति सिखीध्वज षोडसेँ, जीतैगो संसार।
निज तरुनी उपदेस तेँ, ताको गूढ़ विचार ॥ १ ॥

---

[५५] सुगंधहि–समाधिहि (वेंकट, काशि०)। लावै–चढ़ावो (सर०)। [५६] पूजन–भाइन (सर०)। [५७] तप–व्रत (सर०), तव (काशि०)। [६०] प्रमान–समान (सर०)। [६१] हरिगीतिका–सरस्वती (काशि०)। अंतिम तीन पंक्तियाँ 'वेंकट, काशि०' में नहीं हैं। [६२] प्रथम दल 'वेंकट, काशि०' में नहीं है।

[१] सिखीध्वज–सिखीद्विज (काशि०)।

विवेक

रानी के उपदेस तें, ज्यौं जीत्यौ नरनाथ।
त्यौं अब बुद्धिविलासिनी-बल जीतहु जगनाथ ॥ २ ॥

जीव

राजा रानी की कथा, कहौ कृपा करि आजु।
जातें मेरे चित्त में, उपजै बोध-समाजु ॥ ३ ॥

विवेक

सात अतीतें मनु सुमति, द्वापर पूर्व प्रवेस।
नृपति सिखीध्वज तब भए, 'केसव' मालव देस ॥ ४ ॥
ही सुराष्ट्रदेसाधिपति की चूड़ाला नाम।
कन्या सकल कलावती, रूप सील दुतिधाम ॥ ५ ॥

(रूपमाला)

दामिनी चल चारु खंजन दाड़िमी फटि जात।
चंद्रमा घटि जात है जिय फूल फुलि कुँभिलात।
कोकिला कों कालिमा तनु मारबान अदृष्ट।
ह्वै गए दुख जासु के यह जानियै जग इष्ट ॥ ६ ॥

(दोहा)

छातिनि छेद मुरार, सिर डारत है करि छार।
गए दिगंतनि हंस तजि, ताके दुख तेहि बार ॥ ७ ॥
मुनिकन्यनि संग सीखियाँ, तिहिं सब प्रानायाम।
तातें पाई सिद्धि सब, पूरन काम अकाम ॥ ८ ॥
नृपति सिखीध्वज की भई, रानी रूप समान।
तिनसों मिलि तिनि भोगए, भूतल भोग-विधान ॥ ९ ॥

(चामर)

एक काल एक आरसी विषै दुहू जने।
आपने मुखारविंद देखियाँ प्रभासने।
कंत कों कछू प्रिया प्रभाविहीन देखियाँ।
नारि कों महाप्रभा समेत देव लेखियाँ ॥ १० ॥

राजा—(दोहा)

रानी सुनि आवाल तें, तेरे तन इक रीति।
काहे तें तुम श्रीमती, रहौ कहौ करि प्रीति ॥ ११ ॥

रानी—(रूपमाला)

सृष्टि को जो प्रकास नास बिलास जानत मित्त।
भोग जोग अजोग के सुख दुक्ख मोहिँ न चित्त।
नित्य वस्तु-बिचार है न जरा जुरा न कराल।
हौँ रहौँ तिन तेँ सुनौ पति श्रीमती सब काल ॥ १२ ॥

राजा—(दोहा)

सुख है सुंदरि धर्म-फल, ताहि न सादर लेहु।
उदासीन के भाव तेँ, मिलै मोँक्ष दुख देउ ॥ १३ ॥

रानी

राजा कछू दुराइयै, जाके मन कछु और।
नारिनि के एकै सरन, पति सुनियै नृप-मौर ॥ १४ ॥
कुबजै कलही काहली, कुटिल कृतघ्न कुरूप।
सपनेहूँ न तजै तरुनि, कोढ़ीहू पति भूप ॥ १५ ॥

श्रीभागवते यथा श्लोक

दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रुग्णोऽधनोपि वा।
स्त्रीभिः पतिर्न हातव्यो लोके नरकभीरुभिः ॥ १६ ॥

(दोहा)

पुनि तुम से नृपनाथ सुभ, सुंदर भवगुनलीन।
सब सुखदाता सर्वदा, एक विवेकविहीन ॥ १७ ॥

राजनीतौ यथा

सारासारपरिच्छेत्ता स्वामी भृत्यस्य दुर्लभः।
अनुकूलः शुचिर्दक्षः प्रभोर्भृत्योऽपि दुर्लभः ॥ १८ ॥

राजा

काहे तेँ तुम प्रीतमा उदासीनमय जोग।

रानी

राजा ह्वै प्रभु करत हौ रंकन कैसो भोग ॥ १९ ॥

---

[१२] न जरा०—हौँ तजी राजराज कृपाल (सर०)। पति—प्रभु (वही)। सब—श्री (काशि०)। [१३] सुख०—सोहै (सर०)। धर्म—अधर्म (काशि०)। तेँ—मेँ (वेंकट, काशि०)। [१४] रानी—राजा (काशि०)। दुराइयै—छपाइयै (सर०)। नृप—सिर (सर०, काशि०)। [१७] पुनि०—स्त्री कोँ पतियै सरन सुभ सुंदर (सर०)। [१८] 'वेंकट, काशि०' मेँ नहीँ है। [१९] मय—मम (काशि०)।

कालि जु कीने कर्म प्रभु, तेई कीजत आजु।
आजु राजु सोई करत, काल्हि करहुगे काजु ॥ २० ॥

(सवैया)

ठाढ़ेहु खैयत बैठेहु खैयत खात परेहूँ महा सुख पायौ।
खातहिँ खात सबै मरि जात सु खैबोई खैबो मरेँ पुनि भायौ।
आवत जात निरै दिवि 'केसव' कौनहिँ कौन कहा नहिँ खायौ।
खैबो तऊ न उबीठत है जग श्री जगदीस बुरे ढँग लायौ ॥ २१ ॥

(दोहा)

इहि बिधि बीते काल बहु, लख्यौ जु नहीँ अलच्य।
भच्छत हौ प्रभु करभ ज्यौँ, फिरि फिरि भच्याभच्य ॥ २२ ॥
यौँ ही जानो कर्म सब, सबै जगत के कंत।
आदि सरस मध्यम बिरस, अति नीरस है अंत ॥ २३ ॥
आदि अंत मध्यहु सरस, नित्य नएई भोग।
तिन्हहिँ भोगियो भूप तुम, बूझि बूझि मुनि लोग ॥ २४ ॥

विवेक

सुनि सुनि सुंदरि के बचन, भोगनि जानि असर्म।
आरंभे नरनाथ तव, नित्य नएई कर्म ॥ २५ ॥
तीरथ न्हाए बिबिध पुनि, ऊसर वन आरन्य।
अभय-दान स्यौँ दान सब, दए नृपतिमनि धन्य ॥ २६ ॥
ज्यौँ ए जंबूद्वीप के, ऋषि ऋषीस सब विप्र।
जीते देस विदेस नृप, नृपनायक अति छिप्र ॥ २७ ॥
जज्ञ असेप बिसेष सो, तजि भजि सुर सुरनाथ।
निज मंदिर आए तबै, राजा उत्तम गाथ ॥ २८ ॥
दीन दुखित कायर कुमति, सूम अनाथ अपार।
गुंग पंगु बहु मूढ़ जन, अंध लोग अविचार ॥ २९ ॥
देस नगर अरु ग्राम के, कहा पुरुष कह बाम।
मन भायौ पायौ सबै, कीने सबै अकाम ॥ ३० ॥

मंत्री मित्रन पुत्रजन, मुनिगन प्रथम बनाय।
पाछे कीनौ तिलक सिर, रानी सब सुखदाय ॥ ३१ ॥

राजा

मनसा बाचा कर्मना रानी मन अवदात।
जोई माँगै सुंदरी सोई दैहैं बात ॥ ३२ ॥

रानी

जीत्यौ जंबूद्वीप सब, सत्रु मित्र परिवार।
बुधिबल बिक्रम साहसैं, त्यौं जीतौ संसार ॥ ३३ ॥
दै बर राजा चित्त में, कीनौ यहै बिचार।
जौ छाड़ौं घर घरनि अब, तौ जीतौं संसार ॥ ३४ ॥

(सुंदरी)

सोय रही जब सुंदरि जानी। जामिनि में बहु जोबन मानी।
राज तज्यौ सिगरी रजधानी। जाय महाबन रैनि बिहानी ॥ ३५ ॥
मंदिर के तट पर्नकुटी करि। तामहिं दंड कमंडलु कों धरि।
माल हिये मृगचर्म धरयौ तन। दोइक तौ फल फूल के भोजन ॥ ३६ ॥

(दोहा)

स्नान करत पहिले पहर, कुसुम गहन जुग जाहि।
तीजे पूजत देवता, मूलनि चौथे खाहि ॥ ३७ ॥

(दोधक)

जागि उठी जबही निसि रानी। पी बिनु सेज त्रिलोकि डरानी।
प्रीतम की पनहीं जब देखी। कोरिक जुक्ति हिये महिं लेखी ॥ ३८ ॥

रानी

मोकहँ छोड़ि गए नृप कानन। ज्यौं नलिनी तजि भौंर गजानन।
हौं अब जाउँ जहाँ कहुँ भूपति। है पतनी कहँ पीव सदा गति ॥ ३९ ॥

(दोहा)

पत्नी पति बिनु दीन अति, पति पत्नी बिनु मंद।
चंद बिना ज्यौं जामिनी, ज्यौं जामिनि बिनु चंद ॥ ४० ॥

---

[३१] पुत्र–बंधु (सर०)। जन–गन (काशि०)। गन–जन (वही)। [३२] बात–प्रात (काशि०)। [३३] परिवार–मतिचारु (सर०)। त्यौं०–राजसाज सिरभार (वही)। [३४] दै०–क्रम क्रम बुधिबलु बिक्रमनि जीतहु प्रभु संसार दैव रु राजा चित्त में कीनो वहै विचार (सर०) , रावन राजा० (काशि०)। [३५] बन–मन (वेंकट, काशि०)। [३७] जाहि–जाम (वेंकट), जान (काशि०)। देवता०–देवफल मूलनि चौथे जाम (वेंकट); देवगण फूलनि चौथो खान (काशि०)। मूलनि–फूलनि (सर०)। [३८] ही०–सुंदरि जानि (काशि०)। निसि–सुनि (सर०)। [३९] पतनी–तरुनी (सर०)। [४०] पति०–पतिनी बिनु दुति मद (काशि०)।

पत्नी पति बिनु तनु तजै, पितु पुत्रादिक काय।
'केसव' ज्यौं जल मीन त्यौं, पति बिनु पत्नी आय ॥ ४१ ॥

यथा श्रीहर्ष-नैषधे

दहनजा न पृथुर्दवथुर्व्यथा विरहजैव पृथुर्यदि नेदृशम्।
दहनमाशु विशन्ति कथं स्त्रियः प्रियमपासुमुपासितुमुद्धुराः ॥ ४२ ॥

(दोहा)

मनसा बाचा कर्मना पत्नी के पति देव।
स्नान दान तप सुरन की पति बिनु निष्फल सेव ॥ ४३ ॥

विवेक

राज काज जिन को लगै बोले मंत्री मित्र।
तिनके सिर सुख पायकै सौंपे राज चरित्र ॥ ४४ ॥

(चंचरीक)

जोग के बिलास नारि जायकै अकास सो।
देखियौ प्रकास ईस ऐनचर्म वास सो।
मंडियौ दरी निवास आसु छंडि सुंदरी।
ऐननाभि लेप भाल ऐन की तुचा धरी ॥ ४५ ॥

(दोहा)

ईस कुमंडल छाँड़िकै लयौ कमंडलु आनि।
जगदंडनि के दंड तजि दारुदंड लै पानि ॥ ४६ ॥

विवेक

नरदेवी नरदेव पै देवपुत्र के रूप।
गई प्रगट तिहि निकट तब अवलोकी पटु भूप ॥ ४७ ॥

(हरिगीता)

अति गौर गूढ़ अनंग के अँग अंग रूप तरंग।
मुकतान के उर हार लोचन स्वेत चारु सुरंग।
उपवीत उज्ज्वल स्वेत अंबर बालवेष उदार।
नरदेव आसन तें उठ्यौ अवलोकि देवकुमार ॥ ४८ ॥

(दोहा)

दीने आसन अर्घ नृप कीने दीह प्रनाम।
बैठे दोऊ देवदुति पूछि कुसल गुनग्राम ॥ ४९ ॥

---

[४१] तनु–सब (सर०)। पितु....... ....आय–'काशि०' में नहीं है। काय–काज (सर०)। आय–आज (वही)। [४२] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [४३] तप–जप (सर०)। 'वेंकट' में नहीं है। [४४] राज.. ......लगै–'काशि०' में नहीं है। [४५] चंचरीक–नाराच (काशि०)। भाल–लाल (वेंकट); नाभि (सर०, काशि०)। [४६] दंड तजि–दंडवै (काशि०)। [४७] तब–पट (काशि०)। [४८] हरिगीता–रूपमाला (काशि०)। अँग–सब (सर०)। सुरंग–तरंग (काशि०)। उदार–कुमार (वेंकट, काशि०)।

राजा

रावरे मुख के बिलोकत ही भयौ दुख दूरि।
सुप्रभा सन ही सुआनन होत आनँदभूरि।
देह पावन ह्वै गयौ पद पद्म के जल पाय।
पूज ही भयौ बंस पूजित आसु ही मुनिराय॥ ५०॥
संनिधान भए तपोधन धाम धी धन धर्म।
अद्य सद्य भए सबै निरवद्य वासर कर्म।
ईस जद्यपि दृष्टि ही जु भई सबै सुभ बृष्टि।
पूछिबे कहँ होति है जु तथापि वाक बिसिष्ट॥ ५१॥
प्रगटत पर सुभ अपर सुभ परसुराम से व्यक्त।
सोभित बेदव्यास से सकल लोक-व्यासक्त॥ ५२॥

(नाराच)

सुकप्रकास है हियें सुज्योतिरूप लीन हौ।
बिचित्र बुद्धि अत्रि हौ त्रिलोक सोकहीन हौ।
बसिष्ट हौ कि निम्मि हौ कि आदि ब्रह्मदेव सो।
परासरै परास बुद्धि बिज्ञ देवदेव सो॥ ५३॥

(चंचरी)

गर्ग हौ निसर्गभाव सर्ग अप्रमान हौ।
अंगिरा गिरा थिरा गिरीस के समान हौ।
कस्यपै कि वस्य कै अदेव देव छंडियौ।
जन्हु हौ कि जन्हुभू विसृज्य दुष्ट दंडियौ॥ ५४॥

(गीतिका)

जमदग्नि हौ कि समग्नि उत्तम सुद्ध संतक जानियौ।
सिंधु सोखि लयौ सबै कि अगस्त्य से मन मानियौ।
मनु मारकंडबिहीन हौ मुनि मारकंड वखानियै।
मतिस्रोत मंत्रन धौत गौतम के समान कि मनियै॥ ५५॥

[५०-५१] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [५२] सकल०-सुरगुर सहित वसक्त (सर०); नाहिंन मायहिं भक्त (काशि०)। [५३] बुद्धि-सुद्धि (सर०)। निम्मि०-निष्टबुद्धि (सर०), निष्टमति (काशि०)। बुद्धि०-जज्ञ बिश जन्म सो बसो (सर०)। [५४] चचरी-चामर (काशि०)। सर्ग-सर्व (वेंकट, काशि०)। समान-प्रमान (वही)। जन्हुभू०-जन्हु जू गिरा पियाथ मंडियौ (सर०)। विसृज्य-मि ग्रज (काशि०)। [५५] कि समग्नि०--सम अग्नि कै किधौं वत्सल (सर०)। सतक जानियौ-मंनक मानियौ (वेंकट); सात्विक मानियौ (काशि०)। सिंधु०--अद्य सिंधु करयौ अगस्त सदा प्रिसिस्त वखानियैं (सर०)। सिंधु.........वखानियै-'काशि०' में नहीं है। मनु-मुनि (वेंकट)। मुनि०-भनि माग कंद्रप जानियै (सर०)। मत्रन-इंद्रिन (वेंकट, काशि०)।

(सरस्वती)

हारीत हौ कि अभीत उत्तम गाथ चित्त हरो कियौं।
दुर्बास से बिनु बासना दुर्बास लोक बिलोकियौं।
श्रीबालमीकि कुरेक पंडित बाल मूकविलास हौं।
जाबालि हौ जनु बाल तें जु दयाल जीवन जाल हौं॥ ५६॥

(दोहा)

कैधौं बिस्वामित्र हौं, संतत बिस्वामित्र।
पूज्यै पूजक तें भए, जिनके अमित चरित्र॥ ५७॥
जद्यपि चतुरानन महा, चतुरानन कर हीन।
पुरुषोत्तम से देखियत, नाहिंन मायहि लीन॥ ५८॥
ऋपि हौ कै ऋषिराज तुम, देव अदेव कि सिद्ध।
हम सों प्रकट सुनाइयै, अपनो नाम प्रसिद्ध॥ ५९॥

देवपुत्र (तोमर)

सुनि सुद्ध मानस हंस। नरदेव देव प्रसंस।
सुरलोक तें मतिधीर। हम आइयौ तव तीर॥ ६०॥

(दोहा)

महादेव को पुत्र हौं, मानसीक मुनि राज।
कौन काज आए कहौ, कानन में मुनिसाज॥ ६१॥

राजा (रूपमाला)

जीति देस बिदेस त्यौं जग जीतिवे कह काज।
हौं सिखिध्वज नाम मालवदेस को अधिराज॥

देवपुत्र

जीतिहौ जग क्यौं कहौ गुरु के बिना उपदेस।
पक्व नाहिंन चच्छु भूपति ज्ञान को न प्रवेस॥ ६२॥

(दोहा)

ज्ञान गुरू पै सीखियै, जब उपजै बिज्ञानु।
तब अधिकारी होहुगे, भूपति जिय में जानु॥ ६३॥

---

[५६] 'वेंकट, काशि०' में नहीं हे। [५८] पुरुषोत्तम०—सोहत वेदव्यास से (वेंकट, काशि०)। [५९] ऋषि०—कैमे ऋपि ऋषिराज (वेंकट, काशि०)। हमसों०—हमैं सुनावौ करि कृपा (सर०)। [६०] हंस—अंस (वेंकट, काशि०)। देव—रूप (सर०)। [६१] कहौ—अपुन (सर०)। [६२] रूपमाला—गीतिका (काशि०)। कह—सह (वेंकट, काशि०)। पक्व—कृपा (काशि०)। [६३] जिय में—तिनि भ्रम (काशि०)।

राजा (तारक)

तुमहीं मुनि मित्र पिता गुरु मेरे। सिखवौ उपदेस सबै हित केरे।
जिहि तें सब ज्ञान प्रयोगनि जानौं। अति श्रीपरमानँद को सुख मानौं ॥ ६४।

(दोहा)

राजा एक कथा सुनौ, सहसा कर्म-विधान।
जातें सहसा कर्म सब, छाँडौ बुद्धि-निधान ॥ ६५ ॥

(तारक)

इक हो इक भूप के बारन नीको। अति सुंदर सूर मनोहर जी को।
वह तो बहु जोबन जोर भर्यौ है। पुनि लोहजँजीरन जाल जर्यौ है ॥ ६६ ॥
तेहि ऊपर एक महावत सोहैं। जनु मेघ चढ़्यौ मघवा मन मोहैं।
अधरात भए बन की सुधि आई। गजपाल गिर्यौ जब ग्रीव कँपाई ॥ ६७ ॥

(रूपमाला)

छाँडि जीवत ताहि खंभहि तोरि गौ बन माँहि।
त्यौं जंजीरनि सोय गौ गिरि की गुहा गुरु माँहि।
मुरछाहि जागे उठि गयौ गजपाल राजदुवार।
संग लै चतुरग सेनहिं आइ गौ तिहिं वार ॥ ६८ ॥

(दोधक)

देखि तिन्हैं तरु के गन तोरे। मारे मनुष्य घने घन घोरे।
साँग गदा सर पाहन ठेले। कानि गहे चहु ओर तें मेले ॥ ६९ ॥
जोर घटाय गए नगरी लै। राखियौ दीरघ खात दरी लै।
आवै न जाय तहाँ जन कोनौ। लाजन लै रह्यौ खात के कोनौ ॥ ७० ॥

(दोहा)

सुखबिलाससनमान अति, तौ ई गए सुजान।
भूषन भोजनहूँ मिटे, सबै राज सुख मान ॥ ७१ ॥

(तारक)

गजपाल सु तौ गज को मनु जानौ। खंभ नहीं नृप मोह बखानौ।
साँकर होय न वासना जानौ। भूपति चित्त अदृष्टहि आनौ ॥ ७२ ॥

---

[६४] तारक—दोधक (काशि०)। गुरु—युत (वेंकट, काशि०)। प्रयोगनि—प्रकारन (सर०)। अति—मन (काशि०)। [६६] तारक—तोटक (काशि०)। भूप—नृपाल (वही)। वह तौ... . जर्यौ है—'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [६७] बन की०—मघवा सुधि पाई (काशि०)। गिर्यौ०—सु तो गज की सुधि पाई (वही)। [६८] रूपमाला—नाराच(काशि०)। जागे०—बीतो सो (सर०)। [६९] घन—गज (सर०)। साँग ..मेले—'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [७०] खात०—खातन मेलै (सर०)। [७१] सनमान०—आसुहि गए बन में बुद्धिनिधान (सर०)। गए—मिटे (काशि०)। सुखमान—मनमान (सर०); सुखकाम (वेंकट)। [७२] तारक—दोधक (काशि०)।

नाहिंन मोह समूल उखार्यौ। नाहिंन सत्रु बड़ो मनु मार्यौ।
कानन माँझ सुबासना आए। कैसे अदृष्ट पै जात बचाए॥ ७३॥
'केसव' कैसहु कर्म के लीने। देसहिं जाहु जौं जागविहीने।
लोक करै उपहास तिहारे। रोके रहैं न बड़े अरु बारे॥ ७४॥

(दोहा)

ज्यों न होय गज की कथा, सो कीजे नृपनाथ।
ज्ञान बिना बन घोर है, जौ लौं लज्जा साथ॥ ७५॥
सुख ही में दुख जीतिहौ, घर ही में बन मानि।
क्रम क्रम होउ उदास नृप, तब सेवौ बन आनि॥ ७६॥
सहसा कर्म न कीजई, सहसा ज्ञान विज्ञान।
जब तब सहसा घटि परै, छोंडि देइ सब ध्यान॥ ७७॥

राजनीतौ यथा

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः॥ ७८॥

(दोहा)

तातें राजा छोड़ि हठ, जैये अपने धाम।
ज्ञान सीखि बन आइयै, तब पूजै मनकाम॥ ७९॥
एक कहौं अज्ञान की औरौ कथा बिचारि।
तब कीजौ बिज्ञान को संग्रह मन तम जारि॥ ८०॥
एक हुतो धरनी धनिक, सब सुख पूरन गेह।
छोंड़ि गयौ बन गहवरनि, चिंतामनि के नेह॥ ८१॥

(दोधक)

संपति सुंदरि के सुख छोंडे। जाय महागिरि के पद मोंडे॥
देखि मनै मन मोह्यौ महाई। चिंतामनि मग में तिहि पाई॥ ८२॥

(दोहा)

चिंतामनि को पायकै, छ्वै नहीं जु हाथ।
अनजानत ताके मरम, छोंडि गयौ नरनाथ॥ ८३॥

---

[७३] उखार्यौ—उपार्यौ (काशि०) [७४] कैसहु०—क्यौं हू अदृष्ट (सर०)। [७५] नृपनाथ—नरनाथ (काशि०)। बन—घन (वही)। [७६] दुख—बन (सर०)। बन मानि—मन मानि (काशि०)। [७७] सहसा...कीजई—'काशि०' में नहीं है। कर्म—कछू (सर०)। ज्ञान०—जोग त्रियोग (वही)। तब०—केवल हिंसा घटी (वेंकट, काशि०)। ध्यान—भोग (सर०)। [७८] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [८०] मन०—तन मन (सर०)। [८१] के नेह—संदेह (वेंकट, काशि०)। [८२] दोधक—तोटक (काशि०)। संपति—जी में तन मन (सर०)। जाय०—एक गिरीगन (वही) देखि०—मोह्यौ मनि हित मोह (वही)। [८३] पाय—देखि (सर०)। नरनाथ—नृपनाथ (काशि०)।

कौनहुँ एक अभाग तें, चिंतामनि तें भागि।
पाई आगें काचमनि, सो लीनी पौ लागि ॥ ८४ ॥

(दोधक)

ता मनि हेतु कछू न बिचारयौ। बालक तें बढ़ि यौं धन डारयौ।
निर्धन ह्वै करि बेंचन धायौ। पाइ फदीहति बित्त न पायौ ॥ ८५ ॥

(दोहा)

तैसें परमानंद लगि, राज तज्यौ सुखकंद।
बड़ी फदीहति होयगी, सुख्ख न परमानंद ॥ ८६ ॥
तातें तुम गृह जाहु नृप, सीखहु गुरु सों ज्ञान।
पुनि तुम सर्बस त्यागिकै, जीतौ जगत प्रसान ॥ ८७ ॥

राजा

हौं न मुरयौ आबाल तें कबहुँ कौनहूँ कर्म।
अब हौं कैसें मुरकिहौं देवपुत्र इहिं धर्म ॥ ८८ ॥
राजा जाकी सासना दान प्रतिज्ञा भंग।
ताके करै मरै नहीं स्वान सियार प्रसग ॥ ८९ ॥
राज तज्यौ सब बंधुजन, धन धरनी वर नारि।
और जो सर्बस त्याग है, मोसों कहौ बिचारि ॥ ९० ॥

देवपुत्र

जाको राजा संग है ताको तजि अनुराग।
पर्नकुटी खग मृगनि छिति कैसो सर्वस त्याग ॥ ९१ ॥
यह सुनि राजा तजि गयौ पर्नकुटी तरुखंड।
जाय सिला तल पौढ़ियौ मन में बोध अखंड ॥ ९२ ॥

विवेक

देवपुत्र तहँई गयौ जहँ राजा मतिवंत।
देखि देवपुत्रहिं भयौ उर आनंद अनंत ॥ ९३ ॥

राजा

पर्नकुटी दै आदि में कीनौ सर्वस त्याग।

देवपुत्र

छोडौ दंड-कमंडलै मृगज-तुचा-अनुराग ॥ ९४ ॥

---

[८४] सो०—लीनी पायनि (सर०)। पौ—पग (काशि०)। [८५] पाई—जाइ (काशि०)। [८६] सुख्ख—राजन (सर०)। [८८] देवपुत्र—राजपुत्र (वेंकट. काशि०)। [८९] मरै—डरै (काशि०)। नहीं—न खग (सर०)।

छाँडि दयौ तिनहूँ तबै महाराज मतिधीर।
देवपुत्र तहँई गयौ जहँ नृप धरे सरीर॥ ६५॥

राजा

दंड कमंडलु मृगतुचा एऊ तजे सभाग।
दुख सुख छुधा पियास छिति कैसौं सर्वस त्याग॥ ६६॥

विवेक

देवपुत्र तहँई गयौ जहँ नृप द्वंद्वज-हीन।
जथालाभ-संतोष हो सर्बस-त्याग-प्रवीन॥ ६७॥

देवपुत्र

जातें इंद्रिय व्याकुलै तासों तजि अनुराग।
तब कहिबो नरदेवमनि, साँचो सर्वसत्याग॥ ६८॥

विवेक

जब लाग्यौ देहै तजन महाराज मति धारि।
देवपुत्र तब बरजियौ बोल्यौ बचन बिचारि॥ ६९॥

देवपुत्र

देहत्याग नहिं कीजई, कीजै चित्तहि त्याग।
चित्तत्याग तें जानिबो, साँचो देही-त्याग॥ १००॥

राजा (दोधक)

चित्त-सरूप सु मोहिं सुनावौ। क्यौं तजियै यहऊ समुझावौ।

देवपुत्र

बासना चित्त-सरूप है साँचो। ताको अहंपद बीरज बाँचो॥ १०१॥

(दोहा)

चित्त अहंपद बीज को, कीजै आसु विनास।
नृपबर तबहीं होयगौ, सर्वस-त्याग प्रकास॥ १०२॥

विवेक

इहिं बिधि सर्बस त्यागिकै, भयौ परम-पद-लीन।
देवपुत्र उपदेस तें, सुनि प्रभु प्रगट प्रबीन॥ १०३॥
तृष्ना कृष्ना षटपदी, भय भ्रमरनि मति मंडि।
को जानै कित उड़ि गई, हृदय-कमल कों छंडि॥ १०४॥

---

[९६] छिति—छिन (वेंकट)। [१००] चित्तहि०—चित अनुराग (काशि०)। साँचो०—सर्वत्यागु बैरागु (सर०)। [१०१] यहऊ—वहई (वेंकट, काशि०)। [१०२] आसु—पास (वेंकट, काशि०)।

राजश्री सुनि सर्पिनी, क्रोधादिक-अहि-लीन।
आवत उर गरुड़ध्वजै, कब ह्वै गई बिलीन ॥ १०५ ॥
अमित अबिद्या राच्छसी, प्रेतसहित पाखंड।
राम-निरंजन ररत सुख, उदरि गई सतखंड ॥ १०६ ॥

(सुंदरी)

नैन निमीलन कै अघमोचन। जाय मिल्यौ अपने पद सों मन।
संतत निस्चल ह्वैहि रह्यौ तनु। काढ्यौ उकीरि सिलातल सों जनु ॥१०७॥
सुंदरि ऐसि दसा जब देखी। आपने भाग दसा मन लेखी।
राज जगावन कौं बुधि कीनी। सिंहिनि-नादन सों मति भीनी ॥ १०८ ॥
कैसहुँ ध्यान बिधान न छूटै। अच्युत को रस अद्भुत लूटै।
देवज सामज सब्द सुनायौ। यौं क्रमहीं क्रम भूतल आयौ ॥ १०९ ॥
देवतनूज नहीं ढिग देख्यौ। मित्र मनो बच काय कै लेख्यौ।
तेरे प्रसाद महाप्रभु पायौ। मो जय के जस भूतल छायौ ॥ ११० ॥
और कछू अब जौ उपदेसौ। पूरन ज्ञान महा मन लेसौ।
जानिवे हौं सु सबै अब जान्यौं। मोहिं मिटी सबकी पहिचान्यौं ॥ १११ ॥
आय गए तबहीं सुरनायक। संग लियें त्रिय को गन मायक।
सुंदरि नाचति बीन बजावति। पंचम के सुर उत्तम गावति ॥ ११२ ॥
हाव बिभाव प्रभाव करै सब। मोह-बिधान थकी करिकै अब।
राजहि यौं जग मोहन के रस। क्यौं करि जात कहौ तिनकों बस ॥११३॥

इंद्र

साधु अगाधु चल्यौ नृपनायक। देवपुरी अब है तुम लायक।
भाँतिनि भाँतिनि भोग करौ सब। देवपुरी अभिलाष करौ अब ॥ ११४ ॥

राजा

देवपुरी को देव को, को भोगी को भोग।
हमसों प्रगट सुनाइयै, साधु असाधु जे लोग ॥ ११५ ॥

विवेक

करि प्रनाम यह बात सुनि इंद्र गए उठि धाम।
रानी मन सुख पाइयौ सफल भए मनकाम ॥ ११६ ॥

---

[१०६] ररत–रमत उर (सर०)। [१०८] मन लेखी–सम पेखो (काशि०)। बुधि–मति (वेंकट, काशि०)। कीनी–लीनी (काशि०)। मति–धुनि (सर०)। [११०] प्रभु–सुख (सर०)। [१११] महा०–अपानन (सर०)। मोहिं–मोह मिट्यौ सबही (सर०) [११२] मायक–गायक (काशि०)। उत्तम–सों नव (सर०); उन्नत (काशि०)। [११५] साधु०–माधु साधु (काशि०)।

देवज को तनु छाँडि कै चूड़ाला धरि रूप।
गई प्रगट जहँ सोभियै भूतल-भूपन भूप॥ ११७॥

राजा (दोधक)

रानि बिलोकि कह्यौ नृपसोई। सुंदरि ह्याँ किहि कारन आई।
पूजि सबै तुव चित्त की इच्छा। और कछू अब देहि न सिच्छा॥ ११८॥

रानी

जानु न देवज को बपु मेरो। मैं प्रभु संग न छाडिहौं तेरो॥
मैं जु दई ढिठई तजि लाजा। सो छमिवी विनती यह राजा॥ ११९॥

राजा (नाराच)

उधारि नर्क तें सुधारि दिव्यलोक तैं दियौ।
अलभ्य लाभ मोहियै अदृष्ट दृष्ट देखियौ।
असेप भाव सों बिसेप देबि सेव तैं करी।
भई न है न होइगी न तो समान सुंदरी॥ १२०॥

(दोहा)

तो प्रसाद मैं जीतियौ सुंदरि सब संसार।
माँगि सुलोचनि और कछु अपने चित्त बिचार॥ १२१॥

रानी

जग जीत्यौ त्यों जीतियै बैरी नरक अजीत।
लोकलोक गावै जगत श्रीविदेह को गीत॥ १२२॥

राजा

तेरो मत धरिहौं उरसि करौं निषेधनि हान।
अमल-कमल-लोचनि सदा मन प्रतिबिंब समान॥ १२३॥

विवेक (मदिरा)

बौंड़ि गई बर लोक चतुर्दस भूतल कीरतिबेलि बई।
देखत देबि भली पति-प्रेम पतिव्रत की यह रीति नई।
लोक जिताय बिलोक जिताय विदेह की कीरति जीति लई।
लोक-पुरंदर लै वह सुंदरि मंदिर तें निज देस गई॥ १२४॥

---

[११७] तनु–बपु (सर०)। प्रगट–तहाँ (वही)। [११९] जानु०–जानहु (सर०)। लाजा–राजा (काशि०)। बिनती–करुना करि (सर०)। [१२०] नर्क–लोक (सर०) मोहियै–लाभ में (वही)। [१२१] तो–तब (काशि०)। मैं–तें (सर०)। सुंदरि–मैं सिगरो (वही)। और०–होय कछु तेरे (वही)। [१२२] रानी–राजवाच (काशि०)। बैरी–पुन्नाम (सर०)। [१२४] बौंड़ि–बूडि (वेंकट, काशि०)। भली–मिलि (काशि०)। देस–देह (सर०); लोक (काशि०)।

(दोहा)

दस हजार बरषैं हरपि, कीनौ भोग असोक।
राजभार दै पुत्रसिर, गए निरंजन-ओक॥ १२५॥
ऐसें तुमहूँ जीति जग, राज करौ संसार।
मिलत आपने रूप कौं, लागत नाहीं बार॥ १२६॥
भयौ जीव जब सुद्ध अति, बहु बिबेक उपदेस।
तुम प्रताप ज्यौं सत्रु तुव, राजा बीर दिनेस॥ १२७॥

वीरसिंह

पाय सुद्धता जीव तब कीनौ कहा बिचार।
कहियै हम सों करि कृपा सुनि समुझै संसार॥ १२८॥

केशवराय

राजा रानी की कथा कहै सुनै नर कोय।
संपति पावै लोक इहिं मरैं परमगति होय॥ १२९॥

इति श्रीमिश्रकेशवरायविरचितायां श्रीविज्ञानगीतायां चिदानंदमग्नायां संसारचक्रजयविवेकजीवसंवादवर्णनो नाम षोडशमः प्रभावः॥ १६॥

१७

(दोहा)

वेद सिद्धि सों जीव सों सप्तदसैं संबाद।
अज्ञान ज्ञान की भूमिका बर्नत जाय विषाद॥ १॥
इहिं उपदेस बिबेक के जीव भयौ जब सुद्ध।
श्रद्धा सांती आईं जहँ बैठे राज प्रबुद्ध॥ २॥

---

[१२५] ओक–लोक (काशि०)। [१२६] ऐसें–एक से तुम (काशि०)। कौं–कहँ (वही)। नाहीं–नाहिंन (वही)। [१२७] जब–जड (वेंकट, काशि०)। अति–मति (काशि०)। तुव–सब (सर०)। दिनेस–नरेस (वही)। [१२९] राजा०–चूड़ाला नृप (सर०)। नर–नृप (वही)। परम–महा (वही)।

[२] इहिं०–केसव इहिं उपदेस के (सर०)। के–तें (काशि०)। सांती०–करुना सांति जुत आए नृपति (सर०)। जहँ–तहँ (सर०, काशि०)। प्रबुद्ध–प्रसिद्ध (वेंकट, काशि०)।

श्रद्धा

ह्राथ भयौ मन जीव को जानौं ते बड़भाग।
अब विवेक सों जीव सों बाढ़ैगो अनुराग ॥ ३ ॥

शांति (रूपमाला)

दुष्ट जीवन को जहाँ प्रभु करत आसु बिनास।
साधु लोगन को जहाँ अवलोकिये बसवास।
दास सेवत ईस को जहँ प्रेम सों दिन-राति।
जानियै तहँ नित्य आनँद को उदै बहु भाँति ॥ ४ ॥

केशव (दोहा)

दोऊ प्रभु जब एकरस जाने सांती-पंन।
गई तबै हरिभक्ति पै वेदसिद्धि कों लैन ॥ ५ ॥

शांति

महाराज तुमको सखी बोलति है करि प्रीति।
मनसा बाचा कर्मना वेगि चलौ रसरीति ॥ ६ ॥

वेदसिद्धि

निष्ठुर प्रीतम त्यौं सखी क्यौं करि हौं अवलोक।
इतर जुवति जी जिनि दयो मोहिं बिरहमय सोक ॥ ७ ॥

देवी

यह अपराध अगाध सब महामोह को जानि।
दोष कछू न बिवेक को काल-चाल अनुमानि ॥ ८ ॥

शांति

पिय देवीहि उराहनो ऐसें थल जिनि देव।

वेदसिद्धि

तूँ न कछू जानति सखी हौं जानति सब भेव ॥ ९ ॥

शांति (गीतिका)

सील है कुल नारि को यह आपदा सहि लेइ।
काल काटति काल पै नहिं नेकु काटन देइ।
हाव भाव बिभाव करिकै बस्य कै पति लेइ।
जाइयै सु प्रबोध पुत्रहि नित्य आनँद देइ ॥ १० ॥

---

[८] देवी—शाति (काशि०)। यह—देवी यह (वही)। काल०—कामकेलि उर आनि (सर०)। [९] पिय०—पिय को देउ (सर०); देवी प्रियहिं (काशि०)। देव०—देहु. . . ..(काशि०)। [१०] शाति—वेद (काशि०)। बिभाव०—प्रभाव कै सखि (सर०), प्रभाव० (काशि०)।

केशवराय (दोहा)

वेदसिद्धि हँसि उठि चली सांनी जननी साथ।
जहाँ बिबेक बिसेषमति कहत जीव सों गाथ ॥ ११ ॥

शांति (रूपमाला)

बेदसिद्धि करै प्रनामहिं ईस नेकु निहारि।

जीव

मातु है यह ज्ञानदा अब चित्त माहिं बिचारि।
देबि सों जननीन सों दिन दीह अंतर मानि।
मातु बंधति मोहबंधन देवि काटति जानि ॥ १२ ॥

केशवराय (दोहा)

मनहीं माँझ बिवेक कों करें प्रनाम असेष।
अवनतमुख बैठी अवनि वेदसिद्धि सुभ बेष ॥ १३ ॥

जीव

माता कहियै दिवस बहु कीने कहाँ व्यतीत।

वेदसिद्धि

बेदग्रहनि मठसठनि सुख सुनि मुनि मानस मीत ॥ १४ ॥

जीव

तत्व तुम्हारे तब तहाँ काहू समद्यौ मात?

वेदसिद्धि

नहिं नहिं द्राविड़ दच्छिनी अच्छर स्वच्छ बचात ॥ १५ ॥

(भुजंगप्रयात)

धरें एनचर्मस्सदा देह सोहैं। जहाँ अग्नि तीनौ द्विजातीनि मोहैं।
चहूँ ओर जज्ञक्रियासिद्धिधारी। चले जात मैं वेदविद्या निहारी ॥ १६ ॥

(दोहा)

मोसों बूझी बात तिनि कौनें हौ तुम लीन।
मैं उनकौं उत्तर दयौ सुनियै नित्य नवीन ॥ १७ ॥

---

[११] हँसि–सँग (सर०); हठि (काशि०)। जननी–सजनी (सर०)। [१२] रूपमाला–निसिपालिका (काशि०)। वेद ... ...बिचारि–'काशि०' में नहीं है। दिन–यह (सर०)। मानि–जानि (काशि०)। [१३] माँझ–माँह (काशि०)। [१४] 'काशि०' में नहीं है। [१५] तत्त्व–तात (काशि०)। समद्यौ–सम भयो (वही) [१६] भुजंगप्रयात–नाराच छंद (सर०, काशि०)। देह–वपु (काशि०)। धारी–भारी (सर०)। वेद–जज्ञ (सर०); जाय (काशि०)।

(दोहा)

राजा है ता देस को सम सर्बग सर्बज्ञ।
अजित अनंत अमेय है जानत नाहिँन अज्ञ ॥ १४ ॥
ताके मंत्री एक है कर्तुमकर्तुंसमर्थ।
प्रगट अन्यथाकरन अरु जानत अर्थ-अनर्थ ॥ १५ ॥

बलिराज

नाम कहा ता देस को मंत्री को कहि आसु।
कौन धाम वा राज को मोतें अजित प्रकासु ॥ १६ ॥

शुक्र (रूपमाला)

आनंदमय वह देस है तिहुँ लोक को अति इष्ट।
राजा तहाँ चिद्ब्रह्म पूरन सर्बभाव अदृष्ट।
मंत्री प्रभाव प्रसिद्ध है इहिँ नाम अद्भुत भेष।
कर्तार पालक बिस्वघालक जुक्ति सक्ति असेप ॥ १७ ॥
सासना जिनकी भवैं ससि सूर बासर राति।
सेषनाग सदा रहैं धरनी धरैं इक भाँति।
मैंड छाँडि सकैं न सिंधु बहै निरंतर बायु।
छ्वै सकै नहिँ काल प्राननि छीनता बिनु आयु ॥ १८ ॥

(सवैया)

'केसवदास' अकास में सब्द अकास न सब्द-प्रकासन जानत।
तेज बसै तरुखंडन में तरुखंड न तेजन कों पहिचानत।
रूप बिराजत चित्रन में पुनि चित्र न रूप-चरित्र बखानत।
त्यों सब जीवन मध्य प्रभाव, सुमूढ़न जीव प्रभाव न मानत ॥ १९ ॥

(दोहा)

जाकी सत्ता तें लगत साँचो सो संसार।
जैबै कों ता देव नृप कीजै चित्त बिचार ॥ २० ॥

बलिराज (रूपमाला)

जौं दई प्रभुता सबै प्रभु ह्वै कृपालु सुभाउ।
मोहिँ देहु बताय सो थल बेगि दै जिहि जाउँ।

---

[१४] सम०—सब्र समान (वेंकट, काशि०)। अजित० अमित अजेय अमेय अज अद्भुत विज्ञान अज्ञ (सर०)। नाहिँ—ताहि (काशि०)। [१५] ताके- तामि (काशि०)। [१६] राज—देस (सर०)। [१७] रूपमाला—गीतिका (काशि०)। लोक—देव (सर०)। अदृष्ट—निदिष्ट (वेंकट, काशि०)। भेष—वेष (काशि०)। [१८] प्राननि—त्रीचहिँ (काशि०)। [१९] न जानत—हि मानत (काशि०)। पुनि—परि (वेंकट, काशि०)। प्रभाव०—प्रभा प्रभु मूढ न जीव प्रभावहिँ जानत (काशि०)। [२०] सत्ता०—सत्या हो (काशि०)। ता देव—तिहिँ दिवस (सर०)।

कौन भाँति सु जीतियै प्रभु दीजियै समुझाय।
मंत्र जंत्र तपादि तें तेहि माहिं चित्त लगाय ॥ २१ ॥

(दोहा)

ब्रह्मभक्ति हरिभक्ति प्रभु कैसें होहिं प्रसन्न।
सोई मति उपदेसियै मन क्रम बचन प्रसन्न ॥ २२ ॥

शुक्र

ब्रह्मभक्ति हरिभक्ति तहँ प्रतीहारिनी दोइ।
तिनकों सेवहु सर्वदा तबहीं दर्सन होइ ॥ २३ ॥
ब्रह्मभक्ति कीजै नृपति उपजि परै हरिभक्ति।
तातें पहिले ही तुम्हैं हौं सिखऊं द्विजभक्ति ॥ २४ ॥

रामचंद्र सीताप्रति स्कंदपुराणे

ब्रह्मभक्तिर्विना सुभ्रु विष्णुर्भक्तिर्न जायते।
तस्माद्विष्णोस्तु भक्त्यर्थं ब्रह्मभक्त्यैव संमतम् ॥ २५ ॥

(दोधक)

विप्रनि की सब सीख सुनौ जू। ब्राह्मन ब्रह्मसमान गुनौ जू।
देहु सबै इक दुख्ख न दीजै। आसिप स्यों चरनोदक लीजै ॥ २६ ॥
छोंडि अहंकृति विप्रनि पूजौ। भूतल में एइ देव न दूजौ।
काम सबै तेहि पूजन पूजैं। ब्राह्मन पावहु पूज न दूजैं ॥ २७ ॥

धर्मशास्त्रे यथा

देवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीना च देवता।
ते मन्त्राः ब्राह्मणाधीनास्तस्मात् ब्राह्मणदेवता ॥ २८ ॥

(रूपमाला)

निग्रहानुग्रह करै अरु देइ आसिष गारि।
सो सबै सिर मानि लीजै सर्वथा मनुहारि।
जानि उत्तम बिस्नु जू भृगु कों धर्यौ उर लात।
सर्वभाव अजेयता तिन पाइयौ इहिं बात ॥ २९ ॥

---

[२१] रूपमाला—गीतिका (काशि०)। थल—मग (सर०)। सु जीतियै०—विलोकियै (सर०); नि जीतिये तेहि कौन कर्म प्रभाउ (काशि०)। तपादि०—जपो तपो धन देइ सो उपदेस (सर०); पदेस दै चित जाहि करो लगाउ (काशि०)। [२३] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [२५] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [२६] ब्राह्मन०—आतम माँह प्रकास (काशि०)। [२७] मैं०—देखियै (सर०)। [२८] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [२९] रूपमाला—गीतिका (काशि०)। लात—तात (वेंकट)। इहिं—यह (वेंकट, काशि०)।

पद्मपुराणे

न यज्ञयोगेन तपोभिरुग्रैर्न मन्त्रतीर्थैर्न च मार्जनेन।
तथा हरिस्तुष्यति देवदेवो यथा महीदेवसुतोषणेन ॥ ३० ॥

(रूपमाला)

पंगु ब्राह्मन गुंग अंध अनाथ राज कि रंक।
अज्ञ होहि कि विज्ञ भेद न मानियै करि संक ॥ ३१ ॥
पूजियै मन बचन कर्मनि प्रेम पुन्य प्रमान।
सावधाननि सेइयै सब बिप्र ब्रह्म-समान ॥ ३२ ॥

गीतायां यथा विष्णु

साचारो वा निराचारः साधुर्वासाधुरेव च।
अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनुः ॥ ३३ ॥

पद्मपुराणे धर्मराज

पश्यन् हि भेदं न ध्यायेद् ब्राह्मणः शंकरं यतः।
विरता विष्णुविद्यासु नरा निरयगामिनः ॥ ३४ ॥

वीरसिंह (दोहा)

कहै भागवत में असम गीता कहै समान।
अप्रमान कौनहिं करौं कौनहिं करौं प्रमान ॥ ३५ ॥

श्रीभागवते यथा

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखात् श्वपचं वरिष्ठम् ॥ ३६ ॥

केशवराय (दोहा)

दोऊ बचन प्रमान हैं अपने बिषयनि पाय।
इह जानौ हरिभक्ति पर समुझौ सुत सुखदाय ॥ ३७ ॥
गायत्रीसंजुक्त है सबै बिप्र हरिभक्त।
वेद पुराननि में कहे चारो बिप्र अभक्त ॥ ३८ ॥
तिन्हैं छाँडि संपूजियै ब्राह्मन ब्रह्मसरूप।
कबहूँ भेद न मानियै बिप्र होत जुगरूप ॥ ३९ ॥

---

[३०] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [३३-३४] 'वेंकट, काशि०' में नहीं हैं। [३६] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [३७] केसवराय–शुक्र (वेंकट, काशि०)। बचन–बरन (सर०)। प्रमान–समान (वही)। बिषयनि–जीवनि (काशि०)। सुत–सुख (वेंकट)। [३९] सपूजियै–सब पूजियै (काशि०)। ब्रह्म–बिस्नु (सर०)।

पराशर

युगे युगे तु ये धर्माः ये द्विजा याश्च देवताः ।
तेषां न निन्दा कर्तव्या युगरूपाश्च देवताः ॥ ४० ॥

(दोहा)

स्रुति स्मृति सास्त्रानि सुनि समुझि, कर्म करै प्रतिकूल ।
हरिपदबिमुख जो बिप्र हैं नरकनि कों अनुकूल ॥ ४१ ॥
पतित संग अपवित्र नृप तिनिहूँ को हित हेरि ।
स्रुति स्मृति सास्त्रनि करत हैं ताकी निंदा टेरि ॥ ४२ ॥
चारि कर्म जुत बिप्रकुल जो कैसोई होय ।
सब ही को गुरु सर्बदा सब तें पावन सोय ॥ ४३ ॥

धर्मशास्त्रे यथा

पतितोऽपि वरो विप्रो न च शूद्रो जितेन्द्रियः ।
कः परित्यज्य गां दुष्टां खरीं शीलवतीं दुहेत् ॥ ४४ ॥

वृद्धयाज्ञवल्क्ये

ब्राह्मणं साधुकं मान्यं अर्थतो यो न पूजयेत् ।
तस्य पुण्यचयो ह्याशु क्षयं याति न संशयः ॥ ४५ ॥

ब्रह्मनारदीयपुराणे

सन्निकृष्टं वाधीनं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत् ।
भोजनैश्चैव दानैश्च दहत्यासप्तमं कुलम् ॥ ४६ ॥

बलिराज

चारि कर्म ते कौन हैं जिन तें होत अभक्त ।
हम सों कहि समुझाइयै जिय में है अनुरक्त ॥ ४७ ॥

शुक्र

हरि कों हिय जानै नहीं द्विज द्रब्यनि अनुरक्त ।
जनक जननि कहँ देत दुख माठापत्य अभक्त ॥ ४८ ॥

यथा श्रीनारायण लक्ष्मी प्रति

मद्भक्तः शंकरद्रोही मद्द्रोही शंकरप्रियः ।
तावुभौ नरकं यातो यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ४९ ॥

---

[४०] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है । [४१] सुनि०—कों सबै (सर०) । बिप्र०—सर्बदा (वही) । [४२] हित—हिय (सर०) । श्रुति०—स्मृति सास्त्र सत्र (काशि०) । [४३] जुत—तजि (सर०); है (काशि०) । [४४ से ४६] 'वेंकट, काशि०' में नहीं हैं । [४७] तें—सो (काशि०) । है—मुनि (सर०) । [४८] हरि०—भेद करहिं जे हरिहरहिं (सर०) । द्रब्यनि—कर्मनि (वेंकट, काशि०) । माठा०—मठपति बिप्र (सर०); मठपति कही (काशि०) । [४९ से ५५] 'वेंकट, काशि०' में नहीं हैं ।

वामनपुराणे

न विषं विषमित्याहुः विषं ब्रह्मस्वमुच्यते।
विषमेकं दहत्येव ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकान्॥ ५०॥

यथाग्निपुराणे

नाजारजः पितृद्वेषी नाजारा भर्तृवैरिणी।
नालम्पटोऽधिकारी स्यात् नाकामी मण्डनप्रियः॥ ५१॥

रामायणे

ब्रह्मस्वं देवद्रव्यं च स्त्रीणां बालवधं च यत्।
द्रव्यं हरति यो मोहाद्द्रष्ट्रा सह पतत्यधः॥ ५२॥

स्कंदपुराणे

हरस्य चान्यदेवस्य केशवस्य विशेषतः।
मठाधिपत्यं यः कुर्यात् सर्वधर्मबहिष्कृतः॥ ५३॥

देवीपुराणे

अभोज्यं मठिनामन्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।
स्पृष्ट्वा मठपतिं विप्रं सवासा जलमाविशेत्॥ ५४॥

पद्मपुराणे

पत्रं पुष्पं फलं तोयं द्रव्यमन्नं मठस्य च।
योऽश्नाति स पचेत् घोरे नरके चैकविंशतिः॥ ५५॥

(दोहा)

इनकों तौ नृप छाँडिजै कीजै द्विज-आसक्ति।
त्रिबिध पाप मिटि जाहिं उर उपजि परै हरिभक्ति॥ ५६॥
अकल अबिद्या-रहित है स्रद्धाजुत हरिभक्ति।
साधौ नवधा अंग सों तजि सब सों आसक्ति॥ ५७॥
नवरसमिश्रित साधि नृप नवधा भक्ति प्रमानु।
दानव मानव देवगन भक्त-कमल हरि-भानु॥ ५८॥

भागवते यथा

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं सख्यं दास्यमात्मनिवेदनम्॥ ५९॥

---

[५६] तौ नृप–तूरन (वेंकट, काशि०)। कीजै०–बिप्रचरन (काशि०)। [५७] अकल–सकल (सर०)। रहित–अहित (वही)। सब सों०–जग की (वही)। [५८] देवगन–इंद्र मुनि (सर०)। भक्त०–दितिकुलपंकज (वही)। [५९-६०] 'वेंकट, काशि०' में नहीं हैं।

नवरसवर्णनं भरताचार्यैः

श्रृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः ।
बीभत्साद्भुतशान्ताश्च नव काव्यरसाः स्मृताः ॥ ६० ॥

(दोहा)

जीतहु अद्भुत स्रवन सोँ, सुमिरन करुना जानि ।
सहित जुगुप्सा दासता पाद-भजन भय मानि ॥ ६१ ॥
बंदन बीर, सिँगार स्यौँ अर्चन सख्य सहास ।
रौद्र कीरतन, सम सहित आत्मनिवेद प्रकास ॥ ६२ ॥

(रूपमाला)

दीन ह्वै स्मर दीनबत्सल नाम नाम निदान ।
कर्म अद्भुत भाव सोँ सुनि नित्य बेद पुरान ।
छाँडि मान अमान स्यौँ उपहास ह्वै जो दास ।
पादसेवहु ब्रह्म को तजि सर्बभावनि त्रास ॥ ६३ ॥

(दोहा)

कीरति पढ़ि नीरसक ह्वै रुद्र रूप मन जीति ।
मन जीते उर उपजिहै परब्रह्म सोँ प्रीति ॥ ६४ ॥

(रूपमाला)

काम क्रोधहि जीतिकै मद लोभ मोह निवारु ।
मित्र ज्यौँ हँसि मग्न आनँद अर्चि साजि सिँगारु ।
रूप-संवर रौद्र स्यौँ बपु अर्पियौ अनयास ।
पाय पूरन रूप कोँ सम-भूमि 'केसवदास' ॥ ६५ ॥

यथा मत्स्यपुराणे

मोक्षदात्री च संपूर्णलोभदम्भादिवर्जिता ।
जगदीशस्य नवधा भक्तिर्नवरसात्मिका ॥ ६६ ॥

देवी (दोहा)

सुक्राचारज के कहे बलि साधी सब रीति ।
सुद्ध भयौ मन सर्बथा बढ़ी ब्रह्म सोँ प्रीति ॥ ६७ ॥
तैसेँ तुमहूँ छाँड़ि भ्रम होउ ब्रह्म सोँ लीन ।
पावहु परमानंद ज्योँ संतत नित्य नवीन ॥ ६८ ॥

इति श्रीमिश्रकेशवरायविरचितायां चिदानंदमग्नायां विज्ञानगीताया बलिचरित्रविज्ञान-प्राप्तिवर्णनं नाम एकोनविंशतितमः प्रभावः ॥ १६ ॥

---

[६१] जीतहु—जो जहँ (सर०) । जुगुप्सा०—जो गुरपरसादता (काशि०) । [६३] रूपमाला—गीतिका (काशि०) । सुनि—पुनि (सर०) । उपहास०—उपमान कीजै (वेंकट, काशि०) । [६५] रुपमाला—गीतिका (काशि०) । काम०—वंदना रसवीर (सर०) । काम......निवारु—'काशि०' मेँ नहीँ है । लोभ०—इंद्रियादिक मास (सर०) । हँसि०—हरि मान (वही) । रौद्र०—सदि सो वहु आपुयो (वेंकट, काशि०) । पाय.........केसवदास—'काशि०' मेँ नहीँ है । सम—रमि (सर०) । [६६] 'वेंकट, काशि०' मेँ नहीँ है ।

२०

(दोहा)

पंच बीज को बीसएँ उत्तम बिस्नु प्रकास।
सप्तभूमि हरिभक्ति की कहिबो 'केसवदास' ॥ १ ॥
सृष्टिबीज के बीज को ताके बीजहि जानि।

जीव

कौन बीज ता बीज को ताको बीज बखानि ॥ २ ॥

देवी

जुक्त सुभासुभ अंकुरनि बीजसृष्टि को देह।
भावाभाव दसान मै सुखदुख्खद यह गेह ॥ ३ ॥

(नाराच)

बीज देह को बिदेह-चित्तवृत्ति जानियै।
जाहि मध्य स्वप्न-तुल्य संभ्रमादि मानियै।
दोइ बीज चित्त के सुचित्त ह्वै सुनौ अबै।
एक प्रानस्पंद है द्वितीय भावना सबै ॥ ४ ॥

(दोहा)

प्रानस्पंद चलचित्त गति अति भावनाभिलाख।
तिनते उपजति बासना छिप्र सहस दस लाख ॥ ५ ॥

(रूपमाला)

चंद सूरहि चंद के मग सुष्मनागत दीस।
प्रानरोधन कों करै जेहि हेत सर्ब ऋषीस।
चित्त-सोधन प्रान-रोधन चित्त सुद्ध उद्दोत।
व्याधि आदि जरै जराजुत जन्म मरन न होत ॥ ६ ॥

(पादाकुल)

जद्यपि तीरथनीरनि सेवहु। सकल सास्त्रमय देवनि देवहु।
जद्यपि चित्तप्रबोध न बोधिय। तद्यपि प्रान निरोधन रोधिय ॥ ७ ॥

---

[१] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [३] देवी—देव्यु (वेंकट, काशि०)। सुभा०—सुभ्र अकुरन में (सर०)। भावा०—भावभयानि दिसान में सुख रत्ती को (वही)। [४] अबै—सबै (काशि०)। [५] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [६] रूपमाला—गीतिका (काशि०)। चंद०—होत सर्व अनर्थ व्यर्थ ति प्रानरोधन रीस (सर०); प्रान रोधन कों करै जेहि हेतु सर्व रिषीस (काशि०)। प्रान०—ब्रह्म कों करि साधना तब होइ ब्रह्म सरीस (काशि०)। जरा०—ज्वरादिक (सर०)। [७] 'काशि०' में नहीं है। प्रान—चित्त (वेंकट)।

जदपि ज्ञान बियोग धरा बढ़्यौ। तबहुँ सोदर साथ सदा बढ़्यौ।
जद्यपि जर्जर सेष बखानिय। तबहूँ चित्त सुमित्त न मानिय॥ ८॥

(दोहा)

दोइ बीज हैं चित्त के ताके बीजनि जानि।
सो संबेद बखानियै 'केसवराय' प्रमानि॥ ९॥
बीज सदा संबेद को संबिद बीजबिधान।
संबिद अरु संबेद को छाँडत हैं मतिमान॥ १०॥
संबिद को चित बीज है ताकों सत्ता होय।
'केसवराय' बखानियै सो सत्ता बिधि दोय॥ ११॥
एक सु नाना रूप है एक रूप है एक।
एक रूप संतत भजौ तजियै रूप अनेक॥ १२॥
एक कालसत्ता कहै बिमत चित्त को ताहि।
एक बस्तुसत्ता कहै चितसत्ता चित चाहि॥ १३॥
ताको बीज न जानियै जाकी सत्ता साधु।
हेतु जु है सब हेतु को ताही कों आराधु॥ १४॥

(सुंदरी)

संग वै अर्थ अनर्थ बढ़ावत। संग वै बस्तु-बिचार पढ़ावत।
संग वै मुक्तिलता कहँ बारन। तातें करौं प्रभु संग निवारन॥ १५॥

जीव (दोहा)

संसय तृनचय दाहिकै देवि सुनौ सुखदाय।
संग कहावत है कहा कहि माता समुझाय॥ १६॥

(दोधक)

एक संग जनसंग कहावै। एक संग यह देह कहावै।
एक बासना संग तजौ जू। जीवनमुक्त प्रभाव भजौ जू॥ १७॥

---

[८] जर्जर०—चतुर्दस (सर०)। शेष—रस सु (काशि०)। [९] चित्त—बीज (सर०)। बीजनि—चित जनि (काशि०)। प्रमानि—बषानि (वही)। [१०] संबिद०—संबिद बेद बखानि (काशि०)। बिधान—बखान (सर०)। सबेद—संघात (वेंकट, काशि०)। [११] दोय—होय (काशि०)। [१२] एक रूप०—कालरूप सत्ता भयो (सर०)। [१३] बिमत०—एक कालसत्ताहि (सर०)। वस्तु—बत्स (काशि०)। [१४] जाकी—ताकी (सर०)।। [१५] सुंदरी—दोधक (काशि०) बढ़ावत—को कारन (सर०)। पढ़ावत—बिचारन (वही)। [१७] संग जन—सुराज सु (वेंकट, काशि०)। कहावै—सुभावै (काशि०)। एक—और (वेंकट, काशि०)। प्रभाव—कथान (सर०)।

गीतायां यथा

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ १८ ॥

(दोहा)

नसें वासना संग की संग सबै नसि जात ।
निसा नसें नसि जात ज्यौं निसिचर को संघात ॥ १९ ॥

जीव

महामोह-तम-चंद कै नसें संग की ज्योति ।
ता देही के देह की कहौ कौन गति होति ॥ २० ॥

देवी

संग नसै जिहि भाँति ज्यौं उपजै पाप अपाप ।
तिन सों लिप्त न होहिँ ते ज्यौं उपलन को आप ॥ २१ ॥

योगवासिष्ठे

बलादपि हिंसा जाता न लिम्पत्याशयं सतः ।
लोभमोहादयो दोषाः पयांसीव सरोरुहम् ॥ २२ ॥

वीरसिंह

वेद कहै सिव सों सदा सब बिधि जीवनमुक्त ।
कहि 'केसव' कैसें भयौ ब्रह्मदोषसंजुक्त ॥ २३ ॥

केशव

अकस्मात जो असुभ सुभ उपजि परै कहुँ आनि ।
तौ वह लिप्त न होय जो सिव कीनौ यह जानि ॥ २४ ॥

वीरसिंह

महाप्रलय करतार को कैसें बंधन होय ।
हम सों कहि समुझाइयै कहिय दोष क्यों होय ॥ २५ ॥

---

[१८] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है । [१९] संग की—गध को (वेंकट) । जात ज्यौं—जीव कों (सर०) । [२०] नसें०—तिनकी संगति (वेंकट, काशि०) । कहौ०—कौन दसा तब होति (सर०) । [२१] देवी—देव्यु (वेंकट, काशि०) । संग—सगुन (काशि०) । आप—आप (वही) । [२२] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है । [२३] वीरसिंह—जीव उवाच (काशि०) । [२४] केशव—देव्यु (काशि०) । [२५] वीरसिंह—जीव उवाच (काशि०) । बंधन०—लाग्यौ पाप (सर०) । कहिय०—कहियै दोष प्रताप (वही) ।

केशव (रूपमाला)

ईस कों जगदीस कों यह सासना सब काल।
मारि आपु अधर्म कों करि धर्म कों प्रतिपाल।
पाप कों तिहि हेत तें तिनि कर्यौ आसु बिनास।
धर्म को जगमध्य में पुनि कीन पुंज-प्रकास॥ २६॥

(दोहा)

दुहूँ भाँति की सासना मनोभाव भय मानि।
जौ न मानियै सर्वथा प्रभु को द्रोह बखानि॥ २७॥

राजधर्म

आज्ञाभंगो नरेन्द्राणां विप्राणां मानखण्डनम्।
पृथक्शय्या वरस्त्रीणामशस्त्रवध उच्यते॥ २८॥

(दोहा)

प्रभु को कह्यौ करै न यह अधिकारीनि अधर्म।
तातें राखै लोक में लोकाधिप को धर्म॥ २९॥

ब्रह्मनारदीये

ब्रह्मविष्णुमहेशाणां यस्यांशाः लोकसाधकाः।
समाधिदेवचिद्रूपं विश्वेशं परमं भजेत्॥ ३०॥

(दोहा)

देव दुरायौ ईस को रूप सु ताहि प्रकास।
तेही तें संसार को ह्वैहै आसु बिनास॥ ३१॥
जैसें देवनि देवमनि करत जदपि जगदीस।
तैसें अपने रूप को जतन करौ तुम ईस॥ ३२॥

योगवासिष्ठे

ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राद्याः यद्यत् कर्तुं समुद्गताः।
तदहं चिद्वपुः सर्वं करोमीत्येव भावयेत्॥ ३३॥

जीव

भू हरिभक्तिबियोग की कैसें साधत साधु।
कैसो तिनको रूप है कहियै देवि अगाधु॥ ३४॥

---

[२६] केसव—देव्यु (काशि०)। आपु—आसु (वेंकट, काशि०)। पुनि—सुनि (वेंकट); अति (काशि०)। [२७] द्रोह०—देहु बखानि (वेंकट); देहु नखानि (काशि०)। [२८] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [२९] यह—राजु (सर०); जहाँ (काशि०)। [३०] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [३२] करत०—जपत रहत (सर०)। [३३] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [३४] भू—जो (वेंकट, काशि०)।

देवी (रूपमाला)

एक जीव प्रवृत्ति एक निवृत्ति जानि सुजान।
स्वर्ग सों अपवर्ग सों रति होति हेत वखान।
है कहा अपवर्ग 'केसव' नित्य संसृति लोक।
स्वर्गभोगनि भोगवै जग तें निवृत्ति विलोक ॥ ३५ ॥
स्वर्ग नर्कनि जात आवत कोँ फदीहति होय।
आइयै जिहि लोक तेँ मन जो विचारै कोय ॥
आगिलें मरिहैं मरत अव पाछिलें परतच्छ।
मेटियै मरिबो बखान निवृत्ति जे मतिअच्छ ॥ ३६ ॥

गीतायां

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ ३७ ॥

(दोहा)

क्यौँ तजियै कुलराग अरु क्यौं तजियै संसारु।
या विचार तें होति है प्रथम भूमिका चारु ॥ ३८ ॥

(रूपमाला)

लोभ दंभ मदादि मान विमोह क्रोध विहीन।
वेदभेदविचार धारन ध्यान कर्महि लीन।
वस्तु सिद्ध प्रसिद्ध साधन साधिवे कहँ जुक्त।
भूमिका यह दूसरी जब होय जी अनुरक्त ॥ ३९ ॥

(दोहा)

असंसंग जू तीसरी जोगभूमिका जानि।
तामें मन पौढ़ायकै सेज फूल की मानि ॥ ४० ॥

(त्रिभंगी)

निंदै बहु बारनि करि निरधारनि वस्तुविचारनि संसारनि।
फलफूलअहारी विपिनविहारी तजि बिभिचारी मतिचारनि।
तजि दुख सुख साथनि नाथ अनाथनि गुनगन साथनि श्रीनाथनि।
भ्रमभार अतीतनि मोहवितीतनि इंद्रियजीतनि दिन रातनि ॥ ४१ ॥

---

[३५] देवी०–गीतिका छंद (काशि०)। स्वर्ग–सर्व (वेंकट)। निवृत्ति–प्रवृत्ति (वही)। [३६] मन०–नहिँ जीव चारै कोय (वेंकट, काशि०)। [३७] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [३९] रूपमाला–गीतिका (काशि०)। मदादि मान–महाभिमान (सर०)। विमोह–समोह (काशि०)। [४०] 'वेंकट काशि०' में नहीं है। [४१] साथनि–गायनि (काशि०)।

(दोहा)

पाय तीसरी भूमिका 'केसव' होत प्रबुद्ध।
असंसंग द्वै भाँति के मोपै सुनि मतिसुद्ध ॥ ४२ ॥
एक होय साधारनै दूजी इष्ट सु जानि।
तिनके रूप प्रकार अब तुमसों कहौं बखानि ॥ ४३ ॥

(रूपमाला)

भोगता करता न हौं अब बाध्य बाधक हौं न।
व्याधि आधि बियोग जोग अभोग भोगन कौन।
संपदा बिपदा सबै सुख दुक्ख आवत जात।
एक पूरब कर्म तें भ्रमियै न कौनहुँ नात ॥ ४४ ॥

(दोहा)

यह साधारन जानिबो असंसंग इत्यादि।
कहौं दूसरो चित्त है सुनियै देव अनादि ॥ ४५ ॥
बाहिरहूँ भीतर भजौं अध ऊरधन दिसानि।
नाहीं अर्थ अनर्थ में ना जड़ अजड़नि मानि ॥ ४६ ॥
जाकी प्रभा प्रकासियै अस्ति अनंत अगाधु।
सबतें न्यारो सर्बदा असंसंग सो साधु ॥ ४७ ॥

(विजय)

चित्त सुनाल के अग्र लसै बहु कंटक कष्ट बिनास बिलासे।
कारन कोमल पल्लव 'केसवदास' सँतोष सुबासनि बासे।
भक्ति असंग की तीसरी भूमि मिलै असि अद्भुत संसृति नासे।
भूप बिवेक हिये सरसी सह मित्र बिचार प्रकास प्रकासे ॥ ४८ ॥

(दोहा)

प्रथम भूमिका अंकुरै दूजी होत प्रकास।
फलै तीसरी भूमिका फल अद्भुत अबिनास ॥ ४९ ॥
भासत है अद्वैत उर द्वैतन सों अकुलाय।
लोक बिलोकै स्वप्नवत भूमि चतुर्थी पाय ॥ ५० ॥

---

[४३] इष्ट०—संसुति (वेंकट); सेष्टा (काशि०)। प्रकार०—प्रकास सुनि (सर०); प्रकास अब (काशि०)। [४४] नात—जात (वेंकट, काशि०)। [४५] यह०—यहई साधन साधिबो (सर०)। [४६] बाहिरहूँ—चारि चहूँ (वेंकट); चारिहूँ (काशि०)। ना०—भाजै जडनि समानि (सर०)। [४७] प्रकासियै—प्रभासियै (सर०)। अस्ति—अति (सर०); अमित (काशि०)। सर्बदा—सब्रनियै (सर०)। [४८] बिनास—बिलास (वेंकट, काशि०)। कारन—वारिज (सर०)। भक्ति—भूत (वेंकट, काशि०)। सह—महँ (वही)।

तृतिया जाग्रत सम लसै चौथी स्वप्न समान।
जानि सुषुप्तक पाचईं भूमि-बिभाग प्रमान ॥ ५१ ॥
छूटि जाति है आपु तें ग्रंथि सु सब अनयास।
जीवनमुक्त दसा लसै छठी भूमि भ्रम-नास ॥ ५२ ॥
सुखद सप्तमी भूमिका निस्चल चित्त-बिलास।
चित्तदीप की ज्योति तब पूरन परम प्रकास ॥ ५३ ॥
अंतर बाहिर हीन है पूरन बाहिर अंत।
जल-थल घट आकास ज्यौं पूरन पूरनवंत ॥ ५४ ॥
अन्तःशून्यो बहिःशून्यः शून्यः कुम्भ इवाम्बरे।
अन्तःपूर्णो वहिःपूर्णः पूर्णः कुम्भ इवार्णवे ॥ ५५ ॥
पाय सप्तमी भूमिका भक्ति न होति विदेह।
देवरूप स्वच्छंद जग रहत बिपिन अरु गेह ॥ ५६ ॥

जीव

हमको देबी करि कृपा कहौ देव को नाम।
जिनको करि उच्चार मुनि पल पल करत प्रनाम ॥ ५७ ॥

देवी (भुजंगप्रयात)

कहैं एक तासों सिवै सून्य एकै। महाकाल एकै महाविस्नु एकै।
कहैं अर्थ एकै परब्रह्म जानौ। प्रभापूर्न एकै सदा सत्य मानौ ॥ ५८ ॥

(दोहा)

एक आतमा कहत हैं एक कहैं चित भक्त।
इहि बिधि नाना नाम जग लसत सबै अनुरक्त ॥ ५९ ॥

वीरसिंह

अमित अमेय अरूप के ऐसे हैं सब नाम।

केशव

मुनि भक्तनि हैं गहि लए महाराज गुनग्राम ॥ ६० ॥

योगवासिष्ठे

एकमात्मपरं ब्रह्म सत्यमित्याह वै बुधः।
कल्पनाव्यवहारार्थं तस्य संगो महात्मनः ॥ ६१ ॥

---

[५३] तव–वत (सर०, काशि०)। परम–प्रेम (सर०)। [५४] जल०–सुखद सतमी भूमिका सदा होति अति सत (सर०)। [५५] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [५६] भक्ति०–निस्चल चित्त (काशि०)। [५८] महाकाल–कहैं काल (वेंकट, काशि०)। सत्य–सून्य (वही)।

भक्तिजोग की भूमिका इहि बिधि साधत साधु।
होत पार संसार के जदपि अनंत अगाधु ॥ ६२ ॥

(सवैया)

पाय पदारथ कुंभ निरै दिबि सुंडि त्रिषा तरुनी जनियै जू।
कर्म अकर्म बिलोचन जीभ पियास-छुधा भव में भनियै जू।
लोभ बिलोभति बासना बास दरी मनु दीरघ में गनियै जू।
इच्छगजी मदमत्त बनी तन में सर धीरज सों हनियै जू ॥ ६३ ॥

(दोहा)

जीव जु इच्छा बिच्छुरित आवत कब जब दीन।
इच्छा निज जे चलत हैं परइच्छा परबीन ॥ ६४ ॥
तजें न करिबो कर्म कों जब लगि जगत प्रकास।
ह्वै जैहै जब एकता सहजै कर्मबिनास ॥ ६५ ॥

इति श्रीमिश्रकेशवरायविरचितायां विज्ञानगीतायां भक्तियोगसप्तभूमिकावर्णनं नाम विंशतितमः प्रभावः ॥ २० ॥

२१

(दोहा)

एकवीस में बर्निबो महामोह-परिहार।
उत्तर मन को सृष्टि को रामनाम निस्तार ॥ १ ॥

जीव

अहंकार कै भाँति है ताहि तजौं केहि भाव।
कहौ देबि तुम करि कृपा उपजै ज्ञान-प्रभाव ॥ २ ॥

देवी

तीनि भाँति त्रैलोक्य में अहंकार के भेव।
द्वै सुभ संतत समुझियै असुभ तीसरो देव ॥ ३ ॥

---

[५६] लसत–लत (सर०, काशि०)। [६०] गहि–घरि (सर०)। [६१] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [६३] त्रिषा०–त्रिधा वरुनी (वेंकट, काशि०)। जनि–गनि (सर०, काशि०)। बिलोचन–दियौ बन (वेंकट, काशि०)। भव में–उलटी (सर०)। लोभ०–लोक बिभेदति (वेंकट, काशि०)। सर–हँसि (सर०)। [६४] नित–तजि (वेंकट, काशि०)।

[१] उत्तर–तत्व जु (सर०)। [३] देवी–देव्यु (वेंकट, काशि०)।

(रूपमाला)

हौं अरूप अमेय हों जड़ चेतनादिहु अंत।
सोभियै जगमध्य हौं जग मोहिं माँझ लसंत।
भोगता करता न हौं अब टोहियै सु उपाउ।
हौं भयौं जिहि तें सु हौं कि रहौं कि देहुँ कि जाउँ ॥ ४ ॥

अथ अशुभलक्षणं

देस ग्राम पुरीन को पति बड़ो है सुनरेस।
पुत्र मित्र कलत्र को प्रभु हौं भलो सुभ वेस।
सूर हौं सर्वज्ञ हौं बलवान हौं धनवान।
मोहिं पूजहु मो बिना जग और को भगवान ॥ ५ ॥

(दोहा)

आदि अहंकृत द्वै भले, परमानंद-निकेत।
अहंकार जो तीसरो सोई बंधन-हेत ॥ ६ ॥
सात्विक राजस तामसै एक होत मतिधीर।
तजियै राजस तामसै सतगुन भजियै बीर ॥ ७ ॥
सब मेरोई रूप है सबको हौं हितवंत।
अहंकार कासों करौं तजि पूरन भगवंत ॥ ८ ॥
जहीं अहं मम जीतिहौ अखिल लोकमनि मित्र।
धूम धौरहर से तहीं देखौ अमित चरित्र ॥ ९ ॥

गीतायां

न जायते म्रियते वा कदाचित् ॥ १० ॥
सकल लोक ए बसत हैं अहंकार आधार।
ताहि नसतहीं नसत ज्यौं पटु प्रबोध भ्रम भार ॥ ११ ॥

(मनोरमा)

कबहूँ यह सृष्टि महासिव तें सुनि। कबहूँ बिधि तें कबहूँ हरि तें गुनि।
कबहूँ बिधि होत सरोरुह के मग। कबहूँ जलअंड तें अंबर तें जग।
कबहूँ धरनी पल में मय पाहन। कबहूँ जलमय मृन्मै अरु कंचन।
हर तें बिधि हैं कबहूँ बिधि तें हर। हर तें हरिजू कबहूँ हरि तें हर ॥ १२ ॥

---

[४] जड़०—जगमध्य आदिहु (सर०)। तें०—हेतु हौं (काशि०)। [५] बड़ो०—हौं नरेस सुरेस (सर०)। भलो—सदा (वही)। [६] सोई—निस्चै (काशि०)। [७] होत०—कहत मन (सर०)। [८] तजि०—इहि भाजियै (सर०) [९] मम—पद (काशि०)। [१०] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [११] नसत—रहत (काशि०)। ज्यौं—है (वही)। [१२] गुनि—पुनि (सर०)। धरनी०—मृन्मय तन कंचन के तन। थिर नाहिँ बिचार करौ तुमही मन (सर०)।

(दोहा)

करियै करता, मारियै कबहूँ मारनिहार।
कबहूँ पालक पालियै बिना नियम संसार॥ १३॥
पालक संहारक रचक भक्षक रक्ष अपार।
सबही सबको हेत है को जानै कै बार॥ १४॥
बड़ी फदीहति जगत की भाँति अनेक अरूप।
एक रूप तव तेज है अच्युत रूप अनूप॥ १५॥

वीरसिंह

ऐसोई जो जीव है अज निरीह निर्लेप।
को जग बद्ध अबद्ध है कीजै भ्रम-विच्छेप॥ १६॥

केशव

जग को कारन एक मन मन को जीत अजीत।
मन को मन सुनि सत्रु है मनहीं को मन मीत॥ १७॥

गीतायां

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः॥ १८॥

वीरसिंह

मन को कैसो रूप है, मोसों कहि समुझाय।
सकल सुभासुभ मंजरी उपजत जाकों पाय॥ १९॥

केशव

मन को रूप अरूप है जैसो है आकासु।
बढ़त बढ़ाएँ बुद्धि के घटत घटाएँ आसु॥ २०॥
मन की दीन्ही गाँठि प्रभु मनहीं पै छुटकाउ।
ज्यौं मल मलहीं धोइयै विषहीं विष सु उपाउ॥ २१॥

वीरसिंह

संतत जीव चिदंश जग पाप पुन्य के भोग।
कहौ कौन कों होत है ज्यौं समुझैं सब लोग॥ २२॥

---

[१३] करियै—कबहूँ (सर०)। [१४] रक्ष—भक्ष (काशि०)। सबही...... कै बार—'काशि०' में नहीं है। [१५] रूप०—अजर अरूप (सर०)। अनेक०—अरूप अनेक (काशि०)। अनूप—अनेक (वही)। [१६] वीरसिंह—नृप वीरसिंह (वेंकट); श्री नृपसिंह (काशि०)। [१८–१९] 'वेंकट, काशि०' में नहीं हैं। [२१] छुट०—छुर आउ (वेंकट, काशि०)। विष०—वेष उपाय (काशि०)। [२२] जग—मय (सर०)।

केशव

जोई करै सु भोगवै यह समुझौ नृपनाथ।
स्वर्ग नरक बंधन मुकुति मानौ मन की गाथ ॥ २३ ॥

वीरसिंह

अंगभंग है देह को पीड़ित देखिय देह।
मन कों कैसें मानियै मेटौ यह संदेह ॥ २४ ॥

केशव मिश्र

जिनि जिनि अंगन सों मिल्यौ करत सुभासुभ चेतु।
भोग करत तिनही मिल्यौ सह संगति के हेतु ॥ २५ ॥

योगवासिष्ठे

मनो हि जगतां कर्त्ता मनो हि पुरुषः स्मृतः।
मनःकृतं कृतं लोके न शरीरकृतं कृतम् ॥ २६ ॥
हरें हरें मन ऐंचि कै कीजै मन कों हाथ।
इंद्रिय सर्पसमान हैं गारुड़ मन के साथ ॥ २७ ॥

(सवैया)

फूलत हौ मुख देखि न फूलहु लाभ यहै भली बात सिखावौ।
जौं ललकै अपमारग कों मन तौ सिख दै सतमारग लावौ।
मूढ़न साथ परें फिरि हाथ न आयहै नाथन माथ नवावौ।
त्यौं कुल कों अवलोकिकै 'केसव' बालक ज्यौं मन क्यौं न पढ़ावौ ॥ २८ ॥

वीरसिंह (दोहा)

कौन तजै मन संग जो कौन संग मन होय।
सदा जीव उन संग है जग परिपूरन सोय ॥ २९ ॥

केशव (रूपमाला)

जीव सों चिद्रूप सों इतनो सु अंतर जानि।
विस्नु सों अरु जीव सों तितनो महामति मानि।
जीव सों मन सों तितो मन सों विकल्पनि जानि।
कल्प सों अरु सृष्टि सों तितनो विसेष बखानि ॥ ३० ॥

---

[२५] सुभासुभ०—सुभग गुन चीतु (काशि०)। मिल्यौ—भल्यौ (वही) सह—यह (सर०, काशि०)। के हेतु—की रीतु (काशि०)। [२६] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [२७] मन०—बस निज (काशि०)। [२८] मुख—मन (काशि०)। फूलहु—भूलहु (वेंकट, काशि०)। लाभ०—लाड भुलै भली भाँति (सर०)। सिख—दुख (वेंकट, काशि०)। नवावौ—नसावै (वेंकट)। [३०] जीव सों—परं ब्रह्म (काशि०)।

योगवासिष्ठे

भेदो यथा नास्ति चिदात्मजीवयो-
स्तथैव भेदोऽस्ति न चित्तजीवयोः ॥ ३१ ॥

(दोहा)

जितनी लीला सगुन की ताकों यहै निदानु ।
निर्गुन ईस बिचार में ना जग ना मन मानु ॥ ३२ ॥
क्रम क्रम सबकों छाँडियै ममता प्रभु मतिजुक्त ।
अहंकार परिहार कै हूजै जीवनमुक्त ॥ ३३ ॥
चित्तं चेतो मनो माया प्रकृतिश्चेतना त्वपि ।
परः स्यात्कारणं देव मनः प्रथममुत्थितम् ॥ ३४ ॥

जीव

हमसों कहि समुझाइयै जीवनमुक्त बिदेह ।
जाहि सुने तें होयगौ सुद्ध भाव इहिं देह ॥ ३५ ॥

देवी—जीवन्मुक्तलक्षणं (सवैया)

लोक करै सुख दुक्खनि कै जिनि राग बिरागनि या महँ आनै ।
डारै उपारि समूल अहंतरु कंचन काँच न जो पहिचानै ।
बालक ज्यौं भवै भूतल में भव आपुन से जड़ जंगम जानै ।
'केसव' बेद पुरान प्रमान तिन्हैं सब जीवनमुक्त बखानै ॥ ३६ ॥

विदेहलक्षणं

देखतहूँ अनदेखतहूँ लखि रूपक से न सरूप कों धावै ।
आपु अनिच्छ चलै परइच्छ कों 'केसवदास' सदा पति पावै ।
कर्म अकर्मनि लीन नहीं निज पंकज ज्यौं जल अंक लगावै ।
ह्वै अतिमग्न चिदानँदमध्यनि लोग सदेह बिदेह कहावै ॥ ३७ ॥

(दोहा)

जीवनमुक्त बिदेह के सुनि प्रभु तीनि प्रकार ।
तिन्हैं सुने तें होयगौ प्रगट प्रबोध अपार ॥ ३८ ॥

[३१–३२] 'वेंकट, काशि०' में नहीं हैं । [३३] मति०—संजुक्त (सर०) । [३४] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है । [३६] देवी—देव्यु (वेंकट, काशि०) । उपारि—उखारि (सर०) । [३७] को०—सदा प्रतिबिंबन के पद (सर०) । निज०—नलिनीदल ज्यौं जल पंक न लावै (सर०); नलिनीदल ज्यौं जल अंक लगावै (काशि०) । ह्वै०—केसव (सर०) । अतिमग्न—अतिमत्त (वेंकट, काशि०) । लोग—लोक (सर०, काशि०) । [३८] इसके स्थान पर 'वेंकट, काशि०' में यह है—

हरिगीती—जीवनमुक्त विदेह के सुनि सकल लक्षण जानिये ।
काशि०—*नराच छंद*—छाँडि जगत मिथ्या सकल महात्यागी मानिये ॥

होहु महाकर्ता प्रथम महाभोगता होहु।
महा सुत्यागी होहु पुनि सिगरे जग में सोहु ॥ ३९ ॥

महाकर्त्तालक्षणं (छप्पय)

निर्बिकार निर्लेप करै कछु कर्म अकर्मनि।
अहंभावनिर्मुक्त मुक्त मन सर्म असर्मनि।
राग बिरागनि राज सदा सर्वत्र सर्वविधि।
मंडन दंड समान रूप अनरूप काँच निधि।
अबिभूत्यौ संपति बिपति साधि बिभूत्यौ जग हरत।
कहि 'केसवराय' सुभायमनि ताहि महाकरता कहत ॥ ४० ॥

महाभोक्तालक्षणं

स्वादास्वाद अभोज भोज कुल अकुल न जानत।
अनाचार आचार सुगंधन गंध न मानत।
निदानिदारहित आगि पानी सम छीवत।
हरपबिपादबिहीन बिपन पियूषन पीवत।
खाइ न पियइ न कछु करहि परइच्छा इच्छा जानियै।
कहि 'केसव' बेद पुरान में महाभोगता मानियै ॥ ४१ ॥

महात्यागीलक्षणं

सत्रुमित्र दुखसुख्ख सबै संकानि तजै मन।
धर्माधर्मनि तजै सबै धन धाम बामजन।
लोभ मोह मद काम क्रोध कामना तजै उर।
लोक अलोक बिलोक तजै साधन समेत गुर।
सुनिय कछू अरु देखियै बानी बस्तु बखानियै।
छाड़ि जु मन मिथ्या जगत महा सुत्यागी मानियै ॥ ४२ ॥

केशव (दोहा)

यहै सुमत झूठो लग्यौ दयौ परमपद चित्त।
उपजी बिद्या बोधमय भूलि गयौ सुत मित्त ॥ ४३ ॥

(नाराच)

नसी कुबुद्धि राति निद कल्पना समेतहीं।
बिमोह अंधकार गौ पताल के निकेतहीं।

[३९ से ४१] 'वेंकट, काशि०' में नहीं हैं। [४२] सत्रु...बामजन–'वेंकट, काशि०' में नहीं है। तजै०–उपजै डरे (वेंकट); उपजै उरे (काशि०)। लोक०–लोकलोक (काशि०)। तजै०–तजे सब साधना समेत गुरे (वेंकट), तजि सब साधना समता गुरे (काशि०)। सुनिय–सुनिये (काशि०)। बस्तु–जो बस्तु (वही)। मन–मानि (वेंकट, काशि०)। सुत्यागी–त्यागी (वही)। [४३] यहै०–यह सुनि सब (वेंकट); यह सुनि झूठो (काशि०)।

बिभाति ज्ञान नित्य के बिनोद लोभ है भयौ।
प्रबोध को उदै बिलोकि ज्योतिवंत ह्वै गयौ ॥ ४४ ॥

(दडक)

जैसें भट साजि सैन हाथ लै हथ्यार रन मारेमारे अरिगन जीति जीतै मन कों।
मारतंडमंडल कों भेदत अखंडमति भूलि जात पुत्र मित्र सब देवगन कों।
तैसें सतसंग श्रद्धा बिबेक बैराग बुद्धि छोंडिकै धरेई वेदसिद्धि से साधन कों।
'केसौदास' हरिकी भगतिके प्रसाद भयौ जीवनमुकुत मिलि आनद के घन कों ॥४५॥

(दोहा)

जैसे बंधन हेत नर लेत छुरीनि सँभारि।
बंधन काटे बंदि के छूटें भगत बिसारि ॥ ४६ ॥
तौ लौं तम राजै तमी जौ लौं नहिँ रजनीस।
'केसव' ऊगे तरनि के तम न तमी न तमीस ॥ ४७ ॥
ऐसो ह्वै जग में रहै सबसों बैर न नेह।
छोंड्यौ चाहै जगत कों तबहीं छाड़ै देह ॥ ४८ ॥
यहि बिधि सों हरिभक्ति करि साधु होत सब भक्त।
सबै ब्रह्मचारी गृही बानप्रस्थ बिरक्त ॥ ४९ ॥

गीतायां

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ५० ॥

वीरसिंह

ऐसी ह्वैहै जब दसा तब तौ अति बड़भाग।
कौन भाँति बनवास बिन घरहीं हरि सों राग ॥ ५१ ॥

---

[४४] कल्पना०—तिल्यनाम सेत हीं (काशि०)। नित्य०—के बिनोद के प्रकास लोभ यौं भयौ (सर०)। उदै०—उदै तृलोक (काशि०)। बिलोकि०—त्रिलोक रूपज्योति (सर०)। [४५] दंडक—सवैया (काशि०)। हाथ लै०—बाँधि कै कवचन हाथ हथ्य रन जीते तन (सर०)। मारे०—जीति जीतै जोरनि जु मन को (काशि०)। अखंड०—अखडल कों (सर०)। पुत्र मित्र—पुत्र (काशि०)। आनँद०—आतमा के जन को (वेंकट, काशि०)। [४६] हेतनर०—हेत तन क्षेत्र छुरिनि सें मारि (वेंकट); होत तन क्षेत्र छुरिनि सँभारि (काशि०)। छूटें०—छु भगति सबहिँ (काशि०)। [४७] जौ लौं—उदित नहीं अवनीय (सर०)। केसव०—जैसें उवत दिनेस के (वही)। ऊगे०—उवत दिनेश के (काशि०)। तमीस—तमीय (सर०)। [४८] जगत—देह (सर०)। [४९] हरि भक्ति०—साधै तबै स धु होत हरिभक्त (सर०)। बानप्रस्थ—दान प्रसस्त (वेंकट)। बिरक्त—सुबिरक्त (काशि०)। [५०] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है। [५१] वीरसिंह—श्रीनृपवीरसिंह (काशि०)।

केशव (चंद्रकला)

निसिवासर वस्तुविचारहि कै मुख साँच हिये करुनाधन है।
अघनिग्रह संग्रह धर्मकथानि परिग्रह साधन को गन है।
कहि 'केसव' भीतर जोग जगै अति वाहिर भोगन सों तन है।
मन हाथ सदा जिनके तिनके वन ही घर है घर ही वन है॥ ५२॥
बडवानल कोप विलोपत लोभनि मंगल संजम सो सर है।
अति मक्र तो इंद्रियजाल अहंकृत सिंधु विवेक धराधर है।
कहि 'केसव' साधन कों तिनकों मन मत्त बसीकर कुंजर है।
मन हाथ सदा जिनके तिनके घर ही वन है वन ही घर है॥ ५३॥

वीरसिंह (दोहा)

कठिन रीति यहऊ कही घर ही माँझ विरक्ति।
हम सनि पर ज्यों होय त्यों कहियै श्रीहरिभक्ति॥ ५४॥

केशव मिश्र (चंचरी)

आदिदेव पूजि पूजि रामनाम लीजई। न्हान दान धर्म कर्म छद्म छाँडि कीजई।
सत्य वोलियै सदा बिपत्तिसंपदानि स्यौं। राजराज वीरसिंह चित्त सुद्ध
होय त्यौं॥ ५५॥

वीरसिंह (दोहा)

रामनाम को तत्व सब हम सों कहौ असेष।
चित्त हमारो सुनतहीं सुद्ध होत सविसेष॥ ५६॥

केशव मिश्र

ऋषि वसिष्ठ सों विनय कै बूझेहु हो मुनि मग्न।
रामनाम-महिमा सुनहु वीरसिंह सत्रुघ्न॥ ५७॥

शत्रुघ्न

कहि वसिष्ठ कुलइष्टमति रामनाम को भेद।
जाहि सुने तें जायगौ सबै चित्त को खेद॥ ५८॥

---

[५२] चंद्रकला—सवैया (वेंकट, काशि०)। कहि०—निज जोग जगै कहि केसव बाहिर भोगन भोगत (सर०)। [५३] 'वेंकट' में नहीं है। [५४] वीरसिंह—श्रीनृपवीरसिंह (काशि०)। त्यौं—अब सो (वही)। श्रीहरिभक्ति—हरिभक्त (वही)। [५५] चचरी—चंचल (काशि०)। न्हान—स्नान (सर०, काशि०)। त्यौं—सो (वेंकट, काशि०)। [५६] वीरसिंह—श्रीनृपवीरसिंह (काशि०)। सब—ध्रुव (सर०)। होत—होइ (सर०, काशि०)। [५७] कै०—सा पूछो हो सत्रुघ्न (सर०)। हो०—ते मनमान (काशि०)। [५८] कहि—कहो (वेंकट, सर०, काशि०)।

वसिष्ठ (स्वागता)

चित्तमाँझ जब आनि अरूझी । बात तात कहँ यह मैं बूझी ।
जोग जाग करि जाहि न आवै । धर्म कर्म बिधि धर्म न पावै ।
है असक्त बहु भाँति बिचारौ । कौन भाँति प्रभु ताहि उचारौ ॥ ५९ ॥

ब्रह्मजू (भुजंगप्रयात)

वही सच्चिदानंद रूपै धरैंगे । सु त्रैलोक के पाप तीनौ हरैंगे ।
कहैगो सबै नाम श्रीराम ताको । सदासिद्ध है सुद्ध उच्चार जाको ॥ ६० ॥

संस्मृतौ (श्लोक)

चैत्रमासनवम्यां तु शुक्लपक्षे रघूद्वहे ।
प्रादुरासीत्पुरा ब्रह्म परब्रह्मैव केवलम् ॥६१॥

(भुजंगप्रयात)

कहै नाम आधौ सुब्याधौ नसावै । स्मरै नाम पूरो सु पूरो कहावै ।
सुधारै दुहूँ लोक कों बर्न दोऊ । हियें छद्म छाड़ै कहै बर्न कोऊ ।
सुनावै सुनै साधुसंगी कहावै । कहावै कहै पापपूजौ नसावै ।
स्मरावै स्मरै बासना जारि डारै । लहै रामहीं बस चारो उधारै ॥ ६२ ॥

वसिष्ठ (चौपाई)

जब सब वेद पुरान नसैहैं । जप तप तीरथ मध्य बसैहैं ।
सो उपदेस जु मारि कि बारै । तब कलि केवल नाम उधारै ॥ ६३ ॥

(दोहा)

मरनकाल कोऊ कहै पापी सौं भयभीत ।
सुखहीं हरिपुर जायगौ गावै सब जग गीत ॥ ६४ ॥
रामनाम के तत्व कों जानत को न प्रभाउ ।
गंगाधर कै धरनिधर वाल्मीकि मुनिराउ ॥ ६५ ॥

केशव मिश्र

बीरसिंह नृपसिंहमनि मैं बरनी हरिभक्ति ।
जाहि सुनें सहसा सुमति ह्वैहै पापविरक्ति ॥ ६६ ॥
जीत्यौ मोह बिवेक ज्यौं पाय बोध को भेव ।
त्यौं तुम जीतौ सत्रु सब राजा बिरसिंहदेव ॥ ६७ ॥

[५९ से ६२] 'वेंकट, काशि०' में नहीं है । [६३] सो०—द्विज सुरभी नहिं कोउ बिचारै (सर०) । जु०—जो मरन (काशि०) । कलि०—जग रामनाम उद्धारै (सर०) । [६४] सो०—होय पुनीत (सर०) । [६५] को न- वेद (सर०) । कै—अरु (काशि०) । [६६] सहसा—उपजै (सर०) । [६७] राजा०—बीरसिंह नरदेव (काशि०) ।

(भुजंगप्रयात)

लहै संपदा आपदा कों नसावै। सदा पुत्रपौत्रादि की वृद्धि पावै।
बढ़ै बुद्धि बैराग्यकारी अभीता। सुनावै सुनै नित्य विज्ञानगीता ॥ ६८ ॥

(दोहा)

सुनि सुनि 'केसवराय' सों रीझि कह्यौ नृपनाथ।
माँग मनोरथ चित्त के कीजे सवे सनाथ ॥ ६९ ॥

केशव मिश्र

वृत्ति दई पुरुखानि की देउ बालकनि आसु।
मोहिं आपनो जानिकै गंगातट देउ बासु ॥ ७० ॥

वीरसिंह

वृत्ति दई पदवी दई दूरि करौं दुखत्रास।
जाय करौ सकलत्र श्रीगंगातट बसबास ॥ ७१ ॥

इति श्रीमिश्रकेशवविरचितायां चिदानंदमग्नायां विज्ञानगीतायां महामोहपराजयवर्णनं नाम एकविंशतितमः प्रभावः ॥ २१ ॥

---

[६८] बढ़ै–पढ़ै (वेंकट)। [६९] नृपनाथ–यह गाथ (सर०)। सवै०–सब सुख साथ (वही); आजु (काशि०)। [७०] देउ०–बासु (काशि०)। [७१] श्री-गंगा०–अब सब गगानटवास (सर०)। बस–बसो (काशि०)।

[इति०] महामोह०–वीरसिंहनृपप्रबोधनार्थे केशवरायकृतेविंशतिः प्रभावः (काशि०)।

शब्दकोश

रसिकप्रिया

१

[१] एकरदन=एक दाँत वाले (गणेश)। मदन-कदन-सुत=काम को मारनेवाले (शंकर) के पुत्र। जगनायक=ससार के चलानेवाले (ब्रह्मा, विष्णु, महेश)। घायक-दरिद्र=दारिद्र्य को मारनेवाले। निवास-निधि=नव प्रकार की निधियों के घर। [२] हेत=(हेतु) लिए। भय=भए, हुए। मातु-बधन=देवकी का कंस के यहाँ कारावास। केसी=(केशी) कृष्ण द्वारा मारा गया एक राक्षस। बकी=पूतना राक्षसी। [३] तुगारन्य=(तुगारण्य) ओड़छा के पास वेतवा नदी के तट पर का जंगल। उर पियो=स्तनपान किया। बंचि=ठगकर। [२०] चौकी=चौकोर पटरी वाला गले का एक गहना। मखतूल=काला रेशम। [२२] सासन=(शासन) आज्ञा। सवासन=वस्त्रसहित। [२३] ऊनो=(न्यून) अर्थात् बुरा। अटें पट=परदा (घूँघट) पड जाने पर। परेखो=परीक्षा। नाक दै चूनो=नाक में चूना लगाकर, बदनामी सहकर। [२४] अटी=घूमती रही। [२६] सौं=शपथ। हिराइ गयो है=खो गया है। [२७] कोरौ=कोमल। करेरो=कठोर।

२

[१] छमी=क्षमाशील। [२] दछ=(दक्ष) दक्षिण। [५] सुधाई=अमृतत्व; सीधापन। [६] सुधाई=सुधा ही, अमृत की भाँति मीठी। घैरु=बदनामी। [८] हितू=हितैषी, हित चाहने वाला। हातो किये=दूर करने से। अलोक=कलंक। दूतगीत=दूतकथित वृत्त। [६] परतीक=(प्रत्यक्) प्रत्यक्ष, वास्तविक। [१२] बदन=सिंदूर। रोचन=रोली। तची=तप्त हुई। [१५] मठाए=मट्ठेवाले। ठाए=हैं। मामी पियै=(मामी पीना=मुकर जाना)। आठहुँ गाँठ=शरीर की आठ संधियाँ, कधे, टेहुनी, कमर और घुटने के आठ जोड़ अर्थात् सारे शरीर से, सब प्रकार से। अठाए=शरारती। [१७] सौंह=सौगंध। साख=एतबार, विश्वास।

३

[४] कारिका=नियमों के श्लोक। [७] कोते=बढ़ावे,। [१०] लवली=हरफारयौरी का पेड। खारक=(सं० क्षारक) छुहारा। दाख=(सं० द्राक्षा) अंगूर, मुनक्का। ऊँट-कटारोई=(उष्ट्रकट) एक प्रकार की कँटीली झाडी जिसे ऊँट बडे चाव से

खाता है। [१३] अनैसे = (अनिष्ट) बुरे। [१८] लोइ = लोग। [१६] माइगी = समाएगी, अँटेगी। [२१] द्योसक = एक दिन। अविताली = (अफ़ताली) वह अधिकारी जो किसी राजा के ठहरने के स्थान पर जाकर पहले से प्रबंध करता है। [२५] ओलियौं ओडी = दुपट्टे का छोर फैलाकर भीख भी माँगी। जक = हठ। [२७] मनुहारि = खुशामद। पलिका = (पल्यंक) पलग। कोरहिं = (क्रोड) गोद में। उसखें = निकलने पर। [२६] स्वाइ = सुलाकर। बिभात = प्रभात, सवेरा। [३४] गधवाह = गंध को वहन करनेवाली, सुगधित वायु। दारयों = दाडिम, अनार। भाँईं = खराद पर चढ़ाकर उतारी हुई (सुडौल)। [३६] उबटोगे = चित्त से उतर जाओगे। [४०] रुचि = छवि, शोभा। [४३] प्रतिपारिबो = (प्रतिपालन)। [४७] बरहीं = बलपूर्वक। [५२] भानवी = सूर्यसमुद्भूता, दीप्तिमती, दिव्य नारी। [५८] नारि नवाई = गर्दन झुका ली, लज्जित हो गई। [६०] बैहर = वायु (झलने के लिए)। बीजना = (व्यजन) पंखा। [६१] रौनें = रोदन या रौना (गौने के बाद पहली बार पतिगृह जाना)। [६४] बिषमाई = विषत्व, कटुता। [७३] भाइ = भाव, रहस्य।

४

[५] तिलौंछना = तेल लगाकर साफ या चिकना करना। मेद = कस्तूरी। जुबाद = (अरबी जवाद) एक सुगंधित पदार्थ जिसे मुश्कबिलाव कहते हैं। [६] सारस = कमल। [७] नोखी = अनोखी। बिलोवनहारी = मथनेवाली। [८] सकुची = लज्जित हुई। [११] यच्छनी = यक्षिणी। अच्छनीनि = आँखोंवाली। पन्नगी = नागकन्या। नगी = पर्वतकन्या। [१४] एकौ बिसौ = एक बिस्वा भी, थोडी भी। पुलोमजा = इंद्राणी। रतीक = रत्ती भर। [१६] लडबावरी = (लड = लाड़ = प्रेम + बावली) प्रेम में पागलपन करनेवाली। [१८] बीस बिसे = (बीस बिस्वा) पूर्ण रूप से। सँकरषन = खींचनेवाला।

५

[२] सीरी = शीतल। मेहै = बादल। [६] श्रुतिकंडू = कान खुजलाना। [१०] असु = प्राण। [१२] लाँच = घूस, रिश्वत। पहाँऊँ = प्रभात, सवेरा। कनियाँ = गोद। [१३] ईंठ = (इष्ट) अर्थात् हित, मित्र आदि। बसीठ = दूत। [१४] ईठी = इष्टता, मित्रता। [१५] आई = (आर्या) अइआ, बुड्ढी दासी। खिलाई = केवल खिलाने पर, केवल ग्रासाच्छादन (भोजन-कपड़े) पर काम करनेवाली दासी। बहाऊँ = बहनेवाली, जिससे निरतर आँसू बहते हों और जो (आँखें) बहकर (पानी ढलकर) समाप्त होने को हों। पौरियै = द्वारपाल को। [१६] अठाउ = शरारत। [१७] ठाली = खाली, निठल्ली। [१८] लेरुवा = बछड़ा। खरक = गोठ, गायों के रहने का स्थान। खरेई = अत्यत। [२०] चंक्रमन = (चंक्रमण) घूमना। [२१] खूट्यो = कम हो गया। [२४] जनी = दासी। [२६] अजिर = आँगन। चोरमिहचनी = आँखमिचौली का खेल। [२७] दसन-बसन = अधर, ओठ। कटुला = हार। करम-करम = (क्रम-क्रम) धीरे-धीरे (सिखा-पढ़ाकर)। [२८] जाल = समूह। हरें हरें = धीरे-धीरे, क्रमशः। [२६] औचकाँ = अचानक। [३१] सारो = सारिका, मैना। [३२] बल = बलराम। ओनो = निकास।

गोनो=द्विरागमन् । [३३] मरू करिकै=कठिनाई से । [३५] फेंटी=फेंट (कमर की)। चेटी=दासी । [३६] छिये=छुए, पकड़े हुए ।

६

[२] थाई=(स्थायी) । [३] बिमति=विशेष मतिमान्। [६] धनु=इंद्र-धनुष । सौगंध=सुगंध । [१०] बैबन्य=(वैवर्ण्य) । [१४] आधि=मानसिक कष्ट । [१६] हेलहि=खेल ही खेल में । हेली=हे सखी । [२२] तमोर=ताम्बूल, पान । कुचील=मलिन । [२५] चेटुवा=बच्चे । [३१] लै उरमाई=लटका ली । पौची=पहुँची, कलाई पर पहनने का एक गहना । [३४] चितसारी=चित्रशाला, रंगमहल । [३७] अलिक=ललाट । चिलक=चमक । [४१] बिझुके=भड़के हुए । [४३] हरएँ=धीरे से । रोचि=रुचि, दीप्ति । नीबी=फुफुँदी । झुकी=क्रुद्ध हुई । [४४] हिलकी=सिसक । [४६] रौनी=रमणीय । [५०] हरवाइ=हड़बड़ाकर । [५२] झखी=झीखी । नखी=लाँघी । [५५] गुवारि=ग्वालिन ।

७

[२] उत्कही=उत्कंठिता ही । [५] झवाँइ=झाँवे (पैर साफ करने के उपकरण) से पैर रगड़वाकर । [६] बिचार=कारण । अबार=विलंब, देर । [११] सद=(शब्द) । पंजर=पिंजड़ा । पतंग=पक्षी । [१३] मानद=नायक । [१४] बालिस=(बालिश) नासमझ । [१७] सीठे=निस्सार वस्तु । सीथ=भात का दाना । घूघू=उलूक पक्षी । [२१] बहुरयौ=तदनंतर । [२३] भाकसी=भट्ठी, भरसाईं । [२४] सँकेत=प्रेमी-प्रेमिका के मिलने का पूर्वनिर्दिष्ट स्थान । [३०] लीली=नीली, काली । कलोरी=जवान गाय जो बरदाई या ब्याई न हो । लुरी=थोड़े दिन की ब्याई हुई गाय । [३२] सारु=(सार) तत्त्व, तात्त्विक साधना । [३४] अथाई=बैठक, गोष्ठी । [४०] तूठै=तुष्ट होती है, अनुकूल हो जाती है । [४१] अटै=आड़ करे, बाधा डाले ।

८

[४] बाय-सी=बाई के प्रकोप सी । [५] ईठनि=यत्न, चेष्टा । [१३] डाढहुगे=जल जाओगे । [१७] पील=हाथी । [१८] ओलिहै=चुभाएगी । [१६] समदै=बिदाई में दे, भेंट करे । [२३] सुधासुर=राहु । कुचील=मलिन । [२४] निचोल=वस्त्र । [२७] मानद=नायक । [२६] डासन=बिछौना । डासन=डँसना (सर्पादि का) । [३२] बीस बिसे=पूर्ण रूप से । मीड़ियै=मसलती है । पालिक=पलग । कलालि=कलाछ, बेचैनी से इधर उधर होना । [३३] न छीवैं=नहीं छूते । [३४] दिखसाध=देखने की प्रबल इच्छा । [३५] परताप=अत्यत ताप । [३६] खोरी=दोष । अठाउ=शरारत । हलाव भलाव=मेल-जोल । [३८] ओलिक=ओट । लिलोही=अति लोभी । [३६] बिझुकी=तनी हुई । [४२] नीठि=कठिनाई से । [५०] राँक=रक, दरिद्र । सौनैं=सुवर्ण, सोना । [५२] प्रासन=(प्राशन) भक्षण ।

९

[७] कागर=कागद, कागज। [१०] सियरी=शीतल। [११] घालि=बीच में डालकर। लालि=लालसा, मिन्नत। [१६] तनु रेख=पतली रेखा। [१७] गरई=भारी, ढीठ। हरए=हलके, निर्लज्ज। हरई=हलकी, निर्लज्ज।

१०

[५] सोंहीं=समुख। दुकोहीं=दुःखदायिनी। जई=बतिया। [८] हे=थे। [९] थावर=(स्थावर)। [१०] करज=नख। [१२] खवासिनि=सेविका। कठेठी=कठोर। [१५] अलीक=असत्य, मिथ्या। अलोक=अपलोक, बदनामी। [२०] मुचावन=छुड़ाने के लिए। [२१] सयन=सेना। [२२] सेवती=सफेद चैती गुलाब। [२७] अनहीं=बिना ही।

११

[४] हार=जंगल, खेत। बनमाली=वन की पंक्ति वाला (प्रदेश)। बनमाली=(वन=जल+माली) मेघ। बनमाली=(वनमाला=घुटनों या पैरों तक लंबी माला–पहिननेवाले) कृष्ण। कमलनैनि=जलपूर्ण नेत्र वाली। [५] अलिक=ललाट। फलक=पटल। [६] तिमिंगिल=मछली को निगलनेवाला विशाल समुद्री जलजीव। चय=समूह। [१०] हूलि=शूल, पीड़ा। लूली=पंगु, अशक्त। तूली=रूई (वाला)। मुनि=अगस्त्य मुनि (चद्रमा के पिता समुद्र को पी जानेवाले। बिसनी=कमलिनी। बिसवासिनि=विश्वासघातिनी। [११] पीय=पीकर। छिये=छूने पर। फिट्ठ=धिक्। [१३] तारे=पुतलियाँ; तारिकाएँ। ककुरे=सिकुड़े। [१६] कमलाग्रजा=लक्ष्मी की बड़ी बहन, दरिद्रा। काली=कालिका देवी। [१७] बिलानहीं=बिलों को ही।

१२

[२] रामजनी=जिसके जनक का पता न हो वह स्त्री। पटुवा=पटहरा। [४] सौंधे=सुगंध। [५] महूख=(मधुक) शहद। पैली घाँ=परली ओर (पराकाष्ठा)। [८] बडी लहुरीयौ=(पद में) जेठी और छोटी भी। [११] दती=डटी। सतरात हती=चिढ़ती थीं। [१२] चिच्याइ मरै=चिल्लाकर मरे। [१४] आदित=(आदित्य) सूर्य। [१५] कोवँर=कोमल। कठेठी=कठोर। [१८] खोट=दुष्ट, शरारती। तुरी=तुरंग, घोडा। ताजन=(फा०) चाबुक। [१९] बनमाल=घुटनों या पैरों तक लंबी माला। [२१] अलोलिक=स्थिरता। ओलिकै=ओट करके। पानिप=शोभा; पानी (हथियार का)। न्यायनि=उचित ही, ठीक ही। [२२] भावती=प्रिया। [२४] खरी=खरिया। घनसार=कपूर। साँटे=बदले में। [२६] अकाथ=व्यर्थ। माड़ो=शोभित करते हो।

१३

[३] आँजि=अंजन लगाकर। माँजि=साफ करके। [४] सतराहट=नाराजगी। [५] दारयौं=दाड़िम, अनार (के बीज)। करिहाँ=कटि, कमर। [८] बागे=जामा। मूसि=चुराकर। [११] छनछवि=(क्षणछवि) बिजली। [१२] दई=(दैव)

श्रद्धा। दई=दी। [१४] बागो=(फा० बाग) जामा। [१६] बजागि=(वज्राग्नि) बिजली [१७] तेंदु=(तिंदुक) वृक्षविशेष। रई=अनुरक्त हुई। अमोलिक=अमूल्य। [१८] हरें=धीरे, धीमे।

१४

[७] दसन-बसन=ओठ। झाईं=प्रतिबिंब। [६] निनारौ=न्यारा, चतुर। [१०] बहिक्रम=(वयःक्रम) वयःसंधि। त्रिविक्रम=वामनावतार। [१३] सीसफूल=सिर का एक आभूषण। [१७] मटुकी=मटकी, मिट्टी का छोटा घडा। नतनारु=मटकी का मुँह बाँधनेवाला कपडा। पतुकी=मटकी। [२२] केर=कदली, केला (जाँघ)। बंधुजीव=दुपहरिया का फूल (तलवों की ललाई)। [२५] पत्ति=पदाति, पैदल (सेना)। राजि=पंक्ति। [२६] बिमद=मदरहित। घनवाहन=इंद्र। [२८] दिवि=आकाश। [३२] छुगोडी=भौंरी। तलप=(तल्प) शय्या, खाट। छेंडी=सँकरी गली। [३६] पुरुष पुरान=पुराने पुरुष, प्राचीन आप्तपुरुष। पूरन=पूर्ण, समस्त। पुरुष पुरान=पुराणपुरुष, ईश्वर। [३६] खारिक=छुहारा। इठाई=इष्टता, चाह। जिठाई=ज्येष्ठता, बडप्पन। [४०] बाद=सिद्धांत-चर्चा।

१५

[३] मनसति हैं=संकल्प करती हैं [५] आडि=आड़ा (खडा) तिलक। अधिरथिक=सारथि। नकीब=विरुदावली गानेवाला। [७] कुघा=ओर, तरफ। तडिता=बिजली। [६] बारि दै=त्याग दे। न बारि=मत जला। भारती=सरस्वती। भारती=वाणी।

१६

[३] घैरु=बदनामी की चर्चा। दहेली=भीगी हुई। [७] उबीठिहै=अनिच्छा-पूर्वक छोड देगी, परित्याग कर देगी। बसीठी=दौत्य। सीठी=निस्सार। नीठि=कठिनाई से। ईठी=इष्टता, मित्रता। [६] गई जु गई=तब तो जा चुकी। [११] गौरा=गौरी, पार्वती।

कविप्रिया

१

[१] सनमुख=(समुख) अनुकूल। विमुख=(विगतमुख) नष्ट। [२] बरन=(वर्ण) अक्षर। [३] सत्व=सार। [५] अवतंस=कान का गहना, शोभाकारक। [६] करन तीरथ=कर्णघंटा नामक काशी का एक तीर्थ। [२२] रसा=पृथ्वी। [२५] बादि=व्यर्थ। [२७] लहुरे=(लघु) छोटे। [२८] रूरो=उत्तम, प्रशस्त। जलालदीं=जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर। बानो=पहरावा, पगडी। [३४] देव=बदरीनाथ। [४०] बाम=प्रतिकूल, शत्रु। अबाम=अनुकूल, मित्र। [४२] बहिक्रम=(वयःक्रम) अवस्था। अवरोध=अंतःपुर। [४५] तंत्री=बृहस्पति, जिसमें तंत्र (तार) हों। तुंबुरु=गंधर्व; तूँबावाली। सारिका=अप्सरा विशेष; घोरिया (खूँटी), सुंदरिया।

सुरन=देवगण; सातो स्वर। प्रवीन=(प्र+वीण) प्रकृष्ट (उत्तम) वीणा। [४६] सत्या=सत्यभामा। सुरत=अनुरक्ति। सुरतरु=कल्पवृक्ष, स्वरों का वृक्ष अर्थात् वीणा। इंद्रजीत=इंद्र को जीतनेवाले श्रीकृष्ण, राजा इंद्रजीत। हि=हृदय। [४७] जोजति=(योजति) नियोजित करती है। [४८] दोला=झूला। [४९] भंगे=भैरव राग; शिव। गौरी=एक रागिनी; पार्वती। सुरतरंगिनी=स्वरों की सरिता, गंगा। [५०] जयनसील=जीतनेवाली। मयन=(मदन)। [५१] तानतरंग=तानतरंग नाम की पातुर; तानों की लहर। [५२] तनु=सूक्ष्म। तनु=शरीर। तनत्रान=(तनुत्राण) कवच। [६०] बृषभवाहिनी=बैल को वाहन बनानेवाली, धर्म को वहन करनेवाली।

२

[७] अकर=दुष्कर (कार्य)। [१२] न ओड्यो=नहीं फैलाया, नहीं पसारा। [१६] सोदर=सहोदर (भाई)। [२१] हेत=हितुआ।

३

[३] सगुन=गुणयुक्त; डोरे सहित। पदारथ=पद+अर्थ; रत्न। सुबरन=सुंदर वर्ण (अक्षर), सुवर्ण, सोना। [५] नेगी=संपत्ति का प्रबंधकर्ता। [६] आतमभूत=(आत्मा=मन+भूत=भव) कामदेव; (आत्मभू) पुत्र। गोत्रसुता=(गोत्र=पर्वत+सुता) पार्वती; सगोत्र की पुत्री। [११] लीकति=लीक, मार्ग। सरता=(शर+ता) बाण चलाना। खूटी=रुक गई। [१२] तनी=बंद। [२३] सिखी=(सं० शिखिन्) अग्नि। [२५] किल=निश्चय। [३४] बसीठी=दूतत्व, दूत का कार्य। न उबीठी=अरुचिकर नहीं हुई। [४६] पैज=प्रण।

४

[७] सूजिनि=सूइयों से। [६] पिछौरा=चादर। पाट=(पट्ट) रेशम। [१०] सरि=लड़। [११] भुजपात=भोजपत्र। [२०] बैरागर=खानि। [२२] सिखी=(शिखी) मयूर। जवासो=(यवास) जवासा, एक काँटेदार क्षुप।

५

[१] सुजाति=उत्तम कोटि की; पद्मिनी आदि उत्कृष्ट जाति की। सुलच्छनी=सुंदर लक्षण (परिभाषा) या लक्षणवाली, उत्तम (सामुद्रिक के) लक्षण वाली। सुबरन=सुंदर अक्षर से युक्त, सुंदर वर्ण (रंग) वाली। सरस=रस (शृंगार आदि) से युक्त; प्रेम वाली। सुवृत्त=अच्छे छंदो वाली, सुंदर वृत्त (आचरण) वाली। भूषन=अलंकार (उपमादि); आभूषण (कंकणादि)। [४] धूमर=धूम्र, धूमल, धुएँ के रंग का। [५] हरिहय=इंद्र का घोड़ा, उच्चैःश्रवा। मदार=कल्पवृक्ष। हरि=इंद्र। सौध=सुधा (चूनें) से पुता महल। घनसार=कपूर। [६] बल=बलराम। करका=ओला। काँचरी=साँप की केंचुल। [७] मुरार=कमलनाल में के तंतु। उडुमार=(उडुमाल) तारागण। [८] भोडर=अभ्रक, अबरक। खटिका=खरिया। [१०] असमसर=कामदेव। पाकसासन=इंद्र। तुखारु=घोड़ा। हरा=पार्वती। [१२] सीरष=(शीर्ष) सिर। [१३] सिरोरुह=सिर के बाल। तनूरुह=रोएँ। सरपंजर=बाणों का पिंजड़ा। जरा=अशक्तता। जर-कंबर=जरी का कंबल, जरी का दुशाला। [१४] अभूत=अपूर्व,

अनोखा। अबिताली = (अफताली) वह अधिकारी जो स्वामी के ठहरने के स्थान पर पहले से ही जाकर प्रबंध करता है। अतक = यम। [१६] रजनी = हल्दी। हाटक = सोना। करहाट = कमल का कोश। [२३] कृत्या = मूठ, मारने की क्रियाशक्ति। [२७] सस = (शश) खरगोश। [३०] चास = (चाष) नीलकंठ पक्षी। कँदूरी = कँदुरू, बिंबाफल। [३१] बीटिका = पान का बीड़ा। [३५] पंच प्रभूति = पंचतत्त्व (पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश)। [४३] सरभ = (शरभ) आठ पैरों वाला पौराणिक वनपशु जो सिंह को भी मारनेवाला होता है (अष्टपादः शरभः सिंहघाती)।

६

[७] कोद = ओर। धाप = दौड़ का मैदान। [८] अलिक = ललाट। कुंचिका = बाँस की टहनी। [१०] ईसवै = शूकरदंत। [१३] ककुद = बैल का डिल्ला। [१४] सौं = शपथ। बैसवारी = (बैस = सं० वयस्) वयवाली, युवती। [१६] सैंहथी = बरछी। भौंहरेहू = भुइँधरे में भी। गद = महरमपट्टी करना। [१७] देखिए 'रसिकप्रिया' अध्याय ४, छंद ५। [१६] मैन = (मदन) मोम। कोवरो = कोमल। [२२] सदागति = सदा गतिशील रहनेवाला, पवन। घरथार = घटा, घड़ियाल। हीरा = हियरा, हृदय। हीरा = वज्र। [२५] चलदल-पान = पीपल का पत्ता। [३६] देखिए 'रसिकप्रिया ६।२५'। [३७] जलरुह = जल से उत्पन्न होनेवाले कमल, सिवार आदि पदार्थ। [४४] जीली = बारीक। रटि = टिट्टिभ, टिटहरी। स्याऊँ = शृगाल, शृगाली। भूतभावती = भूत की प्रिया, भूतनी, चुड़ैल। खरी = गर्दभी। खरी = चोखी, तीखी। मीडी = मल डाली, मिटा दी। मैंड = सीमा, मर्यादा। न्योरा = नेवला। बोकि = बकरी। कागि = कौए की मादा। कागरी = तुच्छ, हीन। नाग-नागरी = हथिनी। घूघू = उल्लू। [४८] महूख = (मधुक) मधु, शहद। [४६] देखिए 'रसिकप्रिया १४।२६'। [५१] चक्क = (चक्र) दिशा, ओर। [५२] हली = हलधर, बलराम। [५७] अनही = बिना ही। खगतु है = लिप्त होता है। [५६] आलबाल = थाला। [६१] चक्र = दिशा। चक्र = पहिया। [६५] मुख = मुंडमाल में के मुख। अपवर्ग = मोक्ष। [६६] दीह = (दीर्घ)। साँकरें = सकट। साँकर = शृंखला, जंजीर। [६७] आपपति = समुद्र। बक्सीस = दान। [६८] आसीबिष = (आशीविष) साँप। नाकी = लाँघी (जाती है)। सकसेतु = शक्तिशाली मर्यादा। [६६] नाती = (सं० नप्ता) पौत्र (षडानन कार्त्तिकेय)। [७२] दरसन = दर्शन। दरसन = दर्शनशास्त्र। [७५] थानुसुत = (स्थाणु = शिव + सुत) गणेश। नाखे हैं = उल्लंघन कर गए हैं। [७६] आवझ = एक बाजा, ताशा। कुरमा = कुटुंब, परिवार।

७

[४] कोट = परकोटा, शहरपनाह। [५] सरितवर = श्रेष्ठ नदी बेतवा। कौसिक = (कौशिक) विश्वामित्र। गंगा = नदी (कौशिकी)। [७] अनलवंत = आगवाले; भिलावों के वृक्षों से युक्त। [६] तरीनि = तलहटी। [११] बछेरु = गाय के बच्चे। चोखैं = दूध पीते हैं। सटा = सिंह की गर्दन के बाल, अयाल। डोरे-डोरे = डुरिआए हुए,

रस्सी या लाठी के सहारे ले जाते हुए। [१३] जगलोचन = सूर्य; जगत् के नेत्र। बिपोहै = नष्ट कर देती है। [१५] सुदरसन = (सुदर्शन) विष्णु का चक्र; पुष्पविशेष। करुनाकलित = विष्णु; करुणा नामक वृक्ष से युक्त। कमलासन = ब्रह्मा, कमल तथा असना (विजयसार)। मधुबन मीत = कृष्ण; मधुवन (ब्रज के एक वन) का मित्र। अपर्ना = (अपर्णा) पार्वती, करील। रूपमजरी = पार्वती की सहेली, पुष्पविशेष, सदासुहागिन। नीलकंठ = शिव; मोर। असोक = (अशोक) शोकरहित; वृक्षविशेष। रभा = अप्सराविशेष, केले का पेड। मंजुघोषा = अप्सरा, कोयल। उरबसी = उर्वशी अप्सरा, हृदय में बसी हुई। हस = सूर्य; मराल। सुमन = देवगण, पुष्प। दिवान = सभा। [१७] तूल = (तुल्य) समान। तनूरुह = पुत्र। [२१] भूति = आधिक्य। विभूति = भस्म, रत्नादि। [२४] कोकनद = कमल, कोकशास्त्रपाठी। कुवलय = कुमुदिनी, भूमंडल। तमोगुन = (तमोगुण) अधकार; अज्ञान। तारापति = चद्रमा, बालि। तारका को तारक = तारिकाओं को निस्तेज करनेवाला सूर्य; ताडका को तारनेवाले राम। [२६] कमलाकर = कमल + आकर; कमला (लक्ष्मी) + आकर। प्रदोष = सध्या, बड़ा दोष। ताप = उष्णता; त्रिताप। तमोगुन = अधकार; अज्ञान। अमृत = अमृत; विष्णु। भाव = विभूति, चरित्र। कोक = चक्रवाक, कोकशास्त्र, कामशास्त्र। परम पुरुष पद बिमुख = अत्यत वियोगिनी नायिका; विष्णु के चरणों से विमुख। पुरुष रुख = कडा रुख रखनेवाले, क्रुद्ध। [२८] अबर बिहीन बपु = दिगबर देह; आकाश और शरीरविहीन कामदेव। वासुकि = एक नाग; पुष्पमाला। मधुप = अमृत पीनेवाले देवता; भौंरे। गजमुख = गणेश; हाथी का मुख। परभृत = षण्मुख कार्त्तिकेय; कोयल। अदल = अपर्णा, पार्वती, पत्रहीन। रूपमंजरी = पार्वती की सखी; सुंदर स्त्री। अशोक = शोकरहित; वृक्षविशेष। सुमन = देवता; पुष्प। [३०] चंडकर = बलिष्ठ भुजा; तीव्र किरण वाले सूर्य। बर = बल। सदागति = सदा भ्रमण करनेवाले; पवन। दुरद = (द्विरद) हाथी। दिनकृत = दिनचर्या; सूर्य। मृगसिर = हिरन का सिर; मृगशिरा नक्षत्र। श्रवन = (स्रवण) रक्त टपकता है; स्रव + नपानी न, बरसानेवाला (मृगशिरा नक्षत्र)। बली = बलशाली, गैंडा। धनुष = धनु, कमान; मरुस्थल। निपानि सर = हाथ में तीक्ष्ण बाण; जलहीन ताल। सबर = (शबर) भील। [३२] भौहैं = भृकुटी; भय हैं प्रमुदित = उन्नत; उनए हुए। पयोधर = स्तन; जलधर। भूषन जराय = जडाऊ आभूषण; भू (पृथ्वी और) ख (आकाश में) नजराय (दिखाई पडती है)। तड़ित = बिजली। रलाई = मिली हुई। सुख = सहज ही। नैन अमल = स्वच्छ नेत्र, नदी (नै) निर्मल नहीं है। निकाई = शोभा; काईरहित। प्रबल = मत्त; तेज। करेनुका = हथिनी; जल (क) और धूलि (रेनुका)। गमनहर = चाल को जीतनेवाली; आवागमन रोकनेवाली। मुकुत = मोती के; रहित। हसक = बिछुआ; मराल। अबर = वस्त्र, आकाश। नीलकंठ = शिव; मयूर। [३४] मदन कर = मद न कर (जो गर्व नहीं करती), कामोद्दीपक। कुवलय = पृथ्वीमडल, श्वेत कमल। हसक = बिछुआ; हंस। मार = माला, समूह। जलजहार = मोती की माला, कमल का समूह। तिलक = टीका; वृक्षविशेष का पुष्प। चिलक = चमक। चतुरमुख = ब्रह्मा; चारों ओर। अबर नील = नीला वस्त्र; नीला आकाश। पयोधर = स्तन; बादल। [३६] चंद्रक = कपूर। घटी = घडी। [३८] असमसर = ऊँचे नीचे तालाब; कामदेव। जून = जीर्ण, पुराने; वृद्ध। पिक-रुत = कोयल की वाणी; पिकवचना।

८

[५] ईति* = अतिवृष्टि आदि अकाल के कारण जो छह या सात माने जाते हैं। गधासन = वायु। [७] त्रिय = द्वितीय, दूसरा। [१०] पर = शत्रु। दानवारि = विष्णु। [११] रिजु = (ऋजु) सरल। [१४] पारस = पार्श्व (सग)। समूरो = मूल से। रूरो = शोभित। [१६] असीत्यो = वासस्थान। [२३] चय = समूह। लाज = लावा। [२६] धाप = दौड का मैदान। कुडली करत = चक्राकार घूमते हैं। नौनी = चंचल। नौनि = नवीन। [२७] चलकर्न = चचल कान। [२८] पगार = जो जल पैदल पार किया जा सके, पायाब। रौरि = कोलाहल। आसिषा = आशीष। बंदन = सिंदूर। भूड = धूल। खोरि = तिलक। पौरि = द्वार। [२९] स्वन = शब्द, शोर। संनाह = कवच। रज = धूलि या रजपूती। [३२] जुररा = (फा० जुर्रा) शिकारी बाज। बहरी = बाज के ढग की एक शिकारी चिडिया। सचान = श्येन, बाज। सहर = स्याहगोश, बनबिलाव। निचोल = परिधान, वस्त्र। [३४] कुरर = क्रौंच। कुलग = एक पक्षी जिसका सिर लाल और शेष शरीर मटमैले रग का होता है। सरभ = (शरभ) अष्टपाद, सिंह से भी बली जंगली जीव। सीह = साही। साहगोस = बनबिलाव। [३५] ऐल = परेशानी। [३७] बिसहार = कमल की माला। [४०] सारस = कमल। [४१] हार = वन, जगल। [४३] हीस = (ईर्ष्या) होड। [४६] रुनित = ध्वनित। [४७] बाजी = बाजीकरण औषध; (प्राणों की) बाजी। बारन = रोकने पर, हाथी। पदाति क्रम = पैर का अतिक्रमण; पैदल सिपाही का चलना। द्विजदान = दतक्षत; ब्राह्मणों को दान। कृपान कर = कृपा न कर; कृपाण कर (में)। सकति = शक्ति, बल, बरछी। सुमान = रूठना, संमान। करज = नख, करजन्य, हाथ का। सुदेस = सुदर, स्वदेश। हार = माला, पराजय।

९

[६] पिछौरी = दुपट्टा। बघनहियाँ = बघनखा। [१०] अवरोहियै = अकित कीजिए। उढौनी = ओढनी, चादर। उलही = जनमी। [१४] बिसुकाए बिना = डराए बिना। बिसुकी = डरी हुई, भीत। [२२] करनानुसारी = राजा कर्ण के अनुगामी, कान (कर्ण) तक फैले हुए। [२७] पत्ति = पैदल सेना। [२८] अचिरज = आश्चर्य। आहि = है। [३१] तारे = आँख की पुतलियाँ। [३२] अक = चिह्न, निशान। ससक = (शश + अक) खरगोश का चिह्न।

१०

[५] सनाह = कवच। [६] सातुक = सात्त्विक। [१६] नारदा = पनाला, नाबदान। [२६] काकोदर = सर्प। कर-कोप = सूँड की कुडली। [२९] ओली ओड़ियै = (आँचल फैलाकर) भीख माँगती हूँ। [३३] रूस = रूठना। [३४] मृगमद = कस्तूरी। उपग = नसतरग नामक बाजा।

---

* अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभा मूषकाः शुकाः।
प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः॥
अथवा
अतिवृष्टिरनावृष्टि शलभा मूषकाः शुकाः।
स्वचक्रं परचक्रं च सप्तैताऽईतय स्मृता.॥

११

[७] चुकरैंड=दोमुहाँ साँप। कच्छासिखा=काकपक्ष, केशों की पाटी। [१२] कवल=कौर, ग्रास । [१६] कुलाचल=पर्वतकुल । [२५] चिरु=चिरकाल तक। पालिक=पालकी। पीठ=आसन, सिंहासन आदि। [३०] ईस=(ईश) महादेव; राजा। [३१] हुतभुक=अग्नि; वाड़वानल; देवता। [३२] दानवारि=इंद्र; कृष्ण; दान (संकल्प) का जल, देवता। [३३] द्विजराज=हंस; भृगु; द्वितीया का चंद्रमा; चंद्र (रामचंद्र), ब्राह्मण। लोकनाथ=ब्रह्मा। त्रिलोकनाथ=विष्णु, कृष्ण। नाथनाथ=शिव। जगनाथ=रामचंद्र। रामनाथ=रामसिंह। [४२] वारुनी=(वारुणी) पश्चिम दिशा; मदिरा। राग=लाल; चाह। सूरजु=सूर्य; क्षत्रिय। द्विजराज=चंद्रमा; ब्राह्मण। [४८] रौनी=रमणीय। [५२] मघवारिपु=मेघनाद। [५६] वलित अबेर=बिना देर के। सूरज=सुग्रीव। सूरज=सूर्य। [५७] बरम्हावन=आशीर्वाद देता है। ढाढ़ी=विरुदावली गानेवाली जाति विशेष। आरति=आरती। आरति=(आर्त्ति) दुःख, क्लेश। [५८] न नाखी=नहीं लाँघी। रूपरई=रूपवती। [६१] थुथी=संपत्ति, थाती। [६४] हेयै=है ही। [७१] मारसीरी=(मार+श्री) कामदेव की कांति। तिलचावरी=तिल (पुतली) और चावल (कोए) के रंग के हैं, श्याम-श्वेत हैं। बारबार[२]=द्वार-द्वार। मैले बार=जिसके केश मैले हैं, जिसने स्नान नहीं किया है। अनिवारी=आनवान वाली। [७३] रोर=दारिद्र्य । [७६] भाकसी=भट्ठी। [८३] कविता=रमणीय उक्ति, (कविका) लगाम। बाग=उद्यान (में); रास। बडवा=घोड़ी।

१२

[४] बरहीं=बरबस। [६] दाउ=दावाग्नि। [१६] कसि बान=कसौटी पर सोने का वान (वर्ण) कसकर। वनि=भली भाँति । सुनार=स्वर्णकार। [१७] कादंबिनी=मेघों की घटा । [२१] हीसख=(ईर्ष्या) स्पर्धा । [२३] देखिए 'रसिकप्रिया १२।२६'। [२४] गुबरिहारी=गोबर उठानेवाली; गो=इंद्रिय (नेत्र कर्ण आदि) को बलपूर्वक हरनेवाली । [२५] परदारप्रिय=परस्त्री-प्रेमी; लक्ष्मीपति । निसिचर=राक्षस; चंद्रमा। देह कारियै=देह काली (कलूटी) ही है, देह (जीव) की सृष्टि करनेवाला । अजादि=अज (बकरी) आदि; अज (ब्रह्मा) आदि । वरद=बैल; वर देनेवाला। अनाथ=जिसका कोई नाथ न हो, जो सबका नाथ हो।

१३

[६] सरघा=मधुमक्खी। सँचि=संचित करके। सुवार=(सूपकार) रसोइया। [१३] बीसनी=कमलनाल । [१८] श्रीफल=स्तन । स्वै=सोकर, लेटकर। [२०] निनारो=न्यारा। [४०] घैरु=बदनामी। नक=(नेक) थोड़ी।

१४

[८] सेवती=सफेद चैती गुलाब। [१०] विसूरति हौं=सोचती हूँ। [१५] ओपना=माँजने की वस्तु जिससे रगड़कर तलवार या कटारी में जिला देते हैं। उकीरी=(उत्कीर्ण) खोदकर या गढ़कर व्यक्त की गई। सोंधे=सुगंध। [१७] देखिए 'रसिकप्रिया

८।२३' । [१६] सुबरन=सुष्ठु वर्ण (अक्षर); सुंदर (उज्ज्वल) वर्ण (रंग)। सुरवलित=(सातो) स्वरों से युक्त; देवताओं से युक्त । भैरो=भैरव राग; शिव । त्रितानी= तानों (आलापों) वाली, विस्तृत । दुज=(द्विज) दाँत; ब्राह्मण । [२३] छीलर= छिछली गढ़ही । [३१] गहरु=विलंब । [३५] कुमंडल=भूमंडल । [३६] दुजराजी= दंतपंक्ति । [४१] मोहरुख=मूर्च्छा से उदास मुख वाली (विरहिणी) ।

१५

[१२] अनौट=(अनवट) पैर के अँगूठे में पहना जानेवाला छल्ला । [१३] तनत्रान=(तनुत्राण) कवच । [१४] जामिक=(यामिक) प्रहरी, पहरा देनेवाला । बंदनमार=बंदनवार । [१५] पहरु=पहरुआ, प्रहरी । माइक=(मायिक) मायावीगण । मय=मय नामक शिल्पी दैत्य । कुनित=(क्वणित) मधुर ध्वनि । [१७] जेहरी=पायजेब । [१८] करी-कर=हाथी की सूँड । केरि=कदली, केला । [२१] चिटौनि=चींटे, जिनकी कमर बहुत पतली होती है । [२५] करस=(कलस) घट । [२६] बिसबल्लरी= कमल की लता । [२७] वलया=चूड़ी । [२८] पौंची=पहुँची, कलाई में पहनने का गहना । पौंचिनि=कलाइयों में । [२९] मीनरथ=कामदेव । नोदन=चाबुक । [३२] सातुकी=सात्वती वृत्ति । [३५] फोक=तीर के पीछे की नोक । [३६] राहु= राहु । तमी=निशा । चिहुँटि रह्यो=चिपट रहा है । [४७] सकति=(शक्ति) देवी । दुज=(द्विज) ब्राह्मण; दाँत । [४९] सोदरी=सहोदरी । दधिदानी=दधि का कर लेनेवाले कृष्ण । [६२] कचोरा=कटोरा । [६३] ताटंक=कान का गहना, तरकी । [६६] खुटिला=कान का गहना (ताटंक से भिन्न) । तीतुरी=खुटिला के साथ लटकने- वाला कान का पत्ते के आकार का गहना । [६८] केदारु=क्यारी । कंद=जड़ । [६९] चिलक=कांति, शोभा । [७१] कसा=(कशा) चाबुक । पासिबे कौं=फँसाने के लिए । पासि=(पाश) फंदा, फाँसी । अलिक=ललाट । [७३] छंद=चालबाजी । [८२] सीसफूल=सिर पर पहनने का गहना । बेंदा=माथे पर पहनने का एक गहना । [८४] मेचक=काले । [८५] आउ=(आयु) । जरकसी=(फा० जरकश) सुनहले तारों से कढ़ी । [९०] संकासक=सादृश्यवाली । [९३] मृत्ति=मृत्तिका, मिट्टी । [९७] हरि=कृष्ण । हरि=हर, हटा । आहि=आह । [९८] बारन=द्वार पर । बारन=हाथी । [१०६] प्रबाल=किसलय । प्रबाल=प्रकृष्ट+बाल (हरि का विशेषण) । [१०७] उपकंठ=समीप, निकट । [१११] माधव=लक्ष्मीपति, विष्णु । धव=पति । माधव=वैशाख मास में । [११३] नीप=कदंब । [११६] दानरत= दानी । दान[२]=गजमद । [१२०] मा=लक्ष्मी । नस=(नश्य) नाश को प्राप्त होनेवाली । [१२१] बरनी[१]=(वरणी) पूजा आदि में वर्ण्य या नियत ब्राह्मण को जो वस्तु आदरार्थं दान दी जाती है । [१२८] रंभा बनी=कदली की बनी (वन) । रंभा बनी=रंभा सी बनी हुई । किंनरी=सारंगी । किंनरी=किन्नर की कन्या । [१२९] बासुकि=नाग । बासुकि=पुष्पमाला । [१३०] परमा=शोभा । मानँद= लक्ष्मी का आनंद । परमा=अधिकता । तुरसी=(फा० तुर्शी) खटाई । तुरसी= (तुलसी) लक्ष्मी ।

१६

[६] कोरक=कली। [१०] गी=सरस्वती। ह्री=लज्जा। [१२] केसिहा=(केशी=एक राक्षस+हा=मारनेवाले)। [२५] बलिभुक=कौवा। [३२] चिंचुनि=(चचु) चोंच से। [३८] गली=मार्ग, कुलमर्यादा। लै=(लय) लगन, अनुरक्ति। [३६] हीरा=(हियरा) हृदय। हाहा=दीनता, विनती। [४०] रेरु=पुकारो। ररि=रटकर। [४१] कीक=शब्द, ध्वनि। कोकू=मेंढक की ध्वनि। कोक=मेंढक। [४२] नोनी=लोनी, लावण्ययुक्त। नौनि=नवनि, लोच। नै=नय (प्रेम की) नीति। नन=नहीं नहीं। नाननै=(न+आननै) केवल मुँह से नाहीं करती है। [४६] सुदती=सुदर दाँतों वाली। नद सासु दती=नद सास (लड़ने को) दती रहती हैं। [५४] सकरतरुनि=(१) स=श (कल्याण), (२) सक=शक्ता, (३) सकर=(शकर) महादेव, (४) सकरत=शकारत, शकालु, (५) सकरतरु=शकरतरु (वट), (६) संकरतरुनि=शकरपत्नी, पार्वती। [५५] मोहे=मूर्च्छित हुए। [६०] पल्लुहत=पल्लवित होता है। [६४] खग्ग=(खग) तलवार। घरी=मुहूर्त, घड़ा; घड़ी-घंटा। पान्यौ=आब, पाणि (हाथ); पानी। न जानु=जानु (जंघा) नहीं; ज्ञानी नहीं; जानता नहीं। कवि=काव्य करनेवाला; क=पवन+वि=विहग; शुक्राचार्य। [६६] मासम=मा (लक्ष्मी) के सम (समान)। समा=समान। सारि=गोटी। [७१ क] निमि=नीब, नीम। [७१ ख] चिरु=चिरकाल। नीरुत=रुत (शब्द) रहित, शांत। [७३] राकाराज=पूर्णिमा का चंद्र। जराकारा=(ज्वराकारा) ज्वर के समान। समा=वर्ष। [७४] कुधरन=(कु+धरण) पृथ्वी को धारण करनेवाले। [७७] सीन=सी (समान) न (नहीं)। न सी=न (नहीं) सी (श्री=शोभा)। तासी=उसके समान। तार=तारिकाएँ। माररमा=कामपत्नी, रति। रता=लीन। सीमा=पराकाष्ठा। कली=क (शरीर ने) ली (ले ली)। लीक=मर्यादा। मा=में। सीनर=श्रीनर, रामचद्र। नली=नरी। रन=र (अग्नि=क्रोध) न (नहीं)।

रामचंद्रचंद्रिका

१

[१] बालक=हाथी का बच्चा। दीह=(दीर्घ) बड़ा। साँकरे=संकट, आपत्ति। साँकरनि=शृंखलाओं, जजीरों। दसमुख=दसों दिशाओं के लोग या त्रिदेवों के मुख (ब्रह्मा के चार, विष्णु का एक और महादेव के पाँच मुख सब मिलाकर दस मुख)। [२] देखिए 'कविप्रिया ६।६६' [३] देखिए 'कविप्रिया ६।७२'। [१७] लीक=मर्यादा। ओपी=प्रकाशित हैं। [१६] बृंदारक=देवता। भूतनया=पृथ्वी की पुत्री सीता। चंचरीकायते=भौंरे सा आचरण करते हैं। [२६] सुद्धगति=सद्गति, मोक्ष। [२७] मातंग=चांडाल; हाथी। सूकर=सूअर; पुनीत काम करनेवाले। [२८] भुरके=छिड़के हुए। बंदन=सिंदूर। [३४] बनवारी=पुष्पवाटिका, वनकन्या। पुष्पवती=फूलों से लदी; रजोधर्मवाली। [४५] पगारनि=(प्राकार) चारदीवारियों।

उनहारि=अनुहार, सादृश्य। [४८] श्रीफल=द्रव्य; वेल (कुच)। [४९] चलदलै=(चंचल पत्तियों वाला) पीपल वृक्ष ही। विधवा=धवा नामक वृक्ष से रहित, पतिविहीना, रॉड। वनी=वाटिका।

२

[२] कृतयुग=सतयुग। बैसे=बैठे हैं। [७] गुदरानो=निवेदन किया। [६] बैताल=विरुदावली गानेवाला भाट। [१०] राजहस=राजहंस पक्षी, राजाओं में श्रेष्ठ। विबुध=देवता; विशेष पंडित। सुदक्षिना=(सुदक्षिणा) दिलीप की पत्नी; अच्छी दक्षिणा। बाहिनी=नदी; सेना। छनदानप्रिय=(क्षणदा न प्रिय) रात्रि जिसे प्रिय न हो, अधकार दूर करनेवाला सूर्य; (क्षण दान प्रिय) प्रतिक्षण दान देना जिसे प्रिय हो। [१५] राम=परशुराम। [२१] आपनपौ=अहंकार। [२८] हई=हनी, नष्ट कर दी।

३

[१] लकुच=बड़हर का पेड़। सारो=सारिका, मैना। [३] वै=निश्चय ही। [१०] विडारयो=भगा दिया। [१३] पूज्यापरा=दूसरों से पूजे जाने योग्य। [१४] खडपरसु=महादेव। [१८] सुरभि=वसत ऋतु। [२१] राजराज-दिग-वाम=(राजराज=कुवेर) उत्तरदिशारूपी स्त्री। [२४] करनालवित करौं=(कर्णालवित) कानों तक खींचूं। [२६] पतग=तिर्यक्योनि। [३३] वर=वल, शक्ति।

४

[३] राकस=राक्षस। दैयत=(दैत्य)। [७] बान=बाणासुर। कानीन=कन्याजात। [६] पर्बतारि=इद्र। जलेस= (जल+ईश) वरुण। पासु=(पाश)। बिषदंड=बिसदड, कमलनाल। [१२] उसासी=साँस लेने का अवकाश, आराम। [१३] हुते=थे। [२१] बासन=वस्त्रों। मदनासन=अहंकार को नष्ट करनेवाला। [३०] आसर=असुर। [३१] अनंग=विदेह।

५

[१] दुचिताई=दुविधा। [१०] किल=निश्चय। [११] रिक्ष=(ऋक्ष) नक्षत्र, तारे। [१४] बारुनी=पश्चिम दिशा; शराव। द्विजराज=चद्रमा; ब्राह्मण। भगवत=सूर्य, भगवान्। [१६] प्रतिपद=पग पग पर; प्रत्येक पैर में। हंसक (हंस+क=जल) हस पक्षी तथा जल; बिछुआ। जलजहार=कमल-समूह; मोती की माला। पयोधर=जलाशय; स्तन। [१७] बीसबिसे=पूर्ण रूप से। [१६] छ अंग=षडग वेद—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्यौतिष और छद। अंग सातक=राज्य के सात अग—राजा, मंत्री, मत्र, निधि, देश, दुर्ग और सेना। अग आठक=योग के आठ अग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। [२०] बर्न=रंग; वर्ण (ब्राह्मण)। [२२] छिये=छूने से। भवभूपन=राख; सासारिक अलकार। मसी=कालिख। [३१] कंद=बादल। परदार=परस्त्री; लक्ष्मी। [३६] पनच=प्रत्यचा। पर्वतप्रभा=दैत्य। [४३] सोधु=सूचना। अपवर्ग=मोक्ष, मुक्ति।

६

[१] समदौ=भेट करो, विवाहो। [५] बारोठे को चारु=द्वारपूजन। [६] सँघाती=साथी। [८] सूत=स्तुति करनेवाले। [१२] कर्नाल=तोप। किन्नरी[२]=सारंगी। [१३] वेडिनी=वेश्याएँ। [१४] एन=(एण) हरिण। एनी=हरिणी। हेतकारे=प्रेमी। बोक=बकरे। दंती=हाथी। [२५] निरै=(निरय) नरक में। [२६] भेवहीं=रससिक्त करती हैं। [३०] कुबाम=बुरी स्त्री; पृथ्वीरूपी स्त्री। [३८] नियवराजिका=खंभों की पंक्ति। [४६] गंगाजल=सफेद चमकीला रेशमी कपड़ा। [५१] श्रीरये=शोभा से रंजित। [५६] दुलरी=दो लड़ों की माला। [५७] पाटजटी=रेशम से गुँथी। [५६] छिनछवि=बिजली। जातवेद=अग्नि। जातरूप=सुवर्ण, सोना। [६६] पग्रपूर=वारिप्रवाह।

७

[२] सूरज=शूरवीरों के पुत्र। तनत्रान=(तनुत्राण) कवच। [८] बानसिखीन=अग्निबाणों (से)। कठुला=माला। [१०] क्रतु=यज्ञ। [१२] लछन=लक्ष्मण। [१५] समिधै=होम की लकड़ी। श्रुवा=होम में घी डालने का पात्र। सुब्रन=सुवर्ण। तर्कसी=तूणीर। [१६] भर्गभक्त=भर्ग (शिव) के भक्त। [२१] सोन=(शोण) रुधिर। [२६] रेनुका=(रेणुका) परशुराम की माता। [३१] पछ्यावरि=भोजन के अंत में पिया जानेवाला दही से बना पेय। [३२] सछत=घावयुक्त। [३३] चित्रसारि=चित्रशाला, रंगमहल। [३७] सची=पूर्ण की। पारिहौं=पालन करूँगा। [४१] उबरे=बचे। [४५] खूट्यो=क्षीण हो गया, समाप्त हो गया। [४८] रए=उच्चरित किए। [५४] तारिका=ताड़का राक्षसी।

८

[१] रए=युक्त। [३] कलभनि=हाथी के बच्चे। [७] झालरि=घड़ियाल बाजा। पटह=नगाड़ा। पखाउज=मृदंग। आउझ=ताशा नाम का बाजा। [६] पद्मिनि=लक्ष्मी। [१२] निचोल=परिधान। जरायजरी=जरदोजी काम वाली। [१६] पौरी=द्वार, दरवाजा। [१६] तार=ताल।

६

[५] जीरन=(जीर्ण) जर्जर। दुकूल=वस्त्र। [६] छुत्पिपास=भूख-प्यास। [१०] गाज=(गर्ज) वज्र, बिजली। [१२] जक्त=(जगत्)। [१७] धनंजय-झार=अग्नि की ज्वाला। [१६] पनहीं=पादत्राण। कृच्छ्र उपवास=शरीर को कष्ट पहुँचाकर किया जानेवाला व्रत, जैसे प्राजापत्य, सातपन। [२०] सती=दक्षकन्या। [२३] ऐनि=हरिणी (के समान चंचल नेत्र वाली प्रिया)। [२५] दव=दावाग्नि, वन की आग। [२७] उरगौ=अंगीकार करो। [३१] बिलोक=द्युलोक, स्वर्गलोक। गेह=घर, पिंजड़ा। [३४] उपधि=धोखे या बेईमानी से। [३५] सँधी=सधित, मिली हुई। [४०] सुधाधर[२]=अधर में अमृत धारण करनेवाली। द्विजराजि=दाँतों की

पंक्ति। अंबरबिलास=आकाश में विलास करनेवाला; वस्त्रों से सुशोभित। कुबलय=कुमुदिनी; पृथ्वी-मडल। [४१] छीलर=छिछली तलैया। [४४] बाकल=वल्कल।

१०

[४] हए=मारे। [७] अनैसनी=(अनिष्ट) अमगलकारी। [१०] तटी=नदी। गटी=गठरी, समूह। [१५] धरनिधर=(धरणिधर) पर्वत। [१७] पाखर=झूल। सिरी=(श्री) शोभा। [१८] रज=रजपूती। [२५] पुत्रजुर=पुत्रमरण का सताप। [४०] सुधी=विज्ञ, बुद्धिमान्।

११

[५] बलित=झुर्रियों से युक्त। पलित=वृद्ध होकर। [६] हरुवाइ=शीघ्रतापूर्वक। [१८] दुपटी=चादर। घटी=घडी। निघटी=(नि=नितराम् घटी) बहुत घट गई। चटी=चटशाला। निकटी=समीप ही। गटी=गठरी। धूरजटी=महादेव। [२०] बेर=वेला। अर्क=मदार, सूर्य। [२१] अर्जुन=अर्जुन पाडव, वृक्षविशेष। भीम=भीम पाडव; अम्लवेतस का वृक्ष। सिंदूर=सिंदूर; एक वृक्ष। तिलक=टीका; एक वृक्ष। [२२] धाइ=दाई; धव का पेड। सितिकठ=(शितिकठ) महादेव; मयूर। [२४] कजज=ब्रह्मा। श्रीहरि-मदिर=वैकुठ, समुद्र। [२५] निगति=बुरी गति वाला (पापी)। अगति=गतिरहित, मर्यादा में रहनेवाला (समुद्र)। [२६] बिष=जहर; जल। जीवन=प्राण; पानी। [२८] सिखी=(शिखी) मोर। [२९] दुलरी=दो लड की माला। कठसिरी=(कठश्री) कंठी। [३३] रोहौ=आरोहण करते हो, चढ़ते हो। [४१] सोनछिछि=रुधिर के छींटे। कृत्या=तन्त्रोक्त विधि से उत्पन्न मारक राक्षसी।

१२

[२] वृष=वृषराशि। खरदूषण=तृणसमूह को जला देनेवाला सूर्य। गदसत्रु=वैद्य। [५] मय की सुता=मदोदरी। गीता=अर्थात् कीर्ति। [१३] नाखिकै=लाँघकर। [१६] पोच=तुच्छ, निकृष्ट। अवदात=शुद्ध, ठीक। [१९] छिद्र=त्रुटि (काम बन जाने के लिए किसी की त्रुटि से अपनी घात साधने का अवसर)। [[२०] धूमकेतु=अग्नि। धूमजोनि=(धूमयोनि) बादल। बगरूरे=बवंडर। [२४] घूँघरी=नूपुर। [३८] सोभरई=शोभायुक्त। [४१] केतक=(सफेद) केवड़ा। केतकि=केतकी, पीला केवडा। जाति=जाती, चमेली। करुना=करना नाम का वृक्ष। [४६] पावकपंथ=योगाग्नि द्वारा। [४९] करहाटक=कमल का बीजकोश। [५०] चक्रिन=सर्प। मृगमित्र=चंद्रमा। कमलाकर=कमल+आकर; कमला+कर। [५८] प्रतिपारौ=प्रतिपालन कीजिए। [६२] पजर=पिंजड़ा। खंजरीट=खंजन पक्षी। जारु=जाल। गेंडुआ=तकिया। गलसुई=गाल के नीचे लगाने का तकिया। कटिजेब=करधनी। ताजनो=(फा० ताजियाना) चाबुक। बिजन=(व्यजन) पखा। जमनिका=परदा। उत्तरीय=ओढ़नी।

१३

[४] बासवसुत = बालि। सॉटो = बदला। [५] विरद = पदवी। [७] सरभ = (शरभ) सिंहघाती एक पशु; राम की सेना का एक यूथपति बंदर। रिच्छ = भालू; जामवंत। केसरि = सिंह; बंदरों की एक जाति जिसमें हनूमान् के पिता मुख्य थे। सिवा = (शिवा) शृगाली; पार्वती। गजमुख = हाथी का मुख; गणेश। परभृत = कोयल; शिव के गण। चंद्रक = मोरपंख में की आँख, चंद्रमा। दिगंबर = उन्मुक्त; नग्न। [८] धाइ = धवई नाम का वृक्ष; दाई। बनमाल = वनसमूह; घुटनों या पैरों तक लंबी माला। सीस = शिखर; सिर। [१२] तार = (ताल) मँजीरा। [१४] रत्नावलि = रत्नों की झालर या बंदनवार। दिवि = देवलोक। [१६] निरघात* = वायु से वायु की टक्कर, वज्रपात और घोर ध्वनि निर्घात है। गौरमदाइन = इंद्रधनुष (बुँदेली का शब्द)। [१७] चंद्रबधू = बीरबहूटी। [१९] देखिए 'कविप्रिया ७।३२' [२०] परनारी = प्रनाली, बड़ी नाली; परस्त्री, परकीया। सतमारग = सुगम मार्ग; धर्म का आचरण। द्विजराज = चंद्रमा; ब्राह्मण। मित्र = सूर्य; मित्र, दोस्त। प्रदोप = अंधकार; बड़ा दोष। [२५] पयोधर = बादल; स्तन। अंबर = आकाश; वस्त्र। पाटीर = चंदन। [३३] तच्छिन = तत्क्षण। [३८] हवाई = आतिशबाजी। कमान = तोप। [३९] सिंहिका = राहु की माता। [४०] नाकपतिसत्रु = मैनाक पर्वत। पद-अच्छ = (अक्षिपद) आँख के पैर से, दृष्टि से। [४१] दस = डाँस, मसा। [४८] पालिक = (पल्यंक) पलंग। [५५] अविद्या = माया। विद्या = ज्ञान। रामरामा = सीता। [५८] कुदाता = कृपण; पृथ्वी को देनेवाला। कुकन्या = अकुलीन स्त्री; पृथ्वीपुत्री सीता। [६०] मघौनी = इंद्राणी। मृडानी = पार्वती। [६१] स्यौं = सहित। [६२] नाकी = लाँघी। तिच्छ = तीक्ष्ण, तेज। बिडकन = (विट+कण) विष्ठा के कण। [६३] विसर्पी = प्रसरणशील। [६६] नीठि = कठिनतापूर्वक। [८०] बर विद्या = पराविद्या। अष्टापद = सुवर्ण; सिंहघाती प्रबल पशु। [८८] दरीन = गुफाएँ। केसरी[२] = केसर; सिंह। साकत = (शाक्त) शक्ति का उपासक। [९४] सरसिज-जोनि = ब्रह्मा।

१४

[४] बासती = वस्त्र। रार = राल। [७] चेटका = चिता। [११] पाचि = गरम होकर। [१२] लाई = जलाई। [१५] छ्वैवे = स्पर्श करे। [२७] बासर = प्रभाती। खागैं = चुभता है। [३२] बानरस = बाण-वेग। [३५] पतग = पक्षी। [३७] रोदसी = आकाश और पृथ्वी। [३८] भोगवती = अतललोक की राजधानी। [३९] मंदल = (मंदर) मंदराचल। [४१] भूति = अधिकता। बिभूति = भस्म; रत्न। बियो = दूसरा। [४२] तिमिंगल = तिमि (बहुत बड़ी मछली) को निगलनेवाला समुद्री जीव।

१५

[५] अतीत्यो = बीत गया, समाप्त हो गया। [७] खोरि = दोष। लंक = लंका; कमर। [९] कुंभ निकुंभ = कुंभकर्ण के दो पुत्र। [१६] आइ तुलाने = आ पहुँचे।

---

* वायुना निहते वायुर्गगनाच्च पतत्यधः।
प्रचण्डघोरनिर्घोषो निर्घात इति कथ्यते॥

गुदराने = निवेदन किया। [२०] चार = दूत। [२४] बरहीं = बलपूर्वक। [२५] अवार = विलंब ॥ [३०] जए = जीते। [३१] छिछि = छींटा। [३५] करिया = कर्णधार, मल्लाह। [३६] कुतल = एक बंदर; केश, भाला। ललित = एक बंदर; सुंदर; तीक्ष्ण। नील = एक बंदर; काला (केश); काली कलूटी। भ्रकुटी = एक बंदर; भौंह, नैन = एक बंदर; नेत्र; अनीति (नय + न)। कुमुद = एक बंदर; लाल कमल; कु + मुद (आनंदरहित)। तार = एक बंदर; मोती; उच्च स्वर। मध्यदेस = मध्यभाग; कटि, जिसके अंग मध्यम हों। रिच्छराजमुखी = जामवंत जिसके प्रमुख हैं; चंद्रमुखी; रीछों के से भयंकर मुखवाली। दरकूच = (फा०) कूचदरकूच, मंजिलें पूरी करती हुई। [४०] हंस = सूर्य।

१६

[१] करहाट = कमल का छत्ता। [२] जीव = बृहस्पति। [३] अनैसे = अनिष्ट, बुरे (लोग)। बैसे = बैठे। [१२] जरी[1] = जटित। जराइ-जरी = रत्नजटित। [१३] चेटक = जादू। [१६] नूत = नवीन। [२१] सिवा = (शिवा) शृगाली। निरै = (निरय) नरक। [२२] छपानाथ = रात्रि के स्वामी, चंद्रमा। [२३] सका = (फा० सक्का) भिश्ती। सिखी = (शिखिन्) अग्नि। महादंडधारी = यमराज। [२६] अंतकलोक = यमराजपुरी। [२६] घाव = जादूगर। भागर = भंगल, जादू। [३०] अमानुषी = मनुष्यों से रहित। [३१] बर = बल। धरको = धड़का, शंका, संदेह। [३३] छीरछीट = जल के कणों में, जलप्रवाह में।

१७

[३] सोधु = (शोध) खोज-खबर। [१३] कवल = ग्रास। [२२] नठैं = नष्ट होते हैं। [२८] बसोबास = बसने का स्थान। [३१] जीमूत = बादल। निकास = तुल्य, समान। नैरित्य = (नैर्ऋत्य) निशाचर। [३४] स्रंगमयूरमाली = जिसकी चोटी पर मयूरों का समूह चित्रित है। कैं = किसने। [३५] आखंडलीय = इंद्र का। [४७] परिदेवन = विलाप। [५०] बिसल्योषधी = विशल्यकरणी जड़ी, विपले घाव को निर्विघ्न कर शीघ्र भर देनेवाली ओषधि। [५२] ज्वालमाली = दिव्य ओषधियों की चमक से चमकता द्रोणाचल। [५५] छिये = स्पर्श होने से। ररैं = रटते हैं।

१८

[७] आजिबिराजिन = (आजि = युद्ध + बिराजी = शोभित) शूर, वीर। [१०] बामी = वाममार्गी। किंपुरुष = नपुंसक। काहली = आलसी। [२०] मध्य = कमर। क्षुद्रघंटिका = करधनी। [२२] तालमाली = सप्त ताल। [२४] डाँस = बड़ा मच्छर। [२६] निकुंभिला = लंका का दक्षिणी भाग जहाँ रावण की यज्ञशाला थी। [३४] राघव = रघुवंशी (लक्ष्मण)। उद्धरयो = अर्थात् धड़ से पृथक् कर दिया।

१९

[३] जक्षकर्दम = यक्षों को प्रिय सुगंधित लेपविशेष। [१६] बक्साए = क्षमा कराए। [२०] कुंभहर-कुंभकर्ननासाहर = कुंभ को मारने और कुंभकर्ण की नासिका

काटनेवाले सुग्रीव । अकप-अक्ष-अरि=अकप और अक्ष के शत्रु हनूमान्। देवांतक-नारातकअंतक=अंगद । रुखाए=रुख किए हुए । मेघनाद-मकराक्ष-महोदर-प्रानहर=लक्ष्मण। [३२] चौगान=घोड़े पर चढ़कर खेला जानेवाला गेंद का खेल। हाल-गोला=गेंद । [३३] साखाबिलासी=शाखामृग, बंदर। [३६] छतना=मधुमक्खी का छत्ता। [४६] पट्टिस=भाले के ढंग का एक अस्त्र। परिघ=गँडासा। तोमर=भाले के आकार का प्राचीन अस्त्र। कुंत=बरछी। गवय=राम की सेना का एक यूथप। गज=राम की सेना का एक बंदर। भिंदिपाल=छोटा डंडा जिसे पूर्वकाल में फेंककर मारते थे। मोगरा=मुद्गर। कटरा=कटारी। [५३] गजा=नगाड़ा बजाने का डंडा। [५४] सूकी=सूख गई। ढूकी=छिपी हुई।

२०

[५] पुत्रिका=पुत्तलिका, पुतली। [६] गिरापूर=सरस्वती नदी का प्रवाह। पयोदेवता=जलदेवी। सिफाकंद=कमल की जड़। [८] तक्षकाभोग=(तक्षक+आभोग) तक्षक (सर्प) का फण। [६] आसावरी=रेशमी वस्त्र। [१०] चित्रपुत्री=पुतली। [१६] दुनी=(दुनिया) । [२८] बियो=दूसरा। [२६] चिलकै=चमकती है। [३०] मद-एन=(एण-मद) कस्तूरी। [३८] तिक्ष=तीक्ष्ण। श्रीफलै-पत्र=नारियल के पत्र ही। [४०] देखिए 'कविप्रिया ७।११'। [४१] दुरंतै=प्रचंड ही। सुंखला=मूँज की मेखला। [४२] रज=धूल; रजोगुण। जटन=जड़ें; जटाएँ। साखी=(शाखी) वृक्ष। [४४] त्रिसोता=गंगा । [४७] तनु=महीन, पतली। [५५] बिजै करहु=भोजन कीजिए। बैकुंठ=विष्णु (रामचंद्र)।

२१

[१] कहा=क्या। [६] निजवर्तिन=आश्रितों को। उबर्‍यो=बचा हुआ। [१६] मॉडौ=पूजन करो। [२०] आखंडल=इंद्र । [२२] बकला=बल्कल। [४३] देवदिवान=देवसभा। [५३] कोपर=थाल। [५८] तरहरि=नीचे।

२२

[६] कोट=चारदीवारी, शहरपनाह । परिवेप=मंडल । [१०] करषा=उत्साहवर्धक गीत। [१५] अगार=आगे, पहले। [२१] पौरिया=द्वारपाल।

२३

[६] अनर्घ=महार्घ, बहुमूल्य। [८] संनिधान=पास । [१८] उज्जल=(उज्ज्वल)। [२०] मैनवलित=मोमयुक्त। [२१] प्रतिसब्दक=प्रतिध्वनि। [२६] गुन=रस्सी; गुण । पंजर=पिंजड़ा । [२७] अपनाइति=अपनापा । [३२] आसीविष=सर्प।

२४

[७] सरसी=सँडसी। कर्दम=कँटिया में लगाने का चारा। बनसी=मछली फँसाने की कँटिया। [८] लूहर=लू। निनारे=(न्यारे) अनोखे, तीखे। पँचकूट=पाँच

जनों का समूह। [१०] पोतो=पोत, लगान। बटपार=डाकू, लुटेरा। [११] त्वचातिकुचै=(त्वचा+अति कुचै) चमड़ा बहुत सिकुड़ता है, झुर्रियाँ पड़ रही हैं। ज्वरा=ज्वर। [१२] देखिए 'कविप्रिया ५।१२' [१६] उदुर=चूहा। तरसै=(फा० तराश) काटता है। [२०] षटपदी=भ्रमरी, भौंरी। अनर्क=स्वर्ग। [२३] आखु=चूहा। [२६] माछर=मच्छड़।

२५

[६] हौं=मुझको। उपायो=उत्पन्न किया। [१३] टोहौं=ढूढ़ूँ, खोजूँ। [२४] जाइ भजे=जा पहुँचे। [३५] लोइ=लोग।

२६

[३] अरूझी=उलझी। [१७] उसीर=(उशीर) खस। [१६] बादित्र=वाद्ययंत्र, बाजे। [२०] ऊमरि=(उदुंबर) गूलर। [२७] मरातिब=(अ०) ध्वजा, पताका। [३०] गाधिनदन=विश्वामित्र।

२७

[२] परदार=परस्त्री; लक्ष्मी। [३] देखिए 'कविप्रिया ११।४३' [४] सुराहु=राहु; सन्मार्गगामी। अकर=कररहित; जो कार्य करने पर भी अकर्ता हो। [५] चक्रै=चक्रवाक ही। द्विजराज=ब्राह्मण; चंद्रमा। मित्र=सखा; सूर्य। चिर=चिरकाल तक। [११] बिसदंड=कमलनाल। [१६] निगरु=गुरुत्व से रहित, हलके। पान=(पर्ण) पत्ता। डोडि=(द्रोणी) डोंगी, छोटी नाव। [१६] बेझहि=निशाने पर, लक्ष्य पर। [२२] अपलोक=अपयश।

२८

[१] अनता=पृथ्वी। सस्य=(शस्य) धान्य। ईति=अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि कृषि के विघ्न। पूर्ण विवरण के लिए देखिए 'कविप्रिया ८।५' [२] निम्नगा=नीचे की ओर बहनेवाली नदियाँ। स्वर्वाजि=इद्र का घोड़ा, उच्चैःश्रवा। स्वर्दंति=ऐरावत। [६] सद्मिनी=घर। [६] बृत्ति=सूत्र की व्याख्या, जीविका। [१०] बेझो=(वेध्य) लक्ष्य। [११] परनारी=परस्त्री; दूसरों के हाथ की नाड़ी। विधवा=जिसका पति मृत हो गया हो; धवा नामक वृक्ष से रहित। [१५] उदयन=अभ्युदय। [१६] द्विस्वभाव=दो प्रकार की प्रवृत्ति; दो अर्थों की स्थिति। अस्लेप=(श्लेष) श्लेष अलकार। [१७] पस्यतोहर=देखते रहने पर भी हर लेनेवाला। [१८] पुंस्चलीति=(पुश्चली+इति) व्यभिचारिणी।

२६

[५] कोद=दिशा, ओर। राती=लाल। [१७] अधफर=अतरिक्ष। चौकी=पहरा। भेव=पारी, बारी। [२०] बैन=(वदन) मुख। [२१] दीपवृक्ष=वृक्ष के आकार की बड़ी दीवट। पक=चंदनपक। [२२] आरे=आले, ताखे। बासन=पात्र। जल=आन,

चमक। तातर=उसके नीचे। [२३] घुरिलनि=खूँटियों पर। उरमत=लटकते हैं। जल्कर्दम=यक्षों का लेपविशेष। मेदोजवादि=देखिए 'रसिकप्रिया ४।५'। [२७] तरहारि=पृथ्वी के नीचे। [३१] सेत=(श्वेत)। प्राविट-काल=वर्षाकाल, पावस। [३६] धरनीधर=राजा। [३८] रावर=रनिवास। करी=कड़ी; धरन। [३६] बरँगा=छोटी पटिया। गजदंत=टोडा। सींक=पतला बत्ता। [४०] दुगई=ओसारा।

३०

[४] सुलचालि, सब्दचालि, उड्डुप, त्रियगपति, पति, अडाल, लाग, धाउ, रापैरँगाल=नृत्य के भेद। [५] उलथा, टेकी, आलम, दिड, पदपलटि, हुरमयी, निसँक, चिड=नृत्य के भेद। असु=(आशु) शीघ्र। [६] अपघन=शरीर। [१४] गेंडुए=तकिये। रूपक=मूर्ति। गलसुई=गालों के नीचे का तकिया। [२०] उडु=तारे। [२१] गुदरैनि=परीक्षा। [२३] निगर=(निकर) समूह। [२४] झारी=गडुआ। गड्डपनि मूकनि=पानी का कुल्ला फेंकना। [२६] रावत=सरदार। [२७] नोई=दुहते समय गाय के पिछले पैरों में बाँधने की रस्सी। [२६] पहीनि=दाल। [३०] अथान=अचार। झारि=अमचूर, जीरा, नमक आदि से बना खट्टा पेय। पछ्यावरि=सिखरन, दही मथकर बनाया गया मीठा पेय। पने=(पानक) पना। [३३] लवली=हरफारयौरी [४२] तारहि=तारिका को; अंगद की माता तारा को। [४५] हरिनाधिष्ठित=जिस पर हरिण बैठा हो (मृगाक); जिस पर विष्णु बैठे हों। [४६] देखिए 'कविप्रिया ७।२६'।

३१

[५] कबरी=चोटी। [७] पाटिन=पाटी, माँग। [१५] भुलमुली=झुमका। [१६] वाकदेव=सरस्वती। [१८] अलिक=ललाट। पाटी=पट्टी, काकपक्ष। [१६] दसा=बत्ती। उसारि=उकसाकर। स्यामपाट=काला रेशम। [२२] दड=कमलदड, कमलनाल; राजदंड। दल=कमल की पंखुड़ियाँ; सेना-समूह। द्विज=पक्षी; ब्राह्मण। तप=ताप; तपस्या। परमहंस=श्रेष्ठ हस पक्षी, ज्ञानी संन्यासी। कोस=(कोश) कमलकोश; खजाना। दुर्गजल=दुर्गम जल; जलपूर्ण खाई। विधि=ब्रह्मा; विधान। चंद्र=चद्रमा; भाग्य। श्री=लक्ष्मी; राज्यश्री। श्रीस=(श्रीश) विष्णु। मित्र=सूर्य; सखा। कमला=लक्ष्मी, काति, शोभा। [२५] सुवृत्त=सुंदर छदों वाली; सुदर गोल। [२६] असोक के पत्र=अर्थात् उँगलियाँ। राजकलत्र=राजरानी जानकी। [३४] छवा=एडी। अलक=महावर। [३८] मकरध्वजध्वज=काम की पताका। [३६] तोपता=तोपत्व, सतुष्टि, सतोष।

३२

[३] कुँची=कुजी। [६] करवीर करी=कनेर की कली। [६] सोंध=सुगध। [११] सदाफल=शरीफा। [२२] उदरे=फट गए। सुदती=सुंदर दाँतों वाली। [१५] नीलकठ=मयूर; महादेव। मलै=(मलय) चदन। [१६] करुनामय=करना नामक वृक्ष से युक्त; विष्णु। रभा=केला, रभा अप्सरा। [१७] नागलता=पान की लता; नागरूपी लता। [१६] असौंध=सुगंधहीन, दुर्गंध। [२२] अजलोक=अयोध्या। अजलोक=ब्रह्मलोक। [३०] सेवटि=मिट्टी का ढेर। एल=इलायची।

केरिफूल-दल = कदली के फूल की पखुडी। [३५] बिष = जल; जहर। सबर = जल; काम का शत्रु। [३७] हरै = हरण करती है, पकड़ती है। बिसहार = कमल की माला। [४०] छुटैं = लड़ियाँ। [४१] रिछनि = तारे। [४४] फिरक-बाहिनी = चक्करदार पालकी। [४८] कुमडल = पृथ्वीमडल।

३३

[१] मृगतपकानन = तपरूपी जगल के मृग अर्थात् तपस्वी। [५] निरैमग = (निरय + मार्ग) नरक का मार्ग। [११] श्रीप = श्रीपति। [२४] दोहदै = गर्भिणी स्त्री की इच्छा को। [३२] दाम = माला। [३४] गुरु = पूज्या। गुर्बिनी = गर्भिणी। [३८] ग्यारसि = एकादशी। मठधारी = अर्थात् जगन्नाथजी के पुजारी। [४०] अलोक = अपयश। [४५] सत्वर = शीघ्र। [४८] गंधबधु = आम का वृक्ष।

३४

[२] फिराद = (फा० फरियाद) प्रार्थना, निवेदन। [६] पुर = सामने। [८] निरैपदपर्सी = (निरय + पदस्पर्शी) नरक का निवासी। [१६] पटी = पगडी। गटी = गाँठ, समूह। [२०] पालक = (पल्यक) पलग। [२२] घ्यो = घृत, घी। [२३] द्रयो = द्रवित हुआ, पिघल गया। [२६] बसकार = बँसफोर, डोम। [४६] पै = से।

३५

[६] रोचन = रोली। [८] देखिए 'कविप्रिया ८।२३'। [६] देखिए 'कविप्रिया ५।३५'। [१५] मोक्यो = छोडा। [२०] पत्री = बाण। [२४] गीता = वृत्तात, कथा, हाल। पुत्रिका = मूर्ति, पुतली। [२६] छँडाइ लेहुँ = छुडा लूँ। [२७] करीसुर = विशाल हाथी। [३०] सोदर = सहोदर, भाई। [३१] तूल = (तुल्य) समान।

३६

[४] हयो = मारा। [८] काकपच्छ = जुल्फ। [११] असु = प्राण। [१२] इषुधी = तूणीर। [१५] किरचैं = टुकड़े। [१६] दाम = डोरी। [२२] बर्म = कवच। [२५] बार = वेर, समय। बार = बालक।

३७

[२] पूर = धारा। [३] सुदेस = (सुदेश) सुंदर। सिवाल = (शैवाल) सेवार। [७] मन्मथ = कामदेव। वपु = शरीर। [११] छीजै नहिं = क्षीण नहीं होता, नष्ट नहीं होता। [१७] छिद्र = रहस्य, दोष। [१६] राइ = राय, राजा। [२१] करीष = बिनुआ कंडा। [२३] मोहि = मूर्च्छित होकर।

३८

[५] मोइ = भिगोकर। [११] तूल = (तुल्य) समान। [१२] सेही = साही। [१३] बटा = गोला। गो = गया। [१६] खेत = रणक्षेत्र। इभ-कोट = हाथियों की

चारदीवारी। अरे=अड़े। खर्ग=(खड्ग) तलवार। खाएँ मरे=खावें मारे गए हैं। नाग=हाथी। [१८] स्यौं=सहित।

३९

[१] दुरत=अकरणीय, बुरा। गारि=अपवाद, कलंक। [७] विडंबन=दुःख। चेटी=दासी। [९] रोगरिपु=धन्वतरि। [१०] बिराम=विलंब, देर। [१८] नीरज=मोती। [१९] अयुत=दशसहस्र। [२९] ईठि=इष्टता, मित्रता। [३०] जुबान=वचन, वाणी। मठी=मठधारी।

छंदमाला

[४] तदुपरि=तदनतर। [११] माझ=(मध्य) में। [१२] सैं=साथ। [४०] चौकल=चार मात्राएँ। [४२] हरुवाइ=शीघ्रता से। [५०] देखिए 'रामचद्रचंद्रिका १३।६२'। [६४] बाकल=वल्कल। [६६] तनी=बंद। [७५] सरकोस=तूणीर, तरकश।

२

[३] भाषा-सरप=नागों की भाषा, पिंगल भाषा, अपभ्रंश। [१७] कला=मात्रा। [४९] पौरि=पौरी, ड्योढ़ी।

शिखनख

[१] मखतूल=काला रेशम। सिंधुर=हाथी। [२] चाँडी=चंड, वेगवती। मेंडरेख=सीमा की रेखा। [३] पाटी=काकपक्ष। पाटी=पटिया। [५] अंगराट्=अंगों का राजा। बैठकु=आसन, चौकी। [६] नासाबंस=(नासावंश) नाक के ऊपर बीचोबीच गई हुई पतली हड्डी; (नासिकावंश रूपी) बाँस। झाईं=परछाहीं। भाम=स्त्री। [७] बधु=मित्र। कोरा=क्रोड। [८] बिसारे=विषैले। तारे=आँख की पुतलियाँ। [९] साखीभूत=(साक्षीभूत)। बिबि=दो। [१०] बेह=(बेध) छिद्र। नावक=बाँस की छोटी पुपली। मीत=मित्र, प्रिय। तिरप=(तिरस) बंकिमा। [११] मंदुर=मृदु, कोमल। तबक=(चाँदी का) वरक। ताइ=तपाकर। [१२] साके=नामवरी, कीर्ति। दाभ=डाभ, अंकुर अर्थात् किसलय। उकीरे=उत्कीर्ण। [१३] चूनी=चुन्नी, माणिक का टुकड़ा। कोरक=कली। [१४] जूप=(यूप) स्तंभ। चावरी=चावड़ी, पड़ाव। [१५] छ-दस=(छह+दश) सोलह। [१६] मारमल्ल=कामरूपी योधा। खतुखाँडु=खंता तथा खाँडा। [१७] गुरजैं=(गुर्ज) बुर्ज। [१८] उपधान=तकिया। पास=(पाश)। [१९] जमल=(यमल) युग्म। खवासु=(अ० ख़वास) सेवक। [२१] अतसी=अलसी, तीसी। चूचक=कुच का अग्र भाग, ढेपनी। [२२] बंकट=वक्र। [२५] ओड़ो=गहरा। [२६] नेमि=पहिये का

घेरा। त्रिबली = पेट में पड़नेवाली तीन परतें। [२७] गिरद = (गिर्द) तकिया। गादी = गद्दी। श्रोनी = नितंब।

रतनबावनी

[१] एकरदन = एक दाँत वाले (गणेश)। तूल = (तुल्य)। [३] परबीन = (प्रवीण)। [४] अगवनै = आगे। सुव = (सं० सुत, प्रा० सुअ = सुव) पुत्र। खेत = रणक्षेत्र। मौलित = (मुकुलित)। मौलित पूर हुव = खिल गया, फूल गया। [५] फुल्लिव = प्रफुल्ल हुआ। पति = प्रतिष्ठा। [६] हरवल = (तु० हरावल) सेना का अगला भाग। [७] पैज = प्रतिज्ञा। बरिय = वरण करो। अपछरिय = (अप्सरा)। पिंडह = शरीर को। [८] भरिठि्ठव = भर गया। [१०] हूहैं = हुकार करें। [१५] कहा = क्या। [१७] कुट्टिय = पीटा, मारा। [१९] ठान = (अनुष्ठान) दृढ़ निश्चय। तरल = चंचल। लोह = युद्ध। [२०] खा मसूद = मसूद खाँ। मुहकम = चढ़ाई, युद्ध। [२२] सुइ = वही। [२४] बादि = व्यर्थ, बेकाम। [२५] गरैं = गल जाता है। पीठ दएँ = युद्ध से विमुख होने पर। [२६] स्वार = सवार। [२९] तच्छन = (तत्क्षण)। [३०] अँगवाऊँ = अंगीकार कराऊँ। ईस = (ईश) महादेव। खित्त = युद्धक्षेत्र। खिभिर राखहुँ = शरीर को मिट्टी में मिला दूँ। हालहु = हिलाने से। [३१] किन्नव = किया। बाद = बाजी, होड़। हियवँ = हृदय। [३२] दैनहार = देय, देने योग्य। [३४] रार = युद्ध। खित्त = रणक्षेत्र। करि राखैं० = रणक्षेत्र को ही भवन कर रखेंगे। [३५] पंचम = बुँदेलों के पूर्वपुरुष पंचम के नाम पर उनके वंशजों की उपाधि, यहाँ रतनसिंह। [३६] कित्ति = (कीर्ति)। [३७] कलमलिय = कुलबुलाने लगी। हंके = हुंकार करने लगे। [३८] राजि = पंक्ति। बखतर = (बकतर) कवच। जोसन = (जोशन) जिरह। बिज्जु = विद्युत्, बिजली। [३९] निबहो = निभ सका। अंक = नौ (संख्या)। सटक्यिह = सटक गए, खिसक गए। अटक्यिह = जा अटका, भिड़ गया। [४०] उमठि्ठय = उमड़ पड़ा। मुरकि = मुड़कर। तठ = (तत्र) वहाँ, वहीं। खडल छोरत* = (खड़ल छोड़ना) खाँड़ की पारी छोड़ना। [४१] साँमँथ = सामंत। हिरन = अर्थात् साधारण सिपाही। रोह्यो = चढ़ गए। ऊठार = उच्च स्थान, ऊपर। रज = रजपूती। सार = लोहा, तलवार। [४२] अगार = आगे। [४३] कमध = (कबंध) बिना सिर का धड़। [४४] डील = शरीर।

---

*'बुँदेलखंड में होली के अवसर पर कहीं कहीं एक प्रकार का जलसा यह होता है कि एक चिकना लंबा खंभा जमीन में गाड़कर खड़ा कर देते हैं, और उसके ऊपर के सिरे पर गुड़ की एक एक पारी और एक रुपया बाँध देते हैं। उसकी रक्षा के लिए उसके चारों ओर स्त्रियाँ लंबे-लंबे बाँस लेकर खड़ी हो जाती हैं। मर्द उस रुपया और गुड़ को लेने के लिए खंभे पर चढ़ने की कोशिश करते हैं और स्त्रियाँ बाँस मार मारकर उन्हें हटाती हैं। प्रायः पुरुष इस अवसर पर अपने बचाव के लिए लकड़ी का चौसटा या जेरी हाथ में लिए रहते हैं। जो पुरुष लट्ठे पर चढ़कर रुपया और गुड़ की गाँठ तोड़ लेता है वह रुपया पाता है। गुड़ सब लोगों को बाँट दिया जाता है। यदि उसको कोई न तोड़ सका तो दोनों चीजें स्त्रियों को मिलती हैं।'

—केशव-पंचरत्न, लाला भगवानदीन संगृहीत।

डोंगर=पर्वत । [४८] हलकारी=(सेना को) ललकारा । [४९] नौन=(लवण) । नौन उत्रारहिं=नमक अदा करें । [५०] धरन=धरणी, पृथ्वी । [५२] सहि=(शाह) । [५३] नाग्वेहु=लाँघ गया । पील=(सं० पीलु, फा० पील)हाथी ।

वीरचरित्र

१

[१] सिखावान=अग्नि । कर=चंद्रकिरण । हरि-चरनोदक=गंगा । विभूति=भस्म । चक्री=सर्प । कुमार=कार्त्तिकेय । [३] कलस=श्रेष्ठ । अवतंस=कान का आभूषण, यहाँ श्रेष्ठ । [५] वसु=आठ अर्थात् अष्टमी । [७] समंदा=(शर्म=सुख+दा) । हरिवासा=विष्णु के मंदिर । स्वच्छपच्छ=हंस । [८] मती=मतवाली । [९] ऊरध=(उर्ध्व) अर्थात् स्वर्ग । [११] षोडस दान*=सोलह प्रकार की वस्तुओं का दान । [१३] दुगमुही=दो मुँह की, अर्थात् ब्याती हुई । छुही=पोती हुई, लगाई हुई । [१९] मतचल=चलितमति, लालची । बटपार=लुटेरा । पसिया=(पाशी) प्राचीन काल में फाँसी का फंदा लगाने का कार्य जिस जाति के द्वारा होता था उस जाति के लोग । लबार=मिथ्यावादी । [२०] जगाती=कर उगाहनेवाला । वनिक=(वणिक्) बनिया । पुस्ता=अर्थात् अफीम । विस्वा=(वेश्या) । [२१] ओड़त हाथ=(हाथ ओड़ना) माँगते हैं [२२] कुचील=(कुचैल) मैला कुचैला । दिनवान=दिनवाला, भाग्यवाला । [२६] विढ़वै=कमाता है, इकट्ठा करता है । वित=(वित्त) संपत्ति । [२७] असु=प्राण । [२८] विहरावै=पृथक् करता है, फूट डाल देता है । अनय=अनीति, अन्याय । [३१] दिनदान=प्रतिदिन दान । केसवराइ=(केशवराज) विष्णु भगवान् । घट=शरीर । [३४] कृती=संतुष्ट, यहाँ कृतज्ञ । लविंद=(लप्) बकवादी । लबार=मिथ्यावादी । [३५] सक्कु=शक्त, शक्तिमान् । [३६] दह=(ह्रद) । [३७] सुपच=(श्वपच) चांडाल । [३९] नर्क=लाँघे । छिताई=देवगिरि के राजा रामचंद्र की पत्नी जिसको अलाउद्दीन ने अपने राजमहल में मँगा लिया था । इसकी प्रेमगाथा पर छिताईकथा या छिताईवार्ता नाम की पुस्तक रतनरंग कवि ने लिखी है । जान कवि ने छीता नाम से इसकी प्रेमगाथा काव्यबद्ध की है । विहना=धुनिया । फूल्यो अंग न माइ=फूले अंग नहीं समाता, अत्यंत आनंदित होता है । [४२] लोइ=(लोक) लोग । विबूचे=(विवेचन) संकट में पड़े । [४६] रसातल=पाताल । कला=युक्ति, उपाय । [४७] उनमान=अनुमान, समान । [४८] मुकातै=ठीका । [५०] पोच=निकृष्ट, नीच । [५८] लचि=झुककर । उरगावत=ऋण का मोचन कराते हैं । उरग=ऋण का मोचन । प्रेत=हे प्रेत (निर्दय लोभ) । [६१] निग्रह=निग्रहण । [६२] खैजै=खाइए । [६३] अगिहाईं=अग्निदाह । [६४] बरवीर=वीरबल ।

---

* भूम्यासन जल वस्त्र प्रदीपोऽन्न ततः परम् ।
ताम्बूलच्छत्रगन्धाश्च माल्यं फलमतः परम् ॥
शय्या च पादुका गावः काञ्चन रजत तथा ॥
दानमेतत् षोडशकं प्रेतमुद्दिश्य दीयते ॥

२

[१] हती=थी। छिताई=देखिए १।३६। [२] नियोग=दूसरे की स्त्री से सतानोत्पत्ति का कार्य। [३] पिथौरा=पृथ्वीराज। भगवान=भाग्यवान्। पवार=परमार। कौरा=(कवल) ग्रास। [६] वेनु=(वेण) सूर्यवंशी राजा अग का पुत्र और पृथु का पिता। बान=(बाण) राजा बलि का पुत्र। [६] प्रतिपारत=(प्रतिपालन) पालन करता है। अदिष्ट=(अदृष्ट) प्रारब्ध, भाग्य। [१२] लंघन=उपवास। बवन=(वमन)। कोद=ओर। [१५] वृत=व्रत। चिरि=(चिर) चिरकाल तक, बहुत दिनों तक। [१७] बारें=बाल्यावस्था में। [१८] सिवि=(शिवि) राजा उशीनर के पुत्र, प्रसिद्ध दानी। जजाति=(ययाति) नहुष के पुत्र। [२२] ऊजर=उजाड़। [२४] करन=राजा कर्ण। करन=महादानी कर्ण। [३०] पिछहडे=पीछे की ओर। [३४] नेम=नियमपूर्वक। असलेम=शेरशाह। [३६] न्यामतिखान=नियामत खॉं। जयो=जीता। [३७] कूटि=पीटकर। [३६] ब्रह्मरंध्र=मस्तक के मध्य का छिद्र जिससे होकर निकलने पर प्राण ब्रह्मलोक पहुँचता है। [४०] लहुरे=छोटे। [४२] बानो बॉंध्यो=सिर पर पगडी बॉंधी। सिर पर पगडी बॉंधना प्रतिष्ठासूचक होता था। [४३] गौर=गौड देश, बंगाल। जूझ-ब्याज=मरने के बहाने। [४५] तनत्रान=(तनु+त्राण) कवच। [४६] बघेरे=राजपूतों की शाखा विशेष।

३

[२] ठिक ठई=जो बात स्थिर हुई हो। [६] बैठक=जागीर। बडौन=एक स्थान। [७] झौंडी=छाई। औंडी=उमडी। सीवॅ=(शीत) ठढक अर्थात् छाया। बौंडी=फैली। [११] चौतरा=चबूतरा अर्थात् चौरस। जागरा=क्षत्रियों की जातीय उपाधि विशेष। बसबास=निवास। [१२] गोपाचल=ग्वालियर। [१३] जलालसाहि=जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर। [१५] फिराद=(फा० फरियाद)। [१८] सकिले=इकट्ठे हुए। [२१] ढोवा=ढोने की क्रिया। [२२] ढोरि=पीटकर। खोरि=दोष। [२६] द्यौ=देव। बोर=बोल। माम=शक्ति। [३२] स्यौं=सहित। [३३] तुपकैं=बदूकें। जालप=जालपा देवी। [३५] पेस=(फा० पेश) आगे। [५०] बसीठ=दूत। [५४] भूड=धूल। भाना=(भानु) सूर्य। साना=(सानु) चोटी। धूरिधाना=विनष्ट। तला=ताल, तालाब। तोयमाना=पानीवाले, पानी से भरे हुए। सुखमाना=जलरहित, सूखे। बिठाना=वेष्टित, युक्त। नठाना=नष्ट हो गया। पलानी पलाना=(पलायन) भगदड। [६१] छिद्र=मौका। [६२] पान=(पाणि) हाथ में।

४

[३] जनपद=बस्ती। [६] अकुताने=घबरा गए। [७] हैंगे=हैं। [६] अहदिनि=(अ० अहदी) मुगलकाल के वे कर्मचारी जो बडा काम पडने पर कहीं भेजे जाते थे। [१०] दिमान=(अ० दीवान)। [१५] चौपद=चौपाया। दुपद=दो पैरों का जीव, मनुष्य। [१८] उतायले=उतावले। नरवर=एक स्थान। [१६]

डेरी=पडाव। [२०] रोसिल=(रोष+इल) रुष्ट। [२४] पंचहजारी=(फा० पंज-हजारी) पाँच हजार सेना का अधिकारी। [२६] सिरपाउ=(सिरोपाव) राजदरबार से संमान के रूप में दिया जानेवाला सिर से पैर तक का पहनावा। [२८] कोद=ओर। [२९] मतो=मंत्रणा। [३०] ईठ=(इष्ट) मित्र। [४७] साँवथ=(सामंत)। [४८] रौरि=हलचल। [४६] सपदि=शीघ्र। [५०] नाठि गौ=नष्ट हो गया। [५१] खरभरे=विचलित हो गए। करिंद=(करींद्र) बड़ा हाथी। [५४] ढीह=ऊँचा टीला। अपडर=अपनी ओर से होनेवाला डर। [५७] चवंथो=चौथा। पैंजै=प्रतिज्ञा करते हैं। जै जै=जय जय, विजय होती है।

५

[२] अहि तें जेवरा=सर्प से रस्सी। [७] घैर=बदनामी की चर्चा। [१३] समीति=मेल-मिलाप। [१६] अहीछत्र=(अहिच्छत्र) प्राचीन समय में दक्षिण पांचाल की राजधानी। चंबल नदी से मिला हुआ देश। [२२] दुरित=पातक। [२४] गिरा=सरस्वती नदी। [२६] धोवती=धोती। [३२] पाट=रेशम। [४४] गुदरयौ=निवेदन किया। [४६] तसलीम=(अ०) नमस्कार। न माय=समाता नहीं। [५२] लामी=लंबी, बड़ी। [५७] दोई दीन=हिंदुओं और मुसलमानों के धर्म। [६६] सिरपा=(सिरोपाव)। [७०] दरिखाने=दरीखाना, बारहदरी। [७१] मुकाम=पडाव। [७३] सिंध=बुंदेलखंड की छोटी नदी। [७४] पराइछे=(सं० पराची) दूसरी ओर। [७५] रसधि=(फा० रसद) सेना का खाद्य जो उसके साथ रहता है। [७७] पसर=(प्रसर) फैलाव। [७६] आलमतोग=(फ० अलम=झंडा+तोग=पताका) झंडा-पताका। [८६] धूमधुज=(धूमध्वज) अग्नि। [६१] नारि=एक प्रकार की तोप। असरार=निरंतर। [६४] खुरखेत=घोड़ों की टाप, अश्वारोहियों की घुड़दौड़। तास=ताशा (बाजा)। [६६] ठिलत=धक्का खाते हुए। लुठत=(लुंठन) लुढ़कते हुए। तुखार=घोड़ा। [१०३] रोचन=रोली। [१०४] अरुन=(अरुण) सूर्य का सारथि। तरनि=(तरणि) सूर्य। उडगन=तारे। [१०७] मरातिब=झंडा, ध्वजा। अलकतिलक=अलिकतिलक, राज्याभिषेक।

६

[५] सदकै=(अ० सदकह) उत्सर्ग, निछावर। [७] किसा=(अ० किस्सा) हाल, समाचार। [८] औसिलो=(अ० वसीला) जरिया, मरने का बहाना। हयौ=मार डाला। [१३] चिलकै=चमकता है। अलिक=ललाट। अँगिया=(अंगिका) चोली। [१५] उभके=उभरे हुए, उन्नत। खानजादी='खान' की लडकी। पान=पेय पदार्थ। पान=तांबूल। [१६] कितेब=(अ० किताब)। [२०] साँथर=बस्ती। [२५] अमिठि०=ऐंठ ऐंठ कर। निरवारि०=मुक्त हो जाती है। दाही=जली हुई। महर=दयालु। रीति जाति=खाली हो जाती है। रहट=रहँट, सिंचाई के लिए कूएँ से पानी निकालने का यंत्र विशेष, जिसमें मालाकार कई घड़े लगे रहते हैं। [२६] सारिखो=(सदृक्ष) समान। [३२] साल=(शल्य) कंटक (की भाँति कष्टद)। [३७] अर्ति=(आर्ति) पीड़ा। पेस=(फा० पेश) आगे। [४३] ऊकै=उल्का।

[४४] सनाह=कवच। [४५] जमल=(यमल) जुड़वाँ। [४६] औंडी=गहरी। [५०] पौरि=(प्रतोली) पौरी, ड्योढ़ी। कचौंदि गौ=कुचल डाला। सौंदि गौ=सन गया, पानी में डूब गया। स्यौरि=स्मरण करके। तनाउ=(अ० तिनाब) खेमे की रस्सी। [५१] त्रैट=कतार, पंक्ति, ठट्ट। मारू=बड़ा डंका। दमामो=नगाड़ा।

७

[४] सोस=(फा० अफसोस)। [२४] दादि दीजै=न्याय कीजिए। [२८] परधान=(परिधान) वस्त्र। [३४] नवाजसि=(फा०नवाजिश) मेहरबानी, कृपा। [३७] पामरी=जूती। [४०] प्रतिसूर=प्रतिभट, प्रतिद्वंद्वी। निगर=निगड़,बेड़ी, सिक्कड़। सारस=कमल (लक्ष्मी का आसन)। [४३] तात=पुत्र। अखत्यारी=अधिकार। [५२] मुजरा=(अ०) अभिवादन। [५४] बास=वासना, इच्छा। [५६] जक=धुन। [६१] जैजत हैं=जाते हैं।

८

[२] भुमियाँ=भूमि का मालिक, जिमींदार। [४] वेहडु=जंगल। [१४] सझिनी=छोटा घर। [१५] श्रुति-सिरफूल=श्रुतिफूल (कर्णफूल), सिरफूल (सीसफूल)। [२२] वैश्रवन=(वैश्रवण) कुवेर। [२५] टोपा=(टोप) शिरस्त्राण। मोर=मौर, मुकुट। [२६] पंच सब्द=(पंच शब्द) पाँच मँगलसूचक बाजे—तंत्री, ताल, झाँझ, नगाड़ा और तुरही। [३०] ठाट=समूह। [३१] जमधर=पैनी नोकवाली एक प्रकार की कटारी। [३२] अमोर=अमोल, अमूल्य। [३३] धुकि गयो=गिर पड़ा। [३४] अगावड़=पहले। [३५] लोथकपोथा=शव का ढेर। [३६] अटा=अट्ट, समूह। फूल-झारी=फुलझड़ी। न छिमापनु भरति है=क्षमा नहीं करती, निर्दयतापूर्वक काट करती है। [३८] घनाघन=घन ही घन, बादल। धुरवा=बादलों का स्तंभ। [३६] ब्रात=(व्रात) समूह। [४०] हरधौर=हरदौल। [४१] प्रोहित=पुरोहित। [४२] साँटे=बदले में। रावर=(राजपुर) रनिवास। [४४] गैरिक=गेरू। सैंहथी=शक्ति, बरछी। [४६] किरच=टुकड़ा। हलूका=हलूक, कै। करूरा=करूला, कुल्ला। [५०] फगुहार=फाग खेलनेवाले। [५१] करम=ऊँट। नकारो=नगाड़ा। आलमतोग=झंडा-पताका। [५२] हसम=(अ० हशम) नौकर-चाकर। खसम=स्वामी, मालिक। माही मरातब=(फा० माही=मछली, अ० मरातिब) मुसलमान राजाओं के आगे हाथी पर चलनेवाले सात झंडे जिन पर अलग अलग मछली सात ग्रहों की आकृतियाँ कारचोबी की बनी होती थीं। [५४] ह्वै गयो विठान=दब गया। भभरे=घबराए। छयौ=छा गया। तुसार=(तुषार) पाला। [५६] घूंसि=घूस, चूहे के वर्ग का एक बड़ा जंतु जो प्रायः पृथ्वी के अंदर बड़े लंबे बिल खोदकर रहता है। कौन=(कोण) कोना। [६०] ओरनि=ओले। विभाती=शोभावाली। जरी उठि=जल उठी। [६१] चलदल=पीपल।

९

[१] चिरचंदनी=चिरकाल तक चाँदनी रहती है। [३] हज=मक्के की तीर्थ-यात्रा। राहु=(फा० राह)। [४] दाउ=दाह, जलन। [६] गुपाचल=(गोपाचल)

ग्वालियर। सलामति=(अ० सलामत) कुशल। [१३] गाजी=धर्मयुद्धवीर। [१४] अरिष्ट=अशुभ। [१६] रसा=पृथ्वी। भुमिया=जिमींदार, भूस्वामी। नाके=प्रवेश-मार्ग। भुव धरै=राज्य करता है। गढोई=गढ़पति, किलेदार। [१६] डाँग=पहाड़ी जंगल। चौकिया=अड्डा। [२१] गनागन=(गण+अगण) शुभ और अशुभ गण (का विचार)। [२३] अनंत=सर्प; असीम; अंतहीन (सदा रहनेवाली)। आप=शिव-मूर्ति (अष्टमूर्तियों में से एक); जल; आब (चमक)। अनंत=अपार। हुतभुक=तृतीय नेत्र की अग्नि, वाड़वानल; तेजस्विता। श्रीपति=राम, विष्णु; ईश्वर (अल्लाह)। जलेस=जलमूर्ति, जलाधिप; अनेकानेक जलाशयों के निर्माता। गंगाजल=सिर पर गंगाजल; गंगाजल जिसमें जा मिला; गंगाजल नामक कपड़ा। [२४] दिगपाल=चारों ओर से रक्षा करनेवाले राजा; दिशाओं के रक्षक। विद्याधर=विद्वान्; एक प्रकार के देवता। गधर्व=संगीत के जानकार, एक प्रकार के देवता जिनका मुख घोड़े की भाँति होता है। [२५] गजराज=विशाल हाथी, ऐरावत। कलानिधि=कलामर्मज्ञ; चंद्रमा। मित्र=सखा; सूर्य। मजुघोषा=मनोहर स्वर वाली; अप्सरा विशेष। सुकेसी=(सुकेशी) सुंदर केशों वाली; एक अप्सरा। [२६] वज्र=हीरा; इंद्र का शस्त्र। [३०] मनहार=मनोहर। कटरा=कटार। [३२] खोजा=(फा० ख्वाजा) सेवक। [३३] परगिन=(फा० परगना) भूभाग। सेखि=(शेष)। [३६] तसलीम=(अ०) अभिवादन। [३८] जतहरा=स्थान विशेष। [४३] मतैं=मंत्रणा करते हैं। [४६] जनि दतौ=मत भिड़ो। [४७] पिरिन=(फा० पीर) वृद्ध, बुजुर्ग। [४८] उदवास=(उद्वास)। बींधे=(विद्ध) लगे। [५०] ओली ओडि=आँचल पसारकर, विनयपूर्वक। [५५] पटे=पट्टे, अधि-कारपत्र। [५६] बिष्टारी करयौ=आसन दिया, बैठाया। [५८] कूरो=बुरा। [५६] परिगहु=(परिग्रह) कुटुंबी।

१०

[१] सिकदार=(फा० शिकदार) देहाती परगनों के अधिकारी। [२] वृती=वृत्ति पानेवाला, बिरतिया नाऊ। [६] बिरतु=वृत्ति, जागीर। गहिर=गमीर। [१४] अलिराज=श्रेष्ठ भौंरा। [१७] करवार=(करवाल) तलवार। [२०] मटभेर=भिड़ंत, मुठभेड़। [२१] परतीतिनिवास=विश्वासपात्र। [२४] सौंज=सामग्री। [२६] पतीठि=(प्रतिष्ठा) मान, आस्था। [३६] नियरे=(निकट)। [६१] हरवाय=हड़बड़ाकर, शीघ्रता से। [६२] हमन=हमारे। [६३] महाभय छियौ=अत्यंत भय से छू गया, अतिभय से भर गया।

११

[३] रभाबनी=कदलीवन। रभा बनी=रभा अप्सरा बनीठनी। [४] स्यौं=सहित। [५] बरुना मार=वरुण नामक वृक्ष के श्वेत सुगंधित पुष्पों की माला। दिवि=आकाश में। गंधी=गंध दे रही है। बार=द्वार। [७] खेचर=आकाशचारी ग्रह आदि। [८] निर्वात=(निर्वात) वायु संचाररहित अथवा निर्घात। [९] छत्रबधू=वीरबहूटी। [१०] पटल=परदे। जगलोचननि=सूर्य और चंद्र। [११] रिच्छराज=(ऋक्षराज) भालुओं का राजा (जाबवान्)। [१२] नीलकंठ=महादेव;

मयूर। [१३] अभिसारिनी = अभिसार करनेवाली; संचरण करनेवाली। स्रुतमारग = धर्ममार्ग, धर्म का आचरण; चलने के अच्छे मार्ग। भीम = एक पांडव; अम्लवेत वृक्ष। [१६] चिकुर = केश। चौंर = श्याम चमरी गाय। [१७] चिलक = चमक। अंबर = आकाश; वस्त्र। पयोधर = बादल; स्तन। जलज = कमल; मोती। [१८] पट = वस्त्र। मंदरसावनी = मन दरसावनी। प्रतीहारिनी = (प्रतीहारिणी) द्वाररक्षिका। [१६] लच्छिम = लक्ष्म (चिह्न) वाली। [२०] तमोगुन = (तमोगुण) अंधकार का गुण; तीन गुणों में से तीसरा। पतिदेवता = पति को देवता मनानेवाली, पतिव्रता। [२१] मित्रउद्दोत = सूर्य का उदय। [२२] भगवंत = भगवान् (सूर्य)। [२४] पद्मिनी-प्राननाथ = सूर्य। भय = भए, हुए। किल = निश्चय। [२६] झुकि = खीझकर। [२७] हरि = घोड़ा। खचर = (सं०) सूर्य। [२८] निर्तक = नृत्य। जमनिका = (यमनिका) परदा। [२६] देखिए 'रामचंद्रचंद्रिका ५।१४'। [३२] सब्दति = नाद करती है। [३३] हरिमंदिर = समुद्र। चक्र = सुदर्शन चक्र; चकवा। [४३] साँकरे = संकट। [४६] अधगति = अधोगति। त्रिसक = (त्रिशंकु)। [४७] नठी = नष्ट हुई। [५०] पादारघ = (पाद्यार्घ्य) पैर और हाथ धोने का जल। [५२] खोजा = (ख्वाजा)। [५३] लोहो = हथियार। [५४] बसीठइ = दौत्य।

१२

[८] बाहनि = (वाहिनी) सेना। पाखर = झूल। सिरी = (श्री) हाथी के माथे पर का एक गहना। [६] ताते = तीखे। तरल = चंचल। [१०] कुनित = (क्वणित) ध्वनि करती हुई। घूघर = घुँघरू। [१२] अराबो = (अ० अराबा) तोप लादने की गाड़ी। [१४] रज = रजपूती। [२२] उसारनि = हटाने के लिए। [२६] बलत्र = (वरत्रा) रस्सी। [३३] इभमसुंड = हाथी का मुख। खजुवा = खपुआ, एक प्रकार की तलवार। [३४] भुकैं = गिर पड़ते हैं। कुल्हाटैं = पैर ऊपर और सिर नीचे करके उलटना। [३६] करिवार = (करवार) तलवार। [३८] निस्सानु = नगाड़ा। [४३] बानैत = धनुर्धर, तीरंदाज।

१३

[२] खर्ग = (खड्ग) तलवार। मुरकायौ = मोड़ लिया। घनाघन = घन ही घन, बादल। [५] काबिलपति = काबुलपति। [६] भनैजि = भानजी। जनी = दासी। [७] उरगन = ऋणमोचन। सतु = सत्तू। झर = ज्वाला। [१०] साँकरें = सकट। [११] दुनी = दुनिया, संसार। [१५] ग्वाँइ = गवाँकर। भारत = महाभारत का युद्ध। [१६] प्रमुक्कइ = चाहे छोड़ दे। तच्छिन = (तत्क्षण) उसी क्षण। [१७] पेस = (फा० पेश) आगे, पहले। ज्ञातिजन = जाति-बिरादरी के लोग। [१८] जीमूत = बादल। बिंधि = विंध्य पर्वत। छौवा = (शावक) बच्चे। कालजौन = (कालयवन) यवनों का एक राजा। दौवा = दादा, बड़ा भाई या पिता।

१४

[३] अँगए = अंगीकार किए हुए। [८] अगारु = (आगार) पानी से बचाव के लिए छाजन। सीतारत = (शीतार्त) शीत से त्रस्त। [१६] जच्छराज = (यक्षराज)

कुवेर । फरी=फली । [१६] ढोवा=ढोने की क्रिया । [२१] ढोवा=आक्रमण, चढ़ाई । [२४] उटक्यौ=थहा लिया । [२७] बोहित=जहाज । करिया=मल्लाह । किरवारो= किलवारी, पतवार; तलवार । [२६] जामिन=जमानतदार । हरि=इंद्र । [३१] मन जिमि=मन के समान वेग से, अति वेग से । रावर=रावल, रनिवास । टान=स्थान [३३] गलवल=कोलाहल । पचम=एक उपाधि । सिंरी=हाथी के मस्तक पर का गहना । खोल=म्यान । [३६] रज=रजपूती, वीरत्व । [३६] पजा=पंजे की छाप, जो परवानों पर की जाती थी । नेव=(फा०नायब) सहायक । [४६] ससा=(शश) खरगोश । [५४] चलदल=पीपल । [५५] अपचल=अपनी चाल से । [५८] देव-सिरमौर=विष्णु । [६३] परिगह=(परिग्रह) कुटुंबी । दसौंधिय=यशगायक, भाट ।

१५

[४] आवास=घर । [५] हरतार=हरताल (जो अक्षरों को छेकने के लिए काम में लाई जाती थी), लोपकारक । [६] हस=परमहस । हस=पक्षी विशेष । वदन=सिंदूर । [१२] समर=(स्मर) कामदेव । [१४] कल्हार=(कह्लार) श्वेत कमल । सुर=सूर्य (ने) । [१५] सुरराट=इंद्र । [१६] सुर की=इष्टदेव की । [१७] करहाटक=कमल का बीजकोश । हाटक=सुवर्ण । केसव=विष्णु । कमलासन=ब्रह्मा । [१६] चक्र=चक्रवाक, चकवा । [२२] जबुक=शृगाल । आनक=मदार । कनक= धतूरा । कुवलय=कुमुद (रात मे खिलनेवाला एक प्रकार का श्वेत कमल) । [२५] दात=दांत, दमित । सुबरनहर=(सुवर्ण+हर) सोने का अपहरण करनेवाला । सुबरन हर=सुवर्णवाले महादेव । परत्रिया=परकीया नायिका । परत्रियाप्रिय=परदारा (लक्ष्मी) के प्रिय, विष्णु । [२६] सुरापी=(सुराप्री) मदिरा जिन्हें प्रिय है । सुरापी=मदिरा पीनेवाला । ब्रह्मदोषिन=ब्रह्महत्या के दोषियों को । तपसीला ये=यह तपशीला होकर भी । नगन=नग्न । सप्तगति=सात धाराओंवाली । [२७] दिगंबरा=दिशाएँ ही जिसके वस्त्र हों, खुली हुई । अबर=आकाश । जीवन=जिंदगी; जल । बिष=जहर; जल । [३०] तुंगारन्य=(तुगारण्य) ओड़छा के पास वेतवा के तट पर का एक वन । ब्रह्मसूत=(ब्रह्म-सूत्र) यज्ञोपवीत । [३१] देखिए 'कविप्रिया, ७ । १३' ।

१६

[१] द्वारावती=द्वारका । [३] तपसीलाति=(तपशीला+अति) अत्यत तपस्विनी । [५] निगर=(निकर) समूह । [१४] दारू=बारूद । [१७] सावथ= सामत । [१६] दरखनि=(फा० दरखा) । [२०] बीथी=गली । [२८] ह्री=व्रीडा या विनय की अधिष्ठात्री देवी । धी=बुद्धि, मति ।

१७

[२] डासन=बिछौना । [७] दाग=छाप । [११] अवास=(आवास) घर । [१४] छतुरी=(छत्र+ई प्रत्यय) छोटा मंडप । [२५] जरबाफनि=(फा० जरबाफी) जरदोजी का काम की हुई । [२६] कुल्हा=वह घोड़ा जिसकी पीठ की रीढ़ पर बराबर काली धारी होती है, कुल्ला । कुमैत=(तु० कुमेत) लाखी घोड़ा । कुही, कुरग,

करारिया, कच्छी=घोड़ों की जातियाँ [२७] खिलैं=छजते हैं। खेचरी=घोड़े का नाम। खरक=खटक, आशंका। खँधारी=कंधार देश का घोड़ा। [२८] गुरगी=कुर्ग का अर्थात् ईरानी घोड़ा। गिरद=गुर्दिस्तान या कुर्दिस्तान का घोड़ा। [२६] चौधर, चाभुकी, =घोड़े की चाल। चाभुक=(फा० चाबुक) कोड़ा। [३०] छौहैं=चपलता। छुवा=एँड़ी। जादरु=एक जाति का घोड़ा। सदली=एक प्रकार का घोड़ा। [३१] रवै=बोलता है, हिनहिनाता है। रवै=रमता है। [३३] तुरकी=तुर्की घोड़ा। लालि=लालसा, चाह। थूल्ह=स्थूल। थुनी=खूँटा। [३५] पुठीन=पुट्ठे। थरी=(स्थली) पचकल्यान=(पचकल्याण) एक प्रकार का घोड़ा जो शुभ फल देनेवाला माना जाता है। [३६] बलके=बलख या वाह्लीक के घोड़े। बलोची=बलूचिस्तान के घोड़े। [३७] बदकसान=बदखशाँ के घोड़े। [३८] रोमराट=रोम के राजा। [३६] लाखौरी=कुछ कालिमा लिए हुए लाल रंग का घोड़ा। लीले=नीले। [४०] हरसुलै=(हर्षुल) अर्थात् हिरन की सी चाल वाले घोड़े। [४१] तुखार=तुखारी घोड़ा। [४२] हते=थे। सालिहोत्र=(शालिहोत्र) अश्वविज्ञान के कर्ता ऋषि। [४४] बिट=(विट्) वैश्य। [४७] जौगरी=घोड़े का एक दोष। [४८] हनु=जबड़ा। [५१] कूँखी=(कुक्षि) कोख। नरी=नली। [५२] मुरवा=पैर का गिट्टा। पूठि=पीठ। [५७] सुंम=सुम, टाप। [६७] खसमैं=(अ० खसम) स्वामी को। [७०] बायबरन =भूरा।

१८

[१] मधुपुरी=मथुरा का प्रचीन नाम। घन=मँजीरा। घरियार=घड़ियाल, पूजा में बजनेवाला बड़ा घंटा। झालरी=एक बाजा। भेरि=(भेरी) दुंदुभी। [५] सासना =उपासना। कुरी=कुलवाले, जाति। [१०] बिधवा=धवा नामक वृक्ष से रहित; पतिविहीना। [११] दुर्गति=टेढ़ी स्थिति, बुरी गति। वृत्ति=(वृत्ति) सूत्रों की व्याख्या; जीविका। [१२] श्रीफल=बेल; स्तन। [१६] मखधूप=यज्ञ की धूप (का धुआँ)। [२०] देखिए 'रामचंद्रचद्रिका, ५। १६'। [२३] परनारी=दूसरों की नाड़ी, दूसरे की स्त्री। [२४] निग्रह=अवरोध। रार=(राटि) लड़ाई। [२५] बेझोई=(वेध) लक्ष्य, निशान।

१६

[४] पाँगुरे=पगुल। [६] चौगान=घोड़े पर चढ़कर खेला जानेवाला गेंद का खेल। [७] दमानक=तोप दागना, यहाँ बंदूक की मार। बान=बाण (से लक्ष्यवेध)। समूधी दै दै=चक्कर दे देकर। धाप=दौड़ का मैदान। [११] गोय=गेंद। [१७] हाल=चौगान। [२१] सेत=(सेतु)। [२३] अधफर=आकाश में कुछ ऊपर।

२०

[३] करी=कड़ी, शहतीर। बरगा=छोटी पटिया। [४] सीकैं=(फा० सीख़) छड़ें। [५] दुगई=ओसारा। [१०] अवरोध=अतःपुर। [१३] आदर्स=(आदर्श) दर्पण। अँगराग=(अंगराग) सुगधित लेप। [१५] अतुक=(अगुरु)

दुपट्टा। [३१] पलिकनि = पलग। [३२] परेखैं = पछतावा। [३२] ग्राम = सात स्वरों का समूह, सप्तक। आलतिकाल = लतिका आदि लय के भेद। [३३] गमक = सगीत में एक स्वर से दूसरे स्वर पर जाने का प्रकार। इसके सात भेद होते हैं। मूरछना = (मूर्च्छना) संगीत में एक ग्राम से दूसरे ग्राम तक जाने में सातों स्वरों का आरोह-अवरोह। जति = (यति) विश्राम, विरति। रय = वेग, तेजी। उरपति, आडाल = (उड्डुप), (अडाल) नृत्य के भेद। [३४] सब्दचालि (शब्दचालि), टीकी, उलथा, आलम, डिड, दुरमति = नृत्य के भेद। [३५] असरार = निरतर। [३६] तार = ताल, मँजीरा। मुरज = मृदग। [३७] हस्तक = संगीत का ताल।

२१

[३] धुरलनि = खूँटियाँ। [५] कुपी = कुप्पी। [६] दुलीचा = गलीचा, कालीन। [७] गरद = एक प्रकार का रेशमी कपडा। उपरीठा = ऊपरवाला, ऊपर। [८] पलँगपोस = (पलंग + फा० पोश) पलग की चादर। [६] गेडुँवे = (गड्डुक) तकिया। [१०] गलसुई = गालों के नीचे रखने का कोमल तकिया, गलतकिया। बनझारी = पानी रखने का पात्र विशेष। [१२] सालिकनि = शालिकाएँ। [१७] अवरोध = रनिवास। [२२] विरर = (विरल) विरले। [२८] सुदतिन = सुंदर दाँतोंवाली स्त्रियाँ। [२६] परदनि = भीत, दीवार। पत्रित करैं = पत्ररचना करती हैं [३२] साँवत = सामंत। [३३] रंज = एक प्रकार का बाजा। आवझ = आवज, एक प्रकार का ताशा। तार = ताल, मँजीरा।

२२

[६] गंडूक = (गंडूष) कुल्ला। [१३] तात = (तति) श्रेणी। [१४] मर्दनिया = मालिश करनेवाले। [१८] बरत = वरत्रा, रस्सी। [२२] पासवान = (फा० पासवाँ) पार्श्ववर्ती, सेवक, साईस। [३३] नभश्री = सूर्य। [३४] अँड = अडा। [३६] हरिनाधिष्ठित = (हरिण = विष्णु + अधिष्ठित = विराजमान)। [३७] जसकद = यश की जड। [३६] पासवान = (फा० पासवाँ) पास में रहनेवाला सेवक, पार्श्ववर्ती। [४७] मोरचद = मयूरचंद्रिका, मोरपख में की आँख। [६३] खुटिला = कान का एक आभूषण। द्विजगन = दाँतों का समूह। [६५] बानी = (वाणी) बोली। बानी = (वाणी) सरस्वती। [६७] सींक = नाक का आभूषण, लौंग। [६८] पातुर = (पतिली) वेश्या। [७३] भूखंत = भूषित होते हैं। सुवृत्त = सुंदर छंदों से युक्त; सुंदर गुलाई लिए हुए। [८२] पृथुल = मोटा। [८४] तरवनि = तरौने, कान के गहने। [८५] जेहरि = पायजेब। [८६] चौकी = गले का एक गहना। [८६] अनखनि = ईर्षा से। [६१] वसवात = वातवश, हवा से।

२३

[३] आराम = बाग। [५] आलवाल = थाला। हर-जरहरी = महादेव की जलहरी, अर्घा। [११] वैहरि = वायु। [१४] मोकि = डालकर। [१५] सदाफल = नारियल। श्रीफल = बेल। वच्छोज = (वक्षोज) स्तन। [१८] जलजत्र = (जलयंत्र)

फौवारा। [२८] लोपामुद्रा = अगस्त्य ऋषि की पत्नी। [२९] केरिनि = कदली, केला। [३०] खारिक = (खारक) छुहारा। एला = इलायची।

२४

[३] मैनाक = एक पर्वत जो इंद्र के डर से समुद्र में जा छिपा था। एन = (एण) काले रंग का हरिण। [५] सुभ्रक लोक = शुभ्र लोक, प्रकाश लोक। [६] तुट्टित = टूटी हुई। [१२] साँकर = शृखला, जंजीर। निस्सरी = निकली। [१५] दहनदुति = अग्नि का अंगारा।

२५

[३] घौंचा = झब्बा। [६] लोचन करि = नेत्रों के द्वारा। [१०] कैहूँ = किसी प्रकार। [१४] दव = दावाग्नि। चद्रातप तन = मूर्तिमती चंद्रिका। [१५] बिस = कमल। [१७] बिष = जल; जहर। पय = पै, पर। सबर = जल; कामदेव का शत्रु शबर दैत्य।

२६

[२] जून = जीर्ण। [८] स्वाहा = अग्नि की पत्नी। [९] मौर = (मुकुल) मंजरी। [१६] चद्रक = कपूर। उनहारि = सादृश्य, समानता। [१७] भकार = ध्वनि (नगाडे की)। [२०] पाकसासन = (पाकशासन) इंद्र। [२२] ग्रामसिंघ = ग्रामसिंह, कुत्ता। [२४] खोरे = लूले-लँगडे। खंज = पशु। [२५] फिरक = एक प्रकार की घुमावदार छोटी गाड़ी। [२९] अमरेस = (अमरेश) इंद्र। अमरेस = (अमरेश) वीरसिंह। [३४] नकवानी = नाक में दम, ऊब जाना। [४०] कलिंद = वह पर्वत जिससे यमुना नदी निकली है। प्रलब = एक राक्षस जिसे बलदाऊ जी ने हराया था। बल = बलराम। [४९] कुमडल = पृथ्वीमडल।

२७

[१] द्यौस = (दिवस) दिन। [२०] उदै = सूर्योदय। उदौ = (उदय) उन्नति। [२४] सुभगती = शुभगति, सद्‌गति; सुभक्ति। [२७] त्रिविक्रम = वामन का अवतार। सौनक = (शौनक) एक पौराणिक ऋषि। सनक = ब्रह्मा के चार मानसपुत्रों में से एक। बनक = बनावट। [२९] पाँचै = पच को।

२८

[२] धोवती = धोती। उपरैना = उत्तरीय, दुपट्टा। [५] कृतजुग = (कृतयुग) सत्ययुग। [६] अथर्वन = अथर्ववेद। [७] पुंडरीक = श्वेत कमल। इंदीवर = नीला कमल। [९] साग = साथ, सग। [२९] नजीक = (फा० नजदीक) अर्थात् निकट के लोग।

२९

[६] बुरे = परे, दूर। [२२] मैनवलित = (मदनवलित) मोमयुक्त, कामयुक्त। [२९] अपन्याइति = अपनापा। [३४] आसीविष = (आशीविष) सर्प।

३०

[२] स्वार=(सूपकार) रसोइया । [४] काहली=(अ० काहिल) आलसी । [६] सर्म=(शर्म) सुख, आनंद । [१०] परिजा=(प्रजा) ।

३१

[७] मुद्रा=मुहर । [१२] मन्य=मान्य, माननीय । [२०] बार=केश । [२२] निसा=(निशा खातिर) तृप्ति । [२४] अस्त=छिपा हुआ । [३२] साहसी=(साहसिक) डाकू । वटपार=राह-बाट में लूटनेवाला । [३४] ऊजर=उजाड़ । [४७] दडमान=दंड्यमान, दंड देने में प्रवृत्त । धूत=(धूर्त) । [५१] कुपैंडे=बुरे मार्ग पर । गोतो=गोत्र का संबंध । [६१] मचला=जानबूझकर अनजान बनने वाला । ज्वार=जुआरी, जूआ खेलनेवाला । [६४] मेड़ै=सीमा में । [६५] पैले=परली । कुघा=ओर । [६७] कर्सनी=कर्षणीय । [६६] बिसनी=(व्यसनी) । [७०] छेव=छेद, नाश । [७६] बिसरु=(विशर) वध । [८८] पुरुखागत=पूर्व-पुरुषों से आई परंपरा । [६०] गुरमन=गुरुत्ववाले । [६५] छीरोदय=(क्षीरोदक) क्षीरसमुद्र ।

३२

[२४] आँक=(अंक) चिह्न, भाग्यलेख । [२८] चामीकर=सुवर्ण । बटुआ=वह गोलाकार थैली जिसमें कई खाने होते हैं । [३६] अचित=गुंफित, युक्त । [३८] तारा=देवी । सारा=रक्षा, पालन-पोषण । दारिद-दारा=दारिद्र्य की पत्नी । [४२] लहुरे=लघु । [५१] गंधर्ब=(गधर्व) घोड़े । [५२] साटै=बदले में । विढ़ायौ=सञ्चित किया हुआ, कमाया हुआ । [५३] थानसुत=(स्थाणु+सुत) गणेश । [५४] नर्क=(नरक) । [५५] कामगवी=कामधेनु ।

३३

[१७] हरधौर=(हरदौल) । [२८] अन्हैजै=स्नान कीजिए । जैजै=जाइए । अैजै=आइए । बैजै=बोइए । [३०] फनक=(फण) । [३२] बलिबंड=बलशाली । कुंडली=जलेबी । निखंग=(निषंग) तूणीर, तरकश । [३७] आखंडल=इंद्र । [३८] नाँग=(नग्न) । [४३] कप-जोगी=काँपने (की स्थिति) वाली । चक्र=चक्रवाक, चकवा पक्षी । [४४] परदारप्रिय=पराई स्त्री को प्यार करनेवाले; लक्ष्मी के प्रिय । [४५] भूति=विभूति, भस्म । [४६] कठ=निकृष्ट । करी=हाथी । काठ मारियै=काठ की बेड़ी पहना दीजिए । [४७] देखिए 'रामचंद्रचंद्रिका, २७।३' । [४८] बाखर=बख्तर । आसिखा=आशीष ।

जहाँगीर-जस-चंद्रिका

[१] नखतेस=(नक्षत्र+ईश) चंद्रमा । स्वाहेस=(स्वाहा+ईश) अग्नि । नदसाहि=जहाँगीर की सम्मानित उपाधि । [२] माधव=वैशाख । [३] बच्छ=(वत्स)

पुत्र। करबर=श्रेष्ठ हाथ। मूरि गर की=विष की जड़ (मूरि=मूल, जड़; गर=विष)। पातसाही=(फा० पादशाही) बादशाहत। [४] खानखाना=अब्दुर्रहीम खानखाना। तनु-त्रान=(तनु+त्राण) कवच। [५] खलक=(अ० खल्क) दुनिया। [८] बिरयो=विरले ही। [११] बादु=(वाद) वाद-विवाद। [१५] मेहु=(मेघ) वृष्टि। [१६] सूद=(शूद्र)। गोकुल=गो-समूह। सकर=वर्णसंकर। [१८] मृकंड-सुत=मार्कंडेय ऋषि। हैयै=है ही। [१६] सुआर=(सूपकार) रसोइया। [२४] पानिनि=वैयाकरण पाणिनि मुनि। [२८] थावर=(स्थावर) अचर। बरहीं=बलपूर्वक, जबरदस्ती। बान सी=बाण की सी मार। श्रीमथुरा=मथुरानगरी। भव=संसार में। भानु-भवा=यमुना। गुन=डोर, प्रत्यंचा। भौर=भ्रमर, भौरा। [३२] उजबक=(तु०) तातारियों की एक जाति। जवास=(यवास) एक कँटीला क्षुप। जलालदीन=(जलालुद्दीन) अकबर की उपाधि। [३३] वलित=(वलित) युक्त। [३८] आलमपनाह=संसार को शरण देनेवाला। वतन=(अ०) मुल्क, देश। [४०] आगरो=दक्ष। आगरो=आगरा नगर। बारिबाह=बादल। [४७] पाइक=(पायक) सेवक। [४८] कर्नाल=सिंघा। किन्नरी=किन्नर नारी। किन्नर=सारंगी। [४६] बेड़िनी=नाचने गानेवाली नटजाति की स्त्री। [५०] एन=(एण) मृग। झारी=झाराझार। बोक=बकरे। दती=हाथी। लोहपूरे=सिक्कड में बँधे। [५५] लालिबे कौं=प्यार अर्थात् समान करने को। दढ़ाइबे कौं=जलाने को। [५७] परेस=(पर=सबसे परे+ईश=स्वामी) परमात्मा। [५६] उलक=एक जाति। रज=धूल, रजपूती; वीरत्व। खधारी=कधार (गाधार) के निवासी। चलदल-पान=पीपल का पत्ता। खरक=खटक। [६५] गख्खरी=(गक्कर) पंजाब के उत्तर पश्चिम में रहनेवाली मध्यकालीन जाति विशेष। [६६] उसार=दूर होना, हटना। अच्छनीनि=नेत्रों को। [७३] चलवेला=चलायमान। [७७] रतन=(रत्न) उत्तम, श्रेष्ठ। [७८] बखत=(फा० बख्त) भाग्य। बिलद=(फा० बुलंद) ऊँचा। [७६] नाके=लाँघे। समसेर=(फा० शमशेर) तलवार। सम सेरन=(सम=समान, सेर=शेर) जिसकी बराबरी सिंह भी न कर सकता हो। [८३] बागर=ऊँची भूमि जहाँ जल का सचार नहीं हो पाता। बीस बीसे=(बीस बिस्वा) पूर्ण रूप से। गढ़ेस=(गढ़=किला+ईश=स्वामी) गढ़पति, किलेदार। [८५] पिछौड़े=पीछे की ओर। [६०] पट्टुका=दुपट्टा। जरकसी=(फा० जरकशी) जिस पर सोने के तार खचित हों। इतबार=(अ० एतबार) विश्वास। [६३] गोपाचल=ग्वालियर। [६५] भेक=मेढक। [६७] टोहै=खोजता है। बासुकि=(वासुकी) आठ नागों में से दूसरा। बासु=निवास। बासुकि=राजा का नाम। [६६] खेस=(फा० खेश) नाता रिश्ता। [१०६] श्रीप=(श्रीपति) विष्णु, ईश्वर। उजारे=उजाले में। [११०] देखिए 'रामचद्रचंद्रिका, २।१०'। [११४] इस छंद में दो अर्थवाले शब्द हैं। एक अर्थ जहाँगीर के पक्ष में दूसरा इंद्र के पक्ष में घटित होता है। जैसे—कवि=काव्यकर्ता; शुक्र। सेनापति=सेनानायक; स्वामि कार्त्तिकेय। कलानिधि=कलावंत; चंद्रमा। गिरपति=विद्वान्; गीर्पति, बृहस्पति आदि। छम=(क्षम) सक्षम, समर्थ। [११६] आदरस=(आदर्श) दर्पण। [११८] धर-धाता=पृथ्वी का पालन करनेवाला। [११६] ठेगा=छोटी लाठी। कौपीन=लँगोटी। [१२२] अदष्ट=अदृश्य।

अदृष्ट=प्रारब्ध । प्रकृष्ट=प्रबल, प्रचंड । भीति=भय । [१२४] जरित जराय=रत्नजटित । सिंदूख=(अ० संदूक) अलारी । जलाजलै=(झलाझल) झालर । घाँट=घंटा । [१२६] गुदरन गे=निवेदन करने गए । [१३०] मनुहारी=खुशामद । [१३२] मुद्रिकाभिमुद्रिता=मुद्रिका रूप से घिरी । [१३७] कोद=ओर । [१३६] आलम=(अ०) दुनिया । [१४१] परावरेषु=सर्वश्रेष्ठों में । [१४५] बाहुवर=बाहुबल । [१४८] ऐन=ठीक । [१५२] आँक=(अंक) भाग्यलिपि । [१६३] अनर्घ्य=अमूल्य । [१६८] सरम=श्रम, सिद्धि । औलियान=(अ० वली, औलिया) पहुँचे हुए फकीर । [१७१] नियेता=नेता, नायक । [१७८] दाइ=(दाय) भाग, हिस्सा । [१८२] दिवि=आकाश । [१८६] आखडल=इंद्र । असोग=(अ+शोक) शोकरहित होकर । [१६६] उपजाइ=उपजाकर, जन्म देकर । [२००] गाहौं=थहाऊँ । सलामति=(अ० सलामत) कुशल ।

विज्ञानगीता

१

[१] निरीह=इच्छारहित । निरंजन=अजन (माया) से रहित । सर्बग=(सर्वग) जो सर्वत्र जा सके । नेति=(न+इति) जिसकी इति (अत) न हो, अनत । [२] विमला=सरस्वती । अमला=स्वच्छ । हते=थे । दुरंत=जिसका अंत पाना कठिन हो, भीषण । उर कों जारत=दुःख मोह आदि हृदय को जलाते हैं । परमेसुर=(परमेश्वर) ब्रह्मा । [४] देखिए 'कविप्रिया, ७।१३' । [६] भाषा=व्रजभाषा । [७] नागभाषा=नागों की भाषा प्राकृत भाषाएँ (अपभ्रंशसहित) । [११] सुक्ति=(शुक्ति) सीपी । [१७] नठानी=नष्ट हुई । [२०] पुवार=पुआल । अलोक=कलक । बिलाए=नष्ट हो गए । [२७] परदल=शत्रुसेना । चलदल=पीपल ।

२

[८] सूली=(शूलिन्) त्रिशूलधारी, महादेव । हली=हलधर बलराम । चक्रधारी=विष्णु । [११] प्रसस=प्रसिद्ध । [१६] त्रिमातनि=(वैमात्य) सौतेले भाइयों । उपायौ=किया । बारे=छोटे । [२०] मनजात=कामदेव । [२१] कीदसी=कैसी । [२२] समता=समति ।

३

[८] मुंडे=मुँडवाए । बादि=व्यर्थ । [६] मेखला=करधनी । अक्षमाल=रुद्राक्ष की माला । मुष्टिके=मुट्ठी । मठपाल=मठाधीश । [११] नीरे=(निकटे, नियरे) समीप में, पास में । [१३] सयान=सयानपन, चतुराई । [१४] जाए=उत्पन्न किया । [१६] रतीक=एक रत्ती, रत्ती भर । [२६] गरावत=गलाता है । ईठई=मित्रता । [२८] रीतत=खाली होने में । रितयौ न=बिताई नहीं । आरतताई=आर्ति, क्लेश । [२६] नघ्यौ=लाँघा । [३०] तिमिंगिल=बड़ी मछली को निगल जानेवाला समुद्री जलजीव ।

४

[३५] अर्जमा = (अर्यमन्) पितृगणों में से एक जो सर्वश्रेष्ठ हैं [३६] बिदेहजा = जानकी। [४२] देखिए 'जहाँगीर-जस-चंद्रिका, २८'।

५

[२] ततो = तो। [४] पुमान = पुरुष, मर्द। [७] प्रमा = यथार्थ ज्ञान। बातांबु = वायु तथा जल। [६] रावर = रनिवास। [१०] तृष्निका = तृष्णा। [११] अलच्छी = अलक्ष्मी, दरिद्रा। अलज्जी = अलज्जा, निर्लज्जा। [१२] पिछान = पहचान-कर। [१४] तत्री = परिवार के लोग। [२०] बार-बिलासिनि = वेश्या। अनोदक = (अन्न + उदक = जल)। [२२] जजैं = (अनुष्ठान) करते हैं।

६

[२२] सर्मदा = (शर्मदा) आनददायिनी। जगत्प्रकास = सूर्य। सुता = पुत्री (यमुना)। कृतानसोदरी = (कृतात = यम + सोदरी = बहन)। चिन्हाउ = पहचानवाले। [३५] बसीठ = दूत। [४०] जन्यौ = उत्पन्न किया। बलिबंड = बली। [४१] कलत्र = पत्नी। [४३] हरुवाय = हड़बड़ी से। [४५] मतु = मत्र, मत्रणा। [४६] तपसा = तपस्या। [५०] उमाधव = शिव। [५६] भेवे = भेद, प्रकार। [६३] भौर = समूह। [७३] बिटप = वृक्ष, पेड़।

७

[७] नागलता-दल = ताबूल। कूरे = (स० कूट) ढेर, राशि। [६] जलज = मोती। [१०] हेत = प्रेम, स्नेह। टहल = सेवा। बिय = अन्य, दूसरे। [१३] जारनि = परपुरुषों में। [१४] सिला = (शिला) चट्टान। [१७] बारन = (वारण) हाथी। [१८] तरी = नौका, नाव। कृस्ना = काली। पाट = (नदी की) चौड़ाई।

८

[२] दात = देनेवाली। [३] काछनि = कछारों में। चँडार = चाडाल। [४] जेंवति = खाती है। चेतिका = चिता। [५] सूर-नदिनि = यमुना। [८] लबार = मिथ्यावादी। [१०] लुचित = नुचा हुआ। सिखी-सिखड = मोरपख। श्रावका = (श्रावक) जैन साधु। [११] अरहंत = (अर्हंत) जिनदेव। [१२] बीटिका = पान का बीड़ा। मृगनाभिमै = कस्तूरीयुक्त। घनसार = कपूर। [१३] पिसग = पीलापन लिए हुए भूरे रग का। चूड = चोटी, शिखा। [१५] भुक्ति = भोग। रममान = रमण करते हुए। [१८] सासना = उपदेश। [२०] नृकपाल = मनुष्य की खोपड़ी। कपालिक = खोपड़ी लेकर भीख माँगनेवाला साधक। [२५] कौपीन = लँगोटी। स्यों = सहित। मालाक्ष = रुद्राक्ष की माला। [२७] अग्नि-बंधन = आग को बाँधना (रोकना)। परकाय मध्य प्रवेस = अपने को दूसरे के शरीर में प्रवेश करने का योगसिद्ध प्रयोग। [२६] ग्यासि = एकादशी। [३०] स्यामवंदनी = राधाकुड की मिट्टी जिसे कृष्णभक्त तिलक रूप में मस्तक पर धारण करते हैं। भाग = भाग्यस्थान, ललाट। [३४] सर्म = (शर्म) सुख, आनद। [३७] साध = (श्रद्धा) उत्कट इच्छा। [४३] उगार = (उद्गार) उगली हुई वस्तु। [४४]

तत्र = मर्यादा। [४५] विकल्प = सोच-विचार। [४६] सधर = ऊपर का ओठ। अधर = नीचे का ओठ। [५०] षोडस उपचार* = (षोडशोपचार) पूजन के सोलह प्रकार।

६

[१०] राउर = रनिवास। जह्नुनंदिनि = गंगा। [२१] अपलोक = अपयश। [२७] बटपार = लुटेरा, डाकू। ईति = देखिए 'कविप्रिया ८। ५'। [३३] खिजाय कै = क्रुद्ध होकर। [३८] काकपक्ष = कुल्ला, जुल्फ। दीप = (द्वीप)। [४०] मरुत्त = चंद्रवंशी महाराज अवीक्षित का पुत्र (चक्रवर्ती राजा)। [४७] पुतरियन = पुतलियाँ, गुड़ियाँ। [४८] निरध = अधिक अंधकार से युक्त। मिठानौ = मीठा लगने से। रानौ = (राणा) राजा। [४९] निरैपद = निरयपद, नरक। पैंड = मार्ग। [५१] सबर = (सं०) एक प्रकार का मृग। बोधा = ज्ञाता। [५३] सलोम = रोमयुक्त। कामथरी = (कामस्थली)। [५७] डासन = बिछौना। [५८] समतूल = समान। [५९] डोंडि = डौंडी, डुग्गी।

१०

[५] अपमारग = जलमार्ग; कुमार्ग। हस्त = हाथी; हाथ। हस = पक्षी विशेष, विवेकी। कलानिधि = चंद्रमा; कलावत। सूरप्रभा = सूर्य का प्रकाश, वीरों का तेज। सिखंडिन = मयूरों; कायरों। [६] घनाघन = बादल ही बादल। घूरो = घूमा, चला। खेचर = आकाशचारी जीव। [७] तडिता = बिजली। चदबधू = बीरबहूटी, बरसाती लाल कीड़ा। [९] अपमारग = जलमार्ग; कुमार्ग। सतमारग = साफ सुथरा मार्ग; सन्मार्ग। [१०] छनभा = (क्षणप्रभा) बिजली। जलजावलि = मोती की माला; कमलसमूह। पयोधर = कुच; बादल। [११] भव = जगत्; शिव। जीवन = जल; प्राण। परिताप = विशेष गरमी; संताप। रवि के कुल कों = सौर परिवार को; सूर्यवंशी राम को। सती = महादेवी। [१२] देखिए 'रामचंद्रचंद्रिका, १३। १९'। [१४] समीति = आगमन, आना। [१६] सिगारहार = हरसिंगार, परजाता, शेफाली। [२०] बिभूति = ऐश्वर्य; भस्म। [२१] कुवलय = भूमंडल; कमल। चिलक = चमक।

११

[१] बसीठई = दूतत्व। बाहनी = (वाहिनी) सेना। [३] सों = सहित। चितावली = चित्रावली। [४] राजि = पंक्ति। कोह = क्रोध। सोध = (शोध) पता, समाचार। [५] अवास = (आवास) वासस्थान। विधूत = हिलती हुई, फहराती हुई। [६] रॉचत = अनुरंजित होता है। [८] रामरच्छा = (रामरक्षा) रक्षा करनेवाला राममत्र। [९] बसीठ = दूत। [११] साधि समीर = प्राणायाम साधते हैं। [१२] उमाधव = महादेव। [१३] गुदरे = प्रार्थना की। [२४] धराधारधारी = धरा + आधार + धारी। निराधार = आकाश। [२५] अरूपी = निराकार। चिद्रूप = चित् + रूप।

---

*आसन स्वागत पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्।
मधुपर्काचमनस्नानवसनाभरणानि च॥
सुगन्धिसुमनोधूपदीपनैवेद्यवन्दनम्।
प्रयोजयेदर्चनायामुपचारास्तु षोडश॥

गीधौ=गीध (जटायु) को भी। बिराधौ=विराध नामक राक्षस को भी। [२६] अनताभिधेयं=जिसके अनंत नाम हों। [२७] अमेय=जिसका अंदाज न लगे। प्रबर्जी=होता, होम करनेवाला। [२८] त्रिस्रोता=गंगा, गंगा त्रिपथगा है—आकाश, मर्त्य और पाताल तीनों लोकों में इसके स्रोत हैं। सूत्रयी=सूत्र रचनेवाला। [३०] रमाधौ=विष्णु। उमाधौ=महादेव। [३५] दारि=दलन कर। गजि=तोड करके। [३७] सर्मदानि=आनद देनेवाले। [४५] ध्वात=अधकार। [४६] बिहगे=हे आकाशचारिणी। [४७] न्याय=ठीक ही। [५१-] स्मरेहूँ=स्मरण करने मात्र से भी। छियें=छूने से। [५२] गिराधौ=ब्रह्मा।

१२

[२] मुर्ज=(मुरज) पखावज। करनाल=सिंघा। [५] कैतव=बहाना। [७] सौगत=बौद्ध। [१६] क्रुकि=क्रुद्ध होकर। [१७] तुमुल=सेना का कोलाहल। [१९] दुरत=दुर्गम।

१३

[६] परेस=(परेश) ईश्वर। [११] प्रवान=(प्रमाण)। [१५] दिनमान=दिन पर दिन। [२१] जूक=(यूक) जूँ, चीलर आदि कीडे। [३४] एवमेव=ऐसा ही। [३६] बारि दयौ=जला दिया। [३७] किल=निश्चय ही। [४२] ऐनिनि=मृगियों में। करसायल=(कृष्णसार) उत्तम मृग। मुनैअन=लाल पक्षी की मादाओं, मुनियों। [४४] स्वपच=श्वपच, चाडाल। [४६] चडारु=चाडाल। [५१] आधि=पीडा। [५७] बिरतंत=(वृत्तात)। [५६] बरयाय=बलात्। [६८] निरधार=(निर्धार) निश्चय। [७१] चेटकी=कौतुकी। [७३] अपलोक=अपयश।

१४

[७] बसबास=वासस्थान, निवास। खगत है=(जग में) प्रवृत्त होता है। [६] समरु=(समर) युद्ध। भव=ससार। भमरु=भौरा। [११] पचालिका=पुतली। [१४] जोबराज=(युवराज)। [१६] चित्ति=ख्याति। [२४] गरिप्ट=(गरिष्ठ) वजनी। [२५] देखिए 'रामचद्रचद्रिका, २४।११'। [२६] अज=अजन्मा। [२७] कबरी=जूडा। [३६] परिरभन=आलिंगन। [५६] दुदुज=(द्वद्वज) रागद्वेप से उत्पन्न स्थिति। हाड=हड्डी, अस्थि। हाटक=सोना। परविप=उत्कट विप। [६३] अतर्धान=अदृश्य।

१५

[६] कुमक, पूरक, रेचक=क्रमशः श्वास भीतर खींचना, रोकना और छोडना। [११] अभेय=(अभेद)। पुंस=पुरुप। [१३] हरतारु=हर्तार, हरण करनेवाले। [१६] चितरूप=चिद्रूप (ब्रह्म)। अस=(अंशु) किरण। [२७] औसरैं=(अवसर) बारी, पारी में। [३४] राजचक्रचूडेस=राजाओं में सर्वश्रेष्ठ। [३८] भर्ता=स्वामी। [४०] कवल=ग्रास। [४५] सर्न=(शरण्य) शरण देनेवाला। [४६]

अमाय = मायारहित। निरीह = इच्छारहित। [४७] अकृत्त = अखंड। [५६] सद-च्छिन = दच्छिणासहित।

१६

[१] सिखीध्वज = (शिखिध्वज) मयूरध्वज राजा। [६] मारबान = कामदेव का बाण। [७] मुरार = कमलनाल। [११] आबाल तें = बाल्यावस्था से। [१४] मौर = (मुकुट) श्रेष्ठ। [१५] काहली = (अ० काहिल) आलसी। [२१] खैबोई खैबो = खाना ही खाना। निरै = निरय, नरक। दिवि = (दिवि) स्वर्ग। न उबीठत = अरुचिकर नहीं होता। [२२] करभ = ऊँट। [२५] असर्म = (अशर्म) आनंदरहित। [३६] दोइक = दो एक, कुछ। [३८] पनहीं = (उपानह्) जूता। [४५] ऐनचर्म = (एण + चर्म) मृगचर्म। ऐननाभि = मृगनाभि, कस्तूरी। [४६] कुमंडल = भूमंडल। दारुदंड = काठ का दंड, लाठी। [५०] सन = से। [५१] सनिधान भए = एकत्र हो गए। निरवद्य = अनिंद्य, निर्दोष। वाक = (वाक्) वाणी। [५२] व्यक्त = प्रकट। व्यासक्त = विशेष आसक्त, लीन। [५३] निम्मि = (निमि)। परासरै = पराशर ऋषि। परास बुद्धि = त्यागबुद्धि। [५४] निसर्ग = प्रकृति। थिरा = (स्थिरा)। जन्हुभू = जाह्नवी, गंगा। विसृज्य = उत्पन्न कर। [५५] मारकंड = (मार = काम + कंड = बाण)। मार-कंड = (मार्कंड) मृकंड ऋषि के पुत्र। [५६] हारीत = कण्व ऋषि के एक शिष्य। कुरेक पंडित = (कु + रेक = नीच) महानीच से पंडित (हो जानेवाले)। [६६] साँग = बरछी। [७०] खात = गड्ढा। [७२] साँकर = शृंखला, सिकड़ी। [८१] गहवर = (गह्वर) दुर्गम। [८४] काच = काँच, शीशा। [८५] फदीहत = (अ० फजीहत) दुर्गति। [८८] मुरकिहौं = मुड़ूँगा, विमुख होऊँगा। [१०१] बीरज = (वीर्य) बीज। [१०४] पटपदी = भ्रमरी। [१०६] ररत = रटते ही। उदरि गई = विदीर्ण हो गई, फट गई। [१०७] निमीलन = बंद करना, मूँदना। उकीरि = उत्कीर्ण करके, कोरकर, खोदकर। [१०६] सामज = सामवेद से उद्भूत। [११७] चूडाला = (जिसके केशों का जूड़ा मुकुट की भाँति बँधा हो) शिखिध्वज की रानी। [११८] साँई = स्वामी। [१२४] बौंडि गई = बढकर फैल गई।

१७

[६] भेव = (भेद) रहस्य। [१५] समद्यौ = आलिंगन किया, स्वीकार किया। [२१] मायक = माया करनेवाला। [२६] अंतेवासिन = शिष्यों ने। अनुमोद = (अनुमोदन) समर्थन। [२६] थापत = स्थापित करता है। बितानि = फैलाकर। [३४] सुक्ति = (शुक्ति) सीपी। [३५] छीवत नहीं = नहीं स्पर्श करता। [३६] रजुन = (रज्जु) रस्सियों। [३७] बिस्नुपदी = (विष्णुपदी) गंगा। [६७] कर्मभू = भारतवर्ष।

१८

अमित्र = शत्रु। [८] अवदात = उत्तम, श्रेष्ठ। [६] दैयत = (दैत्य) दानव। [१३] बिनाथ = (विगतनाथ) जिसका कोई स्वामी न रह गया हो। बिदेव = राक्षस। अदेव = जो देव न हो, देवेतर। [१५] दिति-कुल = दैत्यवंश। हिमेस = (हिम = चंद्र + ईश) चंद्रमा। [२३] अरूझूँ = उलझूँ, संलग्न होऊँ। [२५] अकल = अखंड। जोसि

सोसि=(यः असि, सः असि) जो हो सो हो। [३०] दिति-सूनु=दैत्य। निरबेद=(निर्वेद) खेद। दिब्रि=(दिवि) स्वर्ग। [३२] आकल्प लौं=कल्पपर्यंत। [३४] सिंधुजा=लक्ष्मी। [३६] जुक्त=(युक्त) उचित।

१९

[१०] धौत=उज्ज्वल। [१८] सासना=आज्ञा। मैंड=मर्यादा। [२६] निग्रहानुग्रह=(निग्रह=दंड+अनुग्रह=कृपा)। मनुहारि=विनय, खुशामद। [४८] माठापत्य=(मठपति से माठापत्य) महतई। [६३] स्मर=स्मरण कर।

२०

[६] प्रानरोधन=(प्राणरोधन) प्राणायाम। [१६] तृनचय=(तृणचय) तिनकों का समूह। [१९] सघात=समूह। [२१] उपल=ओला। आप=पानी। [४७] अस्ति=सत्ता। [४८] नाल=मृणाल, कमलदंड। बासे=वासित, सुगंधित। सरसीरुह=कमल। मित्र=सूर्य। [६२] सुंडि=सूँड। इच्छगजी=इच्छारूपी हथिनी।

२१

[८] हितवत=हितकारी। [९] धौरहर=अट्टालिका। [१२] मृन्मैं=(मृन्मय) मिट्टी से युक्त। [१४] रचक=रचनेवाला। [२१] छुटकाउ=छुटकारा। [२३] गाथ=गाथा, कथा। [३०] चिद्रूप=ब्रह्म। [४७] तमी=रात्रि। ऊगे=उदित होने पर। तरनि=(तरणि) सूर्य। तमीस=(तमीश) रजनीश, चंद्रमा। [४९] ग्रही=गृहस्थ। [५३] मक्र=मकर, मगर। धराधर=पर्वत। [६२] व्याधो=व्याधि भी। स्मरै=स्मरण करे। बर्न=(वर्ण) अक्षर। बर्न=(वर्ण) ब्राह्मण आदि जातिभेद। स्मरावै=स्मरण कराए। [७०] बासु=(वास) वासस्थान। [७१] सकलत्र=पत्नी-सहित। बसवास=वासस्थान, निवास।

शुद्धिपत्र

['टि' पादटिप्पणी के लिए है]

पृष्ठाछंद	अशुद्ध	शुद्ध
४।२६	मानहु	भानहु
४।२५टि	डारि–डोर	डारि–डारे
६।१२	रंचन	रंच न
७।१३	तौ	वे तौ
८।७	जो ते	जोते
१०।२१	बननि	बैननि
१६।५७	लब्धापति	लब्धायति
२०।५	गुलावति लौंछि	गुलाव तिलौंछि
२१।११	मच्छनी	यच्छनी
२२।१७	मीन	मीत
२३।३	मूकी	मुकि
३१।६	धन	धनु
३१।४टि	आनु	आनि
३१।६टि	मान	गान
३५।३२	मूँदि	मूँदी
३६।५	माइन	माइ न
४०।११	सद	सब्द
४१।१७	जानों	जानौ
४५।टि	३८	३६
४७।७	सबहीं	सब ही
४८।१२	दुति	दुरि
५०।२३	सुधा सुर	सुधासुर
५०।२७	जियैं	जियौ
५१।३१	दोहा	सवैया
,, ,,	चंदन हीं	चद नहीं
,, ,,	विप कद	विपकंद
,, ,,	विधि है	विधि है
,, ,,	जनि	जिन
५१।३३	चदन	चद न
५२।३७	ढीठहिं डीट	डीठिहिं डीठि
,, ,,	कॉपनी	कॉपती
५३।४२	तिन	तन
५३।४३	वाम कि	वाम की
५३।४६टि	नैन	बैन
५६।७	जनति	जानति
५६।५टि	आय	आयो
५६।६टि	६	७
५७।१०	अब यों	यों
५७।११	के तौ	केतौ
५७।१३	प्रकाश	प्रच्छन्न
५८।१६	राति	राती
५८।१७टि	धरई	थरई
५९।२टि	दान०–दान	दान०–दाम
५९।५टि	कीजे–को है	कीजे है–को हैहै
६०।७	तथहि	तबहि
६३।२७	राधिकारमन	राधिका रमन
६७।१६	कुँवरि !	कुँवर !
,, ,,	कली	काली
,, ,,	करति	ररति
७१।१२	आगि	आगि
७३।२०	आपु न	आपुन
७३।२३	परम चोर	मरम चोर
७४।२३	के नैन	के मनै
७४।२६टि	हाथ–साथ	अकाथ हाथ–०साथ
७५।२६	सीसु जु पीतर	सी सुनपीतर
,, ,,	काकन	काक न
७७।६टि	तनप्यौ	तन प्यौ
७८।१४	वट्टुवा	पट्टुवा

पृष्ठ।छंद	अशुद्ध	शुद्ध
८०।२०टि	२०	२१
८६।२६	हरिहौ विमद	करिहौ०
८८।३७टि	चुटि आहि	चुटिआहि
,, ,,	बडे	खडे
१०५।३५	सँजोगी	सजोगी
१२४।४४	ऊँट	ऊँटि
,, ,,	बोक	बोकि
,, ,,	कागनि	कागिन
१३०।७२	रामजू को दा	रामजू को दान
१३५।२३	कवलय	कुवलय
१३५।२५	कवलयनि	कुवलयनि
१३६।३०	श्रवन	स्रवन
१४०।८	कानी	कीनी
१४४।३४	साह, गोस	साहगोस
१५५।१४	बाधि	बोधि
१७१।६१	खँचि	खैंचि
१७३।७१	मेलैवार	मैले बार
१७८।१६	कसिवान	कसि बान
१८६।१२	जसी	जैसी
१८६।१५	ओपना	ओपनी
१९६।५१	५१	५०
२११।७६	'केसोराइ'	केसोराइ
२१५।१०१	कबित्त	दोहा
२२५।६०	क	कै
२३१।२५	कुछ	कछु
२४०।१३	पूज्या परा	पूज्यापरा
२४४।९	बिषदंड	बिसदंड
२४४।१०	जोइ	जोइ
२४५।१८	धन	धनु
२५०।२५	भवभूषन	भवभूषन
२५१।३६	पवतप्रभा	पर्वतप्रभा
२५५।१४	भैंस	भैसा
२६१।५९	रूप ही	रूप ही के
२६५।२१टि	बीर	धीर
२६६।४५	काऊ	कोऊ
,, ,,	जू	जु
२७३।५	दुकुल	दुकूल
२७६।३१	बिलोक	द्युलोक
२८६।१६	भक्षु	भिक्षु
२९६।२५	हँसी	हंसी
३०६।२४	अघ	अध
३०७।२९	हसिनी	हसिनी
३०७।३१	कनककुरग	कनककुरग
३१२।३९	बिग्रहानुकुल	बिग्रहानुकूल
३२३।४७	म	मैं
३२४।१६	हहली	दहली
३२७।२२	इन हौं	न हौं
३४०।४८	श्रति	श्रुति
३४९।१७	बघाई	बधाई
३५१।१८	द्रष्टि	द्दष्टि
३५२।२०	जद्यपि	जद्यपि
३७३।२१	क	के
,, ,,	जाबन	जोबन
३७४।२३	उरमति	उरमत
३७७।५	हुस्मयी	हुरमयी
३८१।३१	'केसवदास'	'केसव' दास
३८१।३२	ग्रह-अग्रज-अग्र	ग्रह अग्रज अग्र
,, ,,	देखो	देखी
३९४।३४	को	कों
३९५।४५	अत्वर	सत्वर
३९७।३	विरोघ	विरोध
३९७।९	ही	की
३९८।१८	बिग्रहिं त	बिग्रहि तैं
४०३।१७	मोरें	भोरें
४१०।१६	बिभीषन	बिभीषन
४१२।१३	गोबल	गो बल
४३९।४४	द्व	द्वै
४४६।७४	मौने	मौने
४५४।४०	अघ	अध
४५६।४९	तिदौरा	ति दौरा

पृष्ठाछंद	अशुद्ध	शुद्ध
४५६।१०	मीन	मीत
४६५।५	कुँबर	कुँवर
४६८।१८	तुक	तुर्क
४६६।२५	कर	करै
४७५।५३	राखहु	राखेहु
,, ,,	करहु	करेहु
,, ,,	नाखहु	नाखेहु
४८०।३५	मैं	तैं
४६२।४७	ब्रीरसधि	ब्रीरसिघ
४६२।५४	न ठाना	नठाना
५०२।६८	जीवन	जीवत
५०८।२५	हैमहर	है महर
५१७।३३	सग्राम	संग्राम
५१८।३६	फूलभरी	फूलभारी
,, ,,	छिपा	छिमा
५२६।७	नए	तए
५३१।२५	परखे	पसरे
५४०।१६	त्रिधि	व्रिधि
५४७।६	तुरंग	तरंग
५४७।७	स्वेत ब्राम	स्वेताभ
५४७।१३	खेत	स्वेत
५४७।१६	सुरमी	सुर की
५४८।१७	केसव 'केसवराय'	'केसव' केसवराय
५४८।२४	भनौ	मनौ
५४८।२५	वात	पात
५४८।२६	ब्रह्मदोपनि	ब्रह्मदोपिन
,, ,,	तपसी लाएँ	तपसीला ये
५४६।३१	लोलित	लालित
५४६।५	प्रनिवर	प्रतिघर
५५१।२०	वीघी	वीथी
५५१।२८	ह्वी	ही
५५४।२८	गुढ़नि	गूढ़नि
५५४।२६	चौगनी	चौगुनी
५५५।५७	काटे	कारे
५५६।१	देखैं	देखें
५६८।२२	पीसवान	पासवान
५७३।३	सौभे	सोभे
५७७।१५	त्रिसवलतानि	त्रिसवलितानि
५८०।२३	को दंड	कोदंड
६०४।२२	हमहाँ	हमहीं
६२०।२८	पानुसी	वान सी
,, ,,	श्रीमथुराभव	श्रीमथुरा भव
,, ,,	भानुमवागुन	भानुमवा गुन
६३३।१२६	प्रनिभटनि	प्रतिभटनि
६३५।१४७	हय	हम
६४३।१	चितत	चितत
६४३।२	भवभूप	भव भूप
,, ,,	उनकों	उर कों
६४५।१७	पापी	वापी
,, ,,	तरंगनि	तरगिनि
,, ,,	सों	सी
,, ,,	सिगरी	सैंगरी
,, ,,	अंक	अर्क
,, ,,	मिटि	मिटी
,, ,,	महीगति	महीपन
६४६।२३	जोधन	जोधन
६६२।४२	वात की	वान सी
,, ,,	पुष्प सरासन हा	'केसव' थावरहीं
,, ,,	घरही	चरहीं
,, ,,	भोर भई	भौंरमई
६६३।५ टि	कालानिधि	कलानिधि
६६३।६ टि	धूरो	भूरो
६६५।१५	प्रमान	प्रयान
७०३।१०	दाररनि	दरारनि
७१६।२८	सलिलनीव	सलिलानीव
७३५।५१	त्रिसिष्ट	बिसृष्टि
७३५।५२	लोक-व्यासक्त	लोक व्यासक्त
७३५।५५	मनियै	मानियै
७६६।४८	सरसी सह	सरसीरुह
,, ,, टि	सह	रुह

[मात्राओं आदि के टूटने से जहाँ-जहाँ अशुद्धियाँ हो गई हैं उन सबका उल्लेख विस्तारभय से नहीं किया गया है।]